बडोदा, घी लुहाणामित्र स्टीम प्रेसमें ठक्कर विठ्ठलभाई आशारामने प्रकाशकके
लिये छापकर प्रकट किया. ता. १-३-२४.

महाराजाधिराज, श्रीमान् माधवराव सिंधिया, आलीजाह बहादुर.

समर्पण।

महाराजाधिराज, श्रीमान् माधवराव सिंधिया,
आलीजाह बहादुर; जी. सी. एस. आई;
जी. सी. वी. ओ; जी. वी. ई; ए डी. सी.
ग्वालियर.

श्रीमन्महोदय,

एक उच्चकोटिके राज्याधिपतिमें धार्मिक उदारता, प्रजावत्सलता, न्यायप्रियता, शूरवीरता, कार्यदक्षता, ईष्टदेवोपासना एवं अनुपम मातृभक्ति आदि जो गुण होने चाहिएं, वे आपमें देखकर धार्मिक एवं ऐतिहासिक यह ग्रंथ आपहीको

समर्पण

करता हूँ।

श्रीविजयधर्मसूरि समाधि मंदिर
शिवपुरी (ग्वालीयर)
मार्गशीर्ष शुक्ला २, वीर सं. २४५१
धर्म सं. ३

विद्याविजय.

निवेदन ।

प्रस्तुत पुस्तकको छपकर तय्यार हुए करीब एक वर्ष हो गया, परन्तु कई अनिवार्य कारणोंसे हम जनताके करकमलोंमें यह पुस्तक उपस्थित करनेमें विलम्बित हुए । इसके लिये क्षमाप्रार्थी हैं।

हम चाहते थे कि–ऐसे उत्तम ग्रंथमें कर्त्ताकी फोटू देकर उसके द्वारा कर्त्ताका परिचय पाठकोंसे करावें; परन्तु कर्त्ता मुनिवरने इसपर अपनी अनिच्छा प्रकटकर, अपने जिस गुरुदेवकी शीतल छायामें बैठकर–उनकी कृपासे इस ग्रंथका निर्माण किया है, उन्हीं स्वर्गस्थ आचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराजका फोटू देनेकी सम्मति देनेसे उनका फोटू इस ग्रंथमें दिया गया है ।

पौष व. ९, वीर सं. २४५१
धर्म सं. ३

प्रकाशक.
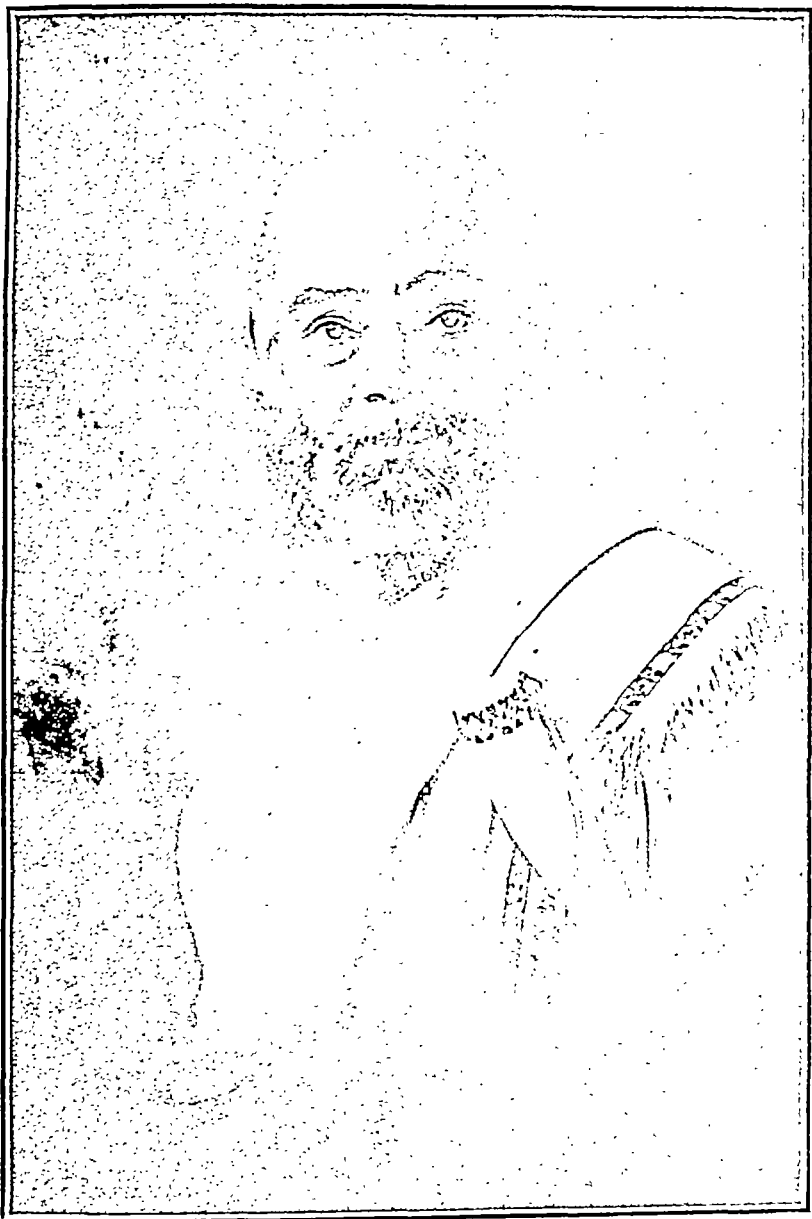
शास्त्रविशारद—जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरि,

ए. एम. ए. एम. बी.

विषयसूची ।

जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि.

जन्म सं. १५८३. निर्वाण सं. १६५२.

प्रस्तावना ।

जैनसाधुओंने गुर्जरसाहित्यकी सेवा सबसे ज्यादा की है। इस बातको वर्तमानके सभी विद्वानोंने, अब स्वीकार कर लिया है। मगर देशसेवा करनेमें भी जैनसाधु किसीसे पीछे नहीं रहे हैं, इस बातसे प्रायः लोक अजान हैं। कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्य और ऐसे ही दूसरे अनेक जैनविद्वान् हो गये हैं कि जिनका सारा जीवन देश-कल्याणके कार्योंमें ही व्यतीत हुआ था। यह बात, उनकी कार्यावलीका सूक्ष्मदृष्टिसे निरीक्षण करनेपर, स्पष्टतया मालूम हो जाती है। वे दृढता-पूर्वक मानते थे कि-" **देशकल्याणका आधार अधिकारियोंकी-सत्ताधारियोंकी अनुकूलतापर अवलम्बित है।**" और इसी लिए उनका यह विश्वास था कि,-" **लाखों मनुष्योंको उपदेश देनेसे जितना लाभ होता है उतना ही लाभ एक राजाको प्रति-बोध देनेसे होता है।**" इस मन्तव्य और विश्वासहीके कारण वे मानापमानकी कुछ परवाह न करके भी राज-दर्बारमें जाते थे और राजामहाराजाओंको प्रतिबोध देते थे। कहाँ प्राचीन जैनाचार्योंकी वह उदारता और कहाँ इस जीती-जागती बीसवीं सदीमें भी कुछ जैनसाधु-ओंकी संकोचवृत्ति ?

प्राचीन समयमें देशकल्याणके काम करनेवाले अनेक जैनसाधु हुए हैं। उन्हींमेंसे हीरविजयसूरि भी एक हैं। ये महात्मा सोल-हवीं शताब्दिमें हुए हैं। इन्होंने जैनसमाजहीको नहीं समस्त भारतको और मुख्यतया गुजरातको महान् कष्टोंसे बचानेका प्रयत्न किया है और अपने शुद्ध चारित्रबलसे उसमें सफलता पाई है। इस बातको बहुत ही कम लोग जानते हैं। थोडे बहुत जैन हीरविजयसूरिके

जीवनसे परिचित हैं; मगर उन्होंने सूरिजीके चरित्रका एक ही पक्षसे —धार्मिक दृष्टिहीसे—परिचय पाया है, इस लिए वे भी उनको भली प्रकार पहचानते नहीं हैं। हीरविजयसूरि भले अकबरके दर्बारमें एक जैनाचार्य की तरह गये हों और भले उन्होंने प्रसंगोपात्त जैनतीर्थोंकी स्वतंत्रताके लिए, अकबरको उपदेश देकर पट्टे परवाने करवाये हों; मगर उनका वास्तविक उपदेश तो समस्त भारतको सुखी बनानेहीका था। जो हीरविजयसूरिके जीवनका पूर्णतया अध्ययन करेगा वह इस बातको माने बिना न रहेगा। 'जजिया' बंद कराना, लड़ाईमें जो मनुष्य पकड़े जाते थे उन्हें छुड़ाना (बंदी—मोचन) और मरे हुए मनुष्यका धनग्रहण नहीं करनेका बंदोबस्त करना—ये और इसी तरहके दूसरे कार्य भी केवल जैनोंहीके लिये ही नहीं थे बल्के समस्त देशकी प्रजाके हितके थे। क्यों भुलाया जाता है, भारतके आधार गाय, भैंस, बैल और भैंसों आदि पशुओंकी हत्याको सर्वथा बंद कराना, और एक बरसमें जुदाजुदा मिलकर छः महीने तक जीवहिंसा बंद कराना, ये भी सभी भारत-हितके ही कार्य थे। इस कथनमें अतिशयोक्ति कौनसी है? जिस पशुवधको बंद करनेके लिए आज सारा भारत त्राहि त्राहि कर रहा है तो भी वह बंद नहीं होता, वही पशु-वध केवल हीरविजयसूरिके उपदेशसे बंद हो गया था। यह क्या कम जनकल्याणका कार्य था? ऐसे महान् पवित्र जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिजीके वास्तविक जीवनचरित्रसे जनताको वाक़िफ़ करना, यही इस पुस्तकका उद्देश्य है। इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर ही इस ग्रंथकी रचना हुई है।

ई. सन् १९१७ के चातुर्मासमें, सुप्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेन्ट ए. स्मिथका अंग्रेजी 'अकबर' जब मैंने देखा, और उसमें हीरविजयसूरिका भी, अकबरकी कार्यावलिमें, स्थान दृष्टिगत हुआ,

तब मेरे मनमें इस भावनाका उदय हुआ कि, केवल धार्मिक दृष्टिहीसे नहीं बल्के ऐतिहासिक और धार्मिक दोनों दृष्टियोंसे, **हीरविजयसूरि** और **अकबरसे** संबंध रखनेवाला एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखना चाहिए। इस विचारको कार्यमें परिणत करनेके लिए मैंने उसी चातुर्माससे इस विषयके साधन एकत्र करनेका कार्य प्रारंभ कर दिया। जब कार्य प्रारंभ किया था तब, स्वप्नमें भी, मुझे यह खयाल न आया था कि, मैं इस विषयमें इतना लिख सकूँगा, मगर जैसे जैसे मैं गहरा उतरता गया और मुझे अधिकाधिक साधन मिलते गये वैसे ही वैसे मेरा यह कार्यक्षेत्र विशाल होता गया; और उसका परिणाम यह हुआ कि, जनताके सामने मुझे, अपने इस क्षुद्र प्रयासका फल उपस्थित करनेमें दीर्घकालका भोग देना पड़ा। साधुधर्मके नियमानुसार एक वर्षमें आठ महीनेतक हमें पैदल ही परिभ्रमण करना पड़ता है इससे भी पुस्तकके तैयार होनेमें बहुत ज्यादा समय लग गया।

इस पुस्तकमें यथासाध्य, प्रत्येक बातकी सत्यता इतिहासद्वारा ही प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया गया है। इसी लिए **हीरविजयसूरिके** संबंधकी कई ऐसी बातें छोड़ दी गई हैं, जिन्हें लेखकोंने केवल सुनकर ही बिना आधारके लिख दिया है। मैंने इस ग्रंथमें केवल उन्हीं बातोंका मुख्यतया, उल्लेख किया है जिन्हें **हीरविजयसूरिने** अथवा उनके शिष्योंने अपने चारित्रबल और उपदेशद्वारा की—कराई थीं और जिनको जैन लेखकोंके साथ ही अन्यान्य इतिहासकारोंने भी लिखा है। इस ग्रंथको पढ़नेवाले भली भाँति जान जायँगे कि, **हीरविजयसूरि** और उनके शिष्योंने, केवल अपने चारित्रबल और उपदेशके प्रभावहीसे, **अकबरके** समान मुसलमान सम्राट्पर गहरा असर डाला था। यही कारण था कि जैनोंका संबंध मुगल साम्राज्यके साथ **अकबर** तक ही नहीं रहा बल्के पीछे ४, ५ पीढ़ी तक—

जहाँगीर, शाहजहाँ, मुरादबख्श, औरंगजेब और आज़मशाह तक—घनिष्ठ रहा था। इतना ही नहीं उन्होंने भी अकबरकी तरह अनेक नये फ़र्मान दिये थे। अकबरके दिये हुए कई फ़र्मानोंको भी उन्होंने फिरसे कर दिया था। ऐसे कुछ फर्मानोंके हिन्दी एवं अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित भी हो चुके हैं। इनके अलावा हमारे विहार—भ्रमण—के समय, खंभातके प्राचीन जैनभंडारोंको देखते हुए, सागरगच्छके उपाश्रयमेंसे अकबर और जहाँगीरके दिये हुए छः फ़र्मान (जहाँगीरके एक पत्रके साथ) अकस्मात् हमें मिल गये। खेद है कि उन छः फ़र्मानोंमेंसे एक फ़र्मानको—जो जहाँगीरका दिया हुआ है; जिसमें विजयसेनसूरिके स्तूपके लिए, खंभातके निकटवर्ती अकबरपुरमें, चंदू संघवीके कहनेसे दस बीघे जमीन देनेका उल्लेख है, बहुत जीर्ण होजानेसे जिसका हिन्दी अनुवाद न हो सका—मैं इस पुस्तकमें न दे सका। शेष असल पाँच फर्मान—जो इस पुस्तकमें आई हुई कई बातोंको पुष्ट करते हैं—उनके हिन्दी अनुवाद सहित परिशिष्टमें लगा दिये हैं।

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि, यद्यपि अकबरके बाद भी आज़मशाहतक जैनों और जैनसाधुओंका संबंध रहा था; तथापि अकबरके जितना प्रगाढ संबंध तो केवल जहाँगीरके साथ ही रहा था। पृष्ठ २४०—२४१ में वर्णित जहाँगीर और भानुचंद्रजीकी भेट तथा परिशिष्ट (ङ) का पत्र इस बातको परिपुष्ट करता है। इस तरह जहाँगीर केवल तपागच्छके साधु भानुचंद्रजी और विजयदेवसूरिजीहीको नहीं चाहता था बल्के खरतरगच्छके साधु मानसिंहजी—जिनका प्रसिद्ध नाम जिनसिंहसूरि था और जिनका परिचय इसी पुस्तकके पृ० १५६ में कराया गया है—के साथ भी उसका अच्छा संबंध था। हाँ पीछेसे न मालूम क्यों जहाँगीर

उनकी उपेक्षा करने लग गया था, यह बात जहाँगीरद्वारा लिखे हुए अपने आत्मचरित—'तौज़ुके जहाँगीरी' के प्रथम भागसे मालूम होती है।

इस पुस्तकका मुख्य हेतु अकबर और हीरविजयसूरिका संबंध बताना ही था। इसलिए अकबरके बादके बादशाहोंके साथ जैनसाधुओंका कैसा संबंध रहा था सो बतानेका प्रयत्न मैंने, इस पुस्तकमें नहीं किया। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि, जैसे जैसे विशेष रूपसे इस विषयका अध्ययन करनेकी मुझे सामग्री मिलती गई, वैसे ही वैसे अनेक नई बातें भी मालूम होती गईं। उनमेंसे यद्यपि कइयोंको मैंने इस पुस्तकमें स्थान दिया है तथापि अनेकको विवश छोड़ देना पड़ा है। इतिहासके अभ्यासियोंसे यह बात गुप्त नहीं है कि, जितने हम गहरे उतरते हैं उतनी ही नवीन बातें इतिहासमेंसे जाननेको मिलती हैं।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह पुस्तक एक ऐतिहासिक पुस्तक है; तो भी मैंने इस बातका प्रयत्न किया है कि, पाठकोंको इतिहासकी नीरसताका अनुभव न करना पड़े। मेरी नम्र मान्यता है कि,—प्रजाकी राजाके प्रति कैसी भावनाएँ होनी चाहिएं और राजामें किन किन दुर्गुणोंका अभाव व किन किन सद्गुणोंका सद्भाव होना चाहिए? इस बातको जाननेके लिए इस पुस्तकमें चित्रित अकबरका चरित्र जैसे जनताको उपयोगी होगा; वैसे ही यह समझनेके लिए, कि—एक साधुका—धर्मगुरुका—नहीं नहीं एक आचार्यका समाज और देशकल्याणके साथ कितना घनिष्ठ संबंध होता है और संसारी मनुष्यकी अपेक्षा एक धर्मगुरुके सिर कितना विशेष उत्तरदायित्व होता है; इस पुस्तकमें वर्णित आचार्यश्री हीरविजयसूरिकी प्रत्येक बात सचमुच ही आशीर्वादरूप होगी।

अपने आन्तरिक भक्तिभावसे प्रेरित होकर मैंने जिन महान् प्रभावक आचार्यका जीवन इस ग्रंथमें लिखनेका प्रयत्न किया उन्हीं महान् पुरुषका (हीरविजयसूरिका) वास्तविक चित्र मुझे कहींसे भी प्राप्त न हुआ,इस लिए वह इसमें न दिया जासका। विवश उनके निर्वाण होनेके थोड़े ही दिन बाद स्थापित की हुइ पाषाणमूर्त्ति, जो कि '**महुवा**' (काठियावाड़) में विद्यमान है, उसीका फोटो इसमें दिया गया है। यद्यपि अज्ञानजन्य प्रचलित रूढिके कारण श्रावकोंने चांदीके टीले लगाकर मूर्त्तिकी वास्तविक सुन्दरता विगाड़ दी है तथापि यह समझ-कर इसका फोटो दिया गया है कि, इसके द्वारा वास्तविक फोटोकी कई अंशोंमें पूर्ति होगी। इस पाषाण-मूर्तिके नीचे जो शिलालेख है। वह पूरा यहाँ उद्धृत किया जाता है।

" १६५३ पातसाहि श्रीअकवरप्रवर्त्तित सं० ४१ वर्षे **फा० सुदि ८ दिने श्रीस्तंभतीर्थवास्तव्य श्रा० पउमा (भा०) पांची नाम्न्या श्रीहीरविजयसूरीश्वराणां० मूर्त्तिः का० प्र० तपा-गछे (च्छे) श्रीविजयसेनसूरिभिः।**"

इस लेखसे ज्ञात होता है कि, **हीरविजयसूरि**के निर्वाणके बाद दूसरे ही वरस खंभातनिवासी श्रावक **पउमा** और उसकी स्त्री **पाँची** नामकी श्राविकाने यह मूर्त्ति करवाई थी और उसकी प्रतिष्ठा **विजय-सेनसूरि**ने की थी।

इस पुस्तकके दूसरे नायक **अकवर** और उसके मुख्य मंत्री **अबुल्फ़ज़ल**के चित्र डा० **एफ्** डब्ल्यु थॉमसने, 'इंडिया ऑफिस लायब्ररी'—जो लंदनमें है— मेंसे पूज्यपाद परमगुरु शास्त्रविशारद जैनाचार्य **श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी** महाराजके पास भेजकर, इस पुस्तककी शोभाको बढानेमें कारणभूत हुए हैं, अतएव मैं उन्हें धन्य-वाद दिये बिना नहीं रह सकता।

वर्तमान कालमें प्रस्तावना पुस्तकका भूषण समझी जाती है। इसलिए इस पुस्तककी प्रस्तावना या उपोद्घात लिखनेका कार्य मेरी अपेक्षा विशेष, गुर्जरसाहित्यका, कोई विद्वान करे तो उत्तम हो। वे इस पुस्तकके गुणदोष विशेषरूपसे बता सकें। इस कार्यके लिए मैंने गुर्जर साहित्यके प्रौढ एवं ख्यातनामा लेखक श्रीयुत **कन्हैयालाल माणेकलाल मुन्शी** बी. ए. एलएल. बी. एडवोकेटको उपयुक्त समझा। वे कार्यमें इतने रत रहते हैं कि उन्हें इस कार्यके लिए कहनेमें संकोच होता था; परन्तु उनके समान तटस्थ लेखकके सिवा इसे कर ही कौन सकता था? अगत्या मैंने उनसे आग्रह किया। अपनी सज्जनताके कारण वे मेरे आग्रहको टाल न सके। कार्यकी अधिकता होते हुए भी उन्होंने उपोद्घात लिखना स्वीकार किया; लिख भी दिया। मुन्शीजीको उनके इस सौजन्यके लिए कौनसे शब्दोंमें धन्यवाद दूँ?

खंभात हाइस्कूलके हैड मास्टर शाह **भोगीलाल नगीनदास** एम. ए. को भी मैं धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता; क्योंकि उन्होंने अपने हाइस्कूलके फ़ारसी–शिक्षकसे इस पुस्तकमें दिये हुए फ़ारसी फर्मानोंका गुजराती अनुवाद करवा दिया। एल्फिन्स्टन कॉलेज बम्बईके प्रॉफेसर शेख़ **अब्दुलकादिर सरफ़राज़** एम. ए. को भी धन्यवाद देता हूँ कि, जिन्होंने परिश्रम करके फर्मानोंके अनुवाद ठीक कर दिये हैं। बहाउद्दीन कॉलेज जूनागढ के प्रॉफेसर **एस. एच. होडीवाला** एम. ए. का नाम भी मैं सादर स्मरण किये विना नहीं रह सकता कि, जिन्होंने पुस्तकके छपेते फार्म देखकर मुझे कई ऐतिहासिक सूचनाएँ दे विशेष जानकर बनाया।

अन्तमें मैं एक बातको यहाँ स्पष्ट करना चाहता हूँ। वह यह

है,—इस ग्रंथको लिखनेमें मुझे ' इतिहासतत्त्व महोदधि ' उपाध्याय श्री इन्द्रविजयजी (वर्तमानमें आचार्यश्री विजयइन्द्रसूरिजी) की मुझे पूर्ण सहायता मिली है। यदि वे सहायक न होते तो मेरे समान अंग्रेजी, फ़ारसी और उर्दूसे सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्तिके लिए इस ग्रंथका लिखना सर्वथा असंभव था। इसलिए शुद्ध अन्तःकरणके साथ उनका उपकार ही नहीं मानता हूँ बल्के यह स्पष्ट कर देता हूँ कि, इस ग्रंथको लिखनेका श्रेय मुझे नहीं उन्हें है। शान्तमूर्त्ति आत्मबंधु श्रीमान् जयन्तविजयजी महाराजका उपकार मानना भी नहीं भूल सकता; क्योंकि उन्होंने प्रूफ-संशोधन करनेमें मेरी अतीव सहायता की है।

गोडीजीका उपाश्रय,
पायधौनी, बम्बई.
अक्षय तृतीया
वीर सं. २४४६.

विद्याविजय।

द्वितीय आवृत्ति ।

" आधुनिक जैनलेखकों द्वारा लिखे गये ग्रंथोंका जनतामें चाहिए वैसा आदर नहीं होता " जैन समाजमें यह वात प्रायः लोग कहा करते है । मगर किसी लेखकने इस वातकी खोज न की कि, ऐसा होता क्यों है ? यह कहा जाता है कि जैनेतर लोग पक्षपातके कारण, आदर नहीं करते; यह भी सही है मगर यह भी मिथ्या नहीं है कि, जैनलेखकोंकी लेखनपद्धति--एकान्त धार्मिक विषयकी ही पुष्टि, या ' पुराना वह सभी सत्य '--वतानेकी पद्धति--भी इसका एक खास कारण है । किसी वातको प्रमाणोंद्वारा पुष्ट न करके " दो सौ वरस पहले अमुक वात हुई थी " " अमुकने ऐसा किया था " इस लिए उसको मानना ही चाहिए, हमें भी करनाही चाहिए; इस तरहका आग्रह यदि जनताको आकर्पित न कर सके तो इसमें आश्चर्यकी वात ही कौनसी है ?

मैंने इस वातको ध्यानमें रख कर ही यह ग्रंथ लिखा था और इसी लिए प्रथम संस्करणकी भूमिकामें मैंने लिखा था कि,—

" इस ग्रंथको लिखनेमें हरेक वातकी सचाई इतिहास द्वारा प्रमाणित करनेहीका प्रयत्न किया गया है । इसी लिए, हीरविजयसूरिसे संबंध रखनेवाली कई वातें—जो केवल किंवदन्तियोंके आधार पर कुछ लेखकोंने लिखी है—इस ग्रंथमें छोड़ दी गई हैं । मैंने इसमें मुख्यतया केवल उन्हीं वातोंका उल्लेख किया हैं जिन्हें जैन लेखकोंके साथही जैनेतर लेखकोंने भी एक या दूसरे रूपमें स्वीकार किया है ।

मुझे यह लिखते हर्ष होता है कि, मेरी इस मनोवृत्ति और धारणाके अनुसार लिये गये इस क्षुद्र प्रयत्नका जनताने अच्छा

आदर किया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि, भारतके हिन्दी गुजराती एवं बंगालाके प्रायः प्रसिद्ध पत्रोंने एवं विद्वानोंने इस कृतिको मीठी नजरसे देखा है और इसके विषयमें उच्च अभिप्राय दिये हैं; कई पत्रोंने इसके उद्धरण लिये हैं। यहाँ तक कि, 'प्रवासी' के समान बँगलाके प्रसिद्ध मासिकपत्रमें भी इसके आधारसे लिखे हुए बड़े बड़े लेख प्रकाशित हुए हैं। जनता का यह आदर मेरे क्षुद्र प्रयत्नकी सफलता–चाहे वह थोडे अंशोंहीमें क्यों न हो–बताता है। इससे प्रसन्न होना मेरे लिए स्वाभाविक बात हैं। दूसरी तरफ जैनसमाज भी–जो अपने इन महान् परम प्रभावक आचार्यको उनके वास्तविक–स्वरूपमें न देख सका था–मेरे इस प्रयत्नसे सूरिजीको वास्तविक स्वरूपमें देख सका है और अबतक जिन्हें वह एक सामान्य आचार्य या साधु समझता था उन्हें वह महान् पुरुष समझ उनकी जयन्ती मनाने लगा है; यह बात भी मेरे लिए प्रसन्नता की है।

इस तरह यह ग्रंथ एक इतिहास–मुख्यतया जैन इतिहास–ग्रंथ होने परभी इसने जैन और जैनेतरोंमें अच्छा आदर पाया है। यही कारण है कि प्रकाशकको इतनी जल्दी इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा है। दूसरा संस्करण यद्यपि छपकर बहुत दिनसे तैयार रक्खा था तथापि एक नवीन फर्मानका–जो इसके अंदर परिशिष्ट 'च' में दिया गया है–अनुवाद न हो सका इससे तथा कई अन्य अनिवार्य कारणों से इसको प्रकाशित करनेमें बहुत विलंब हो गया।

प्रथमावृत्तिकी अपेक्षा इस आवृत्तिमें यह विशेषता है कि, इसमें एक फर्मान नया दिया गया है।

खंभातसे मिले हुए अकबर और जहाँगीरके छः फर्मानोंमें एक फर्मान–जो जहांगीरका दिया हुआ है–अति जीर्ण होने एवं

उसका अनुवाद संतोषकारक न हो सकने के कारण प्रथम संस्करणमें नहीं दिया गया था; हाँ उसका उल्लेख प्रथम संस्करणकी भूमिकामें जरूर कर दिया गया था; वही फर्मान इसवार परिशिष्ठ 'च' में दे दिया गया है। अन्य पाँच फ़र्मानोंकी भांति यह फ़र्मान भी जैन इतिहासमें बहुत महत्त्वका है। हीरविजयसूरिके प्रधान शिष्य विजयसेनसूरिका स्वर्गवास खंभातके पासका अकबरपुरमें हुआ था। उनका स्मारक कायम रखनेके लिए, स्तूपादि करानेको, दश बीघा जमीनका एक टुकडा चंदूसंघवीने बादशाह जहाँगीरसे माँगा था। बादशाहने 'मदद-ई-मुआश' जागीरके रूपमें, अकबरपुरहीमें उतनी जमीनका भाग दे दिया था।

इस पुस्तकके २३८ वें पृष्ठमें जिस बातका उल्लेख है उसको यह फर्मान अक्षरशः प्रमाणित करता है। पाठक देखेंगे कि इस फर्मानमें केवल भूमी देनेकी ही बात नहीं है; इसमें उसके शरीरकी आकृतिका और उसने कैसे मौके पर जमीन माँगी थी इसका भी पूर्ण उल्लेख है। अतः यह फ़र्मान विजयसेनसूरिके स्मारकके साथ घनिष्ठ संबंध रखनेवाला होनेसे ऐतिहासिक सत्यको विशेष दृढ करता है।

यह फर्मान बहुत जीर्ण था, इसलिए इस का अनुवाद करना अत्यंत कठिन था, तो भी पंजाबके वयोवृद्ध मौलवी महम्मदमुनीरने अत्यधिक परिश्रम करके इसका अनुवाद कर दिया; इसी तरह शिवपुरीके तहसीलदार नवाब अब्दुलमुनीमने उसकी जाँच कर दी इसके लिए उक्त दोनों महाशयोंको धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता।

अन्तमें—जगद्गुरु हीरविजयसूरि केवल जैनोंहीके नहीं बल्के भारतवर्षके उद्धारक एक महान् पुरुष थे। अकबरके समान मुसलमान

सम्राट्से परिचय कर देशके अभ्युदय में उन्होंने बहुत बड़ा योग दिया था। और वस्तुतः देखा जाय तो समाज और देशके कल्याणके साथ, साधुओंका—आचार्योंका—धर्मगुरुओंका संसारी मनुष्योंकी अपेक्षा कुछ कम संबंध नहीं हैं। जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिकी तरह, यदि धर्मगुरु समझें तो उनके सिर गृहस्थोंकी अपेक्षा कई गुणा अधिक उत्तरदायित्व है और अपने उत्तरदायित्वको समझनेवाले धर्मगुरु कदापि यह कहनेका साहस नहीं करेंगे कि—"हमारा देशके साथ और स्वदेशीके साथ क्या संबंध है?" कमसे कम अपने इन जगत्पूज्य जगद्गुरुके जीवनकी प्रत्येक घटना पर ही यदि धर्मगुरु ध्यान दें तो उन्हें बहुत कुछ जानकारी हो सकती है। इस लिए धर्मगुरु हीरविजयसूरिके जीवन पर ध्यान दें, उनके जीवनका अनुकरण करें; जैनसमाज हीरविजयसूरिके माहात्म्यको पहचाने, उनकी महिमा सर्वत्र फैलावे और प्रत्येक गाँवहीमें नहीं वल्के प्रत्येक घरमें उनकी वास्तविक जयन्ती मनाई जाय, यही हार्दिक इच्छा प्रकटकर अपना कथन समाप्त करता हूँ :

श्रीविजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानमंदिर
बेलनगंज, आगरा.
द्वि. ज्ये. शु. ९ वीर संवत्
२४४९. धर्म संवत् १

विद्याविजय.

उपोद्घात।

भारतवर्ष की उन्नति के लिये यहाँ के पहले के राजा महाराजाओं, विद्वानों, धर्माचार्यों, वीरपुरुषों एवं देशहितैषी धनाढ्यों के जीवनचरित्र के ऐतिहासिक दृष्टि से लिखे हुए ग्रंथों की बड़ी आवश्यकता है। हिन्दीसाहित्य में ऐसे प्रामाणिक ग्रंथ अब तक बहुत ही कम दृष्टिगोचर होते हैं। मुनिराज विद्याविजयजी ने 'सूरीश्वर अने सम्राट्' नामक जैनाचार्य हीरविजयसूरिजी और बादशाह अकबर के संबंध का एक अपूर्व ग्रंथ गुजराती भाषा में अनुमान तीन वर्ष पूर्व प्रकाशित कर गुर्जरसाहित्य की बड़ी सेवा बजाई थी और उनका ग्रंथ बड़ी खोज और ऐतिहासिक दृष्टि से एवं विद्वत्तापूर्ण लिखा हुआ होने से साक्षर गुर्जरवर्ग में बड़े महत्व का माना गया और तीन वर्ष के भीतर ही उसका दूसरा संस्करण छपवाने की आवश्यकता हुई। ऐसे अमूल्य ग्रंथ का हिंदी अनुवाद **आगरे** की **श्रीविजयधर्मलक्ष्मीज्ञानमंदिर** नामक संस्था ने प्रकाशित कर हिन्दीसाहित्य की श्रीवृद्धि करने का प्रशंनीय उद्योग किया है।

मूलग्रंथ के लेखक मुनिराज विद्याविजयजी ने धार्मिकदृष्टि की अपेक्षा ऐतिहासिकदृष्टि की ओर विशेष ध्यान दिया है और अनेक संस्कृत एवं प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों तथा रासों का पता लगाकर स्थल स्थल पर उन ग्रंथों के अवतरण देकर इस ग्रंथ का महत्त्व और भी बढा दिया है। अकबर बादशाह के अनेक जीवनचरित्र अंगरेजी, हिन्दी, गुजराती, बँगला आदि भाषाओं में लिखे गये हैं, परन्तु जैन आचार्यों का प्रभाव उस बादशाह पर कहाँ तक पड़ा और उनके उपदेश से जीवहिंसा को रोकने तथा लोकोपकार का कितना प्रयत्न उक्त

महान् वादशाह ने किया इसका वास्तविक वृत्तान्त किसी प्रकाशित ग्रंथ में नहीं मिलता। अलबत्तह **विन्सेंट स्मिथ** महाशय ने अपने 'अकबर दी ग्रेट मुग़ल' नामक पुस्तक में इस विषय पर थोड़ा सा प्रकाश डाला है जो प्रयाप्त नहीं है। जैन आचार्यों की पहले ही से इतिहास की तरफ़ रुचि है और उन्होंने कई महापुरुषों के जीवनचरित्रों का, जो कुछ उनको मिल सके, अनेक पुस्तकों में संग्रह कर इतिहास प्रेमियों के लिये वड़ी सामग्री रख छोड़ी है। ऐसे ग्रंथों में 'कुमारपालचरित', 'कुमारपालप्रबन्ध', 'प्रबन्धचिन्तामणि' 'चतुर्विंशतिप्रबंध', 'विचारश्रेणी', 'हंमीरमदमर्दन', 'द्व्याश्रयकाव्य', 'वस्तुपालचरित' आदि संस्कृत ग्रंथों से मध्ययुगीन इतिहास की कई वातों की रक्षा हुई है। ऐसे ही कई 'रास', 'सज्झाय' आदि पुरानी गुजराती अर्थात् अपभ्रंश भाषा के ग्रंथ लिखकर पुराने गुजराती साहित्य की सेवा के साथ उन्होंने अनेक महापुरुषों के चरित्र अंकित किये हैं। इन आचार्यों ने केवल इतिहास और साहित्य की ही सेवा नहीं की किन्तु लोगों को धर्माचरण में प्रवृत्त कर उनको सदाचारी बनाने का निःस्वार्थ बुद्धि से बड़ा ही यत्न किया है।

ऐसे अनेक जैन धर्माचार्यों में हीरविजयसूरि भी एक प्रसिद्ध धर्मप्रचारक हुए। इनकी प्रातिष्ठा अपने समय में ही वहुत वढ़ी और कई राजा महाराजा इनका सम्मान करते रहे और वादशाह अकबर ने भी वड़े आग्रह के साथ इनको गुजरात से अपने दरवार में बुलाकर इनका वड़ा सम्मान किया। जैसे अकबर वादशाह ने मुसलमानों के हिजरी सन् को मिटाकर अपनी गद्दीनशीनी के वर्ष से गिनती लगाकर 'सन् इलाही' नामक नया सन् चलाया और मुसलमानी महीनों के स्थान में ईरानी महीनों और तारीखों के नाम प्रचलित किये वैसे

ही इस्लाम धर्म की जगह दीन-इ-इलाही नाम का नया धर्म चलाना चाहा। उसी विचार से वह हिन्दुओं, पारसियों, ईसाइयों और जैनों आदि के धार्मिक सिद्धान्तों को जानने के लिये उन धर्मों के ज्ञाता उत्तमोत्तम विद्वानों को अपने दरबार में सम्मान पूर्वक बुलाकर उनके सिद्धान्तों को सुनता और उन पर विवाद करता। बादशाह का यह उद्योग अपने विचारे हुए नये धर्म के सिद्धान्तों को स्थिर करने के लिये ही था। जैनधर्म के सिद्धान्तों को सुनने के लिये हीरविजयसूरि, शान्तिचंद्र उपाध्याय, भानुचंद्र उपाध्याय और विनयसेनसूरि आदि जैन तत्त्वज्ञों को समय समय पर अपने दरबार में बुलाया, इनमें हीरविजयसूरि मुख्य थे। बादशाह अकबरने जैन धर्म के सिद्धान्तों को सुनकर धर्मरक्षा, जीवदया आदि लोकहित के अनेक कार्य्य किये और इन्हीं धर्मगुरुओं के प्रभाव से वर्ष भर में ६ महीनों तक अलग अलग समय पर अपने राज्यभर में जीवहिंसा को रोक दिया, जिसके लिये कुछ मुसलमान इतिहासलेखकों ने उसको भला बुरा भी सुनाया है। ऐसे ही जैनतीर्थों के संबंध के कई फ़रमान भी दिये थे जिनमें से कुछ पहले भी प्रसिद्ध हुए और ६ इस पुस्तक के परिशिष्ट में अनुवाद सहित छपे हैं जिनसे अकबर की धर्मनीति का परिचय मिलता है। अकबर के समय से जैन धर्माचार्यों का बादशाही दरबार में सम्मान होता रहा और जहाँगीर को भी उनपर बड़ी श्रद्धा थी (देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ. २४७)।

हीरविजयसूरिजी अपने समय में ही अपनी विद्वत्ता, तपस्या और सद्गुणों से बहुत ही लोकप्रिय हो गये थे और उनका चरित्र देवविमलरचित 'हीरसौभाग्य काव्य' पद्मसागर रचित 'जगद्गुरु काव्य' आदि संस्कृत ग्रन्थो में तथा श्रावक ऋषभदास रचित

'हीरविजयसूरि रास' आदि कितने ही पुरानी गुजराती भाषाके ग्रंथों में भी अंकित किया गया है । उनकी लोकप्रियता का एक उदाहरण यह भी है कि उनके स्वर्गवास के दूसरे ही वर्ष स्तंभतीर्थ (खंभात) के रहने वाले श्रावक पउमा और उसकी स्त्री पाँची ने उनकी पाषाण की मूर्त्ति भी बनवाई थी जिसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १६५३ और अकबर के नये चलाये हुए इलाही सन् ४१ में तपागच्छ के विजयसेनसूरि ने की थी ऐसा उस मूर्त्ति पर के लेखसे पाया जाता है । यह मूर्त्ति अब काठियावाड के महुवा नामक ग्राम में विद्यमान् है ।

मुनिराज विद्याविजयजी बड़े भाग्यशाली हैं कि उनको ऐसे प्रसिद्ध आचार्य का जीवनचरित्र लिखने के लिये जैनसाहित्य से बहुत बड़ी सामग्री मिल गई जिसके आधार पर एवं अन्य भाषाओं की अनेक पुस्तकों से इस ग्रंथरत्न को निर्माण किया । इस ग्रंथ को सर्वांग सुन्दर बनाने के लिये हीरविजयसूरिजी की उपर्युक्त मूर्त्तिका, स्वर्गस्थ शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरिजी का, जिनको यह ग्रंथ समर्पित किया गया है, बादशाह अकबर का, शेख अबुलफ़ज़ल का तथा ६ फारसी फरमानों के छायाचित्र (फोटो) और सूरिजी के गन्धार गाँव (गुजरात में) से लगाकर फतहपुरसीकरी में बादशाह के दरबार में उपस्थित होने तक के मार्ग का सुन्दर मानचित्र भी दिया है । इस ग्रंथ में केवल हीरविजयसूरिजी का ही वृत्तान्त नहीं है किन्तु बादशाह अकबर तथा हीरविजयसूरिजी के शिष्यसमुदाय संबंधी इसमें अनेक ज्ञातव्य बातों पर बहुत कुछ नया प्रकाश डाला गया है । इस ग्रंथ की रचना में यह एक बड़े महत्त्व की बात है कि इसमें जिन जिन स्थानों या पुरुषों के नाम आये हैं उसका पूरा पता लगाकर टिप्पणों में उनका बहुत कुछ विवरण दिया है । इस ग्रंथरत्न के विषय का विवेचन

तो पाठकों को मूल ग्रंथ के पठन से ही होगा परन्तु यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इतिहास के ग्रंथ बहुधा नीरस होते हैं, परन्तु यह ग्रंथ पढने वाले को सरस ही प्रतीत होता है और धर्मसंबंधी पक्षपात से भी बहुधा रिक्त है। ऐतिहासिक ग्रंथों के लेखकों को मुनिराज के इस ग्रंथ का अनुकरण करना चाहिये और यदि इसी शैली से सप्रमाण ग्रंथ लिखे जावें तो वे बड़े ही उपयोगी और महत्त्वपूण होंगे। मुनिराज से मेरी यह प्रार्थना है कि वे ऐसे ही और ग्रंथ लिखकर इतिहास की त्रुटि पूर्ण करने में अन्य विद्वानों का हाथ बटावें। हिन्दीसाहित्य में भी यह ग्रंथ बडे महत्त्व का है अतएव उसके कर्त्ता और प्रकाशक हिंदी सेवियों के धन्यवाद के पात्र हैं।

अजमेर।
ता. १७-१२-२३ } गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

सहायक ग्रंथ-सूची।

(गुजराती)

१ मीराते अहमदी—पठान निज़ामखाँ नूरखाँका अनुवाद।
२ मीराते सिकंदरी—आत्माराम मोतीराम दीवानजीका अनुवाद।
३ मुसलमानी रियासत—सूर्यराम सोमेश्वर देवाश्रयीका अनुवाद।
४ काठियावाड़ सर्वसंग्रह—
५ मीराते आलमगीरी—ले०, शेख गुलाम महम्मद आविद मियाँ साहब।
६ अकबर—गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीका।
७ फार्वस रासमाला—रणछोड़भाई उदयरामका अनुवाद।

(हिन्दी)

८ सीरोही राज्यका इतिहास—ले०, रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा।
९ अकबर—इण्डिअन प्रेस अलाहाबादका।
१० अकबर—गवालियरका।
११ सम्राट् अकबर—पं० गुल्ज़ारीलाल चतुर्वेदीका अनुवाद।
१२ भारत भ्रमण—श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेसमें मुद्रित।

(बंगाली)

१३ सम्राट् अकबर—श्रीबंकिमचंद्र लाहिड़ी बी. एल. प्रणीत।
१४ समसामायिक भारतेर उनविंश खण्ड—योगेन्द्रनाथ समाद्दार द्वारा संपादित।
१५ भारत वर्ष—(मासिक पत्रके कुछ अङ्क)

(उर्दू)

१६ दर्बारे अकबरी—प्रो० आज़ादकृत ।

ENGLISH.

17 Akabar by Vincent A. Smith.
18 The Emperor Akabar translated by A. S. Beveridge Vols. I & II.
19 Akabar by a Graduate of the Bombay University.
20 Akabar translated by M. M. with notes by C. R. Markham.
21 The History of Aryan Rule in India by E. B. Havell.
22 Al-Badaoni Vol. I translated by George S. A. Ranking. & Vol. II translated by W. H. Love.
23 Akabarnama translated by Beveridge Vols. I. II & III.
24 Ain-i-Akabari Vol. I translated by H. Blochmann & Vols. II & III by H. S. Jarrett.
25 The History of Kathiawad by H. W. Bell.
26 Dabistan translated by Shea and Troyer.
27 Travels of Bernier translated by V. A. Smith.
28 The History of India as told by its own Historians by Elliot & Dowson Vols. I-VIII.
29 Local Muhammadan Dynasties by Bayley.
30 Mirati Sikandari translated by F. L. Faridi.
31 The Early History of India by V. A. Smith.
32 The History of fine art in India in Series by V. A. Smith.
33 Storia do Mogor translated by William Irvine 4 Vols.
34 Ancient India by Ptolemy.
35 History of Oxford by Smith.
36 „ „ Gujarat by Edulji Dosabhai.
37 The Mogul Emperors of Hindustan by Holden
38 The Jain Teachers of Akabar by V. A. Smlth. (Printed in R. G. Bhandarkar commemoration Volume.)
39 Catalogue of the Coins in the Punjab Museum, Lahore by R. B. Whitehead Vol. II.

40 Catalogue of the Coins in the Indian Museum, Calcutta Vol. III. by H. N. Wright.
41 Architecture of Ahmedabad by T. C. Hope and J. Fergusson.
42 The Cities of Gujarashtra by Briggs.
43 Journals of the Punjab Historical Society.
44 The Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society Vol. XXI.
45 English factories in India by William Foster. (1618-1621, 1646-1650 & 1651-1654.)
46 Description of Asia by Ogilby.
47 Manual of the Musalman Numismatics by Codrington.
48 The Coins of the Mogul Emperors of Hindustan in the British Museum by Stanley Lane-Poole.
49 Collection of voyages & travels Vol. IV.
50 Tavernier's Travels in India Vol. II edited by V. Ball.
51 The History of the Great Moguls by Pringle Kennedy 2 Vols.
52 The History of Gujarat translated by James Bird.
53 Mediaeval India by Stanley Lane-Poole.
54 The History of India by J. T. Wheeler. Vol. IV part I.
55 Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland (issues of July and October, 1918.)

जैनग्रंथ ।

(गुजराती)

५६ हीरविजयसूरिरास—लेखक, श्रावक कवि ऋषभदास। वि० सं० १६८५।
५७ लाभोदयरास—लेखक, पं० दयाकुशल। वि० सं० १६४९।
५८ कर्मचंद चौपाई— „ पं० गुणविनय। वि०सं० १६५५

५९ जैनरासमाला प्रथम भाग—मोहनलाल दलीचंद देसाईद्वारा संपादित ।

६० तीर्थमाला-संग्रह—शा० जै० श्री विजयधर्मसूरिद्वारा संपादित।

६१ ऐतिहासिक रास-संग्रह तीसरा भाग— „

६२ श्रीविजयतिलकसूरिरास, दो अधिकार—लेखक, पं० दर्शनविजय, सं० क्रमशः १६७९ तथा १६९७

६३ अमरसेन-वयरसेन आख्यान—ले० श्रीसंघविजयजी वि० सं० १६७९

६४ ऐतिहासिक सज्झायमाला भा. १ ला—मूल लेखक (विद्याविजजी) द्वारा संपादित ।

६५ मल्लीनाथ रास—लेखक, ऋषभदास कवि । वि० सं० १६०५

६६ खंभातनी तीर्थमाला— „ „

६७ खंभातनी तीर्थमाला—ले०, मतिसागर, वि० सं० १७०१

६८ पद्महोत्सवरास—ले०, पं० दयाकुशल वि० सं० १६८५

६९ हीरविजयसूरि शलोको—ले०, पं० कुँअरविजय ।

७० दुर्जनशाल वावनी—ले०, पं० कृष्णदास वि० सं० १६५१

७१ हीरविजयसूरि कथा प्रवंध ।

७२ पट्टावली सज्झाय—ले०, पं० विनयविजय ।

७३ जैन ऐतिहासिक गुर्जर-काव्य-संचय—श्रीजिनविजयजीद्वारा संपादित (छप रहा है)

७४ शिलालेख-संग्रह—श्रीजिनविजयजी द्वारा संपादित ।

७५ प्राचीनलेख-संग्रह....शा० जै० श्रीविजयधर्मसूरि महाराजद्वारा संपादित । अप्रकाशित

७६ प्रश्नोत्तर पुष्पमाला—ले०, श्रीहंसविजयजी महाराज ।

७७ हीरविजयसूरि सज्झाय—ले०, कविराज हर्षानंदके शिष्य विवेकहर्ष ।

७८ परब्रह्म प्रकाश—ले०, विवेकहर्ष ।

७९ हीरविजयसूरि-रास (छोटा)—ले०, विवेकहर्ष वि०सं० १६५२

८० विजयचिन्तामणि स्तोत्र—ले०, पं० परमानंद । विजयसेनसूरिके शिष्य ।

८१ महाजनवंश-मुक्तावली—ले०, रामलालजी गणि ।

(संस्कृत)

८२ हीरसौभाग्यकाव्य, सटीक—ले० पं० देवविमल ।

८३ विजय प्रशस्ति काव्य, सटीक—ले०, पं० हेमविजयजी, टीकाकार । पं० गुणविजयजीगणि, टीका सं. १६८८

८४ जगद्गुरुकाव्य—ले०, पं० पद्मसागर ।

८५ कर्मचंद्र चरित्र—ले०, पं० जयसोम । सं० ११५०

८६ गुर्वावली—ले०, मुनिसुंदरसूरि ।

८७ कृपारसकोष—ले०, शान्तिचंद्र उपाध्याय ।

८८ सोम-सौभाग्य-काव्य—ले०, पं० प्रतिष्ठासोम सं० १५२४

८९ तपागच्छपट्टावली—ले०, रविवर्द्धन ।

९० तपागच्छपट्टावली—ले०, पं० धर्मसागरजी ।

९१ तपागच्छपट्टावली—ले०, उपाध्याय मेघविजयजी ।

९२ सूर्यसहस्रनाम—ले०, उपाध्याय भानुचंद्रजी ।

(विविध)

९३ जैनशासननो दीवालीनो अंक—(वि० सं०)

९४ प्रशस्तिसंग्रह—परमगुरु स्वर्गीय आचार्य महाराजद्वारा संग्रहीत।

९५ तपागच्छना आचार्योनी नोटो—स्व० पूज्यपाद आचार्य महाराजद्वारा संग्रहीत।

९६ कॉन्फरन्स हेरल्डनो ऐतिहासिक अंक।

॥ अर्हम् ॥

सूरीश्वर और सम्राट् ।

प्रकरण पहिला ।

परिस्थिति ।

संसार परिवर्तनशील है। इसमें एक भी वस्तु ऐसी दृष्टिगत नहीं होती जो सदैव एक ही स्थितिमें स्थित रही हो। एक समय जिस बालकको हम सांसारिक वासनारहित, पालनेमें झूलता देखते हैं, वही कुछ काल बाद, जवानीके मदसे मस्त, सांसारिक मोहक पदार्थोंसे परिवेष्टित हमें दिखाई देता है; यह क्या है? अपने शरीर-बलके मदसे उन्मत्त हो कर जो पृथ्वी पर पैर रखना भी लज्जास्पद समझता है, वही बुढ़ापेमें लकड़ीके सहारे टक टक करता चलता है; यह क्या है? संसारकी परिवर्तनशीलता या और कुछ? जिस सूर्यको हम सवेरे ही अपनी प्रखर प्रतापी किरणें फैलाते हुए उदयाचलके सिंहासन पर आरूढ़ होता देखते हैं, वही संध्याके समय निस्तेज हो, क्रोधसे लाल बन अस्ताचलकी गहन गुफामें छिपता हुआ क्या हमारे दृष्टिगत नहीं होता है? एक समय हम देखते हैं कि, जगत्को प्रकाशमय बनानेवाला गगन-

मंडल स्वच्छ है; निर्मल है। उसको देखनेसे मनुष्योंकी मानसिक शक्तियोंमें अचानक और ही तरहका विकास—और ही तरहकी उत्क्रान्ति हो जाती है। मगर दूसरे समयमें क्या हम नहीं देखते कि, वही गगनमंडल, मेघाच्छन्न हो गया है और मनुष्योंके मन और शरीर उसे देख कर शिथिल तथा प्रमादी बन गये हैं? जिन नगरोंमें बड़ी बड़ी अट्टालिकाओंसे सुशोभित महल मकान थे; गगनचुम्बी मंदिर थे; उत्साही मनुष्य थे; महलों और मंदिरों पर स्वर्णकलश दूरदूरसे दृष्टिगत हो कर, चित्रविचित्र ध्वजाएँ फर्रा कर, वहाँकी प्रजाकी सुख—समृद्धिकी साक्षी दे रहे थे, वे ही आज वन और गुफाएँ दिखाई देते हैं। जहाँ साम्राज्यकी दुंदुभिका नाद सुनाई देता था वहाँ आज सियार रो रहे हैं। जिसके घर ऋद्धि—समृद्धि छलकी पड़ती थी वही आज दरदरका भिखारी बन रहा है। जिस मनुष्यके रूप—लावण्य पर जो लोक मुग्ध हो जाते थे आज वे ही उसीको देख कर घृणासे मुँह फेर लेते हैं। लाखों करोड़ों मनुष्य जिनकी आँखके इशारे पर चलते थे; उन्हीं चक्रवर्तियोंको निर्जन बनोंमें निवास करना पड़ा है। ये सब बातें क्या बताती हैं? संसारकी परिवर्तनशीलता; उदयके बाद अस्त और अस्तके बाद उदय; सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख। इस तरह संसार, अरघट्टघटीन्यायसे, अनादिकालसे चला आरहा है। सुख और दुःख, दूसरे शब्दोंमें कहें तो उन्नति और अवनतिका प्रवाह अनादि कालसे मनुष्य मात्र पर अपना प्रभाव डालता चला आ रहा है। संसारमें ऐसा कोई देश, ऐसी कोई जाति और ऐसा कोई मनुष्य नहीं है कि, जिस पर संसारकी इस परिवर्तनशीलताने अपना प्रभाव न डाला हो। निदान भारतको भी यदि संसार समुद्रके इस परिवर्तनशीलता—ज्वारभाटेमें चढ़ना उतरना पड़ा हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

संसारके वहुत वड़े भागको जीतनेवाले वादशाह सिकंदरने इसी भारतमें ऐसे ऐसे खगोलवेत्ता, वैद्य, भविष्यवक्ता, शिल्पी, त्यागी, तत्त्वज्ञानी, खनिजशास्त्री, रसायनविद्, नाट्यकार, कवि, स्पष्टवक्ता, कृपिशास्त्री, नीतिपालक, राजनीतिज्ञ, शूरवीर और व्यापारी देखे थे कि, जिनकी समता करनेवाले किसी देशमें उसको दिखाई नहीं दिये थे। अभिप्राय यह है कि, सब वातोंमें भारतवर्ष अद्वितीय था। भारतवर्षकी समता करनेवाला दूसरा कोई भी देश नहीं था। श्रीयुत **वंकिमचंद्र** लाहिडी अपनी 'सम्राट् अकवर' नामकी वंगला पुस्तकके ८ वें पृष्ठमें लिखते हैं कि,—

" भारतेर मृत्तिकाय रत्न, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र प्रभृति जन्मित। जगतेर सुप्रसिद्ध कहिनूर भारतेइ उत्पन्न हइया छिल। एखानकार वृक्ष लौहेर न्याय दृढ़। एखाने पाहाड़ श्वेत मर्मर, समुद्र मुक्ताफल, वृक्ष चंदनवास ओ वनफूल सौगन्ध प्रदान करे। स्वर्णप्रसू भारते किसेर अभाव छिल। "

अभिप्राय इसका यह है कि, भारतकी मिट्टीमें रत्न, स्वर्ण, चाँदी और ताँवा आदि उत्पन्न होते थे। जगत्प्रसिद्ध कोहेनूर (हीरा) इस भारतहीमें उत्पन्न हुआ था। यहाँके वृक्ष लोहेके समान दृढ़ होते हैं। यहाँके पर्वत संगमरमर, समुद्र मुक्ताफल, वृक्ष चंदन-वास और वनपुष्प सुगंध प्रदान करते हैं। स्वर्णप्रसू भारतमें किस चीजका अभाव था?

इतिहासके पृष्ठ, मथुरा, श्रावस्ति, राजगृही, सोपारक, सारनाथ, तक्षशिला, माध्यमिका, अमरावती और नेपालके कीर्तिस्थंभ, शिलालेख और ताम्रपत्र आदि इस समय इस वातकी सप्रमाण साक्षी दे रहे हैं कि, भारतवर्षके भूषण समान चंद्रगुप्त, अशोक, संप्रति, विक्रमादित्य, श्रीहर्ष, श्रेणिक, कोणिक, चंद्रप्रद्योत, अल्लट, आम (नागावलोक) शिलादित्य, कक्कुक प्रतिहार, वनराज, सिद्धराज और कुमार-

पालके समान हिन्दु और जैन राजाओंने भारतवर्षकी ऋद्धि-समृद्धिको भारतवर्षहीमें सुरक्षित रक्खा था; भारतकी कीर्त्ति सौरभको दिग्दिगान्तोंमें फैलाया था। इतना ही क्यों, अपनी समस्त प्रजाको निज निज धर्मकी रक्षा करने और प्रचार करनेमें सहायता की थी। यही कारण था कि, भारतीय सरल स्वभावी थे। वे प्रेमके एक ही धागेमें बँधे हुए थे। प्रजाको अपने धन-दौलतकी न कुछ चिन्ता करनी पड़ती थी और न कुछ प्रबंध ही। मदिरा और ऐसे ही दूसरे व्यसनोंसे लोग सदा दूर रहते थे। भारतवर्षका लेन देन प्रायः विश्वास पर ही चलता था। न कोई किसीसे किसी तरहकी जमानत लेता था और न कोई किसीसे किसी प्रकारका इकरारनामा ही लिखाता था। राजा स्वयं जीवहिंसासे दूर रहते थे और प्रजाको भी जीवहिंसासे दूर रखते थे। बहुतसे राजाओंने अपने अपने राज्योंमें शिकार द्वारा, यज्ञ द्वारा या अन्य भाँति, होनेवाली जीवहिंसा बंद कर दी थी। राजा अशोकने अपने राज्यमें इस बातकी घोषणा करवा दी थी कि,—" एक धर्मवाला किसी दूसरे धर्मकी—दूसरे धर्मवालेकी निंदा न करे। " ऐसी उदारवृत्तिवाले राजाके राज्यमें यदि प्रत्येक निर्भीकतासे अपना धर्म पालता था तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सुप्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यके समयमें भारत जिस उन्नत दशामें था—जैसी इसकी जाहोजलाली थी उससे क्या कोई अनभिज्ञ है? विद्या, विज्ञान और विविध प्रकारकी कलाओंका विस्तार इसी प्रतापी राजाके राज्यमें हुआ था। आज प्रायः संस्कृतज्ञ विद्वान् **सिद्धसेन दिवाकर** और **कालिदास**के समान कवियोंके पवित्र नामोंका बड़े सत्कारके साथ उच्चारण करते हैं। वे भारतके झगमगाते हुए हीरे थे और इसी राजाकी सभाको सुशोभित करते थे। चित्रकला और भुवन-निर्माणकला भी इसी राजाके समयमें बड़े वेगके साथ आगे बढ़ी थी। संगीत, गणित और ज्योतिष विद्याका प्रचार भी विशेषकरके इसी राजाके समयमें हुआ था।

राजा श्रीहर्षके समयमें भी भारतीय मनुष्य अखंड शान्ति सागरमें स्नान कर रहे थे। यह राजा प्रजाके साथ कैसी सहानुभूति रखता था; कैसी उदारताका वर्ताव करता था, उसका हम यहाँ एक उदाहरण देंगे।

प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयागमें संगमका मेला होता था। उस मौके पर वह सारी सम्पत्ति–जो पाँच वरसमें एकत्रित होती थी–भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियोंको दानमें दे देता था। जिस समय चीनी यात्री ह्युयेनसांग (Huen Tsiang) भारतमें यात्रा करने आया था उस समय राजा हर्षकी प्रयाग यात्राका छठा उत्सव था। ह्युयेनसांग भी उसके साथ प्रयाग गया था। उस समय प्रयागमें पाँच लाख मनुष्य जमा हुए थे। उनमें २० राजा भी थे। पाँच वरसमें जो सम्पत्ति एकत्रित हुई थी उसको, राजकर्मचारी ७५ दिन तक दानमें देते रहे। वह धन–सम्पत्ति कितने ही कोठारोंमें भरी हुई थी। राजाने अपने रत्नजड़ित हार, कुंडल, माला, मुकुट आदि समस्त आभूषण दानमें दे दिये थे।

भारतके आर्य राजाकी यह उदारता क्या जगत्को आश्चर्यमें डालनेवाली नहीं है? इस राजाके समयमें भी संस्कृतकी बहुत ज्यादा उन्नति हुई थी। यह भी जीवहिंसाका कट्टर विरोधी था। इसने अपने समस्त राज्यमें ढिंढोरा पिटवा दिया था कि,—"जो मनुष्य जीवहिंसा करेगा उसका अपराध अक्षम्य समझा जायगा और उसे मृत्यु दंड दिया जायगा"

जिन राजाओंके हमने ऊपर नाम लिखे हैं उनमेंसे कई जैन थे और कई जैनधर्मके साथ सहानुभूति रखनेवाले। सम्प्रति नामका राजा पक्का जैन था। उसने अनार्य देशोंमें भी जैनधर्मका प्रचार कराया था। इसमें उसे सफलता भी अच्छी हुई थी। राजा श्रेणिक, कोणिक और चंद्रप्रद्योतने जैनधर्मकी प्रभावना करनेमें कोई कमी नहीं की थी।

इनको महावीरस्वामीके परम भक्त होनेका सम्मान प्राप्त है। राजा **आम** और **शिलादित्यने** सम्पूर्णतया जैनधर्मके गौरवकी रक्षा की थी। अन्तिम जैन राजा **वनराज, सिद्धराज** और **कुमारपाल** आदिने 'अमारी घोषणा' कराके अहिंसाधर्मका प्रचार किया था। यह बात किसीसे छिपी हुई नहीं है। इस भाँति हिन्दु और जैनधर्मको पालनेवाले राजा ही क्यों? **शकडाल, विमल, उदयन, वाग्भट्ट** और **वस्तुपालके** समान प्रतापी राजमंत्री भी थोड़े नहीं हुए हैं कि, जिन्होंने अहिंसा-धर्मके फैलानेका प्रशंसनीय उद्योग किया था और जिनका प्रताप समस्त भारतमें फैल रहा था।

एक ओर वीरप्रसू भारत माताने ऐसे ऐसे वीर—आर्यधर्मरक्षक राजाओंको उत्पन्न किया था और दूसरी ओर उसने ऐसे ऐसे सच्चरित्र और प्रतापी जैनाचार्योंको जन्म दिया था कि, जिन्होंने अपने अगाध पांडित्यका परिचय दे कर जगत्को आश्चर्यमें डाल दिया था। उनकी कृतियाँ आज भी संसारको आश्चर्यमें डाल रही हैं। इतना ही क्यों, उन्होंने ऐसे ऐसे असाधारण कार्य किये हैं कि, जिनका करना सामान्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या है मगर अच्छे अच्छे शक्तिसम्पन्न मनुष्योंके लिए भी दुःसाध्य है। मौर्यवंशीय सम्राट् **चंद्रगुप्तको** प्रतिबोध करनेवाले चौदह पूर्वधारी **श्रीभद्रबाहु स्वामी**, ५०० ग्रंथोंकी रचना करनेवाले **उमास्वाति वाचक**, १४४४ ग्रंथोंकी रचना करनेवाले **हरिभद्रसूरि**, हजारों क्षत्रियोंको जैन (ओसवाल) बनानेवाले **रत्नप्रभसूरि**, अन्याय-लिप्त **गर्दभिल्ल** राजाको प्रजाके हितार्थ राजगद्दीसे उतार कर उसके स्थानमें **शकको** राज्यासीन करनेकी शक्ति रखनेवाले **कालिकाचार्य, आम** राजाके गुरु होनेका सम्मान प्राप्त करनेवाले **बप्पभट्टि**, 'उपमितिभवप्रपंचा कथा' के समान संस्कृत भाषामें अद्वितीय उपन्यास लिखनेवाले महात्मा **सिद्धर्षि**, महान् चमत्कारिणी

विद्याओंके आगार **यशोभद्रसूरि**, तार्किक शिरोमणि **मल्लवादी**, ग्रंथोंकी विशेष रूपसे व्याख्याएँ लिखनेमें अपनी असाधारण बुद्धिका परिचय देनेवाले **मलधारी हेमचंद्र**, **सिद्धराज जयसिंहकी** सभाके एक रत्न होनेका सम्मान प्राप्त करनेवाले और वादकी अतुल शक्तिके धारक **वादिदेवसूरि** और **कुमारपालके** समान राजाको उपदेश दे कर, अठारह देशोंमें जीवदयाका एक छत्र राज्य स्थापन करानेवाले कलिकालसर्वज्ञ **श्रीहेमचंद्राचार्यके** समान महान् प्रतापी जैनाचार्य रूपी रत्नोंको भी इसी भारत वसुंधराने प्रसव किया था। साथ ही **पेथडशा**, **झांझण**, **झगडुशा**, **जगसिंह**, **भीमाशा**, **जावड**, **भावड**, **सारंग** और **खेमा हडालियाके** समान लक्ष्मीपुत्रोंको भी इसी भारतने अपनी गोदमें खिलाया था। इन्होंने अपनी लाखों ही नहीं, करोड़ों ही नहीं बल्कि अब्जोंकी सम्पत्तिको, भारतके भूषणरूप जिनालय बनानेमें, आर्यावर्तकी शिल्पकलाको सुरक्षित रखनेमें, आर्यबंधुओंका पालन करनेमें, अपनी मान-मर्यादाको सुरक्षित रखनेमें, बड़े बड़े संघ तथा वरघोड़े निकालनेमें और ज्ञानके साधन लुटानेमें व्यय किया था। उन्होंने धर्मकी—आर्यधर्मकी रक्षा करनेमें लक्ष्मीकी तो कौन कहे प्राणोंकी भी कभी परवाह नहीं की थी। ऐसे आस्तिक और अखूट धन-लक्ष्मीके भोक्ताओंको भी इसी आर्यभूमिने पैदा किया था।

ये बातें क्या बताती हैं? भारतका गौरव! आर्यावर्तकी उत्तमता, दूसरा कुछ नहीं। जिस भारतमें ऐसा शान्तिमय राज्य था, ऐसी अद्वितीय विद्याएँ थीं, ऐसे दानशील थे, ऐसे जीवदया प्रतिपालक थे, ऐसी धन संपत्ति थी, ऐसा आनंद था, ऐसी उदारता थी, ऐसी विशालता थी, ऐसा प्रेम था, ऐसी धर्मशीलता थी, ऐसी वीरता थी और ऐसे अप्राप्य विद्वान् थे, उसी स्वर्ग समान भारतकी आज क्या स्थिति है? भारतका बहुत कुछ अधःपात हो चुका है तो भी आज

गई गुजरी हालतमें भी वह पूर्ण गौरवसे गौरवान्वित है। समस्त संसार एक स्वरसे कह रहा है कि, एक समय था जब भारतका प्रताप अनिर्वचनीय था। भारतकी वीरता झगमगा रही थी। प्रकृतिने उसको वह शक्ति दी थी कि, जिससे यह भारतीय प्रजा 'कर्म' और 'धर्म' दोनोंमें असामान्य पौरुष दिखाती थी। ऐसे अपूर्व शान्तिके गंभीर आनंदसागरमें कल्लोल करती हुई भारतीय प्रजाको संसारकी परिवर्तन-शीलताने अपना चमत्कार दिखाया। यानी जिसने कभी दुःखके दिन नहीं देखे थे, जिसको अपने आर्यत्वकी रक्षाके लिये किसी भी तरहके प्रयत्न नहीं करने पड़े थे उस परम श्रद्धालु आर्य प्रजा पर अचानक पठानोंके आक्रमण प्रारंभ हुए। हम जिस समयकी स्थितिका वर्णन करना चाहते हैं, वह समय अभी आया न था तब तक तो पठानोंने भारतकी लक्ष्मी लूटनेके मोहमें पड़ कर, अपनी क्रूरतासे भारतकी समस्त प्रजाको त्रसित करना प्रारंभ कर दिया! जिन पठानोंने इस सिद्धान्तको 'या तो हिंदु लोगोंको इस्लामधर्म स्वीकार करायँगे या उन्हें मौतका शिकार बनायँगे' सामने रख कर आक्रमण आरंभ किया था, उन्होंने भारतीय प्रजाको कितना सताया होगा, इसका अनुमान सहजहीमें किया जा सकता है। लाखों निरपराध मनुष्योंको मारना, जीतेजी आर्य राजाओंकी खाल खिचवा लेना, शिकारकी इच्छा होने पर पशुओंकी तरह आर्य प्रजाको घेरना और उसमें आनेवाली स्त्रियोंको, पुरुषोंको और बालकोंको बुरी तरहसे–भिन्न भिन्न तरहसे मारना, देवमूर्तियोंको तोड़ टुकड़े कर, उनके साथ मांसकी बोटियाँ बाँध आर्य प्रजाके गले लटकाना आदि नाना प्रकारके दुःखोंसे समस्त भारतमें हाहाकार मच रहा था। पठान राजाओंके त्राससे त्रसित आर्य प्रजा त्राहि त्राहि पुकार उठी थी। बंकिमचंद्र लाहिडी अपनी 'सम्राट्–अकबर' नामकी पुस्तकमें पठानोंने जो कष्ट दिये थे उनका वर्णन करनेके बाद पृष्ठ २४ में लिखते हैं:—

" पाठानदिगेर् अत्याचारे् भारत श्मशानावस्थाये प्राप्त हइल। जे साहित्यकानन नित्य नव नव कुसुमेर् सौंदर्य ओ सौगन्धे आमोदित थाकित, ताहाओ विशुष्क हइल। स्वदेशहितैपिता, निःस्वार्थपरता, ज्ञान ओ धर्म, सकलेइ भारत हइते अन्तर्हित हइल। समग्र देश विषाद ओ अनुत्साहेर् कृष्ण छायाय् आवृत्त हइल। "

भाव इसका यह है कि,—पठानोंके अत्याचारसे भारतकी अवस्था श्मशानसी हो गई। जो साहित्योद्यान—साहित्य बगीचा—सदैव नवीन नवीन पुष्पोंके सौंदर्य और सुगंधसे आमोदित रहता था वह भी शुष्क हो गया। स्वदेशहितैषिता, निःस्वार्थपरता और ज्ञान तथा धर्म सब कुछ भारतसे अन्तर्धान हो गये। समस्त देश विषाद और अनुत्साहकी काली छायासे ढक गया।

भारतवर्ष पठानोंके अत्याचारोंसे पहिले ही त्रस्त हो रहा था उसी समय ईस्वी सन्‌की चौदहवीं शताब्दिके अन्तमें, घटतेमें पूरी भारत पर और एक आफत आ खड़ी हुई। भारतवर्षकी असाधारण कीर्त्तिसे मध्य एशियाके **समरकंद** प्रदेशमें रहनेवाले **तैमूरलंग**को ईर्ष्या उत्पन्न हुई। इसलिए वह अपने राज्यसे सन्तुष्ट न हो कर भारतकी लक्ष्मीको भी अधिकृत करनेके लिए लालायित हो उठा। उसने चढ़ाई की, भारतको लूटा, सतियोंको सतीत्वभ्रष्ट किया, गाँवके गाँव जला दिये और लोगोंको पशुओंकी भाँति तलवारके घाट उतारा और इस तरह उसने भारतकी प्रजाके कष्टोंको दुगना कर दिया। इसी लिए तो कहा है कि,—

' लोभाविष्टो नरो हन्ति मातरं पितरं तथा। '

अतः जो लोभवृत्ति मातापिताकी हत्या करा देती है उस लोभवृत्तिने तैमूरलंगसे ऐसे क्रूर कर्म कराये, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? कहा जाता है कि,—तैमूरलंगने सिर्फ दिल्लीहीमें एक लाख

हिन्दुओंकी हत्या की थी। यद्यपि तैमूरलंगके आक्रमणसे पठानोंके पराक्रममें कुछ न्यूनता आ गई थी और इसलिए उनके अत्याचारोंकी मात्रामें भी कुछ कमी हो गई थी, तथापि उनका जातीय स्वभाव सर्वथा मिट नहीं गया था। सिकंदर लोदीने देवमंदिरों और मूर्तियोंको तोड़नेका कार्य बराबर जारी ही रक्खा था।

इसी भाँति अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए भारतने ईस्वी सन्की पन्द्रहवीं शताब्दि समाप्त की। अब हम सोलहवीं शताब्दिमें पदार्पण करते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें हम इसी शताब्दिकी स्थितिका दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

यद्यपि सोलहवीं शताब्दि प्रारंभ हो गई थी, तथापि भारतवर्षके दुःखके दिन तो दूर नहीं ही हुए थे। मुसलमान बादशाहोंका जुल्म जैसाका तैसा ही कायम था। इतना होने पर भी साभिमान यह कहना पड़ता है कि, भारतमें 'आध्यात्मिक भावनाएँ' और 'आर्यत्वका अभिमान' पूर्ववत् ही मौजूद था। भारतकी प्रजाने अपनी जातीयताकी रक्षाके सामने लक्ष्मीकी कोई परवाह नहीं की थी। इतना ही क्यों? उसने 'धर्मरक्षा' को अपना ध्येय बना कर प्राणोंको भी तिनकेके समान समझा था। यद्यपि लोभाविष्ट मुसलमान बादशाहोंने कइ वार भारतको लूटा था और लूटका धन लेजा कर अपने घरोंमें भरा था, तथापि भारत सर्वथा ऋद्धि-समृद्धिहीन नहीं हो गया था। उदाहरणके लिए इतिहासके पन्ने उलटो। महमूद ग़ज़नवी आदिकी लूटके वृत्तान्त उनमें मिलेंगे। कहा जाता है कि, सन् १०१४ ईस्वीमें जब उसने काँगड़ाका (जिसको पहिले नगरकोट अथवा भीमनगर कहते थे) दुर्ग अपने अधिकार किया था, तब वहाँसे उसे अपार संपत्ति मिली थी। उसमें एक 'चाँदीका बँगला' भी था। इस बँगलेकी लंबाई ९० फीट और चौड़ाई ४५ फीट थी। वह इकट्ठा हो सकता था; एक जगहसे दूसरी

जगह ले जाया जा सकता था और जिस समय आवश्यकता होती थी, वह पुनः बँगला बन सकता था।

यह तो एक उदाहरण है। इसी तरह अनेक बादशाहोंने भारतवर्षको लूट लूट कर खाली कर देनेकी—बरबाद कर देनेकी चेष्टाएँ की थीं; परन्तु भारतवर्षको उन लूटोंसे केवल इतना ही नुकसान हुआ जितना कानखजूरेको उसकी एक टाँग टूटनेसे होता है; अथवा समुद्रको एक बूँद कम हो जानेसे होता है। अतः यदि यह कहा जाय कि, भारतवर्षकी ऋद्धि-समृद्धिमें कोई कमी नहीं हुई थी तो अत्युक्ति नहीं होगी। यदि स्पष्ट शब्दोंमें कहें तो यह है कि, इस समयकी अपेक्षा उस समयकी (सोलहवीं शताब्दिकी) जाहोजलाली और ही तरहकी थी। सारे भारतवर्षकी बातको छोड़ कर सिर्फ़ गुजरातहीकी—उसके मुख्य नगर खंभात, पाटन, पालनपुर और सूरतहीकी—उन्नतिका—उसकी असाधारण जाहोजलालीका वर्णन करनेका यदि प्रयत्न किया जाय तो वह असंभव न होने पर भी कष्ट-साध्य तो अवश्य है। जो **खंभात** इस समय निरुद्यमी और निरुत्साही दिखाई देता है, वह उस समयका समृद्धिशाली नगर था। उसकी गगनस्पर्शी ध्वजाओंको देख देख कर ईरान आदि देशोंसे जहाजोंमें आनेवाले लोग आश्चर्य-चकित हो जाते थे। जिस **पाटन**के निवासी आज दूर देशोंमें जा कर नौकरी करके या व्यापार-धंधा करके पेट भरनेके लिए मजबूर हुए हैं, उसी पाटनके लोग उस समय अपने घरोंमें बैठे बैठे लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ोंकी उथल पाथल किया करते थे। मामूलीसा गिना जानेवाला **पालनपुर** शहर उस समय असाधारण विशाल और समृद्धि-शाली था। ऐसे ऐसे अनेक नगर थे जिनके कारण सिर्फ़ गुजरात ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष अपने आपको गौरवशाली समझता था। इतना सब कुछ था तो भी हमें कहना पड़ता है कि, उस समय तक

न केवल गुजरातहीके लिए बल्कि समस्त भारतके लिए सुखसे रोटीका ग्रास खानेका वक्त नहीं आया था। देशकी अशान्ति उस समय तक दूर नहीं हुई थी। भारतकी मनमोहक लक्ष्मी देवी एकके बाद दूसरे मुसलमान बादशाहको ललचाती ही रही थी। जगह जगह अधिकार जमा कर बैठे हुए पठानोंका अत्याचार अभी शान्त भी नहीं हुआ था कि, उसी समय कुछ ही काल पहिले भारतको सता कर गये हुए **तैमूरलंगके** एक वंशधर **बाबरकी** इस ओर दृष्टि पड़ी। उसने सहसा **काबुलके** मार्ग पर अधिकार कर भारतमें प्रवेश किया। इतना ही नहीं उसने और उसके पुत्र **हुमायुंने** बार बार आक्रमण कर भारतीय प्रजाको खूब लूटा, सताया और बरबाद किया। अन्तमें उसने आपभूत पठानोंको भी परास्त किया और भारतमें अपना अधिकार पूर्ण रूपसे जमा लिया।

बाबरके राज्यकालमें भी भारत तो हतभाग्यका हतभाग्य ही रहा था। देशमें लेशमात्र भी शान्ति नहीं हुई थी। एक तो फतेहपुर-सीकरीकी तरफ मुसलमानों और राजपूतोंमें घोर युद्ध हो रहे थे, दूसरे लगभग सारे देशमें अराजकता होनेसे लूट खसोट होती थी, तीसरे भिन्न भिन्न प्रान्तोंके सूबेदार अपनी अपनी प्रजाओंको बहुत सताते रहते थे, चौथे तीर्थयात्रा करनेके लिए जानेवाले यात्रियोंसे वसूल किया जानेवाला **'कर'** और वार्षिक **'जज़िया'** प्रजाको बरबाद करनेके लिए पद पद पर अपना भयंकर रूप धारण किये खड़े ही हुए थे और पाँचवें सामान्य अपराधियोंको भी हाथ पैर काट डालनेकी, प्राण ले लेनेकी या इसी प्रकारकी अन्य क्रूर सजाएँ दी जाती थीं। इस प्रकार जिस प्रजा पर चहुँ ओरसे भयंकर विपत्ति पड़ रही थी, उस प्रजाके लिए कैसे संभव था कि, वह सन्तोष पूर्वक आहार करती और सुखकी नींद लेती। जब हजारों कोस दूर होनेवाले युद्धका भी यहाँकी प्रजा पर

असाधारण प्रभाव पड़ा है—छोटे, बड़े; धनी, गरीब; राजा, प्रजा प्रत्येकको उसका परिणाम भोगना पड़ा है—तब जिस समय इसकी आँखोंके सामने युद्ध होते थे; रात दिन अत्याचार होते थे उस समय यह यदि कष्टसे दिन निकालती थी, सुखकी नींद न ले सकती थी, रात, दिन इसका हृदय काँपता रहता था तो इसमें आश्चर्यकी बात ही कौनसी है? लगभग ईस्वी सन्‌की सोलहवीं शताब्दिके आरंभके ४० बरसों तक बल्कि उसके बाद भी कुछ समय तक भारतवर्षके भिन्न भिन्न भागोंमें लड़ाई और लूट-खसोट होती ही रही थी। इससे लोगोंको अपने जानोमालकी रक्षा करना बहुत ही कठिन हो रहा था।

जिस 'जज़िया' का ऊपर नाम लिया गया है, वह कोई साधारण कर नहीं था। कई विद्वानोंका मत है कि, आठवीं शताब्दिमें मुसलमान बादशाह क़ासिमने भारतीय प्रजा पर यह कर लगाया था। पहिले तो उसने आर्यप्रजाको इसलामधर्म स्वीकार करनेके लिए विवश किया। आर्य प्रजाने अटूट धन दौलत दे कर अपने आर्यधर्मकी रक्षा की। फिर हर साल ही प्रजासे वह रुपया वसूल करने लगा। प्रति वर्ष जो द्रव्य वसूल किया जाता था, उसका नाम 'जज़िया' था। कुछ कालके पश्चात् यहाँ तक हुक्म जारी हो गये थे कि,—"**आर्य प्रजाके पास खानेपीनेके बाद जो कुछ धन माल बचे वह सभी 'जज़िया' के रूपसे खजानेमें दाखिल करवा दिया जाय।**" फरिश्तेके शब्दोंमें कहें तो—"**मृत्यु तुल्य दंड देना ही 'जज़िया' का उद्देश्य था।**" ऐसा दंड दे कर भी आर्य प्रजाने अपने धर्मकी रक्षा की थी। यह बात भी नहीं थी कि, ऐसा असह्य 'जज़िया' थोड़े ही दिन तक चल कर बंद हो गया हो। 'खलीफ़ उम्रने' इसको (जज़ियाको) तीन भागोंमें विभक्त किया था। उसके वक्तमें प्रति मनुष्य वार्षिक ४८, २४ और १२ दरहाम लिये जाते थे।

('दरहाम' उस समयकी चलनका एक सिक्का था) ईस्वी सन्की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दिमें भी फीरोज़शाह तुगलक़ने कानून बनाया था कि, गृहस्थोंके घरोंमें जितने बालिग मनुष्य हों उनसे प्रति व्यक्ति धनियोंसे ४०, सामान्य स्थितिवालोंसे २०, और गरीबोंसे १० टाँक 'जज़िया' प्रति वर्ष लिया जाय। आगे भी यानी जिस सोलहवीं शताब्दिकी हम बात कहना चाहते हैं उसमें भी यह 'जज़िया' वर्तमान था।

संक्षेपमें यह है कि भारतवर्षकी राष्ट्रीय स्थिति भयंकर थी। उसमें भी जिस प्रान्तके लिए हम खास तरहसे इस ग्रंथमें कहना चाहते हैं उस प्रान्तकी स्थिति तो बहुत ही खराब थी। गुजरातके सूबेदारोंकी 'नादिरशाही' गुजरातकी प्रजाको बहुत ही बुरी तरहसे सताती थी। इच्छानुसार जुर्माना, इच्छानुसार सज़ा, इच्छानुसार कर, और तुच्छ तुच्छ बातोंमें धरपकड़ होती थी। इनसे प्रजा बहुत व्याकुल हो रही थी। उस समय प्रत्येक व्यक्तिका हृदय, राष्ट्रीय स्थितिको सुधारनेवाले किसी महान् प्रतापी पुरुषके—सम्राट्के आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था। केवल गुजरात ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष यही भावना कर रहा था। सारी आर्य प्रजा एक स्वरसे रातदिन, सोते जागते, उठते बैठते अपने अपने इष्ट देवोंसे यही विनय करती थी कि,—"प्रभो! इन दुःखके दिनोंको दूर करो! इस भयंकर अत्याचारको भारतसे उठा लो! हमारे आर्य्यत्वकी रक्षा करो! देशमें शान्तिका राज्य स्थापन करो! हम अन्तःकरण पूर्वक चाहते हैं कि, इस वीरप्रसू भारतमाताकी कूखसे, फिरसे, तत्काल ही एक ऐसा महान् वीर पुरुष उत्पन्न हो जो देशमें शीघ्रताके साथ शान्तिका राज्य स्थापन करे और हमारे ऊपर होनेवाले इस जुल्मको जड़से खोद डाले! ओ भारत माता! क्या तू शीघ्र ही ऐसा

समय न लायगी कि, जिसमें हम अपने दुःखके आँसू पोंछ डालें ? ”

इस मौके पर एक दूसरी बात कहना भी जरूरी है। जैसे देशहितका आधार देशका राजा है, वैसे ही सच्चरित्र विद्वान् महात्मा भी है। विद्वान् साधु महात्मा जैसे प्रजाके हितके लिए; उसको अनीतिसे दूर रख सन्मार्ग पर चलानेके लिए, प्रयत्न करते हैं, वैसे ही राजाओंको भी वे निर्भीकता पूर्वक उनके धर्म समझाते हैं। घनिष्ठ संबंधियोंका और खुशामदियोंका जितना प्रभाव राजा पर नहीं होता है, उतना प्रभाव शुद्ध चारित्रवाले मुनियोंके एक शब्दका होता है। इतिहासके पृष्ठ उलट कर देखोगे तो मालूम होगा कि, राजाओंको प्रतिबोध देनेमें या प्रजाको उसका धर्म समझानेमें जो सफल मनोर्थ हुए थे वे धर्मगुरु ही थे। उनमें भी यदि निष्पक्ष भावसे कहा जाय तो, कहना पड़ेगा कि,—इस कर्तव्यको पूरा करनेमें मुख्यतया जैनाचार्य ही विशेष रूपसे आगे आये थे। उन्हींको पूर्ण सफलता मिली थी। और उसका खास कारण था,—उनका सच्चरित्र और उनकी विद्वत्ता। कौन इतिहासज्ञ नहीं जानता है कि,—**संप्रति राजाको** प्रतिबोध करनेका सम्मान **आर्यसुहस्तिने, आमराजाको** प्रतिबोध करनेका सम्मान **वप्प भट्टीने, हस्तिकुंडीके** राजाओंको प्रतिबोध करनेका सम्मान **वासुदेवाचार्यने, वनराजको** प्रतिबोध करनेका सम्मान **शीलगुणसूरिने** और **सिद्धराज** तथा **कुमारपालको** प्रतिबोध करनेका सम्मान **हेमचंद्राचार्यने** प्राप्त किया था। ये और ऐसे दूसरे कितने ही जैनाचार्य हो गये हैं कि, जिन्होंने राजा महाराजाओंको प्रतिबोध दे कर देशमें शान्तिका और आर्यधर्मके प्रधान सिद्धान्त—अहिंसाका प्रचार करनेमें सफलता लाभ की थी। इतना ही क्यों? **महम्मद तुग़लक़, फ़ीरोज़शाह, अलाउद्दीन** और **औरंगज़ेबके** समान क्रूर हृदयी व निष्ठुर

मुसलमान बादशाहों पर भी **जिनसिंहसूरि, जिनदेवसूरि** और **रत्नशेखरसूरि** (नागपुरी) के समान जैनाचार्योंने कितने ही अंशोंमें प्रभाव डाल कर धर्म तथा साहित्यकी सेवा की थी।

अभिप्राय कहनेका यह है कि, जिस जैनधर्ममें समय समय पर ऐसे महान प्रभावक आचार्य होते आये थे उस जैनधर्म पर भी उस समयकी (पन्द्रहवीं और सोलहँवी शताब्दिकी) अराजकताने बिजलीकी तरह आश्चर्योत्पादक प्रभाव डाला था। यह बिलकुल ठीक है कि, जहाँ देश भरमें हर तरहकी बगावत—अराजकता—निर्नाथता—अनुचित स्वच्छंदताका पवन चल रहा हो वहाँ किसी भी तरहकी मर्यादा नहीं रहती है। 'शान्तिप्रिय' के आदरणीय पदका उपभोग करनेवाले और एकताके विषयमें सबसे आगे रहनेवाले जैन समाजमें भी उस समयकी अशान्ति देवीने अपना पैर फैला दिया था। न रहा संघका संगठन और न रही ऐसी स्थिति कि, जिसमें कोई किसीको कुछ कह सकता और कोई किसीकी बात मान लेता। संघ छिन्नभिन्न होने लगा। एक एक करके नये नये मत निकलने लगे। जैसे—१४५२ ईस्वीमें **लौंका** नामके गृहस्थने **लौंका** मत चलाया और मूर्त्तिपूजाकी उत्थापना की। १५०६ ईस्वीमें **कटुक** नामके गृहस्थने **कटुकमत** निकाला। **विजयने** १५१४ ईस्वीमें **विजयमतकी** स्थापना की। **पार्श्वचंद्रने** १५१६ ईस्वीमें **पार्श्वचंद्रमतकी** नींव डाली और १५४६ ईस्वीमें **सुधर्म** मत उत्पन्न हुआ। आदि। इन मतोंको चलानेवालोंने जैनधर्मके सिद्धान्तोंमें कुछ न कुछ परिवर्त्तन जरूर किया! जैनधर्मके एक छत्र साम्राज्यको उन्होंने छिन्नभिन्न कर दिया। इस बातकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है कि, जिस धर्मके अनुयायियोंमें आपसमें झगड़ा होता है, पारस्परिक विभिन्नता रहती है उस धर्मका भी एक छत्र साम्राज्य रहता है। उस समय जैसे जैसे नवीन मत निकलते गये वैसे ही वैसे

परस्परमें नीचा दिखानेका प्रयत्न, आपसी द्वेष और एकका दूसरे पर आक्षेप भी बढ़ता गया। 'अपना सच्चा और दूसरेका मिथ्या' यह नियम प्रत्येक पंथवालेके साथ कार्य कर रहा था। उसीके वश हो कर मूल परंपराको उच्छेद करनेके लिये वे कुल्हाड़ीका कार्य कर रहे थे। उन्हें इतनेहीसे संतोष नहीं होता था। वे जैनोंके प्राचीन तीर्थों, मंदिरों और उपाश्रयों पर भी अपना अपना अधिकार जमानेके प्रयत्न करते रहते थे। इसी लिए उस समय भिन्न भिन्न गच्छोंके सभी आचार्य एक वार शत्रुंजय (पालीताना) में एकत्रित हुए और उन्होंने निश्चित किया कि—"शत्रुंजयतीर्थ पर जो मूल गढ़ है वह और आदिनाथ भगवान्का मुख्य मंदिर है वह, समस्त श्वेतांवर जैनोंका है और अवशेष देवकुलिकाएँ भिन्न भिन्न गच्छवालोंकी हैं।" आदि।

एक तरफ तो भिन्न भिन्न मतों और पंथोंके जोरसे जैनधर्मके अनुयायियोंमें बहुत बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था; अशान्ति फैल गई थी और दूसरी तरफ शिथिलाचारने साधुओं पर अपना अधिकार जमाना प्रारंभ किया था। इससे साधुओंमें स्वच्छंदताका वायु फैलने लगा, छोटे मोटेकी मर्यादा प्रायः उठने लगी, गृहस्थोंके साथ साधु विशेष व्यवहार रखने लगे। उसका परिणाम 'अतिपरिचयादवज्ञा' के अनुसार, साधुओंको भोगना पड़ा। साधुओंमें ममत्व बढ़ा। वे पुस्तकों और वस्त्रोंका और कई कई तो द्रव्यका भी संग्रह करने लगे। रसनेन्द्रियकी लुब्धताके कारण कई तो शुद्धाशुद्ध आहारका भी विचार छोड़ने लगे। पड़िलेहण और इसी तरहकी अन्य जयणाओंमें भी वे उपेक्षा करने लगे। उनकी वचन वर्गणाओंमें भी कठोरताने प्रवेश किया। इन वातोंसे श्रावकोंकी साधुओंपरसे श्रद्धा हटने लगी। राजकीय झगड़ों और मतोंके टंटोंसे कई प्रान्तोंमें तो साधुओंका विहार भी वंद हो गया। साधुओंकी शिथिलतासे नये निकले हुए मत बहुत लाभ

उठाते थे। वे साधुओंकी शिथिलता और झगड़ोंको दिखा कर लोगोंको अपने अनुयायी बनाते थे। उन मत-प्रवर्तकोंमेंसे हम यहाँ पर **'लौंका'** का उदाहरण देते हैं। उसने इस स्थितिका लाभ उठा कर अपने मतको बड़े जोरोंके साथ आगे बढ़ाया। जिन देशोंमें शुद्ध साधु नहीं जा सकते थे उन देशोंमें उसने जा कर हजारों लोगोंके दिलोंको पलटा, उन्हें मूर्ति-पूजासे हटाया और अपने मतका अनुयायी बनाया। इतना ही क्यों? सैकड़ों जगह तो-जहाँ एक भी मूर्तिपूजक नहीं रहा-उसने मंदिरोंमें काँटे लगवा दिये। यह साधुओंकी शिथिलता और आपसी द्वेषहीका परिणाम था।

यद्यपि साधुओं और श्रावकोंकी ऐसी भयंकर स्थिति हो गई थी, तथापि पवित्रताका सर्वथा लोप नहीं हुआ था। उस समयमें भी ऐसे ऐसे त्यागी और आत्मश्रेयमें लीन रहने वाले साधु महात्मा मौजूद थे कि, जो वैसे जहरीले संयोगोंमें भी अपने साधुधर्मकी भली प्रकारसे रक्षा कर सके थे। इतना ही क्यों, कई शासनप्रेमी ऐसे भी थे कि, जिनको वैसी भयंकर स्थिति देख कर दुःख होता था। तीव्र प्रवाहके सामने जानेका साहस करना सर्वथा असंभव नहीं तो भी भयानक जरूर है। मगर उस भयानक दशामें भी एक महात्मा क्रियाका उद्धार करनेके लिए आगे आये थे। उनका नाम था **'आनंदविमलसूरि'**। क्रियोद्धार करनेमें उन्होंने बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया था। कहा जाता है कि, उन्हें इस महान धर्ममें यद्यपि जितने चाहिए उतने और जैसे चाहिए वैसे सहायक-साधन नहीं मिले थे, तथापि उन्होंने अपने ही पुरुषार्थसे उस समयकी स्थितिमें बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया था। वे समयानुसार साधुधर्मके समस्त नियमोंको उचित रूपसे पालते थे, किसी श्रावक या श्राविकाके प्रति ममता नहीं रखते थे; सबको समान रूपसे उपदेश देते थे; सबको समान दृष्टिसे देखते थे, निःस्पृहताके साथ विचरण करते थे, निःस्वार्थ भावसे उपदेश

देते थे, शुद्धमार्गको प्रकाशित करते थे, और उत्कृष्ट क्रियाएँ पालते थे। इन सब बातोंके अतिरिक्त वे तपस्याएँ भी बहुत ज्यादा किया करते थे। इससे प्रायः श्रावकोंके हृदयोंमें पुनः साधुओंके प्रति भक्ति-भावोंका संचार हुआ था। साधुधर्म कैसा होना चाहिए? साधुओंके लिए किन किन क्रियाओंका करना आवश्यक है? और साधुओंको किस तरह मोह–मायाका त्याग करना, निःस्पृहताका बक्तर पहिनना और कैसे शुद्ध उपदेश देना चाहिए? आदि बातोंका ज्ञान उन्होंने अपने आचरणों द्वारा दिया था। यद्यपि उन्होंने अनेक प्रदेशोंमें फिर कर लोगोंको सन्मार्ग पर चलानेका प्रयत्न किया था और उस प्रयत्नमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई थी; और उनके बोये हुए बीजको फलाने फूलानेमें **विजयदानसूरिने** बहुत कुछ प्रयत्न किया था। तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि, जिस भाँति समय समय पर राजा महाराजाओं पर प्रभाव डाल कर उन्हें सच्चा उपदेश दे कर राष्ट्रीय स्थितिको सुधारनेवाले एकके बाद दूसरे जैनाचार्य होते आये हैं उसी तरह मुसलमानोंके राज्यकालमें भी एक ऐसे जैनाचार्यकी आवश्यकता थी कि, जो अपने प्रबल पुण्य–प्रतापसे देशके भिन्न भिन्न अधिकारियों पर और खास करके दिल्लीश्वर पर अपना प्रभाव डालते और भारत-वर्षमें–मुख्यतया गुजरातमें लगे हुए 'जज़िया' के समान जुल्मी करको नष्ट कराते, अहिंसा प्रधान आर्यावर्त्तमें बढ़ी हुई जीवहिंसाको बंद कराते, जैनोंको अपने पवित्र तीर्थोंकी यात्रा करनेमें जो आपत्तियाँ आती थीं उन्हें दूर कराते, और अपने हक तीर्थोंके ऊपरसे खो चुके थे वे उन्हें वापिस दिलाते। इन कार्योंकी महत्तासे यह बात सहज ही समझमें आ जाती है कि, भारतवर्षमें राष्ट्रीय स्थिति सुधारनेके लिए जैसे–अपनी प्रजाको पुत्रवत् पालन करनेवाले एक सुयोग्य सम्राट्की आवश्यकता थी उसी भाँति देशकी हिंसक प्रवृत्तिको दूर करानेका सामर्थ्य रखनेवाले एक महात्मा पुरुषके अवतारकी भी आवश्यकता थी।

प्रकरण दूसरा।

सूरि-परिचय।

सारमें समय समय पर ऐसे महात्मा पुरुष उत्पन्न होते हैं कि जो 'स्वोपकार' को अपने जीवनका लक्ष्यविंदु नहीं बनाते हैं, बल्कि '**परोपकार**'-हीमें अपने जीवनकी सार्थकता समझते हैं। ऋषियोंको इसका पूर्ण अनुभव हुआ था, इसीलिए उन्होंने यह कहा है कि,—"**परोपकाराय सतां विभूतयः।**" सज्जनोंकी—महात्माओंकी समस्त विभूति परोपकारहीके लिए होती है। इस प्रकरणमें हम जिनका परिचय कराना चाहते हैं वे भी उक्त प्रकारके परोपकारी महात्माओंमेंसे एक थे।

विक्रम संवत् १५८३ (ई. स. १५२७) के मार्गशीर्ष शुक्ला ९ सोमवारके दिन '**पालनपुर**' के ओसवाल गृहस्थ **कूंराशाह**की धर्मपत्नी **नाथीबाई**ने एक पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम '**हीरजी**' रक्खा गया। **हीरजी**के पहिले **नाथीबाई**के तीन पुत्र और तीन कन्याएँ हो चुकी थीं। पुत्रोंके नाम थे संघजी, **सूरजी** और **श्रीपाल** व पुत्रियोंके नाम थे— **रंभा, राणी** और **विमला**। '**होनहार विरवानके होत चीकने पात**' इस नियमानुसार **हीरजी** बचपनहीसे तेजस्वी, सुलक्षण युक्त और आनंदी स्वभाववाले थे। इससे उनके कुटुंबियोंहीके नहीं बल्कि हरेकके—जो उन्हें देखता था—उसीके—हृदयमें उनसे प्रेम करनेकी कुदरती प्रेरणा होती थी।

पहिले यह नियम था कि, गृहस्थ लोग अपनी संतानको व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करानेके लिए जैसे पाठशालाओंमें भेजते थे, वैसे ही धार्मिक ज्ञान प्राप्त कराने, अन्तःकरणमें धार्मिक संस्कार जमाने और धार्मिक क्रियाओंसे परिचित कराने के लिए धर्मगुरुओंके पास भी नियमित रूपसे भेजा करते थे। वर्तमानके गृहस्थोंकी भाँति वे इस वातका भय नहीं रखते थे कि, साधुओंके पास भेजनेसे कहीं हमारी सन्तान साधु न हो जाय। साधु होनेमें अथवा अपने पुत्रको यदि वह साधु वनना चाहता तो उसे साधु वनानेमें पहिले के लोग अपना और अपने कुलका गौरव समझते थे। इतना जरूर था कि, जो साधु वननेकी इच्छा रखता था, उसको वे लोग पहिले यह समझा देते थे कि, साधुधर्ममें कितनी कठिनता है। मगर ऐसा कभी नहीं होता था कि, अपनी संतानको साधु वननेसे रोकनेके लिए वे लड़ाई-झगड़ा करते या कोर्टमें जाते। इतना ही क्यों, कई तो ऐसे भवभीरु और निकटभवी भी होते थे जो अपनी सन्तानको, वचपनहीसे साधुके समर्पण करनेमें अपना सौभाग्य समझते थे। यदि ऐसा नहीं होता तो **हेमचंद्राचार्य** ५ वर्षकी आयुमें, **आनंदविमलसूरि** ५ वर्षकी उम्रमें, **विजयसेनसूरि** ९ वर्षकी आयुमें, **विजयदेवसूरि** ९ वर्षकी आयुमें, **विजयानंदसूरि** ९ वर्षकी आयुमें, **विजयप्रभसूरि** ९ वर्षकी आयुमें, **विजयदानसूरि** ९ वर्षकी आयुमें, **मुनिसुंदरसूरि** ७ वर्षकी आयुमें और **सोमसुंदरसूरि** ७ वर्षकी आयुमें—ऐसे छोटी छोटी उम्रमें कैसे दीक्षा ले सकते थे ?

इससे किसीको यह नहीं समझना चाहिए कि, जो कमाने योग्य नहीं होते थे वे साधु हो जाते थे। अथवा उनके संरक्षक उन्हें साधु वना देते थे। हमें उनके चरित्रोंसे यह वात भली प्रकार मालूम हो जाती है कि, वे लोग प्रायः उच्च और धनी कुटुंबहीकी सन्तान थे।

इससे यह स्पष्ट है कि,—"**असमर्थो भवेत् साधुः** " का सूत्र उनके किसी तरहसे भी लागू नहीं पड़ सकता है। जो 'दीक्षा' को ऐहिक और पारलौकिक सुखका सर्वोत्कृष्ट साधन समझते हैं, जो '**शुद्धचारित्र** को ही जगत् पर प्रभाव डालनेका एक चमत्कारिक जादू समझते हैं वे कभी क्षणभंगुर लक्ष्मीके और अन्तमें भयंकर कष्ट पहुँचानेवाली विषय-वासनाओंके फंदेमें नहीं फंसते हैं—उनमें मुग्ध नहीं होते हैं। वे तो प्रतिक्षण यही सोचा करते हैं कि,—"**हम साधु हो कर अपना और जगत्का कल्याण करेंगे।** "

ऐसी शुभ भावनाएँ रख कर अच्छे अच्छे खानदानके युवक उस समय दीक्षा लेते थे। उसीका यह परिणाम था कि, 'स्वोपकार' के साथ ही अपनी पूर्णशक्तिके साथ वे परोपकारके सिद्धान्तको भी पालते थे। वे इतने महान हो गये इसका वास्तविक कारण हमें तो उनका बचपनमेंही दीक्षित हो कर उच्च धार्मिक क्रियाओंको व्यवहारमें लाना मालूम होता है।

इस समय दीक्षाकी बात तो दूर रही, धार्मिक संस्कारोंका ही अभाव हो रहा है। अच्छे अच्छे व्यवहारज्ञ युवक भी धर्मका तो कक्का भी कठिनतासे जानते हैं। इसका खास कारण यह है कि, वे बचपनहीसे गुरुओं—साधुओं—की संगतिसे दूर रहे हैं। यदि प्राचीन प्रथाके अनुसार वे बचपनहीसे अमुक समय तकके लिए नियमित रूपसे साधुओंकी संगतिमें रहते और व्यावहारिक ज्ञानके साथ ही धार्मिक ज्ञान भी प्राप्त करते तो उनकी धर्म—भावनाएँ दृढ होतीं और आज '**नास्तिकता** ' का जो दोष उनके सिर रक्खा जाता है सो न रक्खा जाता। अस्तु।

ऊपर लिखित रीतिके अनुसार हीरजीको उनके पिता कूंरा-

शाहने जैसे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए पाठशालामें भेजा था, वैसे ही धार्मिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये साधुओंके पास भेजनेमें भी आगापीछा नहीं किया था। परिणाम यह हुआ कि, वे बारह वर्षकी आयुहीमें बहुत होशियार और धर्मपरायण बन गये। उनको देख देख कर लोगोंको आश्चर्य होता था।

उनके बचपनके व्यवहारों, और संसारसे उदासीनता दिखानेवाले, भवभीरुतादर्शक मधुर वचनोंने उनके कुटुंबियोंको, विश्वास दिला दिया था कि,–'वे किसी दिन साधु होंगे।' एक वार उन्होंने बातों ही बातोंमें अपने पितासे कहा,–"यदि कोई व्यक्ति अपने कुटुंबमेंसे साधु हो जाय तो अपना कुटुंब कैसा गौरवान्वित हो?" कुटुंबी लोगोंकी उक्त प्रकारके मन्तव्यको इस कथनने और भी दृढ़ बना दिया।

भावी प्रबल। थोड़े ही दिनोंमें हीरजीके माता पिताका देहान्त हो गया। इस घटनाने हीरजीके संसारविमुख हृदयको और भी स्पष्टताके साथ संसारकी अनित्यता समझा दी–उनके हृदयको और भी विशेषरूपसे वैरागी बना दिया। माता पिताका स्वर्गवास सुन कर हीरजीकी दो बड़ी बहिनें विमला और राणी–जो पाटन ब्याही गई थीं–आई और हीरजीको **पालनपुरसे** अपने साथ ले गई।

उस समय **पाटनमें श्रीविजयदानसूरि** विराजते थे। ये क्रियोद्धारक **आनंदविमलसूरिके**–जिनका पहिले प्रकरणमें उल्लेख है–शिष्य थे। हीरजी नित्यप्रति उनको वंदना करनेके लिए जाने लगे। **विजयदानसूरिकी** धर्मदेशना धीरे धीरे हीरजीके कोमल हृदय पर प्रभाव डालने लगी। हीरजीके हृदयमें दीक्षा लेनेकी भावना दृढ़ हुई। अपनी यह भावना उन्होंने अपनी बहिनोंको भी सुनाई।

वहिनें बुद्धिमान और धर्मपरायणा थीं। वे भली प्रकारसे समझती थीं कि,—दीक्षा मनुष्यके कल्याणमार्गकी अन्तिम सीमा है। इससे उन्होंने यद्यपि भाईकी भावनाका विरोध न किया तथापि, मोहवश स्पष्ट शब्दोंमें, दीक्षा लेनेकी अनुमति भी नहीं दी। इस समय उनका मन 'व्याघ्रतटी' न्यायके समान हो रहा था। अतः उन्होंने मौन धारण की। उनके इस मौनसे हीरजीको पहिले कुछ नहीं सूझा; परन्तु अन्तमें उन्होंने सोचा कि,—'अनिषिद्धिमनुमतम्' इस न्यायके अनुसार मुझे आज्ञा मिल चुकी है। अन्तमें उन्होंने संवत १५९६ (ई० सन् १५४०) के कार्तिक सुद २ सोमवारके दिन पाटनहीमें श्रीविजयदानसूरिके पाससे 'दीक्षा' ले ली। उस समय उनका दीक्षा—नाम 'हीरहर्ष' रक्खा गया। हीरजीके साथ ही अन्य अमीपाल, अमरसिंह, (अमीपालके पिता) कपूरा (अमीपालकी वहिन) अमीपालकी माता, धर्मशीऋषि, रूडोऋषि, विजयहर्ष और कनकश्री इन आठ मनुष्योंने भी दीक्षा ली थीं। अवसे हम हीरजीको मुनि हीरहर्षके नामसे पहिचानेंगे।

वर्तमान समयमें जैसे—नवद्वीप (वंगाल) न्यायका और 'काशी' 'व्याकरण'का केन्द्र प्रसिद्ध है वैसे ही उस समय न्यायका केन्द्रस्थान दक्षिण समझा जाता था। यानी दक्षिण देशमें न्यायशास्त्रके अद्वितीय विद्वान् रहते थे। जैसे हीरहर्षमुनिकी बुद्धि तीक्ष्ण थी, वैसे ही उनकी विद्याप्राप्त करनेकी इच्छा भी प्रवल थी। इससे विजयदानसूरिने उन्हें न्यायशास्त्रका अध्ययन करनेके लिए दक्षिणमें जानेकी अनुमति दी। वे श्रीधर्मसागरजी और श्रीराजविमल इन दोनोंको साथ लेकर दक्षिणके सुप्रसिद्ध नगर देवगिरि[1] गये थे। वहाँ वहुत दिन

---

१ वर्तमानमें देवगिरिको दौलतावाद कहते हैं। एक समय यहाँ यादव राज्य करते थे। ई० सन् १३३९ में इसका नाम दौलतावाद पड़ा था।

तक रह कर उन्होंने न्यायशास्त्रके कठिन कठिन ग्रंथ जैसे ' चिन्तामणि ' आदिका अध्ययन किया था। उस समय निजामशाह देवगिरिका राज्यकर्त्ता था। उक्त तीनों मुनियोंके लिए जो कुछ व्यय होता था, वह वहींके रईस देवसीशाह और उनकी स्त्री जसमावाई देते थे।

अभ्यास करके आनेके बाद विजयदानसूरिने, हीरहर्षमें जब असाधारण योग्यता देखी तब उनको नाडलाई (मारवाड़) में सं. १६०७ (ई० स० १५५१) में पंडितपद और संवत् १६०८ (ई० सन् १५५२) के माघ सुदी ५ के दिन बड़ी धूमधामके साथ नाडलाईके श्रीनेमिनाथ भगवान्के मंदिरमें ' उपाध्याय ' पद दिया। उनके साथ ही धर्मसागरजी और राजविमलजीको भी उपाध्याय पद मिले थे। तत्पश्चात् संवत् १६१० (ई० स० १५५४) के पोस सुदी ५ के दिन सीरोही (मारवाड़) में आचार्य श्रीविजयदानसूरिने उन्हें ' सूरिपद ' (आचार्यपद) दिया।

यह कहना आवश्यक है कि, जिस एक महान् व्यक्तिके अवतरणकी आशाका उल्लेख प्रथम प्रकरणमें किया गया था वह महान् व्यक्ति ये ही सूरीश्वर हैं। उनको हम अब हीरविजयसूरिके नामसे पहिचानेंगे। इस पुस्तकके दो नायकोंमेंसे प्रथम (सूरीश्वर) नायक ये ही हैं।

यह नगर दक्षिण हैद्राबादके राज्यमें औरंगाबादसे १० माइल पश्चिमोत्तरमें है। ई० स० १२९४ में अलाउद्दीन खिलजीने इस नगरके अभेद्य दुर्गको तोड़ा था। यहाँके अधिपतिका नाम निजामशाह था। उसका पूरा नाम था बुराननिजाम शाह। इस शाहने ई० स० १५०८ से १५५३ तक दौलताबादमें हुकूमत की थी। हीरविजयसूरि इसकी हुकूमतमें ही देवगिरि गये थे।

आचार्य होनेके बाद जब वे पाटन गये थे तब वहाँ उनका **'पाट–महोत्सव'** हुआ था। पाट–महोत्सवके समय वहाँके सूबेदार **शेरखाँके**[१] मंत्री **भणसाली समरथने** अतुल धन खर्चा था। पाट–महोत्सवके समय एक खास जानने योग्य क्रिया होती है। वह यह है कि, जब आचार्य नवीन पाटधरको पाट पर बिठाते हैं तब स्वयं आचार्य पहिले पाटधरको विधिपूर्वक वंदना करते हैं, फिर संघ वंदना करता है। ऐसा करनेमें एक खास महत्त्व है। पाट पर स्थापन करनेवाले आचार्य स्वयं वंदना करके यह बात बता देते हैं कि, नवीन गच्छपतिको–पाटधरको मैं मानता हूँ। तुम सब (संघ) भी उन्हें मानना। आचार्यके ऐसा करनेसे पाट पर बैठनेवाले साधुको, जो साधु उससे दीक्षामें बड़े होते हैं उनके मनमें, वंदना करनेमें यदि संकोच होता है तो वह भी मिट जाता है।

इससे किसीको यह नहीं समझना चाहिए कि–नवीन पाटधरको आचार्य हमेशा ही वंदना करते रहते हैं। वे केवल पाट पर बिठाते समय ही वंदना करते हैं। पश्चात् तो नियमानुकूल शिष्य ही आचार्यको वंदना करते हैं।

आचार्यपदवीको प्राप्त होनेके बारह बरस बाद उनके गुरु **श्रीविजयदानसूरिका** संवत् १६२२ (ई० स० १५६६) के वैशाख सुदी १२ के दिन **वड़ावलीमें** स्वर्गवास हुआ। इससे उन्हें भट्टारककी पदवी मिली। उन्होंने समस्त संघका भार अच्छी तरह उठा लिया। तत्पश्चात् वे देश भरमें विचरण करने लगे।

प्रथम प्रकरणमें हम यह बता चुके हैं कि, विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिमें सारे भारतमें और खास करके गुजरातमें अराजकता फैल रही

---

१ यह **शेरखाँ** दूसरे **अहमदशाहके** समयमें **पाटनका** सूबेदार था। जो इसके विषयमें विशेष जानना चाहते हैं वे **मीराते–सिकंदरी** देखें।

थी। इसलिए जिलाधीश प्रजाको तंग करनेमें कोई कसर नहीं रखते थे। किसीके विरुद्ध कोई जा कर यदि शिकायत करता तो उसी समय उसके नाम वारंट जारी कर दिया जाता। यह नहीं दर्याफ्त किया जाता कि, जिसके नाम वारंट जारी किया गया है वह अपराधी है या नहीं; वह साधु है या गृहस्थ। वे तो बस दंड देनेहीको अपनी हुकूमतके दबदबेका चिह्न समझते थे। इससे अच्छे २ निःस्पृही और शान्त साधुओंके ऊपर भी आपत्तियाँ आ पड़ती थीं और उनसे निकलना उनके लिए बहुत ही कठिन हो जाता था। इस अराजकता या सूबेदारोंकी नादिरशाही का अन्त सोलहवीं शताब्दिहीमें नहीं हो गया था। उसका प्रभाव सत्रहवीं शताब्दिमें भी बराबर जारी रहा था।

अपने ग्रंथके प्रथम नायक **हीरविजयसूरि**को भी—जब वे आचार्य पद प्राप्त करनेके बाद गुजरात प्रान्तमें विचरण करते थे—उस समयके सूबेदारोंकी नादिरशाहीके कारण कष्ट उठाने पड़े थे। सामान्य कष्ट नहीं, महान् कष्ट उठाने पड़े थे। यह कथन अत्युक्ति पूर्ण नहीं है। उन्होंने जो कष्ट सहे थे उनमेंके दो चारका यहाँ उल्लेख कर देना हम उचित समझते हैं।

एक वार **हीरविजयसूरि** विचरण करते हुए खंभात पहुँचे। वहाँ **रत्नपाल** दोशी नामका एक धनिक रहता था। उसकी स्त्रीका नाम **ठकाँ** था। उसके एक लड़का भी था। उसकी आयु तीन ही वरसकी थी। उसका नाम था **रामजी**। वह हमेशा रोगी रहता था। एक वार **रत्नपाल**ने सूरिजीको वंदना करके कहा:—" महाराज! यदि यह छोकरा अच्छा हो जायगा और उसकी मरजी होगी तो मैं उसे आपकी चरण-सेवा करनेके लिए भेट कर दूँगा। "

थोड़े दिन बाद आचार्यश्री वहाँसे विहार करके अन्यत्र चले

गये। लड़का दिन बदिन अच्छा होने लगा। कुछ दिनमें तो वह सर्वथा अच्छा हो गया। जब छोकरा आठ बरसका हुआ तब सूरिजी विहार करते हुए पुनः **खंभात** गये। उन्होंने लड़का माँगा। इससे **रत्नपाल** और उसका परिवार आचार्य महाराजसे नाराज हो कर झगड़ा करने लगे। सूरिजीने मौन धारण किया, और फिरसे उसका जिक्र नहीं किया।

रामजीके अजा नामकी एक बहिन थी। उसके सुसरेका नाम **हरदास** था। **हरदासने** अपनी पतोहूकी प्रेरणासे उस समयके **खंभातके** हाकिम **शिताबखाँके** पास जा कर कहा:—"आठ वर्षके बालकको **हीरविजयसूरि** साधु बना देना चाहता है, इसलिए उसे रोकना चाहिए।" कानके कच्चे सूबेदारने तत्काल ही **हीरविजयसूरि** और उनके साथके साधुओंको पकड़नेके लिए वारंट जारी कर दिया। इस खबरको सुन कर सूरिजीको एक एकान्त स्थानमें छिप जाना पड़ा। **हीरविजयसूरि** तो नहीं मिले मगर **रत्नपाल** और **रामजी शिताबखाँ** के पास पहुँचाये गये। छोकरेका रूप देख कर **शिताबखाँने रत्नपालसे** कहा:—"क्यों बे! तू इसको साधु किस लिए बनाता है? यह बच्चा फकीरी क्या समझे? याद रख, अगर तू इसको साधु बनायगा तो मैं तुझको जिंदा नहीं छोडूँगा।"

शिताबखाँके कोपयुक्त वचन सुन कर रत्नपाल घबरा गया और बोला:—"मैं न तो इसे साधु बनाता हूँ और न आगे बनाऊँहीगा।

१ **शिताबखाँका** असली नाम **सैयद इसहाक** है। **शिताबखाँ** यह उसका उपनाम या पदवी है। इसके संबंधमें जिनको विशेष जाननेकी इच्छा हो वे '**अकबरनामा**' प्रथम भाग अंग्रेजी अनुवादका—जो बेवरिजका किया हुआ है—पृ. ३१९ वाँ देखें।

मैं तो इसका शीघ्र ही व्याह करनेवाला हूँ। आपको किसीने यह झूठ कहा है। "

रत्नपालकी बात सुन कर शितावखाँने उसे छोड़ दिया। सब तरह शान्ति हो गई। इस झगड़ेमें हीरविजयसूरिको तेईस दिन तक गुप्त रहना पड़ा था।

दूसरा उपद्रव—विक्रम संवत् १६३० (ई० स० १५७४) में हीरविजयसूरि जब 'बोरसद' में थे, तब कर्णऋषिके शिष्य जगमाल-ऋषिने आ कर उनसे फर्याद की कि, " मेरे गुरु मुझे पुस्तकें नहीं देते हैं सो दिलाओ। "

सूरिजीने उत्तर दियाः—" तेरे गुरु तुझे अयोग्य समझते होंगे इसी लिए वे तुझे पुस्तकें नहीं देते। इसके लिए तू झगड़ा क्यों करता है ? "

आचार्यश्रीने उसे समझाया तो भी वह न माना। इसलिए वह गच्छके बाहिर निकाल दिया गया। जगमाल अपने शिष्य लहुआऋषिको साथ ले कर 'पेटलाद' गया, वहाँ के हाकिमसे मिला और हीरविजयसूरिके विषयमें कई बनावटी बातें कहीं। हाकिमने नाराज हो कर उसी समय हीरविजयसूरिको पकड़नेके लिए कई पुलिसके सिपाही उसके साथ भेजे। सिपाहियोंको ले कर वह बोरसद गया, मगर वहाँ उसका काम न बना। यानी—हीरविजयसूरि या अन्य कोई साधु वहाँ न मिले। वह लौटकर 'पेटलाद' गया और कुछ घुड़ सवार लेकर पुनः बोरसद गया। इस बार भी हीरविजयसूरि न मिले। श्रावकोंने सोचा कि,—इस तरह बार बार उपद्रवोंका होना, और आचार्य महाराजको हैरान करना उचित नहीं है। शाम, दाम, दंड, भेदसे इस उपद्रवको शान्त करना ही उचित है। ऐसा सोच

कर उन्होंने 'दामनीति' का उपयोग किया। घुड़सवारोंकी मुट्ठी गरम होते ही वे **जगमाल**के विरुद्ध हो गये और उसे कहने लगे:—

"तू शिष्य है और वे तेरे गुरु हैं। गुरुके साथ झगड़ा करना उचित नहीं है। गुरुको अधिकार है कि, वे चाहें तो तुझे बाजारमें खड़ा करके बेच दें और चाहें तो तेरे नाकमें नाथ डालें। तुझे सब कुछ सहना होगा।"

जो उसके सहायक थे वे ही जब इस तरह विरोधी हो गये तब बेचारा वह क्या करता? उसकी एक न चली। अन्तमें उन्होंने उसको वहाँसे निकाल दिया। इस तरह उस उपद्रवका अन्त हुआ। **हीरविजयसूरि** पुनः प्रकट रूपसे विचरण करने लगे। विहार करते हुए वे **खंभात** आये।

तीसरा उत्पात—**श्रीसोमविजयजी**ने दीक्षा ली उसके बाद **हीरविजयसूरि** विहार करते हुए, '**पाटन**' हो कर '**कुणगेर**' गये। (यह कुणगेर पाटनसे ३ कोस दूर है।) चौमासा वहीं किया। **सोमसुंदर** नामक एक आचार्य भी उस समय वहीं थे। पर्युषण पर्व बीतनेके बाद, **उदयप्रभ** नामके आचार्य वहाँ और गये। (**उदयप्रभ सूरि** उस समयके शिथिल साधुओं (यतियों) मेंसे कोई एक होने चाहिए। कारण—यदि वे शिथिलाचारी न होते तो, निष्प्रयोजन एक गाँवसे दूसरे गाँव चौमासेमें न जाते। कहा जाता है कि, उस समय उनके साथ तीनसौ महात्मा थे। अस्तु।) **उदयप्रभसूरि**ने **हीरविजयसूरि**को कहलाया कि,—तुम **सोमसुंदरसूरि**को "खामणा करो—क्षमापना माँगो।" सूरिजीने कहलाया:—"जब मेरे गुरुजीने नहीं किये तो मैं कैसे कर सकता हूँ?"

इस तरह **हीरविजयसूरि**ने जब **उदयप्रभसूरि**की बात न मानी

तब वे और उनके साथी सब सूरिजीसे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने सूरिजीको कष्ट देना स्थिर किया। वे **पाटण** गये। वहाँके सूबेदार **कलाखाँ**से मिले, और उसे समझाया कि,–'**हीरविजयसूरि**ने वारिश रोक रक्खी है।' क्या बुद्धिवादके कालमें कोई मनुष्य इस बातको मान सकता है? मगर पाटनके हाकिम **कलाखाँ**ने तो उस बातको ठीक समझा और **हीरविजयसूरि**को पकड़नेके लिए सौ घुड़सवार भेज दिये। सवारोंने जा कर 'कुणगेर' को घेर लिया। **हीरविजयसूरि** रातको वहाँसे निकल गये। उनकी रक्षाके लिए '**वडावली**' के रहनेवाले **तोला** श्रावकने कई कोलियोंको उनके साथ भेज दिया। **हीरविजयसूरि** '**वडावली**' पहुँचे। जब वे **वडावली** जानेको निकले थे तब खाईमें उतर कर जाते समय उनके साथके साधु '**लाभ-विजयजी**को सर्पने काट खाया। मगर सूरिजीके हाथ फेरनेसे सर्पका जहर न चढ़ा।

उस तरफ **कुणगेर**में गये हुए घुड़सवारोंने **हीरविजयसूरि**को ढूंढा। मगर वे नहीं मिले। इससे पैरोंके निशानोंके सहारे सहारे वे **वड़ावली** पहुँचे। **वड़ावली**में भी उन्होंने बहुत खोज की मगर सूरिजी उन्हें नहीं मिले। इससे अन्तमें निराश हो कर वे वापिस **पाटन** चले गये। इस आपत्तिसे बचनेके लिए उन्हें एक भोंयरेमें रहना पड़ा था। इस तरह उन्हें तीन महीने तक गुप्त रहना पड़ा था।[1] वि० सं० १६३४ (ई. स. १५७८)

---

१ यह उपद्रव वि० सं० १६३४ में हुआ था। यह बात कवि **ऋषभदास** कहते हैं। मगर यदि यह उपद्रव पाटनके सूबेदार **कलाखाँ**के (जिसका पूरा नाम **खानेकलाँ मीर महम्मद** था) वक्तमें हुआ हो तो उपर्युक्त संवत् लिखनेमें भूल हुई है। कारण-**कलाखाँ** तो संवत् १६३१ (सन् १५७५) तक ही पाटनका सूबेदार रहा था! पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई थी। इससे यह समझमें आता है कि, या तो संवत् लिखनेमें भूल हुई है या सूबेदारका नाम लिखनेमें भूल हुई है।

वि० सं० १६३६ में भी ऐसा ही एक उपद्रव हुआ था। जब हीरविजयसूरि अहमदाबाद गये तब वहाँके हाकिम शहाबखाँके[1] पास जा कर किसीने उनके विरुद्ध शिकायत की कि,—"हीरविजयसूरिने बारिश रोक रक्खी है।" शहाबखाँने यह बात सुनते ही हीरविजयसूरिको बुलाया और कहाः—"महाराज! आज कल बारिश क्यों नहीं बरसती है? क्या आपने बाँध रक्खी है?"

सूरिजीने उत्तर दियाः—"हम वर्षाको क्यों बाँध रखते? वर्षाके अभाव लोगोंको दुःख हो, उनके हृदय अशान्त रहें और जब लोग ही अशान्त रहें तो फिर हमें शान्ति कैसे मिले?"

इस तरह दोनोंमें वार्तालाप हो रहा था उसी समय अहमदाबादके प्रसिद्ध जैन गृहस्थ श्रीयुत कुँवरजी वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने शहाबखाँको जैन साधुओंके पवित्र आचार और उत्कृष्ट, उदार विचार समझाये। सुन कर शहाबखाँ खुश हुआ। उसने सूरिजीको उपाश्रय जानेकी इजाजत दी। सूरिजी उपाश्रय पहुँचे। श्रावकोंने बहुतसा दान दिया। जब दान दिया जा रहा था उस समय एक टूकड़ी[2] आया। उसके साथ कुँवरजी जौहरीका झगड़ा हो गया। 'सूरिजीको किसने छुड़ाया?' इस विषयमें बात होते होते दोनों तूँ ताँ पर आ गये। झगड़ा बहुत बढ़ गया। अन्तमें टूकड़ी यह कह कर चला गया कि,—देखें अबकी बार तू कैसे अपने गुरुको छुड़ा लाता है। वह कोतवालके पास गया। सूरिजीको पुनः फँसानेके उद्देश्यसे उसने सूरिजीके विरुद्ध कोतवालको बहुत कुछ कहा। कोतवालने खानसे

---

१ शहाबखांका पूरा नाम शहाबुद्दीन अहमदखां था। जो इसके विषयमें विशेष बातें जानना चाहते हैं वे 'आइन-इ-अकबरी' के अंग्रेजी अनुवाद—जो ब्लॉकमॅनने किया है—के पहिले भागका ३३२ वाँ. पृष्ठ देखें।

२ टूकड़ी यह सिपाहीका नाम है। यह तुरकीका बिगड़ा हुआ रूप है।

कहा। खानने सूरिजीको पकड़ लानेके लिए सिपाहियोंको हुक्म दिया। जौहरीवाड़ेमें आ कर सिपाहियोंने सूरिजीको पकड़ा। जब वे सूरिजीको पकड़ कर ले जाने लगे तब रावव नामका गंधर्व और श्रीसोमसागर बीचमें पड़े। अन्तमें उन्होंने सूरिजीको छुड़ाया। इस खैंचाखैंचीमें गंधर्व राववके हाथमें चोट भी लग गई। सूरिजी नंगे शरीर ही वहाँसे भगे। इस आफतसे भागते हुए देवजी नामके लौंकाने उन्हें आश्रय दिया था। और वे उसीके यहाँ रहे थे।

उधर पकड़नेवाले नौकर चिल्लाते हुए कचहरीमें गये और कहने लगे कि,—"हमको मुक्कों ही मुक्कोंसे मारा और हीरजी भग गया। वह तो कचहरीको भी नहीं मानता है।" यह सुन कर खान विशेष कुपित हुआ। उसने सूरिजीको पकड़नेके लिए बहुतसे सिपाही दौड़ाये। चारों तरफ हा हुल्लड मच गया। घरोंके दर्वाजे बंद हो गये। खोजतेखोजते, सूरिजी तो न मिले मगर धर्मसागरजी और श्रुतसागरजी नामके दो साधु उनके हाथ आ गये। सिपाहियोंने पहिले उन दोनोंको खूब पीटा और फिर उन्हें हीरविजयसूरि न समझ छोड़ दिया। कोतवाल और सिपाही लोग सूरिजीके न मिलनेसे वापिस निराश हो कर लौट गये। उनको पकड़नेकी गड़बड़ बहुत दिनों तक रही थी। उस गड़बड़के मिट जानेके बाद ही हीरविजयसूरि शान्ति के साथ विहार करने लगे थे।

उपर्युक्त उपद्रवोंसे हम सहज हीमें समझ सकते हैं कि, उस समयके अधिकारी कहाँ तक न्याय और कानूनका पालन करते थे। जिन बातोंको एक सामान्य बुद्धिका मनुष्य भी न माने उन बातोंको भी सत्य मान कर एक महान् धर्मगुरुको पकड़नेके लिए शिकारी कुत्तोंकी तरह पुलिस और घुड़सवारोंको चारों दिशाओंमें दौड़ा देना, उस समयकी अराजकता या दूसरे शब्दोंमें कहें तो उस समयके हाकिमोंकी

नादिरशाहीके सिवा और क्या था? जिस तिस तरहसे प्रजाको बरबाद करनेके सिवा और क्या था? अस्तु ।

ऊपर जिन उपद्रवोंका वर्णन किया गया है उनमेंका अन्तिम सं. १६३६ में हुआ था। यह हम ऊपर भी कह चुके हैं। उसके बाद वे शान्तिके साथ विहार करने लगे थे। सं. १६३७ में सूरिजी '**बोरसद**' पधारे थे। वहाँ, उनके पधारनेसे बहुतसे उत्सव हुए थे। उस वर्ष उन्होंने **खंभातहीमें** चौमासा किया था। वहाँके **संघवी उदयकरणने** सं. १६३८ (ई. स. १५८२) के महा सुदी १३ के दिन सूरिजीसे श्रीचंद्रप्रभुकी प्रतिष्ठा भी कराई थी। उसने आबू, चितोड़ आदिकी यात्राके लिए संघ भी निकाला था। तत्पश्चात् सूरिजी विहार करके गंधार पधारे।

ग्रंथके प्रथम नायक **श्रीहिरविजयसूरिके** अवशेष वृत्तान्तको आगेके लिए छोड़ कर अब हम ग्रंथके दूसरे नायक **सम्राट्के** विषयमें लिखेंगे।

प्रकरण तीसरा।

सम्राट्-परिचय।

थम प्रकरणमें भारतीय प्रजा पर जुल्म करनेवाले कई विदेशी राजाओंका नामोल्लेख हुआ है। उनमें पाठक बाबर और उसके पुत्र हुमायुँके नाम भी पढ़ चुके हैं। बाबरका संबंध हिन्दुस्थानके साथ ई० स० १५०४ में हुआ था। उस समय उसकी आयु बाईस बरसकी थी; उस समय वह काबुलका अमीर हो गया था। यहाँ इस बातका पाठकोंको स्मरण करा देना आवश्यक है कि, यह बाबर उसी तैमूरलंगका वंशज था जिसने भारतमें आ कर लाखों भारतवासियोंको कत्ल किया था और जिसने सतियोंका सतीत्व नष्ट करनेमें कुछ भी कमी नहीं की थी। प्रथम प्रकरणमें यह भी उल्लेख हो चुका है कि, बाबरके आने बाद भारतमें शान्ति नहीं हुई। इसी बाबरने पानीपतके मैदानमें ई० स० १५२६ के अप्रेलकी २१ वीं तारीखके दिन इब्राहीमलोदीको मारा था। तत्पश्चात् ई० स० १५२७ के मार्चकी १६ वीं तारीखको चितोड़के राणा संग्रामसिंहके लश्करको 'कानवा' (भरतपुर) के मैदानमें परास्त किया था। बाबरके संबंधमें विशेष कुछ न लिख कर केवल इतना ही लिख देना काफी है कि, संसारकी सतहसे जैसे हजारों राजा अपयशकी गठड़ियाँ बाँध कर विदा हो गये हैं वैसे ही बाबर भी

सन् १५३० में ४८ वर्षकी आयुमें अपनी तूफानी जिन्दगीको पूरा कर विदा हो गया था ।

उसके बाद उसका पुत्र **हुमायुँ** २२ वर्षकी उम्रमें दिल्लीकी गद्दी पर बैठा । विचारी भारतीय प्रजाके दुर्भाग्यसे अब तक भारतमें शान्तिका राज्य स्थापन करनेवाला एक भी राजा नहीं आया । यह सत्य है कि जो राजा राज्य–मदमें मत्त हो कर प्रजाके प्रति उनका जो धर्म होता है उसे भूल जाते हैं अथवा उस धर्मको समझते ही नहीं हैं वे प्रजाको सुख नहीं पहुँचा सकते हैं । **हुमायुँ बाबरसे** भी दो तिल ज्यादा था । वास्तविक बात तो यह थी कि, उसमें राजाके गुण ही नहीं थे । अफीमके व्यसनने उसको सर्वथा नष्ट कर दिया था । उसकी अयोग्यताके कारण ही **शेरशाहने** ई० स० १५३९ में उसको **चौसा** और **कन्नौजकी** लड़ाईमें हराया था और आप गद्दीका मालिक बन गया था ।

इस तरह **हुमायुँ** जब पदभ्रष्ट हुआ तब वह पश्चिमकी तरफ भाग गया । और अन्तमें भाईसे आश्रय मिलनेकी आशासे **काबुलमें** अपने भाई **कामरानके** पास गया । परन्तु वहाँ भी उसकी इच्छा पूर्ण न हुई । **कामराननें** उसकी सहायता नहीं की । इससे वह अपने मुट्ठी भर साथियोंको ले कर सिंधके सहरामें भटकने लगा । संसारमें किसके दिन हमेशा एकसे रहे हैं ? सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख इस 'अरघट्टघटी' न्यायके चक्करसे संसारका कौनसा मनुष्य बचा है ? मनुष्य यदि बारिकीसे इस नियमका अवलोकन करे तो संसारमें इतनी अनीति, इतना अन्याय, इतना अधर्म कभी भी न हो । ऐसी खराब हालतमें भी हुमायुँ एक तरह चौदह बरसकी लड़कीके मोहमें पड़ा था । यह वही लड़की थी कि, जो **हुमायुँके** छोटे भाई **हिंदालके** शिक्षक **शेखअली अकबर** जामीकी पुत्री थी और जिसका

नाम हमीदावेगम या मरियममकानी था। वह लड़की यद्यपि किसी राजवंशकी नहीं थी तथापि हुमायुँके साथ व्याह करना उसे पसंद नहीं था। कारण–हुमायुँ उस समय राजा नहीं था। इस घटनासे कौन आश्चर्यान्वित नहीं होगा कि, यद्यपि हुमायुँ राज्यभ्रष्ट हो गया था; जहाँ तहाँ भटकता फिरता था; कहीं उसे आश्रय नहीं मिलता था; और निस्तेज हो रहा था, तो भी एक तेरह चौदह वरसकी लड़की पर मुग्ध हो कर उससे व्याह करनेके लिए आतुर वन रहा था! आश्चर्य! आश्चर्य किसलिए? मोहराजाकी मायामयी जालसे आज तक कौन वचा है? कई महीनोंके प्रयत्नके वाद अन्तमें उसकी इच्छा फली। लड़की व्याह करनेको राजी हुई। ई० स० १५४१ के अन्तमें और १५४२ के प्रारंभमें पश्चिम सिंधके पाटनगरमें उनका व्याह हो गया। उस समय लड़कीकी उम्र १४ वरसकी थी। इस शादीसे हुमायुँका छोटा भाई हिंदाल भी उससे नाराज हो कर अलग हो गया। हुमायुँके पास उस समय कुछ भी नहीं रहा था। न उसके पास हुकूमत थी, न उसके पास सेना थी और न कोई उसका सहायक ही था। उसके लघु भ्राता हिंदालके साथ वचावचया जो कुछ स्नेह था वह भी हमीदावेगमके साथ व्याह करनेसे नष्ट हो गया। वह निराश्रय और निरावलंब हो कर जहाँ तहाँ भटकता हुआ अपनी स्त्री और कुछ मनुष्यों सहित हिन्दुस्थान और सिंधके वीचके मुख्य रस्ते पर सिंधके मरुस्थलके पूर्व तरफ '**अमरकोट**' (उमरकोट) नामका एक कस्वा है उसमें गया। यह एक सामान्य कहावत है कि,—'**सभी सहायक सवलके, एक न अवल सहाय।**' परन्तु यह एकान्त नियम नहीं है। यदि यह एकान्त नियम होता तो संसारके दुःखी मनुष्योंके दुःखका कभी अन्त ही न होता। वहाँ पहुँचने पर हुमायुँको अपनी महान विपदाका अन्त होनेके चिह्न दिखाई दिये। अमरकोटमें

प्रवेश करते ही वहाँके हिन्दु राजा राणाप्रसादको हुमायुँकी हालत पर तरस आया। एक राजवंशी अतिथिकी दुर्दशा देख कर उसका अन्तःकरण दयासे पसीज गया। उसने हुमायुँको आश्रय दिया। इतना ही नहीं वह हुमायुँको कष्टोंसे छुड़ानेके लिए यथासाध्य प्रयत्न भी करने लगा। क्या आर्य मनुष्योंका आर्यत्व कभी सर्वथा नष्ट हुआ है? 'एक विदेशी मुसलमान राजवंशी पुरुषको किसलिए आश्रय दिया जाय?' इस बातका कुछ भी विचार न करके अमरकोटके हिन्दु राजाने हुमायुँको आश्रय दिया था। इतना ही नहीं यदि यह कहा जाय कि, हुमायुँको प्राणदान दिया था तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। राज्य-भ्रष्ट होने बाद हुमायुँको यहीं आ कर सबसे पहिले शान्ति मिली थी। यहीं आ कर अपने भाग्यकी तेजस्वी किरणोंके फिरसे प्रकाशित होनेकी उसे आशा हुई थी। ई. स. १५४२ के अगस्त महीनेसे उसकी किस्मतका सितारा चमकने लगा था।

अमरकोटके राजाने हुमायुँकी अच्छी आवभगत की, उसको आश्वासन दिया और सलाह दी कि,—मेरे दो हजार घुड़स्वार और मेरे मित्रोंकी ५००० सेना ले कर तुम ठट्ठा और बक्खर प्रान्तों पर चढ़ाई करो। हुमायुँने यह सलाह मान ली। वह २० वीं नवम्बरको दो तीन हजार आदमी ले कर वहाँसे रवाना हुआ। उस समय उसकी स्त्री हमीदाबेगम सगर्भा थी, इसलिए वह उसको वहीं पर छोड़ गया।

कुछ दिन बाद अमरकोटमें, हिन्दु राजाके घर हमीदाबेगमने ई. स. १५४२ के नवम्बरकी २३ वीं तारीख गुरुवारको एक पुत्र रत्नको जन्म दिया। उस समय हमीदाबेगमकी आयु केवल पन्द्रह बरसकी थी। पुत्रका नाम बदरुद्दीन महम्मद अकबर रक्खा गया। विद्वान् लोग कहते हैं,—यह नाम इसलिए रक्खा गया था कि, हमीदाबेगमके पिताका नाम अलि अकबर था। भारतवर्ष जिस सम्राट्की प्रतीक्षा

सम्राट् अकबर.

कर रहा था और जिसका हम इस प्रकरणमें परिचय कराना चाहते हैं, वह सम्राट् यही बदरुद्दीन महम्मद अकबर है। यही 'सम्राट् अकबर' के नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ है। हम भी इस सम्राट्को 'सम्राट् अकबर' के नामहीसे पहिचानेंगे।

जिस समय अकबरका जन्म हुआ था उस समय उसका पिता हुमायुँ अमरकोटसे २० माइल दूर एक तालाबके किनारे डेरा डाल कर ठहरा हुआ था। तरादीबेगखाँ नामके एक मनुष्यने उसे पुत्र जन्मकी बधाई दी। बधाई सुन कर हुमायुँको अत्यंत आनंद हुआ।

व्यावहारिक नियम सबको—चाहे वह राजा हो या रंक—अपनी अपनी शक्तिके अनुसार पालने ही पड़ते हैं। पुत्र—प्राप्तिकी प्रसन्नतामें हर तरहसे उत्सव करना उस समय हुमायुँ अपना कर्तव्य समझता था। मगर कहावत है कि,—'वसु विना नर पशु' उस पर भी हुमायुँका जंगलमें निवास! वह क्या कर सकता था? उसके पास क्या था जिससे वह अपने मनोरथको पूर्ण करता? पुत्र-प्राप्तिके आनंददायक अवसर पर भी उपर्युक्त कारणोंसे उसके मुख कमल पर कुछ उदासीनताकी रेखा फूट उठी। उसके अंगरक्षक जौहर नामक व्यक्तिने इस रेखाका कारण जाना। उसने तत्काल ही एक कस्तूरीका नाफ—जिसको उसने कई दिनोंसे सँभालके रक्खा था—हुमायुँके सामने ला रक्खा। हुमायुँ बड़ा प्रसन्न हुआ। एक मिट्टीके बर्तनमें उसका चूरा किया और फिर वह चूरा सबको बाँटते हुए उसने कहा:—"मुझे खेद है कि, इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है इस लिए मैं पुत्र—जन्मकी खुशीके प्रसंगमें आप लोगोंको, इस कस्तूरीकी खुश्बूके सिवा और कुछ भी भेट नहीं कर सकता हूँ। आशा है आप इसीसे सन्तुष्ट होंगे। मुझे यह भी उम्मीद है कि

जिस भाँति कस्तूरीकी सुगंधसे यह मंडल सुवासित हुआ है वैसे ही मेरे पुत्रकी यश रूपी सुगंधसे यह पृथ्वी सुवासित—मोअत्तिर होगी।

अकवरकी जन्मतिथिके संबंधमें विद्वानोंके दो मत हैं। कई कहते हैं कि, अकबर ई. स. १५४२में १५ अकटूबर रविवारको जन्मा था; मगर **विन्सेंट. ए. स्मिथ** कहता है कि,—"यद्यपि अकबर ई. स. १५४२ में २३ नवम्बर गुरुवारहीको जन्मा था, तथापि पीछेसे उसका जन्म दिन १५ अकटूबर रविवार प्रकट किया गया था। इसी तरह उसका नाम भी बदल दिया गया था। यानी '**बदरुद्दीन महम्मद अकबर**' के बजाय उसका नाम '**जलालुद्दीन महम्मद अकबर**' प्रसिद्ध कर दिया गया था।" इसका प्रमाण वे यह देते हैं कि, जिस समय अकबरका नाम रक्खा गया था उस समय हुमायुँका विश्वस्त सेवक **जौहर** वहीं मौजूद था। उसने अपनी डायरीमें अकबरके जन्मकी तारीख, वार और पूरा नाम लिखा है। उससे हमारे कथनकी पुष्टि होती है। चाहे सो हो, प्रसिद्धिमें तो अकबरका पूरा नाम **जलालुद्दीन महम्मद अकबर** और उसकी जन्म तिथि १५ अकटूबर रविवार सन् १५४२ ही आये हैं। अस्तु। बड़ोंकी बड़ाईमें कुछ विचित्रता तो होनी ही चाहिए।

उपर्युक्त कथनसे यह मालूम हो गया कि **अकबर** बाबरका पोता था। **बाबर तैमूरलंग**—जो तुर्क था—की पाँचवीं पीढ़ीमें था। इस तरह **अकबर** पितृपक्षमें तुर्क था और तैमूरलंगकी सातवीं पीढ़ीमें था।

अकबर पाँच बरसका हुआ तभीसे हुमायुँने उसकी शिक्षाका प्रबंध किया था। प्रारंभमें अकबरको पढ़ानेके लिए जो मास्टर रक्खा

गया था उस मास्टरने अकबरको अक्षरज्ञान न करा कर कबूतरोंको पकड़ने और उड़ानेका ज्ञान दिया। एक एक करके अकबरको पढ़ानेके लिए चार शिक्षक रक्खे गये; परन्तु अकबरने उनसे कुछ भी नहीं सीखा। कहा जाता है कि, अकबरने और तो और अपना नाम लिखने बाँचने जितना भी लिखना पढ़ना नहीं सीखा था।

इस संबंधमें भी विद्वानोंमें दो मत हैं। कई कहते हैं कि, वह लिख पढ़ सकता था और कई कहते हैं कि,—वह अक्षरज्ञान—शून्य था। चाहे उसे लिखना पढ़ना आता था या नहीं, मगर इतना जरूर है कि, वह महान विचक्षण था और पंडितोंके साथ वार्तविनोद करनेमें बड़ा ही कुशल था। सारे ही विद्वान् इस बातको स्वीकार करते हैं। भारतमें ऐसे पुरुष क्या नहीं हुए हैं कि, जो सर्वथा अक्षर—ज्ञान विहीन होनेपर भी महा पुरुष हुए हैं; उन्होंने छोटे बड़े राज्य—तंत्र चलाये हैं। इतना ही क्यों, वे बड़े बड़े वीरताके कार्य भी कर गये हैं। इसी तरह अकबरने भी अक्षर—ज्ञान—शून्य हो कर भी यदि बड़े बड़े महत्त्वके कार्य किये हों तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। विद्वानोंका मत है कि, यद्यपि अकबर स्वयमेव लिखना पढ़ना नहीं जानता था, तथापि ग्रंथ सुननेका उसे बहुत ही ज्यादा शौक था, इसलिए दूसरोंसे ग्रंथ बँचवा कर आप सुना करता था। कई कविताएँ उसने कंठस्थ कर रक्खी थीं। मुख्यतया हाफिज और जलालुद्दीन रूमीकी कविताएँ उसे ज्यादा पसंद थीं। कहा जाता है कि,—यही सबब था जिससे वह अपनी जिन्दगीमें धर्मांध नहीं बना था।

बड़ोंको बड़े ही कष्ट होते हैं और बड़ी ही चिन्ताएँ होती हैं। यह एक सामान्य नियम है। अकबरने जैसे अपनी पिछली जिन्दगी अमन चैन और ऐशो—इशरतमें बिताई थी, वैसे ही उसे अपने प्रारंभिक जीवनमें बहुत ही ज्यादा कष्टोंका मुकाबिला करना पड़ा था

उसे प्रारंभिक जीवनमें कष्ट हुए इसका वास्तविक कारण उसके पिता हुमायुँके भाग्यकी विषमता थी ।

हुमायुँको अमरकोटके राजाने महान विपत्तिके समय सहायता दी थी; परन्तु उसके साथ भी उसकी प्रीति बहुत दिनों तक नहीं टिकी । कारण—हुमायुँके एक नौकरने अमरकोटके राजाका अपमान किया; परन्तु हुमायुँने उसका प्रतीकार नहीं किया । इससे अमरकोटका राजा क्रुद्ध हुआ । उसने हुमायुँके पाससे अपनी सेना वापिस ले ली । इससे हुमायुँ फिरसे पहिलेहीसा असहाय हो गया । वह अपनी स्त्री और पुत्र (अकबर) को ले कर कंधारकी तरफ रवाना हुआ । उस समय वहाँका राजा उसका भाई **कामरान** था । उसने और उसके भाई **अस्करी**ने हुमायुँको पकड़नेका यत्न किया । हुमायुँ यह समाचार सुन, पुत्र **अकबर**को वहीं छोड़, अपनी स्त्रीको ले भाग गया । **अकबर** बचपनहीमें माता पितासे भिन्न हुआ और शत्रुके हाथों चढ़ गया । **अस्करी**ने बालक **अकबर**को ले जा कर अपनी स्त्रीके हवाले किया और उसीके सिर उसके लालन-पालनका भार दिया ।

हुमायुँ वहाँसे भाग कर ईरानमें गया। वहाँके राजाकी सख्तीसे उसे शीआधर्म ग्रहण करना पड़ा । शीआधर्म ग्रहण करनेसे ईरानका बादशाह हुमायुँसे खुश हुआ । हुमायुँने उसकी खुशीका लाभ उठाया । कुछ द्रव्य और सेनाकी सहायता ले कर उसने कंधार और काबुल पर चढ़ाई की। इस लड़ाईमें पहिली बार हुमायुँकी जीत हुई । उसने कंधार और काबुलको जीत कर अपने प्यारे पुत्रको प्राप्त कर लिया; मगर दूसरीबारके युद्धमें वह हार गया । कामरान जीता । उसने कंधारके साथ ही काबुल और अकबरको उससे वापिस छीन लिया।

एक बार हुमायुँ काबुलके किले पर तोपके गोले छोड़नेकी तैयारी

कर रहा था, उस समय कामरानको किला बचानेका कोई उपाय नहीं सूझा। इसलिए उसने किले पर—जहाँ गोलेकी मार लगती थी—अकबरको ला खड़ा किया। हुमायुँको तोप छोड़ना बंद रखना पड़ा। कारण—दूसरोंको नष्ट करने जाते उसका प्यारा बेटा ही सबसे पहिले नष्ट हो जाता। इस लड़ाईमें आखिरकार हुमायुँ ही जीता। कामरान हार कर भारतमें भाग आया। हुमायुँको फिरसे अपना प्यारा पुत्र अकबर और काबुल देश मिले।

हुमायुँ भी कामरानसे कम निठुर नहीं था। उसके भाईने जो कष्ट दिये थे उनका बदला लेनेमें उसने कोई कसर नहीं की थी। जब उसे फिरसे दिल्लीका राज्य मिला, तब उसने कामरानको कैद किया; उसकी आँखे फोड़ीं, उनमें नींबू और नमक डाला। इस तरह दुःख दिया, तत्पश्चात् उसको मक्का भेज दिया। इसी भाँति उसने अस्करीको भी तीन साल तक कैदमें रख कर मक्का भेज दिया।

अफ्सोस! लोभाविष्ट मनुष्य क्या नहीं करता है? लाखों आदमी जिनकी आज्ञा मानते थे, जो बुद्धिमान समझे जाते थे वे भी जब ऐसी २ क्रूरता और निर्दयताका व्यवहार करने लग जाते हैं तब यही कहना पड़ता है कि यह सब लोभका ही प्रताप है।

ई० स० १५५१ में हुमायुँका तीसरा भाई हिंडाल—जो ग़जनीका राज्य करता था—मर गया। हुमायुँने अकबरको वहाँका हुक्मराँ बनाया। हिंडालकी लड़की रुकैयाबेगमके साथ अकबरका ब्याह हुआ। जिस समय अकबर ग़जनीमें हुकूमत करता था उस समय कई अच्छे २ व्यक्ति उसकी संभाल रखते थे। कहा जाता है कि, अकबर केवल छः महीने तक ही ग़जनीमें रहा था।

अकबर बचपनहीसे महान तेजस्वी और बहादुर था। बड़ीसे बड़ी तोपकी आवाजको भी वह सामान्य पटाखेकी आवाजके समान

समझता था। कुदरतने शूरताके और बहादुरीके जो गुण उसे बख्शे थे वे छिपे हुए नहीं रहे थे। जबसे वह थोड़ा होशियार हुआ तभीसे वह युद्धमें जाने और अपने पिताकी सहायता करने लगा था। यहाँ हम उसकी प्रारंभिक बहादुरीका एक उदाहरण देंगे।

एक बार हुमायुँ बहरामखाँ सहित पाँच हजार घुड़सवारोंको साथ लेकर काबुलसे रवाना हुआ। जब वह पंजाबमें सरहिंदके जंगलोंमें पहुँचा तब सिकंदरसूरकी सेनाके साथ उसकी मुठभेड़ हो गई। हुमायुँका सेनापति तो सिकंदरकी सेनाको देखते ही हताश हो गया। उसका मन यह विचार कर एकदम बैठ गया कि, इतनी जबर्दस्त सेनाके साथ युद्ध कैसे किया जायगा? उस समय हुमायुँ और उसके सेनापतिका अकबरकी वीरताहीने साहस बढ़ाया था। अकबरहीने उन्हें बहादुरी भरी बातें कह कर उत्तेजित किया था। इतना ही नहीं उसने खुद ही आगे बढ़ कर सेनापतिका काम करना प्रारंभ किया था। परिणाम यह हुआ कि अकबरकी सहायता और वीरतासे हुमायुँको उस लड़ाईमें फतेह मिली। पाठकोंको यह जान कर आश्चर्य होगा कि, उस समय अकबरकी आयु केवल बारह बरसहीकी थी। तत्पश्चात् ई० स० १५५५ में हुमायुँने क्रमशः दिल्ली और आगराकी हुकूमत भी ले ली।

लाखों करोड़ों मनुष्योंको कत्ल कर, खूनकी नदियाँ बहाकर, या हलकेसे हलका नीचता पूर्ण कार्य करके जो राजा बने थे वे क्या कभी हमेशा राजा रहे हैं? विनाशी और शत्रुता पैदा करानेवाली जिस राज्यलक्ष्मीके लिए मनुष्य अन्याय करता है; अनीति करता है; लाखों मनुष्योंके अन्तःकरण दुखाता है वह लक्ष्मी क्या कभी किसीके पास हमेशा रही है? जो भावीकी बड़ी बड़ी आशाओंके हवाई किले बना, महान अनर्थ कर राज्य प्राप्त करते हैं वे यदि अपने आयुकी विनश्वरताका और क्षणिकताका विचार करते हों तो क्या यह संभव

है कि वे आध्यात्मिक संस्कारोंको दूर कर संसारमें इतनी अनीति और अत्याचार करें? जिस पृथ्वीके लिए, मनुष्य अपना सर्वस्व खो देते हैं वह पृथ्वी क्या कभी किसीके साथ गई है? गोंडलकी महारानी साहिबा 'श्रीमती नंदकोरबा' अपने 'गोमंडल परिक्रम' नामकी पुस्तकमें लिखते हैं:—

"लोग पृथ्वीपति बननेके लिए कितने हाथ पैर पछाड़ते हैं? कितनी खराबियाँ करते हैं? कितना लोहूका पानी करते हैं? और कितना अन्याय करते हैं? मगर यह पृथ्वी क्या किसीकी होके रही है? पृथ्वीके भूखे राजा लोग यदि इसका विचार करें तो संसारसे बहुतसा अनर्थ कम हो जाय।"

राज्य प्राप्त करनेके लिए हुमायुँको कितना कष्ट उठाना पड़ा था? कितनी भूख, प्यास सहनी पड़ी थी? दूसरोंका आश्रय लेना पड़ा था। पीछेसे वहाँ भी तिरस्कृत होना पड़ा था। अपने प्यारे पुत्रको छोड़ कर भागजाना पड़ा था। सगे भाइयों और स्नेहियोंके साथ वैर-विरोध करना पड़ा था। और तो क्या अपने सहोदरकी आँखें फोड़ने और उसकी आँखोंमें नींबू और नमक डालनेके समान क्रूर कार्य भी करना पडा था। इतना करने पर भी हुमायुँ क्या सदाके लिए दिल्लीके राज्यका उपभोग कर सका? नहीं। दिल्लीकी गद्दी पुनः प्राप्त करनेके छः ही महीने बाद २४ जनवरी सन् १५५६ ईस्वीके दिन उसे अपनी सारी आशाओंको इस संसारकी सतह पर छोड़ कर चल देना पड़ा; अपने पुस्तकालयके जीनेसे जब वह नीचे उतरता था उसका पैर फिसल गया और उसीसे उसके प्राणपखेरू उड़ गये।

उस समय अकबर पंजाबमें था। क्योंकि वह सन् १५५५ ईस्वीके नवम्बर महीनेमें पंजाबका सूबेदार बना कर वहाँ भेजा गया

था। अकबर उस समय वहरामखाँके निरीक्षणमें सिकंदरसूरके साथ युद्ध करनेमें लगा हुआ था। हुमायुँ जब मरा था उस समय दिल्लीका हाकिम तरादीबेगखाँ था। कहा जाता है कि, उसने सत्रह दिन तक तो हुमायुँके मृत्यु-समाचार लोगोंको मालूम भी न होने दिये। कारण यह था कि,-अकबरको राज्य मिलनेमें कहीं विघ्न न खड़ा हो जाय। इन्हीं दिनोंमें उसने ये समाचार एक विश्वस्त मनुष्यद्वारा पंजाबमें अकबरके पास भेज दिये थे। पितृ-वत्सल अकबरने जब ये शोकसमाचार सुने तब उसे बहुत दुःख हुआ। उसने अपने पिताकी समाधि पर एक ऐसा उत्तम मंदिर बनवाया कि जो आज भी लोगोंके दिलोंको अपनी ओर खींच लेता है। दिल्लीमें जितनी चीजें देखने लायक हैं उन सबमें यह मंदिर अच्छा समझा जाता है।

पिताके मरते ही उसे गद्दी नहीं मिल गई थी। गद्दी प्राप्त करनेके लिए उसे बहुत बड़ी लड़ाई करनी पड़ी। यद्यपि पहिले १४ फर्वरी सन् १५५६ ईस्वीके दिन 'गुरुदासपुर' जिलेके 'कलानौर' गाँवमें उसका राज्याभिषेक हुआ था, तथापि दिल्लीके राज्याभिषेकमें बहुतसा वक्त लग गया। दिल्लीका राज्य उसे शीघ्र ही नहीं मिला। इसका कारण यह था कि,-जिस समय हुमायुँ मरा था उस समय मुसलमानोंमें आपसी झगड़े बहुत बढ़ गये थे। इस आपसी कलहसे लाभ उठा कर दिल्लीका राज्य अपने अधिकारमें कर लेनेके लिए हेमू-जो पहिले आदिलशाहका मंत्री था-का जी ललचाया था। उसकी इच्छा थी कि, वह दिल्लीका राजा बन कर विक्रमादित्य हेमूके नामसे प्रसिद्ध हो। वह 'चुनार' और 'बंगाल' के विद्रोहोंको शान्त करता हुआ आगे बढ़ा था। आगरा अनायास ही उसके हाथ आ गया और दिल्ली जीतनेके लिए उसने कदम बढ़ाया था। उस समय दिल्लीकी हुकूमत तरादीबेगखाँके हाथमें थी। वह हेमूसे हारा

और अपनी बची बचाई फौज ले कर पंजाबमें अकबरके पास भाग गया। दिल्लीकी गद्दी प्राप्त कर हेमूको असीम आनंद हुआ। दिल्ली ले कर ही उसका लोभ शान्त नहीं हुआ। पंजाबको लेनेकी इच्छासे वह पंजाबकी ओर रवाना हुआ।

उधर अकबरको खबर मिली कि, हेमूने दिल्ली और आगरा ले लिये हैं। इससे उसको बहुत चिन्ता हुई। उसने अपनी 'समर-सभा' के मेम्बरोंको जमा किया और उनसे पूछा कि, अब क्या करना चाहिए? बहुतसोंने तो यही सलाह दी कि, जब चारों तरफसे हमें दुश्मनोंने घेर लिया है तब हमें चाहिए कि, इस वक्त हम काबुलका राज्य ले कर चुप हो रहें। मगर बहारामखाँको यह सलाह पसंद न आई। उसने कहा,—"नहीं हमें दिल्ली और आगरा फिरसे अपने अधिकारमें लेना चाहिए।" अन्तमें बहरामखाँकी सलाह ही ठीक रही। अकबरने हेमूको परास्त कर दिल्ली पर अधिकार करनेके लिए दिल्लीकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें तरादीबेगखाँ अपने कुछ सैनिकों सहित मिला। बहरामखाँने उसे धोखा दे कर मार डाला[1]। वहाँसे आगे कुरुक्षेत्रके प्रसिद्ध मैदानमें हेमू और अकबरकी फौजकी लड़ाई हुई। लड़ाईमें बहरामखाँका एक तीर हेमूको लगा। हेमू

---

१ तरादीबेगखाँ (तार्दिबेग) को किसने मारा? इस विषयमें इतिहास लेखकोंके भिन्न २ मत हैं। इन मतोंका श्रीयुत बंकिमचंद्र लाहिडीने अपनी 'सम्राट् अकबर' नामकी बंगला पुस्तकमें उल्लेख किया है। बदाउनी कहता है कि,—"बहरामखाँने अकबरकी सम्मतिसे उसे मारा था।" फरिश्ताने लिखा है कि,—"बहरामखाँने अकबरको कहा,—आप बहुत ही दयालु हैं। यदि आपको कहता तो आप उसे क्षमा कर देते। इसलिए आपकी इजाजत लिए बिना ही मैंने उसे मार डाला है। यह बात सुन कर अकबर काँप उठा।" आदि।

हाथीसे नीचे गिर पड़ा[1]। उसकी फौज भाग गई। अकबरकी जीत हुई। फिर अकबरने जा कर दिल्ली और आगरे पर अधिकार किया और बेखटके वह अपने बापकी गद्दी पर बैठा।

अकबर गद्दी पर बैठा उस समय भारतवर्षकी हालत बहुत ही खराब थी। करीब करीब सब जगह अव्यवस्था और अराजकताके चिह्न दिखाई देते थे। आर्थिक दशा लोगोंकी खराब थी। इसके कई कारण थे। एक कारण तो यह था कि–जिस देशकी राजकीय स्थिति ठीक नहीं होती है–अव्यवस्थित होती है उस देशकी आर्थिक हालतको जरूर धक्का लगता है। दूसरा कारण यह था कि,–सन् १५५५ और ५६ ईसवीमें लगातार दो बरस तक अकाल पड़े थे। तीसरे लड़ाइयाँ हो रही थीं इससे आगरा, दिल्ली तथा इनके आसपासके सब प्रदेश ऊजड़–वीरानसे हो गये थे।

अकबरने, सिंहासनारूढ़ होने पर देशकी हालत सुधारने और अपने पिताके समयमें जो प्रान्त चले गये थे उनको वापिस लेनेकी ओर ध्यान दिया। कारण–उस समय भारतके भिन्न भिन्नप्रान्त स्वतंत्र हो रहे थे। जैसे—

काबुल। यद्यपि यहाँका राज्य अकबरके भाईके नामसे होता था; परन्तु वास्तवमें तो वह स्वतंत्र ही था। **बंगाल**। यह अफ़ग़ान सर्दारोंके अधिकारमें था और दो सौ से भी ज्यादा वर्ष पहिलेसे वह स्वतंत्र हो गया था। **राजपूतानाके राज्य**। ये जबसे **बाबर** हारा

---

[1] हेमूकी मृत्युके संबंधमें भी भिन्न भिन्न मत हैं। **अहमद यादगारने** लिखा है कि,–"अकबरके हुक्मसे बहरामखाँने हेमूके सिरको उसके अपवित्र शरीरसे जुदा किया था।" **अबुलफजलने फैजीसरहिन्दीने** और **बदाउनीने** लिखा है कि,–"अकबरने **हेमू** पर शस्त्र चलानेसे इन्कार किया इसलिए बहरामखाँने उसका (हेमूका) सिर काट डाला।"

तभीसे अच्छी हालतमें आ गये थे और अपने अपने राज्यमें स्वाधीनतासे राज्य करते थे । मालवा और गुजरात तो बहुत पहिले ही से दिल्लीके अधिकारसे निकल गये थे । गोंडवाणा और मध्य-प्रान्तके राज्य अपने उन्हीं सर्दारोंका सम्मान करते थे कि जो अपने ऊपर किसीको भी नहीं समझते थे । ओरिसाके राज्यने तो किसीको स्वामी करके माना ही न था । दक्षिणमें खानदेश, वराड़, बेदर, अहमदनगर, गोलकांडा और बीजापुर आदिमें वहाँके सुल्तान ही राज्य करते थे । वे दिल्लीके बादशाहके नाम तककी परवाह नहीं करते थे । दक्षिणमें वहाँसे आगे बढ़ कर देखेंगे तो मालूम होगा कि,—कृष्णा और तुंगभद्रासे ले कर केपकुमारी तकका प्रदेश विजयनगरके राजाके अधिकारमें था। उस समय विजयनगरका राज्य बहुत ही जाहोजलाली पर था। गोवा और ऐसे ही दूसरे कुछ बंदरों पर पोर्तुगीजोंने कब्जा कर रक्खा था । अरबी समुद्रमें उनके जहाज चलते थे । उत्तरमें काश्मीर, सिंध और बिलोचिस्तान तथा ऐसे ही कई दूसरे राज्य बिलकुल स्वाधीन थे ।

उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट है कि अकबर जब गद्दी पर बैठा था उस समय हिन्दुस्थानका बहुत बड़ा भाग स्वाधीन था । अकबरके अधिकारमें बहुत ही कम प्रान्त थे । इससे उसके हृदयमें दूसरे प्रदेशोंको अपने अधिकारमें करनेकी इच्छाका उत्पन्न होना स्वाभाविक था।

अकबरने अपनी कचहरीके रिवाज तीन प्रकारके रक्खे थे । १ तुर्की, २ मोगल और ३ ईरानी । ऐसा करनेका सबब यह था कि,—अकबर पितृपक्षमें तैमूरलंगके खानदानका था । तैमूर तुर्की था । इसलिए उसने तुर्की रिवाज रक्खा था । मातृपक्षमें वह चंगेजखाँके वंशका था । चंगेजखाँ मुगल था, इसलिए उसने मोगल रिवाज भी रक्खा था और अकबरकी माता ईरानकी थी इसलिए उसने ईरानी रिवाज भी

रक्खा था। अकबरके राजत्वके आरंभमें हिन्दुओंके रिवाजोंका प्रभाव बहुत ही कम पड़ा था। उसके रिवाज जैसे तीन भागोंमें विभक्त थे वैसे ही उसके नौकर-हुजूरिए भी दो भागोंमें विभक्त थे। एक भागमें थे तुर्क और **मांगल** अथवा **चगताई** और **उजवेग** व दूसरे विभागमें थे **ईरानी**। कहा जाता है कि, अकबर अपने समयमें **शेरशाह**के वक्तके कानूनोंको विशेषकरके व्यवहारमें लाया था। और नहीं तो भी उसने आय-विभाग (Revenue-Department) में तो जरूर ही सुधार किया था। यह **शेरशाह** वही है कि, जिसने **हुमायुँ**को सन् १५३९ ईस्वीमें **चौसा** और **कन्नौज** के पास परास्त किया था। उसका असल नाम **शेरखाँ** था मगर गद्दी पर वह **शेरशाह** नाम धारण करके बैठा था। इस **शेरशाह**ने सन् १५४५ ईस्वी तक **दिल्ली**में रह कर कई सुधार किये थे।

कइयोंका मत है कि, **अकबर**ने दीवानी और फौजदारीसे संबंध रखनेवाले खास कानून नहीं बनाये थे। न उससे संबंध रखनेवाले रजिस्टर या खतौनिया आदि ही बनाई थीं। करीब करीब सब बातें वह जबानी ही करता था और किसीको यदि कुछ दंड देता था तो वह 'कुरानशरीफ' के नियमानुसार देता था।

अकबर अठारह बरसका हुआ तब तक उसके संरक्षकका कार्य **बहरामखाँ** करता था। इतना ही नहीं यदि यह कहें कि, राज्यकी पूरी सत्ता **बहरामखाँ**के हाथमें थी तो अनुचित न होगा। **बहरामखाँ** पर **अकबर**का भी पूर्ण विश्वास था। मगर उस विश्वासका **बहरामखाँ**ने दुरुपयोग किया था। यद्यपि **अकबर** पीछेसे यह जान गया था कि, **बहरामखाँ** महान् क्रूर और अन्यायी है; यह जानते हुए भी वह हरेक बातको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता रहा, तथापि **बहरामखाँ**के अन्यायकी मात्रा प्रति दिन बढ़ती ही रही थी। **बहरामखाँ** जैसा

अन्यायी था, वैसा ही, उद्धत, कठोरभाषी, निष्ठुर हृदयी और पतित चरित्रवाला भी था। साधारणसे साधारण मनुष्यके लिए भी जब ये दुर्गुण घातक होते हैं तब जो शासन-कर्ता है उसके लिए तो निःसंदेह होवे हीं। अस्तु। अकबर बहरामखाँके साथ वैमनस्य न हो इस बातका पूरा खयाल रखता था। मगर कहावत है कि,–'ज्यादा थोड़ेके लिए होता है।' अथवा 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' अन्तमें अकबरकी इच्छा हुई कि, वह सम्पूर्ण राज्यसत्ता अपने हाथमें ले; परन्तु इस काममें उसने जल्दी करना ठीक न समझा। युक्तिपूर्वक काम लेना ही उसे ठीक जचा।

एक वार अकबर कुछ आदमियोंको साथ ले कर शिकारके लिए चला। शिकारगाहहीमें उसे अपनी माताकी बीमारीकी खबर मिली। खबर सुन कर वह दिल्ली गया। वहाँ जा कर उसने अपने सारे राज्यमें यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि,–"मैंने राज्यका सारा कामकाज अपने हाथमें ले लिया है। इसलिए मेरे सिवाय किसी दूसरेकी आज्ञा आजसे न मानी जाय।" सन् १५६० ईस्वीमें जब यह ढिंढोरा पिटवाया तब उसने बहरामखाँके पास भी एक नम्रतापूर्ण पत्र भेजा। उसमें लिखा—"आज तक मैंने आपकी सज्जनता और विश्वास पर सारा राज्य भार छोड़ कर निर्भयताके साथ आनंदका उपभोग किया। अबसे राज्यका भार मैंने स्वयं उठाया है। आप मक्का जाना चाहते थे; अतः अब आप खुशीके साथ मक्का तशरीफ ले जायँ। आपको भारतवर्षका एक प्रान्त भेट किया जायगा। आप उसके जागीरदार होंगे। उसकी जो आमदनी होगी उसे आपके नौकर आपके पास भेज दिया करेंगे।" इससे बहरामखाँ अकबरका दुश्मन बन गया। वह मक्काका नाम ले कर आगरेसे रवाना हुआ। मगर मक्का न जा कर पंजाबमें गया, कारण–

उसने अकबरके साथ युद्ध करना ठाना था। यह खबर अकबरको पहिलेहीसे मिल गई थी। इसलिए उसने अपनी फौज पंजाबमें भेज दी। लड़ाई हुई। अकबरके सेनापति मुनीमखाँने सन् १५६० ईस्वीमें बहरामखाँको कैद कर लिया।

इस तरह राज्यकी बागडोर अकबरने अपने हाथमें ले ली थी, तो भी वह खराब सोहबतसे एकदम बच न सका था। कहा जाता है कि, वह तीन बरसके बाद बुरी सोहबतसे निकल कर सर्वथा स्वाधीन हुआ था।

जहाँ देखो वहीं राजाओंमें यह दुर्गुण होता ही है। अपनी बुद्धिसे काम करनेवाले और पूरी जाँचके साथ न्याय करनेवाले राजा बहुत ही थोड़े होते हैं। अपने पास रहनेवाले लोगोंकी बातों पर चलनेवाले राजा प्रायः ज्यादा होते हैं। अभी कई देशी राज्योंकी प्रजा अपने राजाओंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखती है या उनसे घृणा करती है, इसका कारण यही है कि, वे (राजा) जो आज्ञाएँ प्रकाशित करते हैं बेसोचे समझे और किसी बातकी जाँच किये बिना करते हैं। उनके पास रहनेवाले खुशामदी दर्बारी राजाको खुश करनेकी गरजसे या अपना कोई मतलब बनानेके लिए राजाको उल्टी सीधी बातें समझा देते हैं और राजा उसीके मुवाफिक हुक्म जारी कर देते हैं। उसीका परिणाम है कि आजकल राजा और प्रजाके बीच मन–मुटाव हो रहा है। वास्तवमें तो राजाको हरेक बातकी जाँच करके ही काम करना चाहिए। उसके कामोंसे किसी पर अन्याय नहीं होना चाहिए। अकबरका प्रारंभिक काल भी करीब करीब ऐसा ही था। यानी खुशामदी दर्बारियोंके भरोसे ही राजकाज चलता था। मगर पीछे से वह (अकबर) अपनी बुद्धिसे कार्य करना ही विशेप पसंद करने लगा।

सन् १५६२ ईस्वीमें, यानी जब वह बीस बरसका हुआ, तब प्रजाकी असली हालत जाननेके लिए उसने फकीरों और साधु-सन्तोंका सहवास करना शुरु किया। यह है भी ठीक कि, निष्पक्ष त्यागी फकीरों और साधुओंके जरिए प्रजाकी असली हालत अच्छी तरहसे मालूम हो सकती है। वर्त्तमानमें तो प्रायः राजा लोग साधु-फकीरोंसे मिलनेमें भी पाप समझते हैं। अस्तु। साधु-फकीरोंसे मिलनेमें अकबरको इतना आनंद होता था कि, वह कई वार तो वेष बदल बदल कर उनसे मिलता था। साधुओंसे मिल कर जैसे वह प्रजाकी असली हालत जाननेकी कोशिश करता था वैसे ही वह आत्माकी उन्नतिके साधनोंका भी अन्वेषण करता था। अकबरने कहा है कि:—
" On the completion of my twentieth year," he said, " I experienced an internal bitterness, and from the lack of spiritual provision for my last journey my soul was seized with exceeding sorrow."*

भावार्थ—जब मैं बीस बरसका हुआ तब मेरे अंतःकरणमें उग्र शोकका अनुभव हुआ था। और मुझे इस बातका बड़ा दुःख हुआ था कि, मैंने परलोक यात्राके लिए (धर्मकृत्य नहीं किये) धार्मिक जीवन नहीं विताया।

अकबरको तब तकके अनुभवसे यह भी मालूम हुआ था कि, जिन जिन पर उसने विश्वास किया था वे सभी विश्वास करने लायक नहीं थे। उनमेंके कइयोंने तो अकबरको मार डालने तकका भी प्रयत्न किया था।

तब तक अकबरकी आयकी भी अव्यवस्था ही थी। अकबरको जब यह बात मालूम हुई तब उसने सूर्यवंशीय राज्यके एक वफादार

* Ain-i-Akbari, Vol. III, P. 386 by H. S. Jarrett.

मनुष्यको नौकर रक्खा। उसे ऐतमादखाँका अल्काब दिया गया था। उसने कई ऐसे नियम बनाये कि, जिनसे आमदनीसे संबंध रखनेवाली सारी गड़बड़ी मिट गई और ठीक तरहसे काम चलने लगा।

अकबर उसी साल यानी सन् १५६२ ईस्वीके जनवरी महीनेमें ख्वाजा मुइनुद्दीनकी यात्रा करनेके लिये अजमेर गया था। रास्तेमें दौसा गाँवमें 'अम्बे' (जयपुरकी पुरानी राजधानी) के राजा विहारीमलने अपनी बड़ी लड़कीको अकबरके साथ व्याह देना स्वीकार किया। अकबर अजमेरसे सीधा आगरे गया और वहाँसे वापिस आ कर साँभरमें उसने हिन्दु-कन्याके साथ व्याह किया। हिन्दु लड़कीके साथ यह उसका पहिला ही व्याह हुआ था। [अकबरका लड़का जहाँगीर (सलीम) इसी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ था] (ई. स. १५६९)

समस्त भारतमें एक छत्र साम्राज्य स्थापन करनेकी अकबरकी आन्तरिक इच्छा थी। राष्ट्रीय दृष्टिसे विचार करेंगे तो मालूम होगा कि, प्रजा उसी समयमें सुखसे रह सकती है कि जब उसे किसी प्रतापी राजाकी छत्र-छायामें रहनेका सौभाग्य मिले। अलग अलग स्वाधीन राजाओंके कारण हर वक्त लड़ाई झगड़े हुआ करते हैं और उनके कारण प्रजाकी बर्बादी होती है। अतः अकबरने यह निश्चय किया कि, 'एक ही राजाके अधिकारमें सारी प्रजाको रखना।' इस लक्ष्यको सामने रख कर ही उसने छोटे बड़े जिलोंको धीरे धीरे अपने अधिकारमें करना प्रारंभ किया था। और इस भाँति भारतके बहुत बड़े भागको अपने अधिकारमें करनेके लिए अकबरने लगातार बारह वर्ष तक युद्ध किया था। उसकी सारी युद्ध-यात्राओंका वर्णन न लिख कर यहाँ सिर्फ इतना ही लिख देते हैं कि, उसे अपने उद्देश्यमें बहुत कुछ सफलता मिली थी।

अकबरका विशेष परिचय प्राप्त करनेके लिए अब उसके अन्यान्य गुण–अवगुणोंका विचार किया जायगा।

यद्यपि अकबर मुसलमान कुलमें जन्मा था तथापि उसके हृदयमें दयाके भाव अधिक थे। दीन–दुःखियोंकी सेवा करना और उनके दुःखोंको दूर करनेका प्रयत्न करना वह अपना कर्तव्य समझता था। अपनी प्रजाको–चाहे वह हिन्दु हो या मुसलमान–दुःख देना, सताना वह पाप समझता था। प्रजाके प्रति राजाके क्या कर्तव्य हैं सो वह भली प्रकार जानता था। मयूर जैसे पाँखोंसे ही शोभता है वैसे ही राजा भी प्रजाहीसे सुशोभित होता है। अर्थात् प्रजाकी शोभाहीसे राजाकी शोभा रहती है। अकबर इस बातको भली प्रकार जानता था। इसी लिए वह ऐसे काम नहीं करता था जिनसे प्रजाको दुःख हो। वह प्रायः ऐसे ही कार्य करता था जिनसे प्रजा प्रसन्न और सुखी रहती थी। अर्थात् जहाँ जैसी आवश्यकता देखता वहाँ वैसे कार्य करा देता था। अकबरने कई कार्य कराये थे। उन्हींमेंसे फतेहपुर सीकरीमें बँधाया हुआ तालाब भी एक है। वहाँ पानीकी तंगी थी। उसे दूर करने हीके लिए वह तालाब बँधवाया गया था। वह छ माइल लंबा और तीन माइल चौड़ा था। अब भी उसके चिन्ह मौजूद हैं जो अकबर की दयालुताकी साक्षी दे रहे हैं। श्रीदेवविमलगणिने अपने 'हीरसौभाग्य' काव्यमें इस तालावका उल्लेख किया है और उसका 'डावर' के नामसे परिचय दिया है। *

---

* स श्रीकरीपुरनवासवदात्मशिल्पि-
सार्थेन डावरसरःसविधे धरेशः।
इन्द्रानुजात इव पुण्यजनेश्वरेण
श्रीद्वारकां जलधिगाधवसंनिधाने ॥ ६३ ॥
(१० सर्ग)

'यात्रा' के नामसे जो कर वसूल किया जाता था, उसको उसने राज्यकी लगाम अपने हाथमें लेनेके बाद आठवें वर्षमें बंद कर दिया था। यह भी उसकी दयालु वृत्तिका ही परिणाम था। नवें वर्षमें उसने 'जज़िया' के नामसे जो कर वसूल किया जाता था उसे भी बंद कर दिया था। (ई. स. १५६२) इन दोनों करोंसे पहिले प्रजाको बहुत ही ज्यादा कष्ट उठाना पड़ा था।

इस 'जज़िया' की उत्पत्ति भारतमें कबसे हुई? इसका यद्यपि निश्चित समय निर्धारित नहीं किया जा सकता है तथापि उसके विषयमें प्रथम प्रकरणमें कुछ प्रकाश डाला जा चुका है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक विन्सेंट स्मिथके मतानुसार **फीरोजशाहने** यह कर लगाया था और अकबरके समय तक चलता रहा था।

ऐसा कर जिसकी आमदनी लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों रुपयेकी होती थी उसने केवल अपनी दयापूर्ण वृत्तिसे, प्रजाके हितार्थ बंद कर दिया, इससे हमको सहज ही में यह बात मालूम हो जाती है कि, अकबर मुसलमान बादशाह होकर भी अपनी प्रजाकी भलाईका कितना खयाल रखता था। जिस आर्यप्रजाको मुसलमानी राज्यमें भी ऐसे जुल्मी करोंसे दूर रहनेका सौभाग्य प्राप्त था उसीको आज आर्य राजाओंके अधिकारमें रहते हुए भी भिन्न भिन्न प्रकारके अनेक कठोर कर देने पड़ते हैं और अनेक प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते हैं, यह बात क्या किसीसे छिपी हुई है? इस समय हमें **केप्टन एलेक्झेण्डर हेमिल्टनका**—जो स्कॉटलेण्डका रहनेवाला था और जो सन् १६८८ से १७२३ ईस्वी तक हिन्दुस्थानमें व्यापार करता रहा था—वचन याद आता है। वह कहता है:—

"स्वराज्यकी अपेक्षा मुगलोंके राज्यमें रहना हिन्दुलोगोंको ज्यादा अच्छा लगता था। कारण—मुगलोंने लोगों पर करका बोझा

ज्यादा नहीं डाला था। जो कर देना पड़ता था उसका आधार हाकिमोंकी मरजी पर नहीं था। वह पहिलेहीसे नियत था। लोग पहिलेहीसे जानते थे कि हमें कितने रुपये देने होंगे। मगर हिन्दु राजा अपनी इच्छाके अनुसार कर लगाते थे। उनके मनका द्रव्यलोभ ही लोगोंसे पैसे वसूल करनेका प्रमाण माना जाता था। वे तुच्छ तुच्छ बातोंके लिए पड़ौसियोंसे झगड़ा करते थे; युद्ध करते थे। इससे उनकी महत्वाकांक्षा और मूर्खताका परिणाम सारी प्रजाको भोगना पड़ता था; उनको शारीरिक और आर्थिक बहुतसी यातनाएँ भोगनी पड़ती थीं।"

[मुसलमानी रियासत (गुजराती) भा. १ ला पृष्ठ ४२६]

आज भी कई देशी रियासतें अपनी प्रजाको उपर्युक्त प्रकारका—कर संबंधी—कष्ट दे रही हैं। कुछ अंगुलियों पर गिनने योग्य राजा ऐसे हैं जो प्रजाकी उन्नतिके लिए निरन्तर सचेष्ट रहते हैं; और इस बातका ध्यान रखते हैं कि उनकी कृतिसे प्रजाको कहीं दुःख न हो। उनको छोड़ कर भारतमें अब भी—विज्ञानके इस जमानेमें भी—ऐसी देशी रियासतें हैं कि जहाँके हिन्दु राजा—आर्य राजा—ऐसे ऐसे काम करते हैं कि, जो मुसलमानोंके सारे जुल्मी कामोंको भुला देते हैं।

अफसोस! जो राजा आर्य हो कर भी अपनी आर्य प्रजासे कठोर कर वसूल करते हैं; प्रजाको नाना प्रकारसे सताते हैं; अहिंसक प्रजाके सामने हिंसा करते हैं और कराते हैं; प्रजाके हृदयको दुःख होगा, इसका तिल मात्र भी खयाल नहीं करते हैं, वे वास्तवमें राजा नहीं हैं; प्रजाके मालिक नहीं हैं, बल्कि प्रजाके शत्रु हैं। जो राजा प्रजाको सता कर, उसको दुःख दे कर हर तरहसे अपना भंडार ही भरना चाहते हैं वे राजा कैसे कहे जा सकते हैं? इस पृथ्वी पर भंडार भरनेके लिए कितने राजाओंने कितने अत्याचार किये? क्या किसीका भंडार

सदा भरा रहा ? अरे ! केवल तुच्छ लक्ष्मीके लिए जिन्होंने हजारों, लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों मनुष्योंको क़त्ल किया; रक्तकी नदियाँ बहाईं वे भी क्या उस लक्ष्मीको अपने साथ ले गये? प्रजा पर जो राजा इतना जुल्म करते हैं, वे यदि सिर्फ इतना ही सोचते हों कि,—एक मनुष्य थोड़ासा अपराध करता है उसको तो हम इसी भवमें दंड दे कर उसके पापका फल चखा देते हैं, तब हमें, जो हजारों, लाखों मनुष्योंको दुःख देनेका अपराध करते हैं, उसका दंड कैसा मिलेगा ? खेदकी बात है कि बुद्धिमान् और विद्वान् मनुष्य भी स्वार्थसे अंधे हो कर अपने पर्वतके समान अपराधको नहीं देख सकते हैं; वे अपने अधिकारके मदमें मस्त हो कर इस बातको भूल जाते हैं कि,—' भवान्तरमें उन्हें पापका कैसा दंड भोगना पड़ेगा ।

अकबरने अपने दयापूर्ण अन्तःकरणके कारण ही प्रजा पर लगे हुए कठोर कर बंद कर दिये थे। उसने यह भी कानून बना- दिया था कि,—मेरे राज्यमें कोई बैल, भैंस, भैंसे, घोड़े और ऊँट इन पशुओंको न मारे। उसने यह भी आज्ञा की थी कि कोई किसी स्त्रीको उसकी इच्छाके विरुद्ध सती होनेके लिए विवश न करे। उसने यह भी घोषणा करवा दी थी कि अमुक अमुक दिन कोई किसी जीवको न मारे। पिछली जिन्दगीमें तो उसने इससे भी ज्यादा दया- पूर्ण कार्य किये थे। उन कार्योंका वर्णन आगे किया जायगा ।

अकबरकी इस दयापूर्ण वृत्तिको—दया—गुणको प्रकट करनेवाली उसकी उदारवृत्ति थी। अपने आश्रित मनुष्योंके कामोंकी कदर करना वह खूब जानता था। यह बिलकुल ठीक है कि, बड़ोंका महत्त्व वे अपने आश्रितोंकी कदर करते हैं उसीसे होता है। अकबर इतना उदार था कि,—उसके दुश्मनमें भी कोई गुण होता था तो उसकी वह प्रशंसा करता था। इतना ही क्यों ? दुश्मन होने पर भी उसके

गुण पर मुग्ध हो कर वह उसका नाम अमर करनेके लिए यथासाध्य प्रयत्न करता था। उसका यहाँ हम एक उदाहरण देंगे।

अकबरने जब चितौड़ पर चढ़ाई की और रानाके साथ तुमुल युद्ध हुआ, तब उसमें रानाके जयमल और पत्ता नामक दो वीरोंने, असाधारण वीरताका परिचय दिया। उनकी वीरतासे अकबरको इतना भय हुआ कि, उसे अपनी जीतमें भी शंका हो गई। अकबरने क्रूरता की। उससे जयमल और पत्ता मारे गये। यद्यपि अकबरने उनके प्राण लिए तथापि वह उनकी असाधारण वीरताके गुणको न भूला। उसने आगरेमें जा कर उन दोनोंकी पत्थरकी मूर्तियाँ आगरेके किलेमें खड़ी करवाई। और अपनी कृतिसे लोगोंको यह बताया कि,—वीर पुरुष यद्यपि देह त्याग कर चले जाते हैं; मगर उनका यशःशरीर हमेशा स्थिर रहता है; और साथ ही यह भी बताया कि, शत्रुके गुणोंकी भी इस भाँति कद्र की जाती है। अकबरहीके समयके श्रावक कवि ऋषभदासने अकबरकी मृत्युके चौवीस बरस बाद 'हीरविजयसूरि रास' नामका गुजरातीमें एक ग्रंथ लिखा है। उसके ८० वें पृष्ठमें वह लिखता है:—

> जयमल पताना गुण मन धरे, बे हाथी पत्थरना करे;
> जयमल पता बेसार्या त्यांहि, ऐसा शूर नहीं जग मांहि।

अकबरने ये दोनों पुतले आगरेके किलेके सिंहद्वारके दोनों तरफ़ खड़े करवाये थे। मगर पीछेसे उसके लड़के शाहजहाँने, जब दिल्ली बसा कर उसका नाम शाहजहाँबाद रक्खा तब, उन जयमल और पताके पुतलोंको उठवा कर इस शाहजहाँबादके सिंहद्वारके दोनों ओर खड़े किये। इन दोनों पुतलोंको देख कर फ्रान्सिस बर्नियरने—जो १६५९ से १६६७ तक भारतमें रहा था—अपने भ्रमणवृत्तान्तमें लिखा है कि,—

" किलेके सिंहद्वारके दोनों तरफ पत्थरके बड़े बड़े दो हाथी हैं, उन्हें छोड़कर दूसरी कोई चीज यहाँ उल्लेख करने योग्य नहीं है। एक हाथी पर चित्तौड़के सुप्रसिद्ध वीर जयमलकी मूर्त्ति है और दूसरे पर उसके भाई पताकी। इन दोनों वीरोंने तथा इनसे भी विशेष साहस दिखानेवाली इनकी माताओंने विख्यात अकबरको रोक कर अविनाशी कीर्ति उत्पन्न की थी। उन्होंने अकबरसे घेरे हुए नगरकी रक्षा करना और अन्तमें, उद्धतापूर्वक आक्रमण करनेवालोंसे हार कर पीठ देनेकी अपेक्षा शत्रु पर आक्रमण करके प्राण त्याग करना विशेष उचित समझा था। इन्होंने इस तरह आश्चर्यकारक वीरताके साथ जीवन त्याग किया, इससे उनके शत्रुओंने उनकी मूर्तियाँ स्थापन कर उन्हें चिरस्मरणीय बना दिया। ये दोनों हाथियोंकी मूर्तियाँ और उन पर स्थापित दो वीरोंकी मूर्तियाँ अत्यन्त महिमा युक्त, अवर्णनीय सम्मान और भीति उत्पन्न करती हैं। * "

इससे यह प्रमाणित होता है कि, अकबरने दोनों वीर पुरुषोंकी मूर्तियाँ हाथी पर बैठाई थीं। वास्तवमें अकबरने अपनी इस कृतिसे— '**रज्जब साँचे शूरके वैरी करें बखान**' इस कहावतको चरितार्थ कर दिखाई थी। यद्यपि लोगोंका कथन है कि, अकबरने चित्तौड़की लड़ाईमें इतनी ज्यादा क्रूरता की थी कि उसके कारण वह दूसरा **अलाउद्दीन** खूनी या दूसरा **शाहाबुद्दीन** समझा जाने लगा था। इसलिए अपने इस कलंकको मिटानेकी गरजसे अर्थात् लोगोंको सन्तुष्ट करनेके अभिप्रायसे उसने **जयमल** और **पता**के पुतले बनवाये थे, तथापि हम इस कथनसे सहमत नहीं हैं। लोगोंको सन्तुष्ट करनेके इससे भी अच्छे दूसरे मार्ग थे। मगर उन पर न चल कर पुतले ही बनवाये

* देखो, बर्निअरके भ्रमणवृत्तान्तका बँगला अनुवाद '**समसामयिक भारत**' २१ वाँ खंड पृ० ३०४.

इसका कारण उसकी गुणानुरागता ही है। कई विद्वान यह भी कहते हैं कि, उसने उक्त पुतले उस समय वनवाये थे जब वह मुसलमानी धर्मको छोड़ कर हिन्दु धर्मको मानने लग गया था। मगर हमें तो इस कथनमें भी कोई तथ्य नहीं दिखता है। अस्तु।

इस तरह अकबर, जिसमें जो गुण होता था उसके लिए उसका, अवश्य सम्मान करता था। इतना ही नहीं वह उसका हौसला भी बढ़ाता था। सुप्रसिद्ध **बीरबल** एक वार बिलकुल दरिद्र था। उस समय उसका नाम **महेशदास** था। मगर जब वह अकबरके दर्वारमें आया तब अकबरने उसमें अनेक गुण देख कर उसे **'कविराय'** के पदसे विभूषित किया था। इतना ही नहीं, जैसे जैसे अकबरको विशेष रूपसे उसके गुणोंका परिचय होता गया, वैसे ही वैसे वह विशेष रूपसे उस पर महरवानी करता गया। परिणाममें वही दरिद्र **महेशदास** ब्राह्मण दो हजार सेनाका मालिक, **'राजा बीरवल'** हुआ और अन्तमें वह **'नगर कोट'** के राज्यका मालिक भी वना। बड़ोंकी महरवानी क्या नहीं कर सकती है?

इसी तरह सम्राट्ने प्रसिद्ध गवैये **तानसेन**को और अन्य कइयोंको उनके गुणोंसे प्रसन्न हो कर कुबेरभंडारीके रिश्तेदार बना दिये थे। अपने नायक सम्राट्में कई अकृतज्ञ राजाओंके समान उदारता (!) नहीं थी कि वह उन (राजाओं) की भाँति किसीके गुणोंसे प्रसन्न हो कर उसका नाक कटवाता और फिर उसे सोनेका नाक बना देता।

अकबरकी उदारता यहाँ तक बढ़ी हुई थी कि कई वार किसीके हजारों अपराधोंको भूल कर भी उसके भयभीत अन्तःकरणको आश्वासन देता था। इसका हम एक उदाहरण देंगे।

ऊपर कहा जा चुका है कि, जिस **बहरामखाँ**को **अकबर** एक वक्त बहुत सम्मान देता था उसी बहरामखाँने अकबरके विरुद्ध कई

षड्यंत्र रचे थे। इतना ही नहीं उसने अकबरका कट्टर शत्रु बनकर उसका राज्य छीन लेनेका प्रयत्न भी किया था। इसी प्रयत्नमें जब वह पकड़ा गया और कैद करके अकबरके सामने लाया गया तब अकबरकी उदारता अपना कार्य किये विना न रही। अकबरने अपने कई अधिकारियोंको सामने भेज कर उसका सम्मान किया। इतना ही नहीं, उसने जब वहरामखाँको मौतके भयसे थर थर काँपते हुए देखा, तब सिंहासनसे उठ, उसका हाथ पकड़, उसे अपने दाहिनी तरफ सिंहासन पर ला विठाया। वाह! अकबर वाह! तेरी उदारवृत्तिको कोटिशः धन्यवाद है।

प्रसिद्धि प्राप्त उच्च श्रेणीके मनुष्योंमें जैसे अच्छे अच्छे गुण होते हैं, वैसे ही उनमें कई ऐसे अपलक्षण या अवगुण भी होते हैं कि, जिनके कारण वे सर्वतोभावसे लोकप्रिय नहीं हो सकते हैं। इतना ही क्यों, उन दुर्गुणोंके कारण वे अपने कार्योंमें भी पीछे रह जाते हैं। अकबर जैसा शान्त था वैसा ही क्रोधी भी था; जैसा उदार था वैसा ही लोभी भी था; जैसा कार्यदक्ष था वैसा ही प्रमादी भी था; जैसा दयालु था वैसा ही क्रूर भी था और जैसा गंभीर था वैसा ही खिलाड़ी भी था। प्रकृतिके नियमोंके साथ क्या कोई द्वंद्व कर सकता है? एक मनुष्यकी जितनी प्रशंसा करनी पड़ती है उतनी ही उसके दुर्गुणोंके लिए घृणा भी दिखानी पड़ती है। अपनी गुणवाली प्रकृतिको सब तरहसे सँभाल कर रखनेवाले पुरुष संसारमें बहुत ही कम होते हैं। मनुष्योंमें जो दुर्गुण होते हैं उनमेंसे कई स्वाभाविक होते हैं, कई शौकिया होते हैं और कई संसर्गज होते हैं। सम्राट्में जो दुर्गुण थे वे भिन्न भिन्न प्रकारसे उसमें पड़े थे। जीवनके प्रारंभहीसे उसको कारण भी वैसे ही मिले थे। पाँच बरसकी आयुमें उसको शिक्षा देनेके लिए जो शिक्षक रक्खा गया था उसने उसे

अक्षर ज्ञानके बजाय पक्षी ज्ञान दिया था। यह बात ऊपर कही जा चुकी है। इसीलिए, कहा जाता है कि, अकबरने अपनी बाल्यावस्थामें २०००० कबूतर रक्खे थे और उनके दस वर्ग किये थे। इस भाँति अकबरके मस्तक पर बाल्यावस्थाहीसे खेलके संस्कार पड़े थे। जैसे जैसे उसकी आयु बढ़ती गई वैसे ही वैसे उस पर कई खराब व्यसन भी अपना प्रभाव जमाते गये थे। सबसे पहिले तो उसमें मदिराका व्यसन असाधारण था। इस शराबके व्यसनसे कई बार वह अपने खास खास कामोंको भी भूल जाता था और जब नशा उतर जाता तब भी बड़ी कठिनतासे उन्हें याद कर सकता था। इस व्यसनके कारण कई बार तो उससे ऐसा भी अविवेक हो जाता था कि, चाहे कैसे ही ऊँची श्रेणीके मनुष्यको उसने बुलाया होता, वह आया होता और उसके (अकबरके) मनमें उस समय मदिरा पीनेकी याद आ जाती तो वह उससे नही मिलता। इस अकेली मदिराहीसे वह सन्तुष्ट नहीं था। अफीम और पोस्त पीनेका भी उसे बहुत ज्यादा व्यसन था। कई बार धर्माचार्योंसे बात करता हुआ भी ऊँघने लग जाता था। इसका कारण उसका व्यसन ही था। उसमें एक बहुत ही खराब आदत यह भी थी कि, वह लोगोंको आपसमें लड़ा कर मजा देखता था। अपने मजेके लिए मनुष्य मनुष्यको पशुओंकी तरह आपसमें लड़ाना, राजाके लिए सद्गुण नहीं है। इसके सिवा जिस बहुत बड़े व्यसनसे कई राजा लोग दूषित गिने जाते हैं; यानी जो व्यसन राजाओंके जातीय जीवन पर एक कलंक रूप समझा जाता है वह शिकारका व्यसन भी उसे बहुत ही ज्यादा था। चीतोंसे हरिणोंका शिकार करानेमें उसे अत्यन्त खुशी होती थी। वह समय समय पर शिकारके लिए बाहिर जाया करता था। अपने शिकारके शौकको पूरा करनेमें उसने लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों प्राणियोंकी जानें ली थीं।

जब एक तरफ हम राजाओंकी उदारता देखते हैं और दूसरी तरफ उनकी ऐसी शिकारी प्रवृत्ति देखते हैं तब हमें बड़ा ही आश्चर्य होता है

मान लो कि,-दो राजाओंके आपसमें वर्षों तक युद्ध हुआ हो, लाखों मनुष्य और करोड़ो रुपयोंकी उसमें आहुति हुई हो। उनमेंसे एक राजा दूसरेके लिए सोचता हो कि, यदि वह पकड़ा जाय तो उसके टुकड़े टुकड़े कर डालूँ। जिस समय उसके हृदयमें ऐसे क्रूर परिणाम हों उसी समय यदि दूसरा राजा मुँहमें तिनका ले कर पहिले राजाके पास चला जाय तो क्या वह उसे मारेगा? नहीं, कदापि नहीं। वह यह सोच कर उसे छोड़ देगा कि,—यह मेरे सामने पशु हो कर आया है इसको मैं क्या मारूँ? ऐसी उदारता दिखानेवाले राजा जब, घास खा कर अपना जीवन-निर्वाह करनेवाले, अपना दुःख दूसरोंको नहीं कहनेवाले और हमेशा पीठ दिखा कर भागनेवाले पशुओंको मारते हैं तब बड़ा आश्चर्य होता है? जिस तलवार या बंदूकका उपयोग राजाको अपनी प्रजाकी (चाहे वे मनुष्य हों या पशु) रक्षा करनेमें करना चाहिए उसी तलवार या बन्दूकका उपयोग जो राजा अपनी प्रजाका अन्त करनेमें करते हैं वे क्या अपने हथियारोंको लज्जित नहीं करते हैं? शत्रुओंको ललकार कर उनका मुकाबिला करनेकी शक्तिको जलाञ्जली दे कर निर्दोष और घास पर अपना जीवन बितानेवाले पशुओं पर अपनी वीरताकी आजमाइश करनेवाले वीर (!) क्या अपनी वीरताको लज्जित नहीं करते हैं? अपने एक नायकने—सम्राट्ने तो शिकारकी हद ही कर दी थी। उसने समय समय पर जो शिकारें की थीं उनका वर्णन न कर, केवल शिकारके एक ही प्रसंगका यहाँ वर्णन किया जाता है।

सन् १५६६ ईस्वीमें अकबरके भाई महम्मद हकीमने

अफ़ग़ानिस्तानसे आ कर हिन्दुस्थान पर आक्रमण किया। उसको परास्त करनेके लिए अकबर आगे बढ़ा। अकबरके जानेसे वह भाग गया। इससे अकबरको युद्ध करनेका तो विशेष मौका न मिला, परन्तु उसने लाहोरके पासके एक जंगलमें, दस माइलके घेरेमें अपने पचास हजार सैनिकोंके द्वारा एक महीने तक जंगली जानवरोंको इकट्ठा करवाया। जब दस माइलके घेरेमें जानवर इकट्ठे हो गये तब तलवार, भाले, बंदूक आदिसे पाँच दिन तक, बड़ी ही क्रूरताके साथ उनका वध करवाया। यह शिकार 'कमर्घ' के नामसे पहिचानी जाती है। कहा जाता है कि, ऐसा शिकार पहिले कभी किसीने नहीं कियाथा। हमारे जाननेमें भी अबतक ऐसी कोई घटना नहीं आई है। दस माइलमें एकत्रित किये हुए जानवरोंका पाँच दिन तक संहार करनेवाले हृदय उस समय कैसे क्रूर हुए होंगे? क्या कोई इसका अनुमान कर सकता है? इससे सहजहीमें अकबरकी क्रूरताका अंदाजा लगाया जा सकता है। इसीसे कहा जाता है कि, अकबर जैसा दयालु था वैसा ही क्रूर भी था।

प्रायः राजाओंमें क्षणमें रुष्ट और क्षणमें तुष्ट होनेकी आदत ज्यादा होती है। उन्हें प्रसन्न होते भी देर नहीं लगती और नाराज होते भी देर नहीं लगती। जिस समय वह किसी पर नाराज होता उस समय वह मनुष्य यह नहीं सोच सकता था कि, अकबर उसकी क्या दुर्दशा करेगा? अपराधीको दंड देनेका उसने कोई नियम ही नहीं बनाया था। उसकी इच्छा ही दंड-विधान था। एक वार किसीने किसीके जूते चुराये। अकबरके पास शिकायत आई। अकबरने उसके दोनों पैर काट देनेका हुक्म दिया। अकबरका स्वभाव बहुत क्रोधी था, इसी लिए वह कई वार न्याय या अन्याय देखे विना ही, जो अपराधी बना कर सामने लाया जाता था उसे हाथीके पैरों तले कुचलनेकी,

कीले जड़ कर मारनेकी, या काटनेकी और फाँसीकी सजा दे देता था। अंग–छेद और कोड़े मारनेका हुक्म तो अकबर बात बातमें दे देता था। अकबर स्वयं ही क्या, अकबरने जिन जिन सूबेदारोंको भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें नियत किया था वे भी अपराधियोंको बातकी बातमें सूली देनेकी, हाथीके पैरोंतले कुचलनेकी, फाँसीकी, दाहिना हाथ कटवा देनेकी और कोड़े मारनेकी सजा दे दिया करते थे।

अकबर जब युद्धमें प्रवृत्त होता तब वह उस समय तक निर्दयतापूर्वक लोगोंको कत्ल करता रहता था, जब तक कि उसे अपनी जीतका निश्चय न हो जाता था। अकबरके जीवनमेंसे अकबरकी निर्दयताके ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। सन् १५६४ ईस्वीमें 'गोंडवाणा' की न्यायशालिनी रानी दुर्गावतीके साथ जब युद्ध हुआ तब उसने युद्धमें बड़ी ही निर्दयता दिखाई थी। राना उदयसिंहके समयमें सन् १५६७ ईस्वीके अक्टोबर महीनेमें उसने 'चित्तौड़' पर चढ़ाई कर दस माइल तक घेरा डाला था। वह भी इसी प्रकारका युद्ध था। कहा जाता है कि, यह चित्तौड़–दुर्ग ४०० फीट ऊँचा था। कहा जाता है कि इस युद्धमें अकबरने जो निर्दयता दिखाई थी उसके स्मरणसे हृदय आज भी काँप उठता है। 'हारा जुआरी दुगना खेले' इस कहावतके अनुसार, जब उसे अपनी जीतका कोई चिह्न नहीं दिखाई दिया तब उसने अपने सिपाहियोंको आज्ञा दे दी कि, चित्तौड़का जो मिले उसीको कत्ल कर दो। और तो और एक कुत्ता मिल जाय तो उसे भी मार दो। चित्तौड़की चालीस हजार किसान प्रजा पर उसने इस निर्दयतासे तलवार चलवाई कि, तीस हजार किसान देखते ही देखते खतम हो गये। उसका क्रोध इतना बढ़ गया कि, उसकी शरणमें आनेवाले बड़े बड़े धनियोंको भी वह मरवा देता था। उफ! निर्दोष बालकों और स्त्रियों तकको उसने पकड़वा पकड़वा कर

जिन्दा ही आगमें जलवा दिये थे। ऐसे भयंकर पापहीके कारण आज भी ऐसी कसमें दिलाई जाती है कि, 'तू अमुक कार्य करे तो तुझे चित्तौड़ मारेकी हत्याका और गऊ मारेका पाप हो।' कहा जाता है कि, चित्तौड़के युद्धमें जो राजपूत मारे गये थे उनका अंदाजा लगानेके लिए उनकी जनोइयाँ तोली गई थीं। उनका वजन ७४॥ मन हुआ था। आज भी पत्र लिखनेमें ७४॥ का आंक लिखा जाता है। उसका कारण यही बताया जाता है। मगर ऐतिहासिक दृष्टिसे इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। कारण—चित्तौड़की इस लड़ाईके पहिले भी ७४॥ का अंक लिखनेका रिवाज प्रचलित था। यह बात सप्रमाण सिद्ध है।

अकबरको अजमेरके ख्वाजामुइनुद्दीन चिश्ती पर बहुत श्रद्धा थी। इसी लिए उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब प्रतिज्ञा की थी कि, यदि मैं इस युद्धमें जीतूँगा तो, पैदल आ कर ख्वाजा साहिबकी यात्रा करूँगा। विजय प्राप्त करनेके बाद प्रतिज्ञानुसार वह ता० २८ फर्वरीको यात्राके लिए रवाना हुआ था। गर्मीकी मोसिम थी। कई स्त्रियाँ और अन्यान्य लोग भी उसके साथ पैदल ही चलते थे। उस समय माँडल में—जो चित्तौड़से ४० माइल है—उसको अजमेरसे आये हुए कई फकीर मिले। उन्होंने अकबरको कहा:—"हमें ख्वाजा साहिबने स्वप्नमें कहा है कि, बादशाहको सवारीमें आना चाहिए।" इसलिए बादशाह यहाँसे सवारीमें रवाना हुआ। जब अजमेर थोड़ी ही दूर रह गया तब सभी सवारीसे उतर गये थे और पैदल चल कर अजमेर पहुँचे थे।

उसके कुछ ही काल बाद अर्थात् स० १५६९ में उसने रणथंभोर और कलिंजर भी राजाओंके पाससे छीन लिया था। तद-नन्तर स० १५७२–७३ में उसने गुजरातका बहुत बड़ा भाग अपने अधिकारमें किया था। उस समय गुजरातका सुलतान मुजफ्फरशाह

था। उसने विना ही प्रयास अपना राज्य अकवरके अर्पण कर दिया था और आप भी अकबरकी शरणमें चला गया था। यद्यपि सूरत, भरौच, वड़ौदा और चाँपानेर लेनेमें उसे कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं, तथापि अन्तमें उसने उन्हें ले ही लिया था। कहा जाता है कि एक वार गुजरातकी लड़ाईमें सरनाल (यह स्थान ठासरासे पूर्वमें पाँच माइल है) के पास अकवरके प्राण खतरेमें आ गिरे थे। वहाँ जयपुरके राजा भगवानदास और मानसिंहने वड़ा शौर्य दिखा कर उसकी रक्षा की थी।

सन् १५७५ ईस्वीमें उसने वंगाल, विहार और उडीसा इन तीनों प्रान्तोंको वैसी ही क्रूरता और वीरताके साथ अपने अधिकारमें किया था। इसके वाद तीन चार वरस शान्तिमें वीते थे।

अकबरमें लोभ प्रकृति कुछ ज्यादा थी। इसलिए वह खर्च कुछ कम रखता था। वह इतना जवर्दस्त सम्राट् था तो भी नियमित सेना तो केवल २५००० ही रखता था। उसने अपने आधीन राजाओंसे अमुक रकम 'खंडणी'में लेने और आवश्यकता पड़ने पर फौजी मदद करनेकी शर्त कर रक्खी थी। जव सम्राट्ने सन् १५८१ में काबुल पर चढ़ाई की थी, तव उसकी फौजमें ४५००० घुड़सवार और ५००० हाथी थे।

जैनकवि ऋषभदासने 'हीरविजयसूरि रास' में अकबरकी समृद्धिका वर्णन इस तरह किया है।

सोलह हजार हाथी, नौ लाख घोड़े, वीस हजार रथ, अठारह लाख पैदल (जिनके हाथोंमें 'भाले' और 'गुरज' शस्त्र रहते थे) सेनाके सिवा चौदह हजार हरिण, वारह हजार चीते, पाँच सौ वाघ, सत्तर हजार शिकरे और वाईस हजार वाज आदि जानवर थे। सात

हजार गवैये और गानेवाली स्त्रियाँ थीं। इनके अलावा उसके दर्बारमें पाँच सौ पंडित, पाँच सौ बड़े प्रधान, बीस हजार अहलकार और दस हजार उमराव थे। उमरावोंमें—आजमख़ाँ, ख़ानख़ाना, टोडरमल, शेख़ अबुलफ़ज़ल, बीरबल, ऐतमादख़ाँ, क़ुतुबुद्दीन, शहाबख़ाँ, ख़ानसाहिब, तलाख़ान, ख़ानेकिलान, हासिमख़ाँ, कासिमख़ाँ, नौरंगख़ाँ, गुज्जरख़ाँ, परवेज़ख़ाँ, दौलतख़ाँ, और निजामुद्दीन अहमद आदि मुख्य थे। अतगवेग और कल्याणराय थे अकबरके खास हुज़ूरिये थे और हर समय अकबरके पास ही रहते थे। और उसके यहाँ सोलह हजार सुखासन, पन्द्रह हजार पालखियाँ, आठ हजार नक्कारे, पाँच हजार मदनभेर, सात हजार ध्वजाएँ, पाँच सौ विरुद्बोलने-वाले—चारण, तीन सौ वैद्य, तीन सौ गंधर्व और सोलह सौ सुतार थे। छियासी मनुष्य अकबरको आभूषण पहिनाने वाले थे, छियासी शरीर पर मालिश करनेवाले थे, तीन सौ शास्त्र बाँचनेवाले पंडित थे और तीन सौ वाजित्र थे।"

कवि यह भी लिखता है कि,—"अकबरकी अर्दलीमें क्षत्रिय, मुगल, हबशी, रोमी, रोहेला, अंगरेज और फिरंगी भी रहते थे। भोई भी उसके दर्बारमें बहुत थे। पाँच हजार भैंसे, बीस हजार कुत्ते और बीस हजार बाघरी—चिड़ीमार भी थे। अकबरने एक एक कोसके अन्तरसे एक एक हजीरा—छत्री भी बनवाई थी। ऐसे कुल मिला कर एक सौ चौदह हजीरे उसने बनवाये थे। प्रत्येक हजीरे पर पाँच सौ पाँच सींग बनवा कर सजाये थे। दस दस कोसके फासलेसे उसने एक एक धर्मशाला और एक एक कूआ भी बँधवाया था। इतना ही नहीं उन स्थानोंमें लोगोंके आरामके लिए छायादार दरख़्त भी लगवाये थे। एक बार उसने एक एक हरिणकी खाल, दो दो सींग और एक एक महोर भी शेखोंके छत्तीस हजार घरोंमें ल्हाण—भाजी—की तौर बँटाये थे।

एक दूसरे जैन कवि पं० **दयाकुशलने** अकबरकी मौजूदगीहीमें—यानी **अकबरका** स्वर्गवास हुआ उसके बारह बरस पहिले **'लाभोदयरास'** नामकी एक पुस्तक बनाई है। उसमें अकबरके वर्णनमें लिखा है:—

" अकबर बड़ा हठी था। उसका नाम सुनते ही लोग काँपते थे। उसने चित्तौड़, कुंभलमेर (कुंभलगढ़) अजमेर, समाना, जोधपुर, जैसलमैर, जूनागढ़, सूरत, भड़ोच, माँडवगढ़, रणथंभोर, सियालकोट और रोहितास आदि किले लिये थे। गौड़ आदि कई देश भी उसने अपने अधिकृत किये थे। बड़े बड़े राजा महाराजा उसकी सेवा करते थे। रोमी, फिरंगी, हिन्दु, मुल्ला, काजी और पठान आदि कोई ऐसा नहीं था जो उसकी आज्ञाका उल्लंघन करता।"

अकबरकी सेनाके संबंधमें **अबुलफज़ल** लिखता है:—
" सम्राट्के पास ४४ लाख सैनिक थे। उनमेंका बहुत बड़ा भाग उसे जागीरदारोंकी ओरहीसे मिला था।"

फिच लिखता है,—" कहा जाता है कि, अकबरके पास १०००, हाथी, ३००००, घोड़े, १४०० पालतू हिरण, ८०० रक्खी हुई स्त्रियाँ थीं और इनके अलावा चीते, बाघ, भैंसे, और मुर्गे वगैरा बहुत कुछ थे।"

अकबरकी सेना आदिके विषयमें भिन्न २ मत हैं। जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इससे अकबरके पास वास्तवमें कितनी सेना थी सो निश्चित करना यदि असंभव नहीं तो भी कष्टसाध्य अवश्य है। मगर इतना अनुमान किया ही जा सकता है कि भिन्न भिन्न लेखकोंने भिन्न भिन्न दृष्टिबिन्दुओंसे उक्त वर्णन लिखा है। अस्तु। इस बातको एक ओर रख दें तो भी इतना तो अवश्यमेव

कहा जा सकता है कि, अकबर लोभी था। उसीका यह परिणाम है कि, वह मरा तब सिर्फ आगरेके किलेके खज़ानेमें दो करोड़ पौंड (तीस करोड़ रुपये) की क़ीमतके तो सिर्फ सिक्के ही निकले थे। अन्य छः तिजोरियोंमें भी इतने ही सिक्के भरे हुए थे। विन्सेंट स्मिथ कहता है कि, इस समयकी स्थितिको देखते हुए तो वह मिल्कियत बीस करोड़ पौंडकी (तीन अरब रुपयेकी) कही जा सकती है।

अकबरका अन्तःपुर (ज़नानखाना) एक बड़े क़स्बेके समान था। उसके अन्तःपुरमें ५००० स्त्रियाँ थीं। प्रत्येकके रहनेके लिए भिन्न भिन्न मकान थे। उन स्त्रियोंको अमुक अमुक संख्या में विभक्त कर प्रत्येक विभाग पर एक एक स्त्री दारोगा नियत की हुई थी। और उनके खर्चका हिसाब रखनेके लिए क्लर्क रक्खे गये थे।

अकबरने ' फ़तेहपुर-सीकरी ' में एक ऐसा महल बनाया था, कि, जिसकी सारी इमारत केवल एक ही स्तंभ पर खड़ी की गई थी। यह महल ' एक थंभेका महल ' के नामसे मशहूर है। कवि देवविमलगणिने भी अपने ' हीरसौभाग्य ' नामक काव्यके १० वें सर्गके ७१ वें श्लोकमें इस एक स्तंभवाले महलका उल्लेख किया है। *

अब अकबरके विषयको सिर्फ एक बात लिख कर उसका परिचय स्थगित करेंगे। इसी प्रकरणमें एक जगह कहा गया है वैसे, अकबरके हृदयमें कुछ धर्मसंस्कारकी मात्रा जरूर थी। उसके हृदयमें बारबार यह सवाल उठा करता था कि, जिसके लिए लोगोंमें इतना आन्दोलन हो रहा है वह धर्म चीज क्या है? और उसका वास्तविक तत्त्व क्या है?

---

* " उन्नालनीरजमिव श्रियमापदेक-
स्तंभं निकेतनमकब्बरभूमिभानोः। "

अर्थात्—जैसे एक नालके ऊपर कमल सुशोभित होता है, वैसे ही एक स्तंभ पर खड़ा हुआ अकबरका महल सुशोभित होता है।

उसके हृदयमें यह सवाल उठा उसके पहिले ही; दूसरे शब्दोंमें कहें तो उसके हृदयमें वास्तविक धर्मकी तलाश करनेकी इच्छा पैदा हुई उसके पहिले ही उसके मनमें मुसलमानी धर्म पर अरुचि हो गई थी। इसके साथ ही उसके हृदयमें हिन्दु मुसलमानोंको एक करनेकी भावना भी उत्पन्न हुई थी। उस इच्छाको पूर्ण करनेहीके लिए उसने सन् १५७९ ईस्वीमें '**ईश्वरका धर्म**' (दीन-इ-इलाही) नामके एक नये धर्मकी स्थापना की थी और इस नवीन धर्ममें हिन्दु मुसलमानोंको सम्मिलित करनेका प्रयत्न करता था। इस प्रयत्नमें उसको बहुत कुछ सफलता भी मिली थी।

कइयोंका मत है कि, **अकबर** मानाभिलाषी ज्यादा था। यहाँ तक कि वह अपना 'ईश्वरीय अंश' की तरह परिचय देता था। इसी इच्छासे उसने इस नवीन धर्मकी स्थापना की थी। लोगोंको कुछ न कुछ चमत्कार दिखाना उसे ज्यादा अच्छा लगता था। रोगीका रोग मिटानेके लिए वह अपने पैरका धोया हुआ पानी देता था। उसके चमत्कारके लिए धीरे धीरे उसकी दूकान अच्छी जम गई थी। उसका प्रभाव यहाँ तक बढा कि, बच्चेके लिए कई स्त्रियाँ उसके नामसे मानत भी रखने लगी थीं। जिनकी इच्छा पूर्ण हो जाती थी वह मानत पूर्ण करने आती थी। अकबर भी वे जो कुछ चीजें ले कर आती थी उनका स्वीकार करता था।

अकबरके उपर्युक्त वर्तावसे और नवीन धर्मकी स्थापनासे बहुतसे मुसलमान उसका विरोध करने लगे थे। परिणाम यह हुआ कि, सन् १५८२ ईस्वीमें अकबर भी प्रकट रूपसे मुसलमान धर्मका विरोधी हो गया था। खुले तोरसे मुसलमान धर्मका विरोधी बना इसके पहिले ही उसने हिन्दु और मुसलमान दोनोंके साथ समान रूपसे वर्ताव करना प्रारंभ कर दिया था। यह वर्ताव उसने उस

सम्राट् अकबर.

समयसे शुरू किया था, जब वह अंध श्रद्धालु मुसल्मान जान पड़ता था। बादमें यद्यपि उसके विचारोंमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था; वह करीब करीब हिन्दुओंके समान ही हो गया था, तथापि उसके लिए कोई निश्चयरूपसे यह नहीं कह सकता था कि,—अकबर अमुक धर्मको माननेवाला है। और तो क्या उसके विचार जाननेका भी किसीमें सामर्थ्य नहीं था। इसके लिए ईसाई पादरी बार्टोली (Bartoli) —जो अकबरके समयमें मौजूद था—लिखता है:—

"He never gave anybody the chance to understand rightly his inmost sentiments, or to know what faith or religion he held by......And in all business, this was the characteristic manner of King Akbar-a man apparently free from mystery or guile, as honest and candid as could be imagined; but in reality, so close and self-contained, with twists of words and deeds so divergent one from the other, and most times so contradictory, that even by much seeking one could not find the clue to his thoughts.*

अर्थात्—वह अपने आन्तरिक विचारोंको जाननेका या वह किस धर्म या किस मतके अनुसार वर्ताव करता है सो समझनेका कभी किसीको भी मौका नहीं देता था। उसके हरेक काममें यह खूबी थी कि, वह बाह्यतः भेद और प्रपंचसे दूर रहता था; और जितनी कल्पना की जा सकती है उतना प्रामाणिक और बेलाग रहता था; मगर वास्तवमें था वह बड़ा ही गहरा और स्वतंत्र। उसके वचन इस प्रकारके शब्दोंमें निकलते थे कि, जिनके दो अर्थ हो जाते थे, कई वार तो उसके कार्य

* Akbar The Great Mogul, Page 73.

वचनोंसे इतने विरुद्ध होते थे कि, वहुत खोज करने पर भी उसके आन्तरिक भाव जाननेकी कुंजी नहीं मिलती थी।

इससे मालूम होता है कि, अकबरकी स्थिति धार्मिक विषयमें या तो अधकचरी थी—अव्यवस्थित थी या उसे कोई जान ही नहीं सका था। अस्तु। अकबरकी आगेकी जिन्दगीका वर्णन आगेके लिए छोड़ कर, अभी तो इतने परिचय पर ही सन्तोष करेंगे।

प्रकरण चौथा।

आमंत्रण।

त प्रकरणमें यह कहा जा चुका है कि, अकबरने सन् १५७९ ईस्वीमें 'दीने-इलाही' नामके एक स्वतंत्र धर्मकी स्थापना की थी। स्वाधीन धर्मकी स्थापना करनेके पहिले उसने सन् १५७५ ईस्वीमें एक 'इबादतख़ाना' स्थापन किया था। उसको हम 'धर्मसभा'के नामसे पहिचानेंगे। इस सभामें उसने प्रारंभमें तो भिन्न भिन्न मुसलमानधर्मके फिर्क़ोंके मौलवियोंको-विद्वानोंको ही सम्मिलित किया था। वे आपसमें वाद-विवाद करते थे, और अकबर उसको ध्यानपूर्वक सुनता था। खास तरहसे शुक्रवारके दिन तो इस सभामें वह बहुत ही ज्यादा वक्त गुजारता था। लगभग तीन बरस तक तो केवल मुसलमान ही इसमें शामिल होकर धर्मचर्चा करते रहे; मगर उसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। अकबरके सामने जो मुसलमान वादविवाद करते थे उनके पक्ष बँध गये थे। इसलिये वे एक पक्षवाले दूसरे पक्षवालेको झूठा साबित करनेहीके प्रयत्न करते रहते थे। पक्ष खास तरहसे दो थे। एकका नेता था, 'मख्दूमुल्मुल्क' और दूसरेका था 'अबदुल्नबी'। इसको 'सदरे सदूर' की पदवी थी। इन दोनोंमे शान्त धर्मवादके बजाय क्लेशकारी वितंडावाद होने लगा। इससे अकबरको-'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' के बजाय विपरीत ही फल मिलने लगा। आखिरकार झगड़ा बहुत बढ़ गया। इससे अकबर

दोनोंसे उपराम हो गया। अकबरके दर्बारमें रहनेवाला कट्टर मुसलमान बदाउनी, धर्मसभामें बैठनेवाले मौलवियोंमें जो झगड़ा होता था उसके लिए लिखता है:—

"There he used to spend much time in Ibādat-Khānah in the Company of learned men and Shaikhs. And especially on Friday nights, when he would sit up there the whole night continually occupied in discussing questions of religion, whether fundamental or collateral. The learned men used to draw the sword of the tongue on the battle-field of mutual contradiction and opposition, and the antagonism of the sects reached such a pitch that they would call one another fools and heretics."

(Al-Badaoni, Translated by W. H. Lowe
M. A. Vol. II. P. 262.)

अर्थात्—बादशाह अपना बहुत ज्यादा वक्त इबादत-खानेमें शेखों और विद्वानोंकी संगतिमें रह कर गुजारता था। खास तरहसे शुक्रवारकी रातमें–जिसमें वह रातभर जागता रहता था–किसी मुख्य तत्त्वकी या किसी अवान्तर विषयकी चर्चा करनेमें निमग्न रहता था। उस समय विद्वान् और शेख, पारस्परिक विरुद्धोक्ति और मुकाबिला करनेकी रण-भूमिमें अपनी जीभरूपी तलवारका उपयोग करते थे। पक्ष समर्थनकारोंमें इतना वितंडावाद खड़ा हो जाता था कि, एक पक्षवाला दूसरे पक्षवालेको बेवकूफ और ढोंगी बताने लग जाता था।

मुसलमानोंकी इस लड़ाईके सबबसे ही अकबरने मुसलमानोंके उलमाओं (धर्मगुरुओं) से एक इक़रारनामा लिखवा लिया था। उसमें लिखा था कि,–" जब जब मतभेद हों तब तब उसका फैसला देनेका और कुरानेशरीफ़के हुक्मोंके माफ़िक धर्ममें तबदीली करनेका बाद-

शाहको हक है ।" शेख मुबारिकने यह इकरारनामा लिखा था और दूसरे उलमाओंने (मुसलमान धर्मगुरुओंने) उस पर हस्ताक्षर किये थे । (सं. १५७९) । इसके बाद भी बादशाहने उलमाओंके उपर्युक्त प्रधानको और खास न्यायाधीशको नौकरीसे बरतरफ कर दिया था ।

कहा जाता है कि, जब मुसलमानी धर्म परसे उसकी श्रद्धा हट गई और जब उस पर वह नाराज हुआ था तब साफ साफ लफ्जोंमें वह कहने लगा था कि,-"जिस महम्मदने दस बरसकी छोकरी आयेशाके साथ ब्याह किया था और जिसने खास अपने दत्तक पुत्रकी स्त्री जैनावके साथ-जिसको उसके पतिने तलाक दे दी थी-ब्याह कर लिया था वही-ऐसा अनाचार करनेवाला महम्मद कैसे 'पैगम्बर'-परमेश्वरका दूत हो सकता है ?"

इस तरह जब मुसलमानधर्मसे उसकी रुचि हट गई तब वह हिन्दु, जैन, पारसी और ईसाई धर्मके विद्वानोंको बुला कर अपनी सभामें सम्मिलित करने लगा । और तभीसे वह भिन्न भिन्न धर्मके विद्वान् पुरुषोंकी संगतिमें बैठने और उनमें होनेवाली धर्मचर्चाको सुनने लगा । उसने अपनी सभामें हरेक धर्मके विद्वानोंको अपने अपने मन्तव्य प्रकट करनेकी छुट्टी दी थी । इससे विद्वान् लोग बड़ी ही गंभीरता और बड़ी ही शान्तिके साथ धर्मचर्चा करते थे । उससे अकबरको बहुत आनन्द होता था । मुसलमानोंके विद्वानों परसे तो उसकी श्रद्धा बिलकुल ही हट गई थी । और तो और उसने मसजिद तकमें जाना छोड दिया था । वह तो अपनी धर्मसभामें बैठ कर धर्मचर्चा सुनना और उसमेंसे सार हो उसको ग्रहण करना ही ज्यादा पसंद करने लगा था । अबुलफज़ल लिखता है कि,-" अकबर अपनी

धर्मसभामें इतना रस लेने लगा था कि, उसने अपनी कोर्टको तत्त्व शोधकोंका वास्तविक घर बना दिया था।"

"The Shāhanshāh's court became the home of inquirers of the seven climes, and the assemblage of the wise of every religion and sect."

(Akbarnāmā. Translated by H. Beveridge Vol. III P. 366.)

अर्थात्—शहन्शाहका दर्बार सातों प्रदेशों (पृथ्वीके भागों) के शोधकोंका और प्रत्येक धर्म तथा संप्रदायके बुद्धिमान् मनुष्योंका घर हो गया था।

डॉ. विन्सेंट स्मिथका मत है कि, अकबरकी इस धर्मसभामें सबसे पहिले सन् १५७८ ईस्वीमें एक पारसी विद्वान् सम्मिलित हुआ था। वह नवसारी (गुजरात) से आया था। उसका नाम था **दस्तूर मेहरजी राणा**। पारसी लोग उसे 'मोबेद'के नामसे पुकारते हैं। यह विद्वान् सन् १५७९ ईस्वी तक वहाँ रहा था। उसके बाद **गोवासे** तीन ईसाई पादरी आ कर उसमें शामिल हुए थे। उनके नाम थे—
१ **फादर रिडोल्फो एक्वेवीवा** (Father Ridolfo Aqvaviva)
२—**मॉन्सिराट** (Monserrate) और ३—**एनरीशेज** (Enrichez)

यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि, अकबरने अपने इस सभाके मेम्बरोंको पाँच भागोंमें विभक्त किया था। उनमें कुल मिला कर १४० मेम्बर थे। 'आईन-इ-अकबरी' (अंग्रेजी अनुवाद) के दूसरे भागके तीसरे आईनके अन्तमें इन मेम्बरोंकी सूची दी गई है। उसमें ५३७-५३८ वें पेजमें प्रथम श्रेणीके मेम्बरोंके नाम हैं। उनमें सबसे पहिला नाम **शेख मुबारिक**का है। यह **अबुलफज़ल**का पिता था। सबसे अन्तमें '**आदित्य**' नामक किसी हिन्दुका नाम है। प्रारंभके बारह नाम

मुसलमानोंके हैं और बादके ८ नाम सोलहवीं संख्याको छोड़ कर हिन्दुओंके मालूम होते हैं। सोलहवाँ नाम है 'हरिजीसूर' (Hariji Sur) ये हरिजीसूर ही अपने ग्रंथके नायक हैं। जिनको हम हीरविजयसूरिके नामसे पहिचानते हैं।

अब यह बताया जायगा कि, हीरविजयसूरिके साथ अकबर बादशाहका संबंध कैसे हुआ ?

एक बार अकबर शाही महलके झरोखेमें बैठ कर नगरकी शोभा देख रहा था। उस समय उसको बाजे बजते हुए सुनाई दिये। बाजोंकी आवाजको सुनकर उसने अपने नौकरसे—जो उसके पास ही खड़ा था—पूछाः—" यह धूम धाम क्या है ?" उसने उत्तर दियाः—"चंपा नामकी एक श्राविकाने छः महीनेके उपवास किये हैं।* इन उपवासोंमें पानीके सिवा और कोई चीज नहीं खाई जाती है। पानी भी जब बहुत ज्यादा आवश्यकता होती है तब और वह भी गर्म और दिनके समयमें ही पिया जा सकता है।

'छः महीनेके उपवास' इस वाक्यको सुन कर अकबरको आश्चर्य हुआ। उसने सोचा,—जब मुसलमान लोग सिर्फ एक महीनेके

---

* छः महीनोंके उपवाससे यह नहीं समझना चाहिए कि आजकल जैन लोग एक दिन उपवास और एक दिन पारणा करके जैसे छःमासी तप करलेते हैं वैसे ही किया था। चंपाने लगातार छः महीने तक उपवास किये थे—निराहार रही थी। इसमें अत्युक्तिका लेश भी नहीं है। कारण-इस तरह छः महीने तक लगातार तप करनेके और भी कई उदाहरण मिलते हैं। उदाहरणार्थ—हम जिस समयकी बात करते हैं उससे कुछ ही काल पहिले यानी विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दिमें, श्रीसोमसुंदरसूरिके समयमें श्रीशान्तिचंद्रगणिने भी छः महीनेके लगातार उपवास किये थे।

[देखो—सोमसौभाग्य काव्य (संस्कृत) के १० वे सर्गका ६१ वाँ श्लोक]

रोजे करते हैं, उनमें वे रातके वक्त जितनी जरूरत होती है उतना खा लेते हैं तो भी उन्हें कितनी ही तकलीफ मालूम देती है तब छः महीने तक लगातार कुछ न खा कर रहना कैसे हो सकता है? उसको नौकरकी बात पर विश्वास न हुआ। इसलिए उसने निश्चय करनेके लिए अपने दो आदमी भेजे। उनके नाम थे **मंगलचौधरी** और **कमरुखाँ**। उन्होंने चंपाके पास जा कर सविनय पूछाः—

"बहिन! इतने दिन तक भूखा कैसे रहा जा सकता है? दिनमें एक वक्त भोजन नहीं मिलनेहीसे जब आदमीका शरीर काँपने लग जाता है तब इतने दिन तक बिना अन्नके कैसे जीवन टिक सकता है?"

चंपाने उत्तर दियाः—"बन्धुओ! यद्यपि ऐसी तपस्या करना मेरी शक्तिके बाहिरका कार्य है तथापि **देव-गुरुकी** कृपासे यह काम मैं कर सकती हूँ और आनंदपूर्वक धर्मध्यानमें दिन गुजार सकती हूँ।"

चंपाके ये परम आस्तिकतापूर्ण वचन सुन कर उनके मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने **देव-गुरुके** विषयमें पूछा। चंपाने उत्तर दियाः—"मेरे देव **ऋषभादि** तीर्थंकर हैं। वे समस्त प्रकारके दोषों और जन्म, जरा, मरणसे मुक्त हो चुके हैं। और मेरे गुरु **हीरविजय-सूरि** हैं। वे कंचनकामिनीके त्यागी हो कर ग्रामुनुग्राम विचरते हैं और लोगोंको कल्याणका उपदेश देते हैं।"

मंगलचौधरी और **कमरुखाँने** वापिस आ कर बादशाहसे उपर्युक्त सब बातें कहीं। सुन कर बादशाहके मनमें ऐसे महान् प्रतापी सूरिके दर्शन करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। बादशाहको खयाल आया कि,-**एतमादखाँ** गुजरातमें बहुत रहा है। इसलिए वह **हीरविजय-सूरिसे** अवश्यमेव परिचित होगा। उसने **एतमादखाँको** बुलाया और

पूछाः—" क्या तुम हीरविजयसूरिको जानते हो ? " उसने जवाब दियाः—"हाँ हुजूर, जानता हूँ। वे एक सच्चे फ़कीर हैं। वे इक्का, गाड़ी, घोड़ा वगेरा किसी भी सवारीमें नहीं बैठते हैं। वे हमेशा पैदल ही एक गाँवसे दूसरे गाँव जाते हैं। पैसा नहीं रखते। औरतोंसे बिलकुल दूर रहते हैं। और अपना सारा वक्त ख़ुदाकी बंदगी करने और लोगोंको धर्मोपदेश देनेमें गुज़ारते हैं। "

ऐतमादख़ाँकी बातसे अकबरकी ईच्छा और भी प्रबल हुई। उसने निश्चय किया कि,—ऐसे सच्चे फ़कीरको दर्बारमें जरूर बुलाना चाहिए और उनसे धर्मोपदेश सुनना चाहिए।

एक दिन बादशाहने बहुत बड़ा बरघोड़ा—जुलूस देखा। अनेक प्रकारके बाजे और हजारों मनुष्योंकी भीड़ उसके दृष्टिगत हुई। उसने टोडरमलसे पूछाः—" ये बाजे क्यों बज रहे हैं ? इतनी भीड़ क्यों हुई है ? " टोडरमलने जवाब दियाः—" सरकार! जिस औरतने छः महीनेके उपवास शुरू किये थे वे आज पूरे हो गये हैं। उसकी खुशीमें श्रावकोंने यह ' बरघोड़ा ' निकाला है। "

बादशाहने उत्सुकताके साथ फिर प्रश्न कियाः—" क्या वह औरत भी बरघोड़ेमें शामिल है ? "

टोडरमलने जवाब दियाः—" हाँ हुजूर, वह भी अच्छे अच्छे कपड़े और जेवर पहिन कर खुशीके साथ एक पालखीमें बैठी हुई है। उसके सामने सुपारियों और फूलोंसे भरे हुए कई थाल रक्खे हुए हैं।"

दोनोंमें इस तरह बातें हो रही थीं इतनेहीमें बरघोड़ा बादशाही महलके सामने आ पहुँचा। बादशाहने विवेकी मनुष्योंको भेज कर

चंपाको बड़े आदरके साथ अपने महलमें बुलाया और नम्रतासे पूछाः—" माता! आपने कितने उपवास किये और कैसे किये?"

चंपाने उत्तर दियाः—" पृथ्वीनाथ! मैंने छः महीने तक अनाज बिलकुल नहीं खाया। सिर्फ जब कभी बहुत ज्यादा प्यास मालूम देती, तब दिनके वक्त थोड़ासा गर्म पानी पी लेती थी। इस तरह आज मेरा छःमासी तप पूरा हुआ है।"

बादशाहने साश्चर्य पूछाः—" तुम इतने उपवास कैसे कर सकीं?"

चंपाने दृढ श्रद्धाके साथ कहाः—"मैं अपने गुरु हीरविजयसूरिके प्रतापहीसे इतने उपवास कर सकी हूँ।"

यद्यपि बादशाह **मंगल चौधरी** और **कमरुखाँकी** जबानी पहिले ये बातें सुन चुका था तथापि कुदरतके नियमानुसार उसने स्वयमेव चंपासे फिर भी पूछ लिया। प्रकृतिका नियम है कि, किसी आदमीके विषयमें दूसरोंके द्वारा जो कुछ सुना जाता है उससे जो आनंद—जो सहानुभूति उत्पन्न होती है वह उस आदमीसे जब साक्षात् भेट होती है तब उसकी जबानी उसका हाल सुन कर कई गुनी ज्यादा बढ़ जाती है। इसी लिए बादशाहने उससे फिर भी पूछ लिया। चंपाकी बातें सुन कर बादशाहको सन्तोष हुआ। उसने पूछाः—" हीरविजयसूरि इस समय किस जगह हैं?" चंपाने उत्तर दियाः—" वे इस वक्त गुजरात प्रान्तके **गंधार** शहरमें हैं।"

चंपाकी बातोंसे बादशाहको बहुत खुशी हुई। उसने पूर्व निश्चयानुसार फिरसे निश्चित किया कि,—हर तरहसे हीरविजयसूरिको यहाँ बुलाऊँगा। 'हीरविजयसूरि रास' के लेखक कवि ऋषभ-

दासने लिखा है कि, अकबरने उस वक्त प्रसन्न हो कर चंपाको एक बहुमूल्य सोनेका चूड़ा पहिनाया था और शाही बाजे भेज कर वरघोड़ेकी शोभाको द्विगुण कर दिया था।

'जगद्गुरु काव्य' के कर्ता श्रीपद्मसागरगणि अपने काव्यमें यह भी लिखते हैं कि,—अकबरने इस बाईकी तपस्याकी परीक्षा करनेके लिए महीने, डेढ़ महीने तक उसे एक मकानमें रक्खा था और उसकी संभाळ रखनेके लिए अपने आदमी नियत किये थे। इस परीक्षामें अकबरको चंपाकी सद्भावना पर विश्वास हो गया। उसने उसमें कपट नहीं दिखा। फिर उसने यह जान कर कि, हीरविजयसूरि उसके (चंपाके) गुरु हैं, थानसिंह नामके एक जैन गृहस्थसे—जो अकबरके दर्बारमें रहता था—उनका पता दर्याफ्त कर लिया था।

मगर 'विजयप्रशस्ति' काव्यके कर्ता श्रीहेमविजयगणि कहते हैं कि, अकबरने हीरविजयसूरिको बुलानेका निश्चय ऐतमादखाँसे उनकी प्रशंसा सुन कर ही किया था।

चाहे किसी भी तरहसे हो, यह तो निश्चित है कि, अकबरने हीरविजयसूरिके नामका परिचय पा कर उनसे मिलना स्थिर किया। उसकी मिलनेकी इच्छा इतनी उत्कट हुई कि, उसने तत्काल ही मानुकल्याण और थानसिंह रामजी नामक दो जैन गृहस्थोंको और धर्मसी पंन्यासको बुलाया और उनसे कहाः—" तुम श्रीहीरविजयसूरिको यहाँ आनेके लिए एक विनतिपत्र लिखो। मैं भी एक खत लिख देता हूँ।"

पारस्परिक सम्मतिसे दोनों पत्र लिखे गये। श्रावकोंने सूरिजीको पत्र लिखा और बादशाहने लिखा उस समयके गुजरातके सूबेदार शहाबखाँ (शहाबुद्दीन अहमदखाँ) को। बादशाहने पत्रमें साधारण

तया यही नहीं लिख दिया था कि,—हीरविजयसूरिको भेज दो। उसने लिखा था कि,—उन्हें हाथी घोड़े, रथ, प्यादे आदि ठाटके साथ और इज्जतके साथ यहाँ भेज दो। ये पत्र बादशाहने दो मेवड़ाओंके साथ अहमदाबाद रवाना किये थे। 'हीरसौभाग्यकाव्य' में इन मेवड़ाओंके नाम, मौंदी और कलाम बताये गये हैं। यहाँ एक दूसरी बात पर प्रकाश डाल देना भी उचित होगा।

अकबर सम्राट् था। उसके पास सब तरहकी सामग्रियाँ थीं। हाथी थे, घोड़े थे, ऊँट थे, लक्ष्मीका अभाव नहीं था और आदमियोंकी भी कमी नहीं थी। उस समयमें जितना जल्दी कार्य हो सकता था उतना जल्दी कार्य संपादन करनेकी सब सामग्रियाँ उसके पास मौजूद थीं। इस लिए यदि वह अपना सोचा कार्य कर लेता था तो इसमें कोई विशेषता नहीं है। यद्यपि इतना था तथापि कहना पड़ता है कि, आज एक दरिद्र जितनी शीघ्रतासे कार्य कर सकता है उतनी शीघ्रतासे उस समयका सम्राट् अकबर नहीं कर सकता था। अकबरके पास ऐसा कोई वैज्ञानिक साधन नहीं था, जैसा आज एक गरीबको भी सरलतासे प्राप्त हो सकता है। आगरेमें बैठे हुए अकबरको यदि गुजरातमें कोई आवश्यक समाचार भेजना पड़ता था तो कमसे

---

१ The Mewrāhs. They are natives of Mewāt, and are famous as runners. They bring from great distances with zeal anything that may be required. They are excellent spies, and will perform the most intricate duties. There are likewise one thousand of them, ready to carry out orders.

[The Ain-i-Akbari translated by H. Blochmann M. A. Vol. I p. *252.*]

अर्थात्—वे मेवातके रहनेवाले हैं और दौड़नेवाले (हल्कारों) के नामसे प्रसिद्ध हैं। जिस चीजकी जरूरत होती है वे बड़े दूरसे, उत्साहके साथ (शीघ्र ही) ले आते हैं। वे उत्तम जासूस हैं। बड़े बड़े जटिल कार्य भी वे कर दिया करते हैं। ऐसे एक हजार हैं जो हर समय आज्ञापालनेके लिए तत्पर रहते हैं।

कम १०–१२ दिन पहिले तो वह किसी तरहसे भी नहीं भेज सकता था। इस समय १०–१२ दिनकी बात तो दूर रही मगर १०–१२ घंटोकी भी जरूरत नहीं पड़ती है। अब तो १०–१२ मिनिट ही काफीसे ज्यादा हो जाते हैं। जिन समाचारोंको भेजनेके लिए उस समय सैकड़ों रुपये खर्चने पड़ते थे वे समाचार अब केवल बारह आनेमें पहुँचा दिये जाते हैं। अभी जमानेको आगे बढ़ने दो, भारतमें साधनोंके बाहुल्य होने दो, फिर देखना कि, ये ही समाचार सेकंडोमें पहुँचने लगेंगे।

पाठक! कहो अकबर सम्राट् था, सम्राट् ही क्यों उस समय चक्रवर्तीके समान था तो भी आजसे साधन उसके भाग्यमें थे? नहीं, नहीं थे;बिलकुल नहीं थे। कमसे कम कहें तो भी आठ दस दिन तक रस्तेकी धूल फाक फाक कर ऊँट और घोड़ोंके साथ ही मनुष्यों की भी पूरी गति बन जाती तब कहीं जा कर एक समाचार आगरेसे गुजरातमें पहुँचता। अकबरकी प्रबल इच्छा थी कि, उसका आमंत्रण तत्काल ही हीरविजयसूरीके पास पहुँच जाय, मगर उसकी इच्छासे क्या हो सकता था? मनुष्य जातिसे जितना हो सकता है उतना ही तो वह कर सकती है! तो भी अकबर और थानसिंह आदि श्रावकोंके पत्र ले, लंबी लंबी मंजिलें तै कर मेवड़ोंने जितनी शीघ्रता उनसे हो सकती थी उतनी शीघ्रतासे अहमदाबादमें शहाबखाँके पास दोनों पत्र पहुँचाये।

शहाबखाँने सम्राट्का पत्र हाथमें ले कर भक्ति पूर्वक सिर पर चढ़ाया और पत्रको पढ़नेसे पहिले सम्राट्की, उसके तीन पुत्रोंकी –शेखूजी, पहाड़ी और दानियालकी–और सारे शाही कबीलेकी सुख–शान्तिका हाल दर्याफ्त कर लिया फिर उसने बादशाहका सुनहरी फर्मान बड़े ध्यानके साथ पढ़ा। उसमें लिखा था,—

"हाथी, घोड़े, पालखी और दूसरी शाही चीजें साथ दे कर शानके साथ, सम्मान पूर्वक श्रीहीरविजयसूरिको यहाँ भेज दो।"

शाहबखाँ स्वयं बादशाहके हाथका लिखा हुआ यह पत्र देख कर निस्तब्ध रह गया। उसे अपना पूर्वकृत स्मरण हो आया,–बादशाहने उन्हीं हीरविजयसूरिको आमंत्रण दिया है कि, जिनको मैंने थोड़े ही दिन पहिले सताया था; जिन पर मैंने अत्याचार किया था; जो मेरे सिपाहियोंके डरके मारे नंगे बदन अपनी जान ले कर भागे थे। इन विचारोंने उसके हृदयको हिला दिया। महात्माको कष्ट दिया इसके लिए उसके हृदयमें असाधारण पश्चात्ताप होने लगा। मगर अब क्या हो सकता था। उसने 'गतं न शोचामि कृतं न मन्ये' सूत्र का अवलंबन कर अपने मालिकके हुक्मको जल्दी बजा लानेकी तरफ़ मन लगाया। उसने अहमदाबादके प्रसिद्ध प्रसिद्ध नेता जैन गृहस्थोंको बुलाया। सब आये। उन्हें बादशाहका पत्र दिया। अपना पत्र भी पढ़ कर सुनाया और कहा:—

"शाहन्शाह जब इतनी इज्जतके साथ श्रीहीरविजयसूरिको बुला रहा है तब उन्हें जरूर जाना चाहिए! तुम्हें भी खास तरहसे उन्हें आगरे जानेके लिए अर्ज़ करना चाहिए। यह ऐसी इज्जत है कि, जैसी आज तक बादशाहकी तरफसे किसीको भी नहीं मिली है। सूरीश्वरजीके वहाँ जानेसे तुम्हारे धर्मका गौरव बढ़ेगा और तुम्हारे यशमें भी अभिवृद्धि होगी। इतना ही नहीं; हीरविजयसूरिकी शिष्य परंपराके लिए भी उनका यह प्राथमिक प्रवेश बहुत ही लाभदायक होगा। इसलिए किसी तरहकी 'हाँ' 'ना' किये विना हीरविजय-सूरिको बादशाहके पास जानेके लिए आग्रहके साथ विनति करो।

मुझे आशा है कि, वे जा कर बादशाह पर अपना प्रभाव डालेंगे और बादशाहसे अच्छे अच्छे काम करवायँगे।"

खानने साथ ही यह भी कहाकि,—"सूरिजीको रस्तेमें हाथी, घोड़े, पालखी, धन–दौलत वगैरा जो कुछ उनके आरामके लिए चाहिए, मैं दूँगा। बादशाहने मुझे आज्ञा दी है। तुम्हें इसके लिए किसी तरहकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

यद्यपि बादशाहका पत्र पढ़ कर पहिले अहमदाबादके श्रावकोंको प्रसन्नता होनेके बजाय कुछ चिन्ता हुई थी, तथापि शहाबखाँकी उत्तेजनादायक बात सुन कर पीछेसे उस चिन्तामें कमी हो गई। उनके चहरों पर कुछ प्रसन्नताकी रेखाएँ भी फूट उठी। अन्तमें वे शहाबखाँको यह कह कर वहाँसे चले गये कि,—सूरिजी महाराज इस समय गंधारमें हैं। उनको हम विनति करके अभी तो यहाँ ले आते हैं।"

श्रावकोंने एकत्रित हो कर **वच्छराज पारेख, मूला सेट, नाना वीपू शेठ** और **कुँवरजी जौहरी** आदिको भेजा। वे अपनी बैल गाड़ियाँ जोड़ जोड़ कर सीधे गंधारको गये। अहमदाबादके संघने खंभातके श्रीसंघको भी सूचना दी। वहाँके संघने भी अपनी तरफ़से **उदयकरण संघवी, वजिया पारेख, राजिया पारेख** और **राजा श्रीमल ओसवाल** आदिको सीधे गंधार भेजा।

यद्यपि अहमदाबाद और खंभातके नेताओंके आनेसे सूरिजीको आनंद हुआ, तथापि उनके हृदयमें यह शंका उपस्थित हुए बगैर न रही कि ये लोग सहसा क्यों आये हैं? दोनों नगरोंके संघोंने सूरिजीको और मुनिमंडलको वंदना की। सूरिजीका व्याख्यान सुना। सूरिजीने आहार–पानी किया। श्रावक भी सेवा पूजा और भोजनादि कार्योंसे

निवृत्त हुए। तत्पश्चात् खंभातके, अहमदावादके और गंधारके मुख्य मुख्य श्रावक तथा सूरीश्वरजी, विमलहर्ष उपाध्याय और अन्यान्य प्रधान प्रधान मुनि विचार करनेके लिए एकान्त स्थानमें बैठे।

उस समय अहमदावादके संघने अकबर बादशाहका पत्र—जो शहाबखाँके नाम आया था—और आगरेके जैन श्रीसंघका पत्र, सूरिजीको दिये। सूरिजीने अपने नामका विनति-पत्र जो आगरेके संघका था पढ़ा। तत्पश्चात् दोनों पत्र इस मंडलमें बाँचे गये। अहमदाबादके संघने शहाबखाँकी कही हुई बातें भी वहाँ कहीं। 'जाना या नहीं' इस बातकी चर्चा तो अभी प्रारंभ न हुई मगर बादशाहने सहसा सूरिजी महाराजको कैसे आमंत्रण दिया, इसी बातकी थोड़ी देर आश्चर्यकारक बातकी तरह चर्चा होती रही। फिर मुख्य चर्चा प्रारंभ हुई। अहमदावादका श्रीसंघ, जब जो कुछ कहना था, कह चुका तब प्रत्येक अपनी अपनी राय प्रकट करने लगा।

किसी प्रसंग पर सब लोगोंकी सम्मति एक ही हो यह बात न कभी हुई है, न कभी होती है और न कभी होवेहीगी। हरेक मौके पर विचारोंकी विभिन्नता रहती ही है। अमुक विषयमें किसीके विचार कैसे होते हैं और किसीके कैसे। जिस समयकी हम बात लिख रहे हैं वह समय भी इस अटल नियमसे नहीं बचा था। उस समय भी जैसे कई उदार विचारवाले थे वैसे ही संकुचित विचारवाले भी थे। इसी लिए 'बादशाहका आमंत्रण स्वीकार करके सूरिजीको जाना चाहिए या नहीं?' इस विषयमें बहुतसे मतभेद हो गये थे। कइयोंने कहा:—"सूरिजी महाराज किस लिए वहाँ जायँ? बादशाहको यदि सूरिजी महाराजका धर्मोपदेश सुनना होगा या महाराजके दर्शन करने होंगे तो वह आप ही यहाँ आ जायगा।"

कइयोंने कहा:–" सूरिजी महाराजको हम लोग क्या वहाँ भेज सकते हैं ? वह तो महा म्लेच्छ है, न जाने क्या करे ? वहाँ जा कर लेना क्या है ? " किसीने कहा:–" अकबर ऐसा वैसा आदमी नहीं है। लोगोंको जब उसके नामसे ही दस्त लग जाते हैं तब उसके पास तो जा ही कौन सकता है ? " किसीने कहा:—" वह तो खासा राक्षसका अवतार है । मनुष्योंको मार डालना तो उसके लिए ' एक एकन एक ' के समान है । ऐसे दुष्ट बादशाहके पास जानेसे मतलब ? " इस तरह विवाद करते हुए कई उसकी ऋद्धि समृद्धि का हिसाब करने लगे और कई उसकी लड़ाइयोंकी गिनती करने बैठे। सूरिजी चुपचाप मौन धारण कर इनकी बातें सुन रहे थे। कइयोंने यह भी कहा कि—" यद्यपि बादशाह बहुत क्रूर है तथापि उसमें यह गुण बड़ा भारी है कि, वह गुणियोंका आदर करता है। वह यदि किसीमें महत्त्वका गुण देखता है तो उस पर प्रसन्न हो जाता है । इस लिए वह तो सूरिजीके समान महात्माको देखते ही ल हो जायगा । " कइयोंने कहा:—" हमें ऐसे संकुचित विचार नहीं रखने चाहिए, जब राजा उन्हें ऐसे सम्मानके साथ बुला रहा है तो महाराजको अवश्य जाना ही चाहिए। सूरीश्वर महाराजके पधारनेसे शासनकी बहुत प्रभावना होगी। " किसीने कहा:—"डरनेका कोई सबब नहीं है। अकबरके सोलह सौ तो स्त्रियाँ हैं। वह तो उन्हींमें अपना दिन बिताता है । वह स्त्रि–सहवास और एशोइशरतसे छुटी पायगा तब तो सूरिजी महाराजसे मिलेगा न ? " इतनेमें एक बोल उठा:—"जब बादशाह मिलेहीगा नहीं तो फिर जानेकी जरूरत ही क्या है ? "

इस तरह श्रावकोंके आपसमें जो विवाद हुआ उसको सूरीश्वरजीने शान्तिके साथ सुना और फिर शासनसेवाकी भावनापूर्ण हृदयके साथ गंभीर स्वरमें कहा:—

" महानुभावो ! मैंने अब तक आप सबके विचार सुने । जहाँ तक मैं समझता हूँ अपने विचार प्रकट करनेमें किसीका आशय खराब नहीं है । सबने लाभके ध्येयको सामने रख कर ही अपने विचार प्रकट किये हैं । अब मैं अपना विचार प्रकट करता हूँ । इस बातके विस्तृत विवेचनकी तो इस समय मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता कि, अपने पूर्वाचार्योंने मान-अपमानकी कुछ भी परवाह न कर राज-दर्बारमें अपना पैर जमाया था और राजाओंको प्रतिबोध दिया था। इतना ही क्यों, उनसे शासनहितके बड़े बड़े कार्य भी करवाये थे । इस बातको हरेक जानता है कि, **आर्य-महागिरिने सम्प्रति राजाको, बप्पभट्टीने आमराजको, सिद्धसेनदिवाकरने विक्रमादित्यको** और कलिकाल सर्वज्ञ प्रभु **श्रीहेमचंद्राचार्यने कुमारपाल** राजाको -इस तरह अनेक पूर्वाचार्योंने अनेक राजाओंको-प्रतिबोध दिया था। उसीका परिणाम है कि, इस समय भी हम जैन-धर्मकी जाहो-जलाली देखते हैं । भाइयो ! यद्यपि मुझमें उन महान आचार्योंके समान शक्ति नहीं है; मैं तो केवल उन पूज्य पुरुषोंकी पद-धूलिके समान हूँ; तथापि उन पूज्य पुरुषोंके पुण्य-प्रतापसे **'यावद् बुद्धिबलोदयम्'** इस नियमके अनुसार शासनसेवाके लिए जितना हो सके उतना प्रयत्न करनेको मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ । अपने पूज्य पुरुषोंको तो राज-दर्बारमें प्रवेश करते बहुतसी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं; परन्तु हमें तो सम्राट् स्वयमेव बुला रहा है । इस लिए उसके आमंत्रणको अस्वीकार करना मुझे अनुचित जान पड़ता है । तुम इस बातको भली प्रकार समझते हो कि, हजारों बल्कि लाखों मनुष्योंको उपदेश देनेमें जो लाभ है उसकी अपेक्षा कई गुना लाभ एक राजाको -सम्राट्को उपदेश देनेमें है । कारण-गुरुकी कृपासे सम्राट्के हृदयमें यदि एक बात भी बैठ जाती है तो हजारों ही नहीं बल्कि लाखों

मनुष्य उसका अनुसरण करने लगजाते हैं। यह खयाल भी ठीक नहीं है कि,–' जिसको गर्ज होगी वह हमारे यहाँ आयगा।' यह विचार शासनके लिए हितकर नहीं है। संसारमें ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जो अपने आप धर्म करते हैं–उत्तमोत्तम कार्य करते हैं। धर्म इस समय लँगड़ा है। लोगोंको समझा समझा कर—युक्तियोंसे धर्मसाधनकी उपयोगिता उनके हृदयोंमें जमा जमा कर यदि उनसे धर्म–कार्य कराये जाते हैं तो वे करते हैं। इसलिए हमें शासन–सेवाकी भावनाको सामने रख कर प्रत्येक कार्य करना चाहिए। शासनसेवाके लिए हमें जहाँ जाना पड़े वहीं निःसंकोच हो कर जाना चाहिए। परमात्मा महावीरके अकाट्य सिद्धान्तोंका घर घर जा कर प्रचार किया जायगा तभी वास्तविक शासनसेवा होगी। ' सवी जीव करूं शासनरसी ' (संसारके समस्त जीवोंको शासनके रसिक बनाऊँ) इस भावनाका मूल उद्देश्य क्या है ? हर तरहसे मनुष्योंको धर्मका–अहिंसा धर्मका अनुरागी बनानेका प्रयत्न करना। इसलिए तुम लोग अन्यान्य प्रकारके विचार छोड़ कर मुझे अकबर के पास जानेकी सम्मति दो। यही मेरी इच्छा है।"

इस गंभीर उपदेशका प्रत्येक पर विजलीकासा असर हुआ। पहिली वार अकबरके पास जानेमें जो हानि देखते थे वे ही अब अकबरके पास जानेमें लाभ देखने लगे। 'सूरिजी महाराजके उपदेशसे बादशाह मांसाहार छोड़ देगा तो कितना अच्छा होगा ?' सूरिजी महाराजके उपदेशसे बादशाह पशुवध बंद कर देगा तो कितना उत्तम होगा ?' 'सूरिजी महाराजके उपदेशसे यदि बादशाह जैन हो जायगा तो कितनी शासन–प्रभावना होगी ?' इस तरह कल्पनादेवीके घोड़े प्रत्येकके हृदयमें दौड़ने लगे। सबने प्रसन्नताके साथ कहाः—

" महाराज ! आप आनंदपूर्वक जाइए। हम सभी राजी हैं। आप महान् प्रतापी है; पुण्यशाली हैं। आपके तप–तेजसे बादशाह धर्म प्रेमी होगा। इससे शासनोन्नतिके अनेक कार्य होंगे। हम आशा करते हैं कि, आप भी प्रभु श्रीहेमचंद्राचार्यके समान ही अकबर पर प्रभाव डाल कर जीवदयाकी विजयपताका फरीवेंगे। शासनदेव हमारी इस आशाको अवश्यमेव सफल करेंगे। हमारी आत्मा इस बातकी साक्षी दे रही है।"

तत्पश्चात् सूरिजी महाराजके विहारका निश्चय होने पर एकत्रित संघने हर्षावेशसे वीर परमात्मा और हीरविजयसूरिके जयघोषसे उपाश्रयको गुँजा दिया।

आज मार्गशीर्ष कृष्णा ७ का दिन है। गंधारके उपाश्रयके बाहिर हजारों आदमियोंकी भीड़ हो रही है। साधु–मुनिराज कमर कसनेकी तैयारी कर रहे हैं। श्रावक हर्ष–शोकमिश्रित स्थितिमें बैठे हुए सूरिजी महाराजसे उपदेश सुन रहे हैं। दूसरी तरफ़ स्त्रियोंका समूह है। उनमें कई गुरुविरहसे आँसू बहा रही हैं; कई अकबर बादशाहको उपदेश देने जानेकी बात कह रही हैं। कई यह सोच कर निस्तब्ध भावसे महाराजकी तरफ़ देख रही हैं कि, अब कब उनके दर्शन होंगे? उनमें कई स्त्रियाँ—जो गायनमें होशियार हैं—गुरु विरहकी गुहुलियाँ गा रही हैं। मुनिराज कमर बाँध कर तैयार हुए। सूरिजी भी तर्पनी और डंडा ले कर तैयार हो गये। हजारों स्त्री पुरुष सूरिजीकी मुख–मुद्राको देखते ही रहे। आगे आगे सूरिजी चले। पीछे पीछे मुनिराजोंका समुदाय अपनी अपनी उपधियाँ और पात्रे कंधों पर रख कर चलने लगे। उनके पीछे श्रावक लोग थे और सबसे पीछे स्त्रियोंका समुदाय था। गुरुजीसे होनेवाले लंबे बिछोहेका

विचार जैसे जैसे लोगोंके हृदयोमें उठने लगा वैसे ही वैसे उनके हृदय भर आने लगे और उनके बहुत रोकने पर भी—बहुत धैर्य धारण करने पर भी आँखोंसे आँसू गिरे बिना न रहे। गुरुने हजारों लोगोंकी इस उदासीनताकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया। वे समभावमें लीन हो, पंच परमेष्ठीका ध्यान करते हुए आगेकी ओर ही बढ़ते गये। नगरसे बाहिर थोड़ी दूर आ सूरिजीने तमाम संघको वैराग्यमय उपदेश दिया। उन्होंने कहाः—

" धर्मस्नेह यह संसारमें अनोखा स्नेह है। गुरु और शिष्यका जो स्नेह है वह धर्मका स्नेह है। तुम्हारा और हमारा धर्म-स्नेह है और उसी स्नेहके कारण इस समय तुम्हारे मुखकमल मुर्झा गये हैं। मगर तुम यह जानते हो कि, परमात्माने हमें ऐसा मार्ग बताया है कि, जिस मार्ग पर चले बिना हमारा चारित्र किसी तरह भी सुरक्षित नहीं रह सकता है। चौमासेके अंदर चार महीने तक ही हम एक स्थान पर रहते हैं। मगर इस थोड़ी अवधिमें भी तुम्हें इतना स्नेह हो जाता है कि, मुनिराज जब विहार करते हैं, तब तुम्हें अत्यंत दुःख होता है। यद्यपि यह धर्मस्नेह लाभ-दायी है; भव्य पुरुष इससे अपना उद्धार कर सकते हैं; तथापि यह स्नेह भी आखिर एक प्रकारका मोह ही है। किसी समय यह भी बंधनका कारण हो जाता है। इसलिए इस स्नेहसे भी हमें मुक्त ही रहना चाहिए। महानुभावो! तुम जानते हो कि, मुनिराजोंके धर्मानुसार यह समय हमारे विहारहीका है। उसमें भी एक विशेषता है। मुझे अपने देशके सम्राट् अकबर बादशाह का आमंत्रण मिला है। इस आमंत्रणको स्वीकारनेसे शासनकी प्रभा-वना होगी इसी लिए मैं जा रहा हूँ। तुमने अब तक बहुत भक्ति की है। वह याद आया करेगी। अब भी मैं आप लोगोंसे—चतुर्विध संघसे एक सहायता चाहता हूँ। वह यह है,—आप लोग शासनदेवोंसे

प्रार्थना करें कि वे मुझे वीर-प्रभुके शासनकी सेवाका सामर्थ्य दें और मुझे निर्विघ्नता पूर्वक फतेहपुर-सीकरी पहुँचा कर मेरे कार्यमें सहायता करें। अब मैं आप लोगोंको केवल एक ही बात कहना चाहता हूँ। कि, सभी धर्मध्यान करते रहना, झगड़े-टंटोंसे जुदा रहना; विषय-वासनासे निवृत्त होना; और इस मनुष्यजन्मकी सार्थकता करनेके लिए दान, शील, तप और भावरूपी धर्मकी आराधना करनेमें दत्तचित्त रहना, ॐ शान्तिः ! "

'ॐ शान्तिः' के उच्चारणकी समाप्तिके साथ ही सूरिजीने किसीकी और दृष्टिपात न कर आगे कदम बढ़ाया। श्रावक और श्राविकाएँ अपनी अपनी भावनाओंके अनुसार पीछे पीछे चले। थोड़ी दूर जा कर सब खडे रहे। सूरिजी आगे चले। जहाँ तक वे दिखते रहे वहाँ तक लोग टकटकी लगा कर उन्हें देखते रहे। जब वे आंखोंकी ओट हो गये तब लोग उदासमुख वापिस अपने अपने घर चले गये।

सूरिजीने गंधारसे रवाना हो कर पहिला मुकाम चाँचोलमें किया था। फिर वहाँसे रवाना हो कर जंबूसर होते हुए धूआरणके पासकी महीनदीको पार कर बटादरे पहुँचे। यहाँ सूरिजीको वंदना करनेके लिए खंभातका संघ आया था।

सूरिजीको उस गाँवमें एक आश्चर्योत्पादक बात मालूम हुई। रातमें जब वे सो रहे थे। कुछ नींद थी कुछ जागृत अवस्था थी। उस समय उन्होंने देखा कि,-एक दिव्याकृतिवाली स्त्री उनके आगे खड़ी हुई है। उसके हाथमें मोती और कुंकुम है। उसने सूरिजीको मोतियोंसे बधाये और कहाः—" पूर्व दिशामें रह कर लगभग सारे भारत पर राज्य करनेवाला अकबर बादशाह आपको बहुत चाहता है। इसलिए आप निःशंक भावसे अकबरके पास जावें और वीर-

शासनकी शोभाको बढ़ावें। आपके वहाँ जानेसे द्वितीयाके चंद्रकी भाँति आपकी कीर्ति बढ़ेगी।"

इतना कह कर वह दिव्याकृतिवाली स्त्री अन्तर्धान हो गई। वह कहाँ लुप्त हो गई इसका सूरिजीको कुछ भी पता नहीं चला। इससे सूरिजी उससे विशेष बातें न पूछ सके। मगर इतना जरूर हुआ कि उक्त शब्द-ध्वनिसे उनके हृदयमें अपूर्व उत्साहका संचार हो गया।

सूरिजी वहाँसे आगे बढ़े। सोजित्रा, मातर और बारेजा आदि गाँवोंमें होते हुए अहमदाबाद पहुँचे। अहमदाबादके श्रावकोंने बड़ी धूम धामके साथ सूरिजीका नगर-प्रवेशोत्सव किया, वहाँके सूबेदार शहाब-खाँने पहिले सूरिजीको कष्ट दिया था इसलिये उनसे मिलनेमें उसे बड़ी शर्म मालूम देती थी मगर क्या करता? बादशाहाका हुक्म था। वह मन-मार कर अपने रिसाले सहित सूरिजीकी अगवानीके लिए गया। उसने सूरिजीके चरणोंमें नमस्कार किया। सूरिजीके नगरमें आ जाने बाद उसने एक बार उनकी दर्बारमें पधरामणीकी; उनके आगे हीरा, मोती आदि जवाहरात रक्खे और कहाः—

"महाराज! ये चीजें अपने साथ ही लेते जाइए। आपको मार्गमें किसी तरहका कष्ट न हो इसके लिए मैं हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदिका प्रबंध कर देता हूँ। आप तत्काल उन्हें ले कर दिल्ली-श्वरके पास पहुँच जाइए। इन सबके साथ रहनेसे आपको मार्गमें किसी तरहके कष्टका मुकाबिला नहीं करना पड़ेगा। मुसाफिरी बहुत लंबी है। आपकी अवस्था बहुत ढल चुकी है। इस लिए इन सब साध-नोंका आपके साथ रहना जरूरी है।

"महारज! आपसे मैं एक बातकी क्षमा माँगता हूँ। वह यह है कि, मैंने आपके समान महात्मा पुरुषको तकलीफ़ पहुँचाई थी।

मैं ऐसा तुच्छ हूँ कि आपके व्यक्तित्वको जाने विना ही नौकरोंके कहनेसे आपको कष्ट दिया। आप महात्मा हैं। मेरे इस अक्षम्य अपराधको क्षमा कीजिए और मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि, जिससे मेरे समान दुष्ट मनुष्य भी उस महान पापसे बच जाय।"

सूरिजीने सहास्य वदन उत्तर दियाः—"खाँसाहिब! हमारा धर्म भिन्न ही प्रकारका है। हमारे लिए परमात्मा **महावीरकी** आज्ञा है कि, कोई चाहे कितना ही कष्ट तुम्हें दे तो भी तुम तो उस पर क्षमाभाव ही रक्खो। यद्यपि हमारे लिए यह आज्ञा है तथापि ससंकोच मुझे यह कहना पड़ता है कि, मैं अभी तक उस स्थितिमें नहीं पहुँचा हूँ। जिस दिन मेरी ऐसी अवस्था हो जायगी उस दिन मैं स्वयं ही अपने आत्माको धन्य मानूँगा। इतना होने पर भी यह वात स्पष्टतया कह देना चाहता हूँ कि, मुझे आप पर लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। अब आपको अपने मनमें गत घटनाके लिए किंचिन्मात्र भी दुःख न करना चाहिए। मैं मानता हूँ कि, संसारमें मेरा कोई भी व्यक्ति भला या बुरा नहीं कर सकता है। मुझे जो कुछ भले बुरेका या सुखदुःखका अनुभव होता है उसका कारण मेरे कर्म ही हैं। दूसरा कोई नहीं है। संसारमें हम जैसे जैसे कर्म करते हैं वैसे ही वैसे फल हमें मिलते हैं। इसलिए आप उसके लिए लेशमात्र भी विचार न करें।"

उसके वाद **सूरिजीने** अपने आचारसे संबंध रखनेवाली बातें कहीं। और **शहाबखाँको** समझाया कि,—"हम लोग कंचन और कामिनीसे सदा दूर रहते हैं। हीरा मोती आदि जवाहरात और पैसा टका हम नहीं रख सकते हैं। हमारा धर्म है कि हम गाँव गाँव पैदल ही फिरें और जन समाजको अहिंसामय धर्मका उपदेश दें। इसलिए आप मेरे सुभीतेके लिए घोड़े हाथी आदि मेरे साथ

भेजना चाहते हैं या मुझे देना चाहते हैं, उन्हें मैं स्वीकार नहीं कर सकता। कारण ये मेरे लिए भूषण न हो कर दूषण हैं। इसलिए मैं पैदल ही चल कर, जैसे बनेगा वैसे, शीघ्र ही सम्राट्के पास पहुँचनेका प्रयत्न करूँगा।"

सूरीश्वरजीके इस वक्तव्यने शहाबखाँके हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। जैनसाधुओंकी त्यागवृत्ति और सच्ची फकीरी पर वह मुग्ध हो गया। उसने उपर्युक्त बातोंको लक्षमें रखते हुए बादशाहको एक पत्र लिखा। उसमें उसने यह भी लिखा कि,—

"हीरविजयसूरि गंधारसे पैदल चल कर यहाँ आये हैं। उनको आपकी आज्ञाके अनुसार मैं सब चीजें देने लगा, मगर उन्होंने अपने धर्मके विरुद्ध होनेसे कोई चीज स्वीकार नहीं की। सरकार! मैं आपसे क्या निवेदन करूँ? हीरविजयसूरि एक ऐसे फकीर हैं कि, इनकी जितनी तारीफ़ की जाय उतनी ही थोड़ी है। वे पैसेको तो छू भी नहीं सकते। पैदल चलते हैं। किसी भी सवारी पर नहीं चढ़ते और स्त्रियोंके संसर्गसे सर्वथा दूर रहते हैं। इनके आचार ऐसे कठिन हैं कि, लिखनेसे एक बार उन पर विश्वास नहीं होता। इनसे जब आप मिलेंगे तभी आपको यकीन होगा।"

अहमदाबादमें थोड़े दिन रह कर सूरिजी आगे चले। मौंदी और कमाल नामके दो मेवड़े—जो अकबरके पाससे आमंत्रण लेकर आये थे और अब तक अहमदाबादहीमें ठहरे हुए थे—भी सूरिजीके साथ रवाना हुए। अहमदाबादसे चल कर सूरिजी उसमानपुर, सोहला, हाजीपुर, बोरीसाना, कड़ी, बीसनगर, और महसाना आदि होते हुए पाटन पहुँचे। यहाँ सात दिन तक रहे। इसीके बीचमें उन्होंने कई प्रतिष्ठाएँ भी कराईं। यहाँसे श्रीविमलहर्ष उपाध्यायने पैंतीस साधुओं सहित पहिले विहार किया। सूरिजी पीछेसे रवाना हुए। सूरिजी

वडलीमें अपने गुरु श्रीविजयदानसूरिके स्तूप (पादुका) की वंदना कर सिद्धपुर गये। श्रीविजयसेनसूरि यहाँसे वापिस पाटन गये। कारण-संघकी-साधुओंकी सँभाल रखनेके लिए उनका गुजरातहीमें रहना स्थिर हुआ था। सिद्धपुरसे आबूकी यात्राके लिए विहार करते हुए सूरिजी सरोत्तर (सरोत्रा) हो कर रोह पधारे। यहाँ सहस्रार्जुन नामक भीलोंका सर्दार रहता था। उसने और उसकी आठ स्त्रियोंने सूरिजीकी साधुवृत्तिसे प्रसन्न हो कर इनका उपदेश सुना। उपदेश सुन कर उसने किसी भी निरपराध जीवको नहीं मारनेका नियम ग्रहण किया। फिर वहाँसे सूरिजी आबूकी यात्राके लिए आबू गये। आबूके मंदिरोंकी कारीगरी देख कर आपको बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। वहाँसे सीरोही पधारे। सीरोहीके राजा सुरत्राण (देवड़ा सुल्तान) ने सूरिजीका अच्छा सत्कार किया। इतना ही नहीं उसने सूरिजीके उपदेशसे चार बातोंका-शिकार, मांसाहार, मदिरापान और परस्त्री सेवनका-त्याग कर दिया। सूरिजी वहाँसे सादड़ी होकर राणकपुरकी यात्राके लिए गये। वहाँके मंदिरकी विशालता को-जो भूमंडल पर अद्वितीयताका उपभोग कर रही है-देख कर सूरिजीको बहुत आनंद हुआ। वहाँसे वे वापिस सादड़ी आये। सूरिजीके दर्शनार्थ वागडसे चल कर आये हुए श्रीकल्याणविजयजी उपाध्याय भी सूरिजीको यहीं मिले। वे आउआ तक साथ रह कर वापिस लौटे। आउआके स्वामी वणिक् गृहस्थ ताल्हाने सूरिजीके आगमनकी खुशीमें उत्सव किया। और 'पिरोजिका' नामका सिक्का भेटस्वरूप हरेक मनुष्यको दिया। सूरिजी वहाँसे मेडता गये। मेडतामें दो दिन तक रहे। यहाँके राजा सादिम सुल्तानने भी आपकी अच्छी खातिरदारी की। समस्त भारत पर जिसका एकछत्र साम्राज्य था उस अकबरने ही जब सूरिजीको बड़े सत्कारके साथ बुलाया था तो फिर ऐसे महत्वशाली

पुरुषको छोटे छोटे राजाओंने आदर दिया इसमें तो आश्चर्यकी कोई बात ही नहीं है। हाँ सूरिजीके उपदेशमें जो विद्युत्-शक्ति थी वह वास्तवमें आश्चर्योत्पादक ही थी। सबसे पहिले तो उनकी शान्त और गंभीर मुखमुद्रा ही सबको अपनी तरफ खींच लेती थी। फिर शुद्ध चारित्रके रंगसे रँगा हुआ उनका उपदेश ऐसा होता था कि, वह कैसे ही कठोर हृदयी पर भी अपना असर डाले विना नहीं रहता था।

मेडतासे सूरिजी विहार कर 'फलोधीपार्श्वनाथ'की यात्राके लिए फलौधी भी पधारे और वहाँसे विहार कर साँगानेर पधारे।

श्रीविमलहर्ष उपाध्याय उसी समय-जब कि, सूरिजी साँगानेर पधारे-फतेहपुर-सीकरी पहुँचे। उनके साथ श्रीसिंहविमल आदि विद्वान् मुनि रत्न भी थे। उन्होंने उपाश्रयमें मुकाम करनेके बाद तत्काल ही थानसिंह, मानुकल्याण और अमीपाल आदि नेताओंसे कहाः—"चलो बादशाहसे मिलेंगे।"

उपाध्यायजीकी यह उत्सुकता पाठकोंको जरा खटकेगी। उपाश्रयमें आकर अपने उपकरण उतारते ही, तत्काल ही अकबरके समान बादशाहसे मिलनेके लिए तत्पर होना, कुछ असभ्यतापूर्ण नहीं तो भी अनुचित जरूर मालूम होगा। उपाध्यायजीकी बात सुन कर थानसिंह और मानुकल्याणने कहाः—"बादशाह विचित्र प्रकृतिका मनुष्य है। सहसा उसके सामने जा खड़ा होना हमारे लिए अनुचित है। इस लिए अभी सब्र कीजिए। हम जा कर शेख अबुलफ़ज़लसे मिलते हैं। वह जैसी सलाह देगा वैसा ही किया जायगा।"

थानसिंह, मानुकल्याण और अमीपाल आदि कई नेता श्रावक अबुलफ़ज़लके पास गये और बोलेः—"श्रीहीरविजय-

सूरिके कई शिष्य यहाँ आ पहुँचे हैं। वे बादशाहसे मिलना चाहते हैं।"

अबुल्फ़ज़लने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया:—"अच्छी बात है। उन्हें ले आओ। हम उन्हें बादशाहके पास ले जायँगे।"

यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि, **सूरीश्वरजीके** आनेसे पहिले ही, **विमलहर्ष** उपाध्याय बहुत जल्दी बादशाहसे मिलना चाहते थे, इसका खास सबब यह था कि,—बादशाहके संबंधमें नाना प्रकारकी अफ़वाहें सुनी जाती थीं। कई उसको बिलकुल असभ्य बताते थे; कई उसको क्रोधी बताते थे, कई उसको प्रपंची ठहराते थे और कई धर्माभिलाषी भी कहते थे। इससे उपाध्यायजी आदि पहिले आये हुए मुनियोंने सोचा कि,—हमें पहिले ही बादशाहसे मिलना चाहिए और देखना चाहिए कि, वह कैसी प्रकृतिका मनुष्य है। यदि वह असभ्य होगा और हमारा अपमान करेगा तो कोई दुःखकी बात नहीं है; परन्तु यदि वह सूरीजी महाराजका अपमान करेगा तो वह हमारे लिए महान् असह्य दुःखदायी होगा। शायद हमें किसी विपत्तिमें फँस जाना पड़े तो भी गुरुभक्ति या शासन–सेवाके लिए हमारे लिए तो वह श्रेयस्कर ही होगा। उससे सूरिजी महाराजको सचेत होनेका समय मिलेगा। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर उन्होंने बादशाहसे पहिले मिलना उचित समझा था।

श्रावक बुलाने आये। उपाध्यायजी सिंहविमलपंन्यास, धर्मसी ऋषि और गुणसागरको साथ लेकर पहिले अबुल्फ़ज़लके यहाँ गये। अबुल्फ़ज़लके पास पहुँच कर उपाध्यायजीने कहा:— "हम फ़कीर हैं, भिक्षावृत्तिसे जीवन–निर्वाह करते हैं। एक कौड़ी भी अपने पास नहीं रखते हैं। हमारे पास गाँव, खेत, कूए, घरबार

आदि कुछ भी नहीं है। पैदल ही चलकर गाँव गाँव फिरते हैं। मंत्र, तंत्रादि भी हम नहीं करते। फिर बादशाहने किस हेतुसे हमें (हमारे गुरु श्रीहीरविजयसूरिको) बुलाया है ? "

अबुलफ़ज़लने कहा:—" बादशाहको आपसे दूसरा कोई काम नहीं है। वह केवल धर्म सुनना चाहता है। "

उसके बाद अबुलफ़ज़ल उन चारों महात्माओंको अकबरके पास ले गया और उनका परिचय कराते हुए बोला:—

" ये महात्मा उन्हीं हीरविजयसूरिके शिष्य हैं जिनको यहाँ आनेका आपने निमंत्रण दिया है। "

" हाँ ! ये हीरविजयसूरिके शिष्य हैं ! " इतने शब्दोच्चारणके साथ ही बादशाह सिंहासनसे उठा और उपाध्यायजी आदिके—जहाँ वे गालीचेके नीचे खड़े थे—सामने गया। उपाध्यायजीने धर्मलाभ दिया और कहा—" सूरिजीने आपको धर्मलाभ कहलाया है। " बादशाहने आतुरताके साथ पूछा:—"मुझे उन परम कृपालु सूरीश्वरजीके दर्शन कब होंगे ? " उपाध्यायजीने उत्तर दिया:—" अभी वे साँगानेरमें हैं। जहाँतक होगा शीघ्र ही यहाँ पहुँचेंगे। "

उस समय बादशाहने अपने एक आदमीसे उन चारों महात्माओंके नाम, पूर्वावस्थाके नाम, उनके माता पिताके नाम और गाँवोंके नाम लिखवा लिये और तब—चाहे उनकी परीक्षा करनेके लिए पूछा हो या और किसी अभिप्रायसे पूछा हो—पूछा:—आप फकीर क्यों हुए हैं ? "

उपाध्यायजीने उत्तर दिया:—" इस संसारमें असाधारण दुःखके कारण तीन हैं। उनके नाम हैं जन्म, जरा और मृत्यु। जब तक मनुष्य इन तीन कारणोंसे मुक्त नहीं होता है तब तक उसे

परम सुख या परम आनंद नहीं मिलता है। इस सुख या आनंदकी प्राप्तिहीके लिए हम साधु–फकीर हुए हैं। क्योंकि गृहस्थावस्थामें यह जीव अनेक प्रकारकी उपाधियोंसे घिरा रहता है। इस लिए वह अपनी आत्मिक उन्नतिके लिए जिन कार्योंको करनेकी आवश्यकता है उनको नहीं कर सकता है। इसलिए वैसे कारणोंसे दूर रहना ही उत्तम है। यह समझ कर ही हमने गृहस्थावस्थाका त्याग किया है। आत्मोद्धार करनेका यदि कोई असाधारण कारण संसारमें है तो वह धर्म ही है और इस धर्मका संग्रह साधु अवस्थामें–फकीरीहीमें भली प्रकारसे हो सकता है। इसके उपरांत हम पर मृत्युका डर भी इतना रहता है कि, जिसका कुछ ठिकाना नहीं। कोई नहीं जानता है कि, वह कब आ दबायगी। इस लिए हरेकको उचित है कि, वह महात्माके इस वचनको कि—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥ १॥

स्मरणमें रखे और धर्म–संचय करनेमें तत्पर रहे।

"राजन् आपके प्रश्नका उत्तर इतने ही शब्दोंमें आ जाता है। यदि इससे भी संक्षेपमें कहूँ तो इतना ही है कि, गृहस्थावस्थामें रह कर लोग चाहिए उस तरह धर्मका साधन नहीं कर सकते हैं और धर्मका साधन करना बहुत जरूरी है। इसी लिए हम साधु–फकीर हुए हैं।"

उपाध्यायजीके इस विवेचनसे अकबरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी निर्भीकता और अस्खलित वचनधारासे बादशाहके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह मनमें सोचने लगा:–जिसके शिष्य ऐसे त्यागी, विद्वान् और होशियार हैं उनके

गुरु कैसे होंगे? उसने अपनी प्रसन्नता शब्दों द्वारा भी प्रकट की। इसके बाद उपाध्यायजी आदि वापिस उपाश्रय आये।

बादशाहके साथकी इस प्राथमिक भेटसे उपाध्यायजी और दूसरे मुनियोंको यह निश्चय हो गया कि, बादशाहके संबंधमें जो किंवदन्तियाँ सुनी जाती थीं वे मिथ्या थीं। बादशाह विनयी, विवेकी और सभ्य है। वह विद्वानोंकी कदर करता है। उसके हृदयमें धर्मकी भी वास्तविक जिज्ञासा है।

× × × ×

बादशाहके साथ उपाध्यायजीकी मुलाकात हुई। उसके बाद फतेहपुर सीकरीके बहुतसे श्रावक श्रीहीरविजयसूरि महाराजकी अगवानीके लिए साँगानेर तक गये। उन्होंने बादशाह और उपाध्यायजीकी भेटका सारा वृत्तान्त सुनाया और यह भी कहा कि, बादशाह आपके दर्शनोंके लिए बहुत आतुर है। सूरिजीको इन बातोंसे बड़ा आनंद हुआ। उनके हृदयमें किसी कोनेमें बादशाहके विषयमें यदि शंका रही होगी तो वह भी नष्ट हो गई। उनके हृदयमें बार बार यह विचार उत्पन्न होने लगे कि,—कब बादशाहसे मिलूँ और उसको धर्मोपदेश दूँ। अस्तु।"

साँगानेरसे विहार कर सूरिजी नवलीग्राम, चाटसू, हिंडवण, सिकंदरपुर और बयाना आदि होते हुए अभिरामाबाद पधारे।* यहां संघमें कुछ झगडा था, वह भी सूरिजीके उपदेशसे मिट गया। उपाध्यायजी भी फतेहपुरसीकरीसे यहाँ तक सामने आये।

---

* अभिरामाबादको कई लेखक अलाहाबादका पुराना नाम बताते हैं। मगर वह ठीक नहीं है। क्योंकि,-सूरिजी जिस मार्गसे सीकरी गये थे उस मार्गमें अलाहाबाद नहीं आता है। अलाहाबाद तो पूर्व दिशामें बहुत दूर रह-

अब फतेहपुरसीकरी केवल छःकोस ही रही है। सूरिजी अभिरामावाद पहुँच गये हैं। इस तरहकी खबर फतेपुरमें बहुत जल्दी

जाता है। यह बात साथमें हीरविजयसूरिके विहारका जो नक्शा दिया गया है उससे स्पष्टतया मालूम हो जायगी। दूसरी बात यह है कि, हीरविजयसूरिने फतेहपुर जाते आखिर मुकाम अभिरामाबादहीमें किया था। हीरसौभाग्य काव्यके तेरहवें सर्गमें भी लिखा है कि,—

पवित्रयंस्तीर्थ इवाध्वजन्तून्पुरेऽभिरामादिमवादनाम्नि।
यावत्समेतः प्रभुरेत्य तावद् द्राग्वाचकेन्द्रेण नतः स तावत्॥४४॥

इससे मालूम होता है कि, विमलहर्ष उपाध्याय फतेहपुरसीकरीसे यहाँ तक सामने आये थे। और यहाँ आकर उन्होंने यह बतलाया था कि, बादशाह आपका समागम चाहता है। यह बात इस श्लोकसे मालूम होती है,—

मघो पिकीकान्त इवैष युष्मत्समागमं काङ्क्षति भूमिकान्तः।
तद्वाचकेनेत्युदितो व्रतीन्द्रः फतेपुरोपान्तभुवं बभाज ॥४५॥

इस श्लोकसे यह भी मालूम होता है कि, जहाँ विमलहर्ष उपाध्यायने उपर्युक्त समाचार कहे थे वह स्थान फतेहपुरसे थोडी ही दूर होना चाहिए।

ऋषभदास कवि 'हीरविजयसूरि रास'में लिखते हैं—

वयाना नइ अभिरामावाद गुरु आवंतां गयो विषवाद
फतेपुर भणी आवइ जस्यि अनेक पंडित पूठि तस्यइ "॥५॥

(पृष्ठ १०८)

इससे भी यह विदित होता है कि, अभिरामवाद सूरिजीका अन्तिम मुकाम था। यहाँसे रवाना होकर वे फतेहपुर ही ठहरे थे।

इसके उपरान्त एक प्रबल प्रमाण दूसराभी मिलता है। 'जगद्गुरु काव्य' में लिखा है,—

आयाता इह नाथहीरविजयाचार्याः सुशिष्यान्विता
इत्थं स्थानकसिंहवाचिकमसौ श्रुत्वा नृपोऽकब्बरः।
स्वं सैन्यं सकलं फतेपुरपुराद्गव्यूतषट्कान्तरा-
यातानामभि सम्मुखं यतिपतीनां प्राहिणोत् स्फीतियुक्॥ १६३ ॥

इससे जान पड़ता है कि,-सूरिजी छः कोस दूर हैं यह जानकर उनका

फैलगई । लोगोंका आना जाना शुरू हो गया । दूसरी ओर सूरिजीके सामैये—अगवानी—के लिये थानसिंह, मानुकल्याण और अमीपाल आदि गृहस्थोंने बादशाहसे मिलकर शाही बाजे, हाथी, घोड़े आदि जो जो चीजें जरूरी थीं उन उन सब चीजोंका प्रबंध कर लिया ।

आज ज्येष्ठ सुदी १२ (वि. सं. १६३९) का दिन है । सवेरे हीसे तमाम शहरमें नवीनताके चिह्न दिखाई दे रहे हैं । कई अपने बालबच्चोंको उत्तमोत्तम आभूषण और वस्त्र पहिनाने लग गये हैं । कई अपने हाथीघोड़ोंका शृंगार करनेमें लग रहे हैं । कई रथोंकी तैयारी कर रहे हैं । कई तो सूर्य उगनेके पहिले अँधेरे अँधेरे ही, यथासंभव, जितनी हो सके उतनी दूर सूरिजीके सामने जानेके लिए, घरसे रवाना हो चुके हैं । इस तरह नौ बजते बजते नगरके बाहिर हाथी, घोड़े, ऊँट, रथ और निशान आदि खास लवाजमे सहित—जो खास बादशाहकी तरफसे मिले थे—लोग सूरिजीकी अगवानीके लिए जमा हो गये । थोड़ी ही देरमें साधुओंका एक झुंड लोगोंको दिखाई दिया । लोग हर्षोल्लाससे सूरिजीके सामने जाने लगे । उस समय सूरिजीके साथमें विमलहर्ष उपाध्याय, शान्तिचंद्र गणि, पंडित सोमविजय, पंडित सहजसागर गणि, पंडित सिंहविमल गणि, पं. गुणविजय, पं. गुणसागर, पं. कनकविजय, पं. धर्मसीऋषि, पं. मानसागर, पं. रत्नचंद्र, कान्हर्षि, पं. हेमविजय, ऋषि जगमाल, पं. रत्नकुशल,

---

जानकर उनका सत्कार करनेके लिए उसने अपनी सेना भेजी थी । सुतरां अभिरामाबाद फतेहपुर सीकरीसे छः कोस (बारह माइल) दूर था । यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है । कारण-वह अन्तिम मुकाम था । जैसा कि ऊपर बताया गया है । और इसी हेतुसे, इसवक्त इस नामका कोई गाँव न होने, और 'ट्रिनो मेट्रिकलसर्वे' ने भी इस नामके किसी गाँवका उल्लेख न होने पर भी उस समय उपर्युक्त नामका गाँव होनेसे सूरिजीके विहारके नकशेमें यह नाम दिया गया है ।

पं. रामविजय, पं. भानविजय, पं. कीर्त्तिविजय, पं. हंसविजय, पं. जसविजय, पं. जयविजय, पं. लाभविजय, पं. मुनिविजय, पं. धनविजय, पं. मुनिविमल और मुनि जसविजय आदि ६७ साधु थे। इन साधुओंमें कई वैयाकरण थे और कई नैयायिक, कई वादी थे और कई व्याख्यानी, कई अध्यात्मी थे और कई शतावधानी, कई कवि थे और कई ध्यानी। इस भाँति भिन्न भिन्न विषयोंमें असाधारण योग्यता रखने वाले थे। सूरिजी दर्वाजेके पास आये। तमाम संघने उन्हें सविधि वंदना की। कुमारिकाओंने उन्हें सोनेचाँदीके फूलोंसे वधाया। कई सौभागवतियोंने मोतियोंके चौक पूरे। इस भाँति शुभ शकुनों सहित सूरिजी जिस वक्त फतेहपुर–सीकरीके एक महल्लेमें हो कर गुजर रहे थे, उसी समय उस महल्लेमें रहनेवाला एक सामन्त–जिसका नाम जगन्मल्ल[1] कछवाह था–आ कर सूरिजीके चरणोंमें गिरा और अपने महलको, सूरिजीके चरणस्पर्शसे पवित्र करनेके शुभ उद्देश्यसे, उन्हें अपने महलमें ले गया। इतना ही नहीं उसने उन्हें एक रात और दिन अपने यहाँ रक्खा और उनके मुखारविंदसे उपदेश सुना।

सूरिजीने अपने विहारकी जो सीमा निर्धारितकी थी यहीं पर उसका अन्त होता है। सूरिजी गंधारसे विहार करके जिस मार्ग फतेपुर–सीकरी पधारे थे उस रस्तेका निर्णय, हीरविजयसूरिरास, हीरसौभाग्य काव्य, विजयप्रशस्ति और लाभोदय राससे किया गया है। और उसीका ट्रिगनोमॅट्रिकल सर्वेके नकशोंके साथ मीलान करके सूरिजीके विहारका नकशा तैयार कराया गया है। जो इसीके साथ लगा दिया गया है।

---

१ यह वही जगन्मल्ल कछवाह है जो जयपुरके राजा विहारीमलका छोटाभाई था। जिनको इसके संबन्धमें विशेष हाल जानना हो वे 'आईन–इ–अकबरी' के प्रथम भागका, ब्लॉकमॅनके अंग्रेजी अनुवादका ४३६ वाँ पेज देखें।

प्रकरण पाँचवाँ ।

प्रतिवोध ।

आज ज्येष्ठ सुद १२ का दिन है। प्रातः-काल होते ही थानसिंह आदि श्रावक सूरिजी महाराजके पास आये। सूरिजीके हृदयमें स्वाभाविक आनंदका संचार हो रहा है। सूरिजी जिस कार्यके लिए अनेक कष्ट उठा कर, सैकड़ों कोसोंकी मुसाफिरी कर यहाँ आये हैं उस कार्यका आज ही मंगलाचरण करना चाहते हैं। शुभ कार्यको प्रारंभ करनेके पहिले मंगलनिमित्त—कार्य निर्विघ्न समाप्त हो इस हेतुसे—अमुक संयम—तप करनेका संकल्प किया जाता है; इसलिए आज उन्होंने आँविल¹ करनेका संकल्प किया है। उन्होंने यह भी निश्चित किया है कि, वे कार्यप्रारंभ करनेके वाद ही उपाश्रयमें जावेंगे।

पाठकोंसे यह छिपा हुआ नहीं है कि, सूरिजीको अभी कौनसे महत्त्वका कार्य करना है। अकबरको प्रतिवोध करना ही सूरि-जीका साध्यबिंदु है। सवेरे ही सूरिजीने यह व्यवस्था कर ली कि, जिन विद्वान् साधुओंको अपने साथ राजसभामें लेजाना था उन्हें अपने पास रक्खा, दूसरोंको उपाश्रय भेज दिया।

---

१ 'आंविल' जैनियोंकी एक तपस्या विशेषका नाम है। इस तपस्याके दिन केवल एक ही वक्त नीरस-घी, दूध, दही, गुड़ आदि वस्तुओंसे रहित-भोजन किया जाता है।

जगमालकच्छवाहे के यहाँसे रवाना हो कर पहिले अबुल्फ़ज़ल के घर की तरफ चले। जब वे सिंहद्वार नामक मुख्य दर्वाजे पर पहुँचे तब थानसिंह आदि श्रावकोंने अबुल्फजलके पास जाकर कहा कि सूरिजी 'सिंहद्वार' पर आये हैं। साथही उन्होंने यह भी जतला-दिया कि वे इसी समय बादशाहसे मिलना चाहते हैं।

अबुल्फजलने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बादशाहके पास चला गया और बोलाः—"हीरविजयसूरिजी सिंहद्वार तक आगये हैं। यदि आज्ञा हो तो उन्हें आपके पास ले आऊँ। वे इसी समय आपसे मिलना चाहते हैं।"

बादशाहने उत्तर दियाः—"जिनको मिलनेके लिए मैं आ-तुर हो रहा था उनके पधारनेके समाचार सुन कर मुझे बहुत ज्यादा आनंद हो रहा है। मगर खेद है कि, मैं उनसे इसी समय नहीं मिल सकता। मेरा मन इस समय किसी दूसरे कार्यमें लग रहा है। मैं महलमें जाता हूँ। वहाँसे वापिस आऊँ तब तुम सूरिजीको ले आना। इस समय सूरिजीको अपने यहाँ लेजाओ और उनके चरण-कमलसे अपना घर पवित्र करो।"

बादशाहका यह उत्तर हरेक सहृदयको बुरा लगेगा। जिनको सैकड़ों कोसोंकी मुसाफिरी कराकर अपने पास बुलाया था, जिनसे मिलनेके लिए चातककी तरह व्याकुल हो रहा था वे ही जब फतेहपुरमें आ जाते हैं, फतेहपुर ही क्यों, मिलनेके लिए सिंहद्वार तक आ पहुँचते हैं और मिलनेके लिए पुछवाते हैं तो उत्तर मिलता है कि, 'मैं अभी कार्यमें व्यग्र हूँ; थोड़ी देरके बाद मिलूँगा'। इसका अर्थ क्या होता है? ऐसा उत्तर बादशाहके किस दुर्गुणका परिणाम था सो खोज निकालना असंभव नहीं तो भी कष्टसाध्य अवश्य है।

'श्री हीरसौभाग्यकाव्य' के कर्त्ता १३ वें सर्गके १३९ वें श्लोककी टीकामें, इस विषयका उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि,–
"एतत्कथनं स्वप्रतिबुद्धत्वेन अज्ञाततत्त्वभावेन म्लेच्छत्वेन वा। यद्यास्तिकः स्यात्तदा तु सर्वमपि त्यक्त्वा वन्दत एव" मगर हमको तो उसके मदिराके व्यसनका ही यह परिणाम मालूम होता है। जैसा कि, हम तीसरे प्रकरणमें बता चुके हैं। उससे इसी व्यसनके कारण अनेक अविवेकी व्यवहार हो जाते थे। जब उसके हृदयमें मदिरा–पानकी इच्छा उत्पन्न होती थी तब वह बड़े बड़े महत्त्वके कार्योंको भी छोड़ कर–और क्यों, चाहे किसी ऊँची श्रेणीके मनुष्यको मिलनेके लिए बुलाया होता तो भी–उससे भी न मिल कर–अपनी शराब पीनेकी इच्छाको पूर्ण करता था।

क्या यह कहना अनुचित है कि उसने अपनी शराबकी बुरी आदतके कारण ही वैसा उत्तर दिया था? अस्तु। वास्तविक बात तो यह है कि, सूरिजीके हृदयमें बादशाहसे मिलनेकी जितनी तीव्र इच्छा हुई थी, उससे हजार गुनी तीव्र इच्छा बादशाहको तत्काल ही होनी चाहिए थी।

कहावत है कि,–'जो कुछ होता है वह भलेहीके लिए होता है।' यह एक सामान्य नियम है। इसीके अनुसार अब दूसरी तरहसे इस बातका विचार किया जायगा। एक तरहसे तो बादशाह तत्काल ही सूरिजीसे नहीं मिला, इससे लाभ ही हुआ। कारण–बादशाहसे मिलनेके पहिले सूरिजीको–बादशाहका सर्वस्व गिने जाने वाले–विद्वान् शेख अबुलफ़ज़लसे बहुत देर तक बातचीत करनेका मौका मिला। उससे बादशाहको मिलनेसे पहिले, बादशाहके खास मानीते एकाध पुरुषके अन्तःकरणमें सूरिजीकी विद्वत्ता और पवित्रताके विषयमें पूज्यभाव उत्पन्न करनेकी जो आवश्यकता प्रतीत होती थी वह भी पूर्ण हो गई। अर्थात्–अक-

वरसे मिलनेके पहिले, जो अवकाश मिला उसमें सूरिजी शेख अबुलफ़ज़लके यहाँ गये और बहुत समय तक उसके साथ धर्म–चर्चा करते रहे।

विन्सेंट स्मिथ भी लिखता है कि,—" बादशाह को उनसे (हीरविजयसूरिसे) वार्तालाप करनेका अवकाश मिला तब तक वे अबुलफ़ज़लके पास बिठाये गये थे।"

" The weary traveller was made over to the care of Abul Fazal until the sovereign found leisure to converse with him. "

[Akbar p. 167]

अबुलफ़ज़लके साथ उनकी यह प्राथमिक भेट और प्राथमिक धर्मचर्चा थी। इसमें अबुलफ़ज़लने कुरानेशरीफ़की कई आज्ञाओंका प्रतिपादन किया था। जिन बातोंका अबुलफ़ज़लने प्रतिपादन किया उन्हीं बातोंको सूरिजीने उसे युक्तिपूर्वक समझाया; ईश्वरका वास्तविक स्वरूप बताया और कहा कि दुःखसुखका देनेवाला ईश्वर नहीं है, बल्कि जीवके कर्म हैं। उसके साथ ही उन्होंने दयाधर्मका प्रतिपादन भी किया। शेख अबुलफ़ज़लको सूरिजीकी विद्वत्तापूर्ण वाणीसे और युक्तियोंसे बहुत ज्यादा आनंद हुआ।

अबुलफ़ज़लके यहाँ चर्चा करनेहीमें लगभग मध्याह्न काल बीत गया। यह तो हम पहिले ही कह चुके हैं कि उस दिन सूरिजीने आंबिलकी तपस्या की थी। अब वहाँसे उपाश्रय जाना और आहार करके वापिस आना करीब करीब अशक्य हो गया था। कारण वैसा करनेमें बहुत ज्यादा समय बीत जाता। इसीलिए सूरिजी उपाश्रय न गये। अबुलफ़ज़लके महलके पास ही

कर्णराज[1] नामके एक हिन्दु गृहस्थका मकान था। उन्होंने गोचरी
लाकर उसीके एक एकान्त स्थलमें आंबिल कर लिया।

इधर सूरिजी आहार–पानी करके निवृत्त हुए। उधर बादशाह
भी अपने कामसे छुट्टी पाकर दर्बारमें आया। उसने दर्बारमें आते ही
सूरिजी महाराजको बुलानेके लिए एक आदमी भेजा। समाचार
मिलते ही सूरिजी अपने कई विद्वान् शिष्यों–थानसिंह और मानु-
कल्याण आदि गृहस्थ श्रावकों और अबुलफज़ल सहित दर्बारमें पधारे।

कहा जाता है कि, उस समय सूरिजीके साथ सैद्धान्तिक शि-
रोमणि उपाध्याय श्रीविमलहर्षगणि, शतावधानी श्रीशान्तिचंद्रगणि,
पंडित सहजसागरगणि, पंडित सिंहविमलगणि, ('हीरसौभाग्य
काव्य'के कर्त्ताके गुरु) वक्तृत्व और कवित्व शक्तिमें सुनिपुण पंडित
हेमविजयगणि, ('विजयप्रशस्ति' आदि काव्योंके कर्ता') वैयाकरण
चूडामणि पंडित लाभविजयगणि, और सूरिजीके प्रधान (दीवान)
गिने जानेवाले श्रीधनविजयगणि आदि तेरह साधु गये थे। आ-
श्चर्यकी बात तो यह है, कि वह दिन भी तेरसका था और साधुओंकी
संख्या भी तेरह ही थी।

बादशाहने दूरहीसे इस साधुमंडलको आते देखा। देखते ही वह
अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़ा हुआ और अपने तीन पुत्रों–शेखूजी,
पहाड़ी (मुराद) और दानियाल–सहित उनके सम्मानार्थ उनके
सामने गया। बड़े आदरके साथ सूरिजीको अपनी बैठक तक ले गया।
उस समय, एक तरफ अकबर, अपने तीन पुत्रों और अबुलफज़ल,

---

1 करणराजका खास नाम रामदास कछवाह था। राजा करण
उसका विरुद था। यह करणराज ५०० सेनाका स्वामी था। जो इनके विषयमें
विशेष जानना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि, वे आईन-इ-अकबरीके प्रथम
भागके अंग्रेजी अनुवादका–जो ब्लोकमॅनका किया हुआ है–४८३ वाँ पृष्ठ देखें।

वीरबल आदि राज्यके बड़े बड़े कर्मचारियों सहित हाथ जोड़े सामने खड़ा था और दूसरी तरफ़ जिनके मुखमंडलसे तपस्तेज–ज्योति चमक रही थी, ऐसे सूरिजी अपने विद्वान् मुनियों सहित खड़े थे। वह दृश्य कैसा था? इसकी कल्पना पाठक स्वयमेव करलें।

इस तरह बादशाहके बाहिरकी बैठकके बाहिरवाले दालानमें—जो संगमरमरका बना हुआ था—दोनों मंडल खड़े रहे। बादशाहने सविनय सूरिजीसे कुशल–मंगल पूछा और कहाः—

"महाराज! आपने मेरे समान मुसलमान कुलोत्पन्न एक तुच्छ मनुष्य पर उपकार करनेकी इच्छासे जो कष्ट उठाया है उसके लिए मैं अहसान मानता हूँ। और कष्ट दिया उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मगर कृपा करके यह तो बताइए कि, मेरे अहमदाबादके सूबेदारने क्या आपको हाथी, घोड़े आदि साधन नहीं दिये थे जिससे आपको इतनी लंबी सफर पैदल ही चल कर पूरी करनी पड़ी।"

सूरिजीने उत्तर दियाः—"नहीं राजन्! आपकी आज्ञाके अनुसार आपके सूबेदारने तो सारे साधन मेरे सामने उपस्थित किये थे; परन्तु साधुधर्मके आधीन होकर मैं उन साधनोंको ग्रहण न कर सका। आपने, यहाँ आनेसे मुझे तकलीफ हुई है, यह कहकर क्षमा माँगी है, यह आपकी सज्जनता है। मगर मुझे तो इसमें कोई ऐसी बात नहीं दिखती जिसके लिए आप क्षमा माँगते या उपकार मानते। कारण,— हमारे साधु जीवनका तो मुख्य कर्तव्य ही 'धर्मोपदेश देना है।' हमें इस कर्तव्यको पूरा करनेके लिए यदि कहीं दूर देशोंमें जाना पड़ता है तो जाते हैं और धर्माचारको सुरक्षित रखनेके लिए शारीरिक कष्ट झेलने पड़ते हैं तो उन्हें भी झेलते हैं। इस कृतिसे हम यह सोच कर संतुष्ट होते हैं कि, हमने अपना कर्तव्य किया है। इसलिए आपको इस विषयमें लेशमात्र भी विचार नहीं करना चाहिए।"

सूरिजीके इस उत्तरसे बादशाहके अन्तःकरण पर सूरिजीकी कर्तव्यनिष्ठताका असाधारण प्रभाव पड़ा। इस विषयमें फिरसे बादशाह सूरिजीको कुछ न कह सका। मगर उसने थानसिंहको कहाः—

" थानसिंह ! तुझे चाहिए था कि तू मुझे सूरिजीके इस कठोर आचारके संबंधमें पहिलेहीसे परिचित कर देता। यदि मुझे पहिले मालूम हो जाता तो मैं सूरिजीको इतना कष्ट न देता। "

थानसिंह टगर टगर बादशाहकी ओर देखता रहा। उसे न सूझा कि, वह क्या उत्तर दे ? उसको मौन देखकर बादशाहने स्वयंही कहाः—

" ठीक ठीक ! थानसिंह ! मैं तेरी बनियाबुद्धि समझ गया। तूने अपना मतलब साधनेहीके लिए मुझको सब बातोंसे अज्ञात रक्खा था। सूरिजी महाराज पहिले कभी इस देशमें आये न थे, इसी लिए उनकी सेवा-भक्तिका लाभ उठानेके लिए तू मेरी बातोंको पुष्ट करता रहा। मुझे यह न समझाया की सूरिजी को यहाँ बुलानेमें कितनी कठिनता है। ठीक है ऐसे महा पुरुषकी भक्तिका लाभ मुझे और तेरे जातिभाइयोंको मिले तो इससे बढ़कर और क्या सौभाग्यकी बात हो सकती है ! "

बादशाहकी इस मधुर और हास्ययुक्त वाणीसे दोनों मंडल—मुनिमंडल और राजमंडल—आनंदित हुए। उसी समय बादशाहने उन दोनों मनुष्योंको—मुइनुद्दीन (मोदी) और कमालुद्दीन (कमाल) को बुलाया, जो कि बादशाहका आमंत्रण पत्र लेकर सूरिजीके पास गये थे। उनसे अकबरने, ' सूरिजीको रस्तेमें कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई थी ? ' ' वे मार्गमें कैसे चलते थे ' आदि बातें पूछीं और इनका उत्तर सुनकर बादशाहको बहुत आनंद हुआ। उसने सूरिजीके उत्कृष्ट आचारकी अन्तःकरणपूर्वक प्रशंसा की और उसके बाद पूछाः—

" महाराज ! आप कृपा करके यह बताइये कि, आपके धर्ममें बड़े तीर्थ कौन२ से माने गये हैं। "

सूरिजीने **शत्रुंजय**, **गिरिनार**, **आबू**, **सम्मेतशिखर** और **अष्टापद** आदि कई मुख्य मुख्य तीर्थोंके नाम बताये और साथ ही थोड़ा थोड़ा उन सबका परिचय भी दिया।

इस तरह खड़े हुए बातें करते बहुतसा वक्त बीत गया। **सूरिजीके** साथ वार्तालाप करके **अकबरको** बहुत आनंद हुआ। उसके चित्तमें एक स्थानमें निश्चिन्तभावसे बैठकर **सूरिजीके** मुखकमलसे धर्मोपदेश सुननेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। इसी लिए उसने अपनी चित्रशालाके एक मनोहर कमरेमें पधारनेकी नम्रताके साथ सूरिजीसे विनति की। सूरिजीने भी उपदेशका उचित अवसर जान उसकी विनति स्वीकार की। फिर बादशाह आदि सभी चित्रशालाके पास गये।

चित्रशालाके दर्वाजे पर एक सुंदर गालीचा बिछा हुआ था। उस पर पैर रख कर चित्रशालामें प्रवेश करना होता था। सूरिजीने उस गालीचेको देखा। वे दर्वाजेके पास जाकर खड़े हो रहे। बादशाह विचार करने लगा कि,—सूरिजी ! किस सबबसे अंदर आते रुक गये हैं? बादशाह कुछ पूछना ही चाहता था, इतने में **सूरिजी** स्वयं बोलेः—

" राजन् ! इस गालीचे पर होकर हम अंदर नहीं जा सकते, कारण—गालीचे पर पैर रखनेका हमको अधिकार नहीं है। "

बादशाहने आश्चर्यके साथ पूछाः—" महाराज ! ऐसा क्यों ? गालीचा बिल्कुल स्वच्छ है। कोई जीव-जन्तु इस पर नहीं है। फिर इस पर चलनेमें आपका हर्ज क्या है ? "

सूरिजीने गंभीरतापूर्वक उत्तर दियाः—" राजन् केवल जैन-साधुओंके लिए ही नहीं बल्के तमाम धर्मोंके साधुओंके लिये यह नियम है कि, '**दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्**[1] [मनुस्मृति, अ० ६ ठा श्लोक ४६ वाँ] अर्थात् जहाँ चलना या बैठना हो वहाँ पहिले देख लेना चाहिए। इस जगह गालीचा बिछा हुआ है इसलिए हम नहीं देख सकते हैं कि, इसके नीचे क्या है? इसीलिए हम इस गालीचे पर नहीं चल सकते हैं।

इस उत्तरसे बादशाह मनही मन हँसा,—ऐसे मनोहर गालीचेके नीचे जीव कहाँसे घुस गये होंगे? फिर उसने सूरिजीको अंदर ले जानेके लिए अपने हाथसे गालीचेका एक पल्ला हटाया। गालीचा हटाते ही बादशाहके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसने देखा कि, वहाँ हजारों कीड़ियाँ फिर रही हैं। उसे अपनी भूल मालूम हुई। सूरिजीके प्रति उसकी जो श्रद्धा थी उसमें सौगुनी वृद्धि हो गई। वह बोल उठाः—" बेशक, सच्चे फकीर ऐसे ही होते हैं! " फिर उसने गालीचा वहाँसे उठवा दिया और रेशमके एक कपड़ेसे वहाँसे कीड़ीयाँ स्वयं हटा दीं। तदनन्तर सूरिजीने उस कमरेमें प्रवेश किया।

बादशाह और सूरिजी अपने अपने उपयुक्त आसन पर बैठे। बादशाहने नम्रतापूर्वक धर्मोपदेश सुननेकी जिज्ञासा प्रकट की। सूरिजीने पहिले कुछ सामान्य उपदेश दिया। और संक्षेपमें देव, गुरु और धर्मका उपदेश देते हुए कहाः—

" जब कोई मकान बनवाता है तब वह तीन चीजोंको—नींव, दीवार और धरनको मजबूत करवाता है। उससे मकान बनवाने वालेको

---

१ दृष्टिसे पवित्र बनी हुई जगह पर पैर रखना चाहिए।

सहसा मकानके गिरनेकी आशंका नहीं रहती । इसी तरहसे मनुष्य-जीवनकी निर्भयताके लिए मनुष्य मात्रको चाहिए कि वह देव, गुरु और धर्मको—उनकी परीक्षा करके—स्वीकार करे । कारण—प्रकृतिका नियम है कि, मनुष्य यदि गुणीकी सेवा—सहवास करता है तो वह गुणी बनता है और यदि निर्गुणीका सेवा—सहवास करता है तो वह निर्गुणी बनता है। इसलिए देव, गुरु और धर्मकी जाँच करके ही उन्हें ग्रहण करना हितावह होता है।

" संसारमें आज जितने मतमतान्तरों और दर्शनोंके झगड़े दिखाई दे रहे हैं, वे सारे ईश्वरको लेकरही हो रहे हैं। यद्यपि ईश्वरको माननेसे कोई इन्कार नहीं करता है तथापि नाम-भेदसे और उसके स्वरूपको भिन्न भिन्न प्रकारसे माननेके कारण, झगड़े खड़े हुए हैं। देव, महादेव, शंकर, शिव, विश्वनाथ, हरि, ब्रह्मा, क्षीणाष्टकर्मा, परमेष्ठी, स्वयंभू, जिन, पारगत, त्रिकालविद्, अधीश्वर, शंभु, भगवान, जगत्प्रभु, तीर्थंकर, जिनेश्वर, स्याद्वादी, अभयद, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, केवली, पुरुषोत्तम, अशरीरी और वीतराग आदि अनेक ईश्वरके नाम हैं। ये सारे ही नाम गुणनिष्पन्न हैं। इन नामोंके अर्थमें किसी को विवाद नहीं है। मगर सिर्फ नाममें विवाद है। देव—महादेव—ईश्वरका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है।

" जिसमें क्लेश उत्पन्न करनेवाला ' राग ' नहीं है; शान्तिरूपी काष्ठको जलानेवाली अग्निके समान ' द्वेष ' नहीं है; शुद्ध—सम्यग्—ज्ञानको नाश करनेवाला और अशुभ आचरणोंको बढ़ानेवाला ' मोह ' नहीं है और तीनलोकमें जो महिमामय है वही महादेव है; जो सर्वज्ञ है, शाश्वत सुखका भोक्ता है और जिसने सब तरहके ' कर्मों ' को क्षय करके मुक्ति पाई है तथा परमात्मपदको प्राप्त किया है वही

महादेव अथवा ईश्वर ह । दूसरे शब्दोंमें कहें तो ईश्वर वह होता है जो जन्म, जरा और मृत्युसे रहित होता है; जिसके रूप, रस, गंध और स्पर्श नहीं होते हैं और जो अनंत सुखका उपभोग करता है।

ईश्वरका जो स्वरूप ऊपर बताया गया है उससे यह बात सहजही समझमें आजाती है कि, ईश्वरके लिए कोई कारण ऐसा बाकी नहीं रह जाता है जिससे उसको फिरसे जन्म धारण कर संसारमें आना पड़े। क्योंकि उसके सारे कर्म क्षय हो जाते हैं। यह नियम है कि,– ' कोई भी आत्मा कर्मोंको नष्ट किये विना संसारसे मुक्त नहीं हो सकता है और जब वह मुक्त हो जाता है तो फिर संसारमें नहीं आ सकता है। ' यह जैनधर्मका अटल सिद्धान्त है। ' संसार ' शब्दसे देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक ये चार गतियाँ समझनी चाहिए। "

इस तरह देवका संक्षेपमें स्वरूप वर्णन करनेके बाद सूरिजीने गुरुका स्वरूप बताते हुए कहा:—

" गुरु वे ही होते हैं जो पाँच महाव्रतों–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह–का पालन करते हैं, भिक्षावृत्तिसे अपना जीवननिर्वाह करते हैं, जो स्वभावरूप सामायिकमें हमेशा स्थिर रहते हैं और जो लोगोंको धर्मका उपदेश देते हैं। गुरुके इन संक्षिप्त लक्षणोंका जितना विस्तृत अर्थ करना हो, हो सकता है। अर्थात् साधुके आचार–विचारों और व्यवहारोंका समावेश उपर्युक्त पाँच बातोंमें हो जाता है। गुरुमें दो बातें–जो सबसे बड़ी हैं–तो होनी ही चाहिए। वे हैं (१) स्त्रीसंसर्गका अभाव और (२) मूर्च्छाका त्याग। जिसमें ये दो बातें न हो वह गुरु होने या मानने योग्य नहीं होता है। इन दो बातोंकी रक्षा करते हुए गुरुको अपने आचार–व्यवहार पालने चाहिए। गुरुके लिये और भी बातें कही गई हैं। वह अच्छे

स्वादु और गरिष्ठ भोजनका वारवार उपयोग न करे, दुस्सह कष्टको भी शान्तिके साथ सहे, इक्का, गाड़ी, घोड़ा, ऊँट, हाथी और रथ आदि किसी भी तरहके वाहनकी सवारी न करे, मन, वचन और कायसे किसी जीवको कष्ट न दे, पाँचों इन्द्रियाँ वशमें रखे, मान-अपमानकी परवाह न करे, स्त्री, पशु और नपुंसकके सहवाससे दूर रहे, एकान्त स्थानमें स्त्रीके साथ वार्तालाप न करे, शरीर सजानेकी ओर प्रवृत्त न हो, यथाशक्ति सदैव तपस्या करता रहे, चलते फिरते, उठते बैठते और खाते पीते, प्रत्येक क्रियामें उपयोग रक्खे, रातमें भोजन न करे, मंत्रयंत्रादिसे दूर रहे और अफीम वगेरहके व्यसनोंसे दूर रहे। ये और इसी तरह अनेक दूसरे आचार साधुको-गुरुको पालने चाहिए। थोड़े शब्दोंमें कहें तो,-"**गृहस्थानां यद्भूषणं तत् साधूनां दूषणम्।**" (गृहस्थोंके लिये जो भूषण है साधुओंके लिए वही दूषण रूप है।)"

सूरिजीने इस मौके पर यह बात भी स्पष्ट शब्दोंमें कह दी थी कि,-मैं यह नहीं कहना चाहता हूँ कि गुरुके आचरण बतलाये गये हैं वे सभी हम पालते हैं तो भी इतना जरूर है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार यथासाध्य उन्हें पालनेका प्रयत्न हम अवश्यमेव करते हैं।

फिर सूरिजी धर्मका लक्षण बतलाते हुए बोलेः—

"संसारमें अज्ञानी मनुष्य जिस धर्मका नाम लेकर क्लेश करते हैं, वास्तवमें वह धर्म नहीं है। जिस धर्मके द्वारा मनुष्य मुक्त बनना और सुखलाभ करना चाहते हैं उस धर्ममें क्लेश नहीं हो सकता है। वास्तवमें धर्म वह है जिससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। [**अन्तः-करणशुद्धित्वं धर्मत्वम्**] यह शुद्धि चाहे किन्हीं कारणोंसे हो।

दूसरे शब्दोमें कहें तो धर्म वह है जिससे विषयवासनासे निवृत्ति होती है। [विषयनिवृत्तित्वं धर्मत्वम्।] यह धर्मका लक्षण है। इसमें क्लेशको कहाँ अवकाश है? इन लक्षणोंवाले धर्मको माननेसे क्या कोइ इन्कार कर सकता है? कदापि नहीं। संसारमें असली धर्म यही है और इसीसे इच्छित सुख–मुक्तिसुख प्राप्त हो सकता है।"

सूरिजीके इस उपदेशका अकबरके हृदयपर गहरा प्रभाव हुआ। उसने मुक्त कंठसे स्वीकार किया कि,–"यह पहिला ही मौका है जो देव और धर्मका सच्चास्वरूप मेरी समझमें आया है। आजसे पहिले मुझे किसीने इस तरह वास्तविक स्वरूप नहीं समझाया था। आज तक जो आये उन्होंने अपना ही कहा। आजका दिन मुबारिक है कि आप आये और मैं देव, गुरु और धर्मके असली स्वरूपका जानकार हुआ।"

इस तरह अनेक प्रकारसे बादशाहने सूरिजीकी प्रशंसा की। उनके उत्तम पाण्डित्य और चारित्रके लिए उसके हृदयमें आदरके भाव स्थापित हुए। उसको निश्चय हो गया कि ये असाधारण महा-पुरुष हैं।

उसके बाद बादशाहने सूरिजीसे पूछा:—" महाराज! मेरी मीन राशिमें शनिश्चरजीकी दशा बैठी है। लोग कहते हैं कि, यह दशा दुर्जन और यमराजके समान हानि पहुँचानेवाली है। मुझे इसका बहुत ज्यादा डर है। इससे आप महरबानी करके कोई ऐसा उपाय कीजीए जिससे यह दशा टल जाय।"

सूरिजीने स्पष्ट शब्दोंमें कहा:—"सम्राट्! मेरा विषय धर्म है, ज्योतिष नहीं। इस बातका संबंध ज्योतिषसे है। इसलिए मैं इस विषयमें कुछ कहने या करनेमें असमर्थ हूँ। आप किसी ज्योतिषीसे पूछिए। वह योग्य उपाय बतायगा और करेगा।"

बादशाह जो बात चाहता था वह न हुई। वह चाहता था कि, सूरिजी उसको कोई ऐसा मंत्र या तावीज देते जिससे उस पर शनिकी दशाका असर न होता। मगर सूरिजीने जब यह उत्तर दिया कि, यह मेरा विषय नहीं है तब बादशाहने अपनी इच्छा शब्दोंद्वारा व्यक्त की:—

" महाराज ! मुझे ज्योतिषशास्त्रीसे कोई मतलब नहीं है। आप मुझे कोई ऐसा तावीज बना दीजिए जिससे शनिकी खराब दशा मुझ पर असर न करे। "

सूरिजीने उत्तर दिया:—" यंत्र—मंत्र करना हमारा काम नहीं है। हाँ हम यह कह सकते हैं कि, यदि आप जीवों पर महरबानी करेंगे, उन्हें अभय बनायँगे तो आपका भला ही होगा। कारण—प्रकृतिका नियम है कि, जो दूसरोंकी भलाई करता है उसका हमेशा भला ही होता है। "

बादशाहके बहुत कुछ कहने सुनने और आग्रह करने पर भी जब सूरिजी अपने आचारके विपरीत कार्य करनेको तत्पर नहीं हुए तब अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अबुल्फ़ज़लके सामने आचार्य महाराजकी भूरि भूरि प्रशंसा की। बादशाहने सूरिजीके संबंधकी और भी कई बातें—जैसे सूरिजीके शिष्य कितने हैं? इनके गुरुका क्या नाम है? आदि—साधुओंसे दर्याफ्त कर लीं।

तत्पश्चात् अकबरने अपने ज्येष्ठ पुत्र शेखूजीके द्वारा अपने सारे ग्रंथ वहाँ मँगवाये। शेखूजीने ग्रंथ संदूकमेंसे निकाल निकाल कर खानखानाके[1] साथ बादशाहके पास भेज दिये। सूरिजी और

१ खानखानाका पूरा नाम 'खानखानान मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम' था। उसके पिताका नाम बेहरामखाँ था। ज़ब उसने गुजरातको जीता था तब

विमलहर्ष उपाध्याय आदि साधुमंडलको ये ग्रंथ देखकर बड़ा आनंद हुआ। कहा जाता है कि, उसके भंडारमें जैन और दूसरे दर्शनोंके भी अनेक प्राचीन ग्रंथ थे।

सूरिजीने पूछाः—" आपके पास ऐसे उत्तम ग्रंथोंका भंडार कैसे आया ?"

बादशाहने उत्तर दियाः—" हमारे यहाँ पद्मसुंदर नामके नागपुरीय तपागच्छके एक विद्वान् साधु थे। वे ज्योतिष, वैद्यक और सिद्धांतमें अच्छे निपुण थे। उनका स्वर्गवास हो गया तभीसे मैंने उनके ग्रंथ सँभालकर रक्खे हैं। आप अनुग्रह करके अब इन ग्रंथोंका स्वीकार करें।"

बादशाहकी इस उदारवृत्तिके लिये सूरिजीको बहुत आनंद हुआ। मगर पुस्तकें लेनेसे उन्होंने इन्कार कर दिया; क्योंकि अपनी पुस्तकें करके रखनेसे मोह–ममत्व हो जानेका भय रहता है। उन्होंने कहाः—" हम जितने ग्रंथ उठा सकते हैं उतने ही अपने पास रखते हैं। विशेष नहीं। हमको प्रायः जिन ग्रंथोंकी आवश्यकता पड़ती है वे हमें विहारस्थलके भंडारोंमेंसे मिलजाते हैं। एक बात और भी है। इतनी पुस्तकें यदि हम अपनी करके रक्खें तो संभव है कि, उन पर हमारा ममत्व होजाय, इसलिए यही श्रेष्ठ है कि, हम ऐसे कारणोंसे दूर रहें।"

ग्रंथोंके लिए झगड़ा करनेवाले आजकलके महात्माओंको

उसपर प्रसन्न होकर बादशाहने उसे 'खानखाना' का खिताब दिया था और पाँच हजार फौजका सेनापति भी बनाया था। इसके लिए जो विशेष जानना चाहते हैं वे 'आईन–इ–अकबरी' के ब्लोकमॅनकृत अंग्रेजी अनुवादके प्रथम भागका ३३४ वाँ पृष्ठ और 'मीराते अहमदी' के गुजराती अनुवादका १५१–१५४ पृष्ठ देखें।

श्रीहीरविजयसूरिजीके उपर्युक्त शब्दोंपर ध्यान देना चाहिए। समय अपना कार्य किये ही जाता है। उस कालमें न तो वर्तमान जितने पुस्तकालय थे और न साधन ही; तो भी उस कालके साधु मोह–मायाके भयसे पुस्तक–संग्रहसे कितने दूर रहते थे सो सूरिजीके उपर्युक्त वचनोंसे स्पष्ट होता है।

सूरिजीकी इस निःस्पृहतासे यद्यपि बादशाह बहुत खुश हुआ तथापि वह बारबार यही प्रार्थना करता रहा कि,—" आप हर सूरतसे मेरी इस छोटीसी भेटको मंजूर करहीं लीजिए।"

अबुलफ़ज़लने भी कहाः—"यद्यपि आपको पुस्तकोंकी आवश्यकता नहीं है तथापि पुण्यकार्य समझकर आप इनको ग्रहण करें। यदि आप ये ग्रंथ ग्रहण करेंगे तो बादशाहको बहुत खुशी होगी।"

सूरिजीने विशेष वाक्य–व्यय न कर ग्रंथ स्वीकार किये और कहाः—" इतने ग्रंथ हम कहाँ कहाँ लिए फिरेंगे? इन ग्रंथोंको रखनेके लिए एक भंडार बना दिया जाय तो उत्तम हो। हमें जब किसी ग्रंथकी आवश्यकता होगी, पढ़नेके लिए मँगा लेंगे।"

बादशाहने भी यह बात पसंद की। सबकी सलाहसे एक भंडार बनाया गया और उसका कार्य थानसिंहको सोंपा गया। 'विजयप्रशस्तिकाव्य' के लेखकके कथनानुसार यह भंडार आगरेमें अकबरके नामहीसे खोला गया था।

बादशाहके साथकी पहिली मुलाकात इस तरह समाप्त हुई। सूरिजी बड़ी धूमधामके साथ उपाश्रय गये। श्रावकोंमें आनंद और उत्साह फैल गया। थानसिंह आदि कई श्रावकोंने इस शुभ प्रसंगकी खुशीमें दान–पुण्य किया।

थोड़े दिन फतेहपुर–सीकरीमें रहनेके बाद सूरिजी आगरे

पधारे । फतेहपुर और आगरेके बीचमें चौबीस माइलका अन्तर है । सूरिजीने वह चातुर्मास आगरेहीमें किया था । पर्युपणके दिन जब निकट आये तब आगरेके श्रावकोंने मिलकर विचार किया कि, बादशाहकी सूरिजी महाराज पर बहुत भक्ति है, इसलिए महाराजकी ओरसे यदि पर्युपणोंमें जीवहिंसा बंद करनेके लिए बादशाहको कहा जायगा तो बादशाह जरूर बंद करा देगा । श्रावकोंने सूरिजीसे भी इस विषयमें सम्मति ली । सूरिजीकी सम्मति मिलने पर अमीपाल दोसी आदि कई मुखिया श्रावक बादशाहके पास गये और श्रीफल आदि भेट कर बोले:—" सूरिजी महाराजने आपको धर्मलाभ कहलाया है । " सूरिजीका आशीर्वाद सुन कर बादशाह प्रसन्न हुआ और उत्सुकताके साथ पूछने लगा:—" सूरिजी महाराज सकुशल हैं न ? उन्होंने मेरे लिए कोई आज्ञा तो नहीं की है ? " अमीपाल दोसीने उत्तर दिया:—" महाराज बड़े आनंदमें हैं । उन्होंने अनुरोध किया है कि,—हमारे पर्युपणोंके पवित्र दिन निकट आ रहे हैं, उनमें कोई मनुष्य किसी जीवकी हिंसा न करे । यदि आप इस बातकी मुनादि करा देंगे तो अनेक मूक जीव आपको आशीर्वाद देंगे और मुझे बड़ा आनंद होगा । "

बादशाहने आठ दिन हिंसा न हो इस बातका फर्मान लिख दिया । आगरेमें यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि, आठ दिन तक कोई आदमी किसी भी जीवको न मारे । संवत् १६३९ के पर्युपणके आठ दिन तकके लिए यह अमारी घोपणा हुई थी । 'हीरसौभाग्यकाव्य' और ' जगद्गुरु काव्य ' में इसका उल्लेख नहीं है । मगर 'विजयप्रशस्ति महाकाव्य'में इसका वर्णन है। 'हीरविजयसूरिरास'में ऋपभदास कवि लिखते हैं कि, केवल पाँच ही दिन तक जीवहिंसा नहीं करनेकी घोपणा हुई थी ।

चातुर्मास पूर्ण होने पर सूरिजी 'सौरीपुर' की यात्रा करके पुनः आगरे आये। वहाँ कई प्रतिष्ठादि कार्य कराकर कुछ दिन बाद 'फतेहपुर-सीकरी' गये। इसबार सूरिजी वादशाहके साथ कई वार मिले थे।

यह तो कहनेकी अब आवश्यकता नहीं है कि, अबुलफ़ज़ल एक विद्वान् मनुष्य था। इसको तत्त्वचर्चा करनेमें जितना आनंद आता था उतना दूसरी किसी भी वातमें नहीं आता था। और तो और धर्मचर्चा छोड़ कर खानेपीनेके लिए जाना भी उसे बुरा लगता था। वह धर्मचर्चा जिज्ञासुकी तरह करता था। अपनी मान्यता दूसरेको मनानेके लिए वितंडावादी वनकर नहीं। इसीलिए समय समय पर वह हीरविजयसूरिके साथ धर्मचर्चा करता था। सूरिजीको भी उसके साथ वातचीत करनेमें वड़ी प्रसन्नता होती थी। क्योंकि अबुलफ़ज़ल जैसे जिज्ञासु था वैसे ही बुद्धिमान् भी था। इसकी बुद्धि तत्काल ही वातकी तेह तक पहुँच जाती थी। कठिनसे कठिन विषयको भी वह सहजहीमें समझ जाता था। सचमुच ही विद्वानको विद्वान्के साथ वार्तालाप करनेमें वड़ा आनंद होता है।

एकवार अबुलफ़ज़लके महलमें वह और सूरिजी तत्त्वचर्चा कर रहे थे। अकस्मात् वादशाह वहाँ चला गया। अबुलफ़ज़लने उठ कर वादशाहको अभिवादन किया। वादशाह उचित आसन पर वैठा। अबुलफ़ज़लने सूरिजीकी विद्वत्ताकी भूरि भूरि प्रशंसा की। प्रशंसा सुनकर वादशाहके अन्तःकरणमें अज्ञात प्रेरणा हुई कि, जो कुछ सूरिजी माँगें वह उन्हें प्रसन्न करनेके लिए देना चाहिए। उसने सूरिजीसे प्रार्थनाकी,—"महाराज! आप अपना अमूल्य समय खर्च कर हमको उपदेश करनेका जो उपकार करते हैं उसका कोई वदला नहीं हो सकता है। तो भी मेरे कल्यांणार्थ आप जो कुछ काम मुझसे

बतायँगे वह मैं सानंद करूंगा। फर्माइए मैं कौनसी ऐसी सेवा करूं जिससे आप खुश हों ? ”

अकबरके समान सम्राट्की इतनी भक्ति, इतनी उत्सुक प्रार्थना देखकर भी सूरिजीको अपने निजी-स्वार्थका खयाल नहीं आया। उस समय यदि वे चाहते तो अपने लिए, अपने गच्छके लिए या अपने अनुयायियोंके लिए, बादशाहसे बहुत कुछ कार्य करवा लेते; परन्तु सूरिजीने तो ऐसी कोई बात न की। वे संसारमें सर्वोत्कृष्ट कार्य जीवोंको अभय बनानेका समझते थे। इसलिए जब जब बादशाहने सूरिजीसे कोई सेवाकी इच्छा प्रकट की तभी तब उन्होंने बादशाहसे जीवोंको अभय बनानेका—जीवोंको आराम पहुँचानेका ही कार्य कराया।

इस समय बादशाहने जब सेवा करनेकी इच्छा प्रकट की तब सूरिजीने कहाः—“ तुम्हारे यहाँ हजारो पक्षी दरबोंमें बंद हैं। उन बेचारोंको मुक्त कर दो।” बादशाहने सूरिजीके इस अनुरोधका—उपदेशका पालन किया। ‘ फतेहपुरसीकरी ’ में एक ‘ डाबर ’ नामका बहुत बड़ा तालाब है। उसके लिए उसने हुक्म दिया कि, कोई व्यक्ति उसमेंसे मछलियाँ न पकड़े। इस आज्ञाको तत्काल ही व्यवहारमें लाने के लिए श्रीधनविजयजी कुछ सिपाहियोंको साथ ले कर तालाब पर गये और उन लोगोंको—जो उस समय वहाँ मछलियाँ पकड़ रहे थे—हटा दिया। 'हीरसौभाग्यकाव्य' के कर्त्ता लिखते हैं कि, डाबर तालाबमें होनेवाली हिंसा बादशाहने श्रीशान्तिचंद्रजी के उपदेशसे बंद की थी।

उस समय शेख अबुलफ़ज़लके मकानमें सूरिजी और बादशाहके आपसमें बहुत देर तक धर्मचर्चा होती रही। एकान्त होनेसे जैसे अकबरने खुले दिलसे अपनी शंकाएँ पूछी, उसी तरह सूरि-

जीने भी यथोचित शब्दोंमें उसका समाधान किया और उसको उपदेश दिया।

उस समय वार्तालापके बीचमें सूरिजीने प्रसंग देखकर पर्युषण के आठ दिनों तक सारे राज्यमें, जीवहिंसा बंद करनेका फर्मान निकालनेका बादशाहको उपदेश दिया। बादशाहने सूरिजीके उपदेशानुसार पर्युषणके आठ दिन ही नहीं बल्कि, अपने कल्याणार्थ चार दिन और जोड़कर १२ दिनका फर्मान निकालनेकी स्वीकारता दी (भादवा वदी १० से भादवा सुदी ६ तकके बारह दिन)। उस समय अबुलफ़ज़लने बादशाहसे नम्रता पूर्वक कहा:— " हुजूर यह हुक्म इस तरहका होना चाहिए जो आगे हमेशाके लिए काम आवे।" बादशाहने कहा:—अच्छी बात है, यह फर्मान तुम्हीं लिखो।" अबुलफ़ज़लने फर्मान लिखा। उसके बाद वह शाही महोर और बादशाहके हस्ताक्षरके साथ सारे सूबोंमें भेजा गया।

उस फर्मानमें महोरदस्तखत हो गये, उसके बाद वह राज्यसभामें पढ़ा गया। फिर बादशाहने अपने हाथोंसे उसे थानसिंह को सौंपा। थानसिंहने सम्मानपूर्वक उसे मस्तकपर चढ़ाया और बादशाहको फूलों और मोतियोंसे बधाया।

बादशाहके इस फर्मानसे लोगोंमें अनेक प्रकारकी चर्चाएँ होने लगीं। कई कहते थे,—सूरिजी कितने प्रतापी हैं कि, बादशाहको भी अपना पूरा भक्त बना लिया; कई कहते थे,—सूरिजीने बादशाहको आकाशमें उसकी सात पीढीके पुरुषाओंको बताया; कई कहते थे,—सूरिजीने बादशाहको सोनेकी खानें बताई और कई यह भी कहते थे कि, सूरिजीने एक फकीरकी टोपी उड़ाकर बादशाहको चमत्कार दिखाया, इसीलिए वह इनका अनुयायी हो गया है।

जनतामें ऐसी अनेक बातें फैल गई थीं। पीछेके कई जैनलेखकोंने भी परंपरागत उपर्युक्त किंवदन्तियोंको सत्य मानकर, हीरविजयसूरिके विषयमें लिखते हुए, किसी न किसी, इसी प्रकारके, चमत्कारका उल्लेख किया है। मगर ये बातें ऐतिहासिकसत्यसे विरुद्ध हैं। हीरविजयसूरिने मंत्र-यंत्र या इसी तरहकी अन्य किसी विद्याद्वारा बादशाहको कभी कोई चमत्कार नहीं दिखाया था। उन्होंने तो कईबार बादशाहके अनुरोधके उत्तरमें कहा था कि,-'यंत्र-मंत्र करना हमारा धर्म नहीं है।' वे एक पवित्र चारित्रवाले आचार्य थे। वे अपने चारित्रके प्रभावहीसे हरेक मनुष्यके हृदयमें सद्भाव उत्पन्न कर सकते थे। उनके मुखारविंद पर ऐसी शान्ति विराजती थी कि, क्रोधीसे क्रोधी मनुष्य भी उसको देख कर शान्त हो जाता था। इस बातको हरेक जानता है कि,—मनुष्योंके अन्तःकरणोंमें जैसा उत्तम प्रभाव एक पवित्र चारित्र डाल सकता है वैसा प्रभाव सैकड़ों मनुष्योंके उपदेश भी नहीं डाल सकते हैं। शुद्ध आचरण-पवित्र चारित्र-के बिना जो मनुष्य उपदेश देता है उसके उपदेशको लोग हँसीमें उड़ा दिया करते हैं। सूरिजीके चारित्र-बलसे हरेक तरहके आदमी उनके आगे सिर झुका देते थे; चारित्रका ही यह प्रभाव था कि, बादशाह सूरिजीके वचनोंका ब्रह्मवचनके तुल्य सत्कार करता था।

यह तो प्रसिद्ध ही है कि, हीरविजयसूरि सर्वथा त्यागी और निःस्पृह महात्मा थे। इसलिए बादशाह उनकी भक्ति करने लग गया था, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। क्योंकि अकबरमें यह एक खास गुण था कि, वह उस मनुष्यका बहुत ज्यादा सम्मान करता था जो निःस्पृही, निर्लोभी और जगत्के सारे प्राणियोंको अपने समान देखनेवाला होता था। अपने इस गुणके कारण ही अकबर हीरविजय सूरिका सम्मान करता था और उनके उपदेशानुसार कार्य करता था।

अकबरके समान मुसलमान वादशाहको ऐसा उपदेश—किसी तरहके स्वार्थ विना केवल जगत्के कल्याणहीका—दूसरोंकी भलाईके कार्योंहीका उपदेश जैन साधुके समान त्यागी—निःस्पृही पुरुषके सिवा दूसरा कौन दे सकता था ? ”

वादशाहने हीरविजयसूरिके उपदेशसे पर्युषणके आठ दिन और दूसरे चार दिन ऐसे वारह दिन (भादवा वदी १० से भादवा सुदी ६) तक अपने समस्त राज्यमें, कोई मनुष्य किसी भी जीवकी हिंसा न करे, इस वातकी जो आज्ञा प्रकाशित की थी उसकी छः नकलें करवाई गई । उनका इस तरह उपयोग हुआ—१ गुजरात और सौराष्ट्र के सूवेमें, २ दिल्ली, फतेहपुर आदिमें, ३ अजमेर, नागोर आदिमें, ४ मालवा और दक्षिणमें ५ लाहोर, मुलतानमें भेजी गई और ६ खास सूरिजी महाराजको सौंपी गई ।

ऊपर कहा जा चुका है कि, अवुलफज़लके मकान पर वादशाह और सूरिजीके वीचमें वहुत ही खुले दिलसे धर्मचर्चा और वार्तालाप हुआ था । उस समय सूरिजीने उपदेश देते हुए कहा था कि, “ मनुष्य मात्रको सत्यका स्वीकार करनेकी तरफ रुचि रखनी चाहिए । अज्ञानावस्थामें मनुष्य अनेक दुष्कर्म करता है; परन्तु ज्ञान होने पर उसे अपने कृत दुष्कर्मोंका पश्चात्ताप और सत्यका स्वीकार करना ही चाहिए । उसे यह दुराग्रह न करना चाहिए कि, मैं चिरकालसे अमुक मार्ग पर चलता आया हूँ; मेरे वापदादे इसी मार्गपर चले आ रहे हैं इसलिए मैं इस वातका त्याग नहीं कर सकता हूँ । ”

सूरिजीकी इसी वातको पुष्ट करनेवाली एक वात वादशाहने भी कही थी । वह मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद होनेसे यहाँ लिखी जाती है ।

उसने कहा:—" महाराज! मेरे जितने सेवक हैं वे सारे मांसाहारी हैं। इसलिए उन्हें आपका बताया हुआ जीवदयामार्ग अच्छा नहीं लगता। वे कहते हैं कि,–अपने पुरुषा जिस कामको करते आये हैं उसे छोड़ना अनुचित है। एकबार सारे सर्दार, उमराव इकट्ठे हुए थे उन्होंने मुझसे कहा,–' अपने बापका सच्चा बेटा वही होता है जो पहिले से जो मार्ग चला आता है उसको नहीं छोड़ता है।' उन्होंने एक उदाहरण भी दिया था। वह यह है,—

किसी देशकी राजधानीके पाटनगरके पास एक पहाड़ था। वहाँके बादशाहने हुक्म दिया कि, यह पहाड़ हवा रोकता है इसलिये इसको नष्ट कर दो। लोगोंने सुरंगें लगालगा कर उस पहाड़को खोद डाला। उस जगह खुला मैदान हो गया। वहाँसे थोड़ी ही दूरी पर समुद्र था। एक बार समुद्र चढ़ा। पहिले उसका पानी पहाड़से रुका रहता मगर इस समय पहाड़के अभाव पानीका प्रबल चढ़ाव शहरमें फिर गया। लोग बह गये, नगर नष्ट हो गया। तात्पर्य कहनेका यह है कि, प्राचीनकालसे स्थित पहाड़को बादशाहने तुड़वाडाला उसका परिणाम सिर्फ़ बादशाहहीको नहीं बल्कि सारे नगरको भोगना पड़ा।"

मुझे उमरावोंने जब यह किस्सा सुनाया तब मैंने भी उनकी बातका खंडन और अपनी बातका मंडन करनेके लिए एक कथा सुनाई। मैंने कहा:—

" सुनो, एक बादशाह था वह अंधा था। उसके एक लड़का हुआ। वह भी अंधा ही हुआ। मगर उसके पोता जन्मा वह सूझता–दोनों आँखोंवाला था। अब बताओ कि, तुम्हारे कथनानुसार उसको अंधा होना चाहिए या नहीं? क्योंकि उसके बाप और दादा तो अंधे थे।"

एक दूसरी बात और भी है,—"मेरी सातवीं पीढ़ीके महापुरुष तैमूर थे। वे पहिले पशुओंको चराया करते थे। एकबार एक फकीर यह आवाज देता हुआ आया कि,—'जो मुझे रोटी दे मैं उसे बादशाहत दूँ।' तैमूरने रोटी दी। फकीरने उनके सिरपर मुकुट धरकर कहा:—" जा, मैंने तुझे बादशाह बनाया।"

" एकबार एक चरवाहेने किसी दुबले घोड़ेके चाबुक मारा। उसका तिरस्कार करनेके लिए हजारों चरवाहे जमा हो गये। तैमूर भी उन्हींमें था। वे जिस जंगलमें जमा हुए थे उसीमेंसे एक क़ाफ़िला ऊँटों पर माल लाद कर गुजरा। तैमूरने चरवाहोंको उकसाकर सारा माल लूट लिया। वहाँ के बादशाहके पास फर्याद पहुँची। बादशाहने फौज भेजी। तैमूरकी सर्दारीमें चरवाहोंने फौजका मुकाबिला किया और फौजको भगा दिया। बादशाह स्वयं इन चरवाहे डाकुओंका दमन करने आया। मगर बादशाह वहीं काम आया और तैमूर वहाँका बादशाह बन बैठा।"

"बताओ हमें भी तैमूरकी प्रारंभिक अवस्थाके माफिक गुलामी करनी चाहिए या बादशाही?"उमराव, खान, वजीर, सर्दार वगेरा जितने वहाँ बैठे थे सभीने यही उत्तर दिया कि,—अमुक रीति पुरानी हो तो भी यदी वह खराब हो तो त्याज्य है।"

" महाराज! वास्तविक बात तो यह है कि लोग मांसाहार केवल अपनी रसना इन्द्रियको तृप्त करनेके लिए करते हैं। वे यह नहीं देखते कि, हमारी तुच्छ तृप्तिके लिए विचारे कितने निर्दोष जीवोंका संहार हो जाता है।"

" महाराज! मैं दूसरोंकी क्या कहूँ, मैंने खुदने भी ऐसे ऐसे पाप किये हैं कि, जैसे पाप संसारमें शायद ही किसी दूसरेने किये

होंगे । जब मैंने चितोड़गढ़ फतेह किया था तब मैंने जो पाप किये थे वे बयानसे बाहिर हैं । उस समय राणाके मनुष्यों और हाथी घोड़ोंकी तो बात ही क्या थी ? मैंने चितोड़के एक कुत्ते तकको भी मारे विना नहीं छोड़ा था । चितोड़में रहनेवाला कोई भी जीव मेरी फौजकी दृष्टिमें आता तो वह कत्ल ही होता । महाराज ! ऐसे ही ऐसे पाप करके मैंने कितने ही किले जीते हैं । अलावा इसके शिकारमें भी मैंने कोई कसर नहीं की । गुरुजी ! मेड़ताके रस्ते आते हुए आपने मेरे बनवाये हुए उन हजीरोंको * देखे होंगे, जिनकी संख्या ११४ हैं । हरेक हजीरे पर हरिणोंके पाँच पाँच सौ सींग लगाये गये हैं । मैंने छत्तीस हजार शेखोंके घरमें भाजी बँटाई थी । उसमें हरेक घरमें एक हिरणका चमड़ा, दो सींग और एक महोर दी थी ।

* हजीरोंके संबंधमें ‘ श्रीहीरविजयसूरिरासमें ’ कवि ऋषभदासने अकबरके मुखसे निम्नलिखित शब्द कहलाये हैं,—

“ देखे हजीरे हमारे तुम्ह, एकसोचउद कीए वे हम्म;
अकेके सिंग पंचसें पंच पातिग करता नहि खलखंच ॥७॥”

बंदाउनीके कथनसे इस बातको पुष्टि मिलती है । वह लिखता है:—

“ His Majesty's extreme devotion induced him every year to go on a pilgrimage to that city, and so he ordered a palace to be built at every stage between Agrah and that place, and a pillar to be erected and a well sunk at every coss. ” (Vol. II by W. H. Lowe, M. A. P. 176.)

भावार्थ—प्रतिवर्ष बादशाह अपनी अत्यन्त भक्तिके कारण उस नगर (अजमेर) जाता था और इसीलिए उसने आगरे और अजमेरके बीचमें स्थान स्थान पर जहाँ जहाँ मुकाम होते थे—महल और एक एक कोसकी दूरीपर एक कूवा व एक स्तंभ (हजीरा) बनवाया था ।

आगरे और अजमेरके बीचमें २२८ माइलका अंतर है । इस हिसाबसे भी ११४ हजीरे बनवानेका कवि ऋषभदासका कथन सत्य प्रमाणित होता है ।

इसीसे आप समझ सकते हैं कि मैंने कितनी शिकारें की हैं और उनमें कितने जीवोंको मारा है। महाराज! मैं अपने पापोंका क्या वर्णन करूँ ? मैं हमेशा पाँच पाँच सौ चिड़ियोंकी जीभें खाता था; परन्तु आपके दर्शनके और आपके उपदेशामृतपान करनेके वाद मैंने वह पापकार्य करना छोड़ दिया है। आपने महती कृपाकरके मुझे जो उत्तम मार्ग दिखाया है उसके लिए मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ। महाराज! शुद्ध अन्तःकरणके साथ कहता हूँ कि, मैंने वर्षभरमें से छः मास तक मांसाहार नहीं करनेकी प्रतिज्ञा ली है। और इस वातका प्रयत्न कररहा हूँ कि, हमेशाके लिए मांसाहार करना छोड़ दूँ। मैं सच कहता हूँ कि, मांसाहारसे मुझे अव वहुत नफरत होगई है।"

वादशाहकी उपयुक्त वातें सुनकर सूरिजीको अत्यन्त आनंद हुआ। उन्होंने उसको उसकी सरलता और सत्यप्रियताके लिए पुनः पुनः धन्यवाद दिया।

सूरिजीके उपदेशका वादशाहके हृदयपर कितना प्रभाव पड़ा सो, वादशाहके उपर्युक्त हार्दिक कथनसे स्पष्टतया समझमें आजाता है। वादशाहके दिलमें मांसाहारके लिए नफरत पैदा करानेके काममें यदि कोई सफल हुआ था तो वे हीरविजयसूरिही थे।

इस तरह हीरविजयसूरिजीके समागमके वाद ही वादशाहके आचार-विचार और वर्तावमें वहुत वड़ा परिवर्त्तन होना प्रारंभ होने लगा था। शनैः शनैः इस परिवर्तनका प्रभाव कहाँतक हुआ सो हम अगले प्रकरणमें वतायँगे। यहाँ तो हम अवुलफ़ज़लके मकानमें सूरिजी और वादशाहके आपसमें जो ज्ञानगोष्ठी हुई थी उसीका आस्वादन लेंगे।

वादशाहने प्रसंगवश कहाः—" महाराज! कई लोग कहते हैं

कि,–'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमंदिरम्' (हाथी मार डाले तो भी जैनमंदिरमें नहीं जाना चाहिए।) इसका सबब क्या है?"

बादशाहकी बात सुनकर सूरिजी जरा हँसे और बोले:– "राजन्! मैं क्या उत्तर दूँ? आप बुद्धिमान हैं, इसलिए स्वयमेव समझ सकते हैं। तो भी मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि,– उक्त वाक्य कौनसी प्राचीन श्रुति, स्मृतिका है? किसी शास्त्रमें यह बात नहीं है। किसी द्वेषी मनुष्यकी यह एक कल्पना मात्र है। इसका सीधा उत्तर देनेके लिए जैनलोग भी कह सकते हैं कि,–'सिंहेनाऽऽ-ताड्यमानोऽपि न गच्छेच्छैवमंदिरम्।' (सिंहने घेर लिया हो तो भी शिवमंदिरमें नहीं जाना चाहिए।) मगर इसका परिणाम क्या है? केवल लट्ठबाजी और झगड़ा। राजन्! भारतवर्षकी अवनतिका कारण यदि कुछ है तो सिर्फ यही है। जैनियोंको हिन्दुओंने नास्तिक बताया। हिन्दुओंको जैनियोंने मिथ्यादृष्टि कहा। मुसलमानोंने हिन्दु-ओंको काफिर कहा। हिन्दुओंने उन्हें म्लेच्छ बताया। इस तरह हरेक मजहबवाला दूसरेको झूठा–नास्तिक बताता है। मगर ऐसे विचार रखनेवाले लोग बहुत ही कम होंगे कि,— 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्।' (एक बालकका भी श्रेष्ठ वचन ग्रहण करना चाहिए।) मनुष्य मात्रको जहाँसे अच्छी बात मिलती हो वहाँसे ले लेनी चाहिए। जो ऐसा करता है वही अपने जीवनमें उत्तमोत्तम गुण संग्रह कर सकता है। मगर विपरीत इसके यदि सभी एक दूसरेको नास्तिक या झूठा ठहरानेके ही प्रयत्नमें लगे रहेंगे तो फिर संसारमें सच्चा या आस्तिक कौन रहेगा? इसलिए एक दूसरेको झूठा या नास्तिक बतानेकी भ्रान्तिमें न पड़ यदि सत्य वस्तुका ही प्रकाश किया जाय तो कितना लाभ हो? वास्तवमें तो नास्तिक मनुष्य वही होता है जो आत्मा,

पुण्य, पाप, ईश्वर आदि पदार्थोंको नहीं मानता है। जो इन पदार्थोंको मानते हैं वे नास्तिक नहीं कहला सकते हैं।"

सूरिजीका यह उत्तर सुनकर बादशाहको बहुत आनंद हुआ। उसको विश्वास हुआ और उसने **अबुलफ़ज़ल**को कहाः—"अबतक मैं जितने विद्वानोंसे मिला उन सबने यही कहा था कि,–'जो हमारा है वही सत्य है।' मगर **सूरि**जीके शब्दोंसे स्पष्ट हो रहा है कि ये अपनी बातको ही सत्य नहीं मानते हैं बल्कि जो सत्य है उसीको अपना मानते हैं। यही वास्तविक सिद्धान्त है। इनके पवित्र हृदयमें दुराग्रहका नाम भी नहीं है। धन्य है ऐसे महात्माको!"

सूरिजी और बादशाहके आपसमें उपर्युक्त बातें हो रही थीं उस वक्त **देवीमिश्र*** नामके एक ब्राह्मण पंडित भी वहाँ ही आगये थे। उनको संबोधनकर बादशाहने पूछाः—"क्यों पंडितजी! **हीरविजयसूरि**जी जो कुछ कहते हैं वह ठीक है या नहीं?"

पंडितजीने कहाः—"नहीं हुजूर! **सूरि**जी जो कुछ कह रहे हैं वह बिलकुल वेदवाक्यके समान है। इसमें विरुद्धताका लेश भी नहीं है। मैंने आजतक इनके समान स्वच्छ हृदयी, तटस्थ और अपूर्व विद्वान मुनि नहीं देखे। यह बात निःसंशय है कि ये एक जबर्दस्त पंडित–यति हैं।"

एक विद्वान् ब्राह्मणके निकाले हुए उपर्युक्त शब्द बादशाहकी श्रद्धाको यदि वज्रलेपवत् बना दें तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

---

* ये **अकबर**के दर्बारके एक विद्वान् थे। महाभारतादि ग्रंथोंके अनुवादमें दुभाषिएका काम करते थे। बादशाहकी उनपर अच्छी कृपा थी। इनके संबंधमें जिन्हें विशेष जानना हो वे 'बदाउनी' २ रे भागके, डबल्यु. एच. लो. एम. ए. कृत अंग्रेजी अनुवादके २६५ वें पृष्ठमें देखें।

वक्त बहुत होनेसे बादशाह अबुलफ़ज़लके मकानसे अपने महलोंमें गया और सूरिजी जबतक 'फतेहपुर सीकरी' में रहे तब-तक अनेक बार बादशाहसे मिले और धर्मचर्चा की। भिन्नभिन्न मुला-कातोंमें सूरिजीने बादशाहको भिन्नभिन्न विषय समझाये। इससे बाद-शाहको यह निश्चय हो गया कि, सूरिजी एक असाधारण विद्वान् साधु हैं। उनको जैन तो मानते और पूजते ही हैं, परंतु अपनी विद्वत्ता और पवित्र चारित्र के गुणके लिए वे समस्त संसारके वन्द्य और पूज्य हैं। अतः उन्हें जैनगुरु न कहकर 'जगद्गुरु' कहना ही उनका उचित सत्कार करना है। बादशाहने अपनी इस धारणाको मनहीमें नहीं रक्खा। एक दिन उसने अपनी राजसभामें सूरिजीको 'जगद्-गुरु' के पदसे विभूषित किया। इस पदप्रदानकी प्रसन्नतामें बाद-शाहने अनेक पशुपक्षियोंको बंधनसे मुक्त किया।

एकबार बादशाह अबुलफ़ज़ल और बीरबल आदि दर्बारि-योंके साथ बैठा था। उसी समय शान्तिचंद्रजी आदि कई विद्वान् मुनियोंके साथ सूरिजी महाराज भी वहाँ पहुँच गये। उस समय सूरि-जीने बादशाह को उपदेश दिया। कुछ देरके बाद बादशाहने विनम्र स्वरम कहाः—"महाराज! मेरे लायक जो कुछ काम हो वह निःसंकोच भावसे बताइए। क्योंकि मैं आपहीका हूँ। और जब मैं ही आपका हूँ तब यह कहनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती है कि, यह राज्य-ऋद्धि समृद्धि और सारा राज्य आपहीका है।

सूरिजीने कहाः—"आपके यहाँ कैदी बहुत हैं। उनको यदि मुक्तकर दें तो अच्छा हो।" बादशाहको अपराधियोंसे विशेष चिढ़ थी। इसलिए उसने सूरिजीकी इस बातको नहीं माना। ऋषभदास कविने बादशाहके उत्तरका इन शब्दोंमें वर्णन किया हैः—

" कहइ अकबर ये मोटा चोर, मुलकमिं वहुत पडावइं सोर।
एक खराव हजारकुं करइ, इहा मले ये जव लगि मरइ ॥"

(हीरविजयसूरिरास, पृष्ठ १३४)

जैनकविकी यह सत्यता प्रशंसनीय है कि, जो काम अकबरने सूरिजीके अनुरोधसे नहीं किया उसके लिए भी लिख दिया कि,– ' नहीं किया । '

अकबरने उसके वाद पूछाः—" इसके सिवा आप और कोई वात कहिए । " सूरिजी सोच रहे थे कि, अब वादशाहको कौनसा दूसरा कार्य करनेके लिए कहना चाहिए । इतनेहीमें शान्तिचंद्रजीने सूरिजीके कानमें कहाः—" महाराज सोच क्या रहे हैं ? ऐसा परवाना लिखवाइए कि, जिससे सारे गच्छके लोग आपको मानें और आपकी चरणवंदना करें । "

पाठक ! सूरिजीकी उदार प्रकृतिको जानते हुए भी क्या आप उनसे ऐसे कथनकी आशा कर सकते हैं ? सूरिजीके मुखकमलसे क्या ऐसी स्वार्थमिश्रित वाणी–सौरभ निकल सकती है ? क्या सूरिजी इस वातको नहीं जानते थे कि लोभ सर्वनाशकी जड़ है ? ऐसी लोभवृत्तिके वशमें होकर अपना सम्मान वढ़ानेकी वात कहनेसे क्या परिणाम होगा सो सूरिजी सोचने लगे । सूरिजी शान्तिचंद्रकी सलाहकी उपेक्षा कर कुछ कहना चाहते थे, इतनेहीमें वादशाह वोलाः—" गुरुजी ! शान्तिचंद्रजीने आपसे क्या कहा ? " सूरिजीने जो वात थी वह कह दी और कहाः—" मैं हरगिज यह वात नहीं चाहता । शिष्य गुरुभक्तिके कारण जो इच्छा हो सो कहें । मेरा कोई मान करे या अपमान करे, मुझे कोई माने या न माने । मेरे लिए सब समान हैं । मेरा धर्म तो यह है कि, समस्त जीवोंको समानभावसे देखना और उनको कल्याणकारी मार्गका उपदेश देना । "

सूरिजीकी इस उदारता और निःस्पृहताके लिए बादशाहको अत्यधिक आनंद हुआ। इतना ही नहीं, उसने अपने समस्त दर्बारियोंको उद्देश करके कहाः—“ मैंने ऐसी निःस्पृहता रखनेवाला, सिवा हीरविजयसूरिजीके और किसीको नहीं देखा। जो अपने स्वार्थकी कोई बात नहीं करते। [illegible]ब बोलते हैं तब परोपकारहीकी बात। संसारमें ‘ साधु ’ ‘ संन्यासी ’ ‘ योगी ’ या ‘ महात्मा ’ आदिका पद धारण करनेवाले आदमियोंकी कमी नहीं है। मगर वे सभी प्रायः किसी न किसी फंदमें फँसे ही रहते हैं। कई तो बड़े बड़े मठाधीश हैं। लाखोंकी उनके पास सम्पत्ति है, जिससे आनंद करते हैं। कई सूफ़ी, शेख और कं[illegible]ाधारी होते हुए भी द्रव्य और दो दो स्त्रीयोंके स्वामी होते हैं। कई ‘ महर ’—दया रखनेकी बड़ी बड़ी बातें करते हुए भी जानवरोंको मारकर खाते नहीं हिचकिचाते हैं। कई मंत्र–तंत्रका ढोंग करके भोले लोगोंको ठगते फिरते हैं। कई ‘ दंडधारी ’ औ[illegible] रवेश ’ का रूप धारण कर अनेक प्रकारके छल कपटका विस्तार[illegible] फिरते हैं और कई ‘ तापस ’ नामधारी घरघरसे मांगकर अप[illegible]मका सामान जुटाते हैं। क्या मठवासी और क्या संन्या[illegible] उपदे[illegible]ा और क्या गिरि–पुरी, क्या नाथ और क्या नागे, सम[illegible]धादि कषायोंको नहीं दबा सके हैं और ज्ञानहीन होन[illegible] प्रकारके झगड़े फिसाद फैलाते फिरते हैं। ऐसे लोग दुनिया के गुरु–धर्मगुरु कैसे माने जा सकते हैं? जो क्रोध, मान, माया और लोभादि कषायोंसे लिप्त हों, जिनका चारित्र विषयवासनाके उपभोगसे हीन बना हुआ हो वे कैसे पूज्य हो सकते हैं? इस संसारमें रहते हुए भी कंचन और कामिनीसे इस तरह सर्वथा दूर रहना तथा मनमें किसीभी तरहकी तृष्णा न रखना सचमुच ही महान कठिन कार्य है।”

बादशाहके इस कथनने दर्बारियोंके दिलोंपर गहरा प्रभाव डाला। उनके हृदयोंमें सूरिजीके प्रति जो भक्तिभाव थे वे और भी कई गुने ज्यादा बढ़ गये।

उस समय बीरबल के हृदयमें सूरिजीसे कुछ पूछनेकी अभिलाषा हुई। इसलिए उसने बादशाहसे आज्ञा माँगी। बादशाहने मंजूरी दी। तब बीरबलने सूरिजीसे पूछना प्रारंभ किया:—

बीरबल:—महाराज! क्या शंकर सगुण हैं?

सूरिजी:—हाँ, शंकर सगुण हैं।

बी०—मैं तो मानता हूँ कि शंकर निर्गुण ही हैं।

सूरि०—ऐसा नहीं है। अच्छा, क्या तुम शंकर को ईश्वर मानते हो?

बी०—हाँ।

सूरि०—ईश्वर ज्ञानी है या अज्ञानी?

बी०—ईश्वर ज्ञानी है।

सूरि०—ज्ञानी अर्थात्?

बी०—ज्ञानवाला।

सूरि—ज्ञान गुण है या नहीं?

बी०—महाराज! ज्ञान तो गुण ही है।

सूरि०—ज्ञानको गुण बताते हो?

बी०—जी हाँ, ज्ञानको गुण ही मानता हूँ।

सूरि०—यदि तुम ज्ञानको गुण मानते हो तो फिर तुम्हारी ही मान्यतानुसार यह सिद्ध है कि शंकर-ईश्वर 'सगुण' है।

बीरबलने भक्तिविनम्र स्वरमें कहाः—" महाराज! मुझे विश्वास हो गया है कि, शंकर ' सगुण ' ही हैं।"

हरेक समझ सके ऐसी युक्तियोंसे शंकरकी ' सगुणता ' सिद्ध होते देख सभीको बड़ा आनंद हुआ।

इस मुलाकातके बाद बहुत समय तक सूरिजी बादशाहसे न मिल सके, इसलिए एक दिन बादशाहने बड़ी ही आतुरताके साथ सूरिजीके दर्शन करनेकी अभिलाषा प्रकट की। सूरिजी बादशाहके पास गये। उसे प्रभावोत्पादक उपदेश दिया। सूरिजीका उपदेश सुननेसे बादशाहके हृदयमें एक और ही तरहकी शीतलताका संचार हुआ। सूरिजीके वचनोंमें सचमुच ही बड़ा माधुर्य था कि, उनको सुननेसे सुननेवालेके अन्तःकरणमें शान्ति और आनंदका प्रसार हो जाता था। यही कारण था कि, उनका उपदेश सुननेकी बादशाहको वारवार इच्छा हुआ करती थी।

यहाँ एक बातका उल्लेख करना आवश्यक है कि, आजकलके राजा—महाराजा बहुत समय तक उपदेश सुनकर ' उपकार ' माननेका जो फल उपदेष्टाको देते हैं, उतना ही फल देकर वह नहीं रह जाता था। वह समझता था कि, जगत्को तृणवत् समझनेवाले महात्मा लोग अपना अमूल्य समय व्यय कर हमको उपदेश देनेका जो कष्ट उठाते हैं, वह किसलिए? ' आपका उपकार मानता हूँ। ' सिर्फ ये शब्द सुननेहीके लिए नहीं, जगत्के और मेरे कल्याणके लिए। महात्माका उपदेश सुनकर तदनुसार या उसमेंसे एक बात पर भी अमल न किया जाय तो दोनोंके जो समय और शक्ति व्यय होते हैं उनसे लाभ ही क्या है?

अकबर अपनी इस उदार भावनाहीके कारण हरवार उपदेश

सुननेके बाद सूरिजीसे निवेदन करता था कि, मेरे लायक काम हो सो बताइए। इसबारभी उसने ऐसा ही किया।

सूरिजीने इस बार एक महत्त्वका कार्य बताया। वे बोले:—" आपने आज तक मेरे कथनानुसार कई अच्छे अच्छे काम किये हैं। इसलिए बार बार कुछ कहना अच्छा नहीं लगता है। तो भी लोककल्याणकी भावना कहलाये विना नहीं रहती। इसलिए मेरा अनुरोध है कि, आप अपने राज्यसे 'जज़िया'*—कर उठा दीजिए और तीर्थोंमें यात्रियोंसे प्रतिमनुष्य जो 'कर' लिया जाता है उसे बंद कर दीजिए। क्योंकि इन दोनों बातोंसे लोगोंको बहुत ज्यादा दुःख उठाना पड़ता है।"

सूरिजीके कथनको मानकर बादशाहने उसी समय दोनों करोंको उठा देनेके फर्मान लिख दिये।

हीरविजयसूरिरासके कर्ता कविऋषभदासने उस मुलाकातका वर्णन करते हुए यह भी लिखा है कि,—बादशाह और सूरिजीमें उक्त प्रकारका जो वार्तालाप हुआ था उस समय अनेक दर्बारी मौजूद थे।

---

* यद्यपि अकबरने गद्दी बैठनेके नौ बरस बाद अपने राज्यसे 'जज़िया' उठा दिया था, इसका तीसरे प्रकरणमें उल्लेख हो चुका है, तथापि गुजरातमेंसे यह 'जज़िया' नहीं हटा था। कारण—उस समय गुजरात अकबरके अधिकारमें नहीं आया था। इससे यह सिद्ध होता है कि सूरिजीके उपदेशसे उसने 'जज़िया' बंद करनेका जो फर्मान दिया था वह गुजरातके लिए था। 'हीरसौभाग्यकाव्य' की टीकासे भी यह बात सिद्ध होती है। हीरसौभाग्यकाव्यके १४ वें सर्गके २७१ वें श्लोककी टीकामें लिखा है कि— 'जेजीयकाख्यो गौर्जरकरविशेषः' [जजिया (यहाँ) गुजरातके 'कर' विशेषका नाम है।]

उसके बाद दोनोंमें बहुत देरतक एकान्तमें वार्तालाप हुआ। उसका विषय क्या था सो कोई न जान सका।"

कहाजाता है कि, जब सूरिजी और बादशाह एकान्तमें वार्तालाप कर रहे थे तब मीठागप्पी नामका व्यक्ति—जिसको हर समय बादशाहके पास जानेकी आज्ञा थी—नंगे सिर 'नमो नारायणाय' पुकारता हुआ बादशाहके पास पहुँच गया। इतना ही नहीं अपने स्वभावानुसार वह कई हास्यजनक चेष्टाएँ भी करने लगा। बादशाहने उसकी इस आदतको मिटानेके लिए 'शाल' देकर निकाल दिया।"

एकान्तमें वार्तालाप जब समाप्त हुआ तब सूरिजी उपाश्रय गये।

× × × × ×

इस प्रसंग पर एक दूसरी बातका स्पष्टीकरण करना भी जुरूरी मालूम होता है कि सूरिजीने बादशाहसे इतनी मुलाकातें कीं, तबतक वे एक ही स्थानमें नहीं रहे थे। बीचमें वे मथुराकी यात्रा करनेके लिए भी गये थे। वहाँ उन्होंने पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथके दर्शन किये थे। इसी तरह जंबूस्वामी, प्रभवस्वामी आदि महापुरुषोंके ५२७ स्तूपोंकी भी उन्होंने वंदना की थी। वहाँसे गवालियर जाकर बावन गज प्रमाणकी ऋषभदेवकी मूर्तिको वासक्षेप पूर्वक नमस्कार किया था। उसके बाद वहाँसे वापिस आगरे गये थे। उस समय मेडताके रहनेवाले सदारंगने उत्साहपूर्वक हाथी, घोड़े और अन्यान्य कई पदार्थोंका दान किया था और बड़े आडंबरके साथ सूरिजीका नगरप्रवेश कराया था। वह अर्थात् संवत १६४१ का चौमासा सूरिजीने आगरेमें किया था और चातुर्मासके समाप्त होनेपर पुनः फतेपुर—सीकरी गये थे।

× × × × ×

वक्त अनुमानसे भी ज्यादा गुजर गया था। फल प्राप्ति भी कल्पनातीत हो गई थी। गुजरातसे भी विजयसेनसूरिके पत्र बार बार आते थे कि, आप गुजरातमें बहुत जल्दी आइए। ऐसे ही अनेक कारणोंसे 'सूरिजीकी इच्छा गुजरातकी तरफ़ जानेकी हुई। बात भी ठीक ही है कि, साधुओंको ज्यादा समय तक एकही स्थानमें नहीं रहना चाहिए। ज्यादा रहनेसे लाभके बजाय हानि ही होती है। कवि ऋषभदासके शब्दोंमेंः—

" स्त्री पीहरि नर सासरइ, संयमियां सहिवास;
ए त्रिणे अल्पामणां जो मंडइ थिरवास।"

एक कविने कहा हैः—

" बहता पानी निर्मला, बँधा सो गंदा होय;
साधू तो रमता भला, दाग न लागे कोय।

अतः सूरिजीकी विहार करनेकी इच्छा अयोग्य न थी। एक वार अवसर देखकर सूरिजीने अपनी यह इच्छा बादशाहके सामने प्रकट की। बादशाहने बड़े ही आग्रहातुर शब्दोंमें कहाः—" आप जो कुछ आज्ञा दें वह करनेको मैं तैयार हूँ। आपको गुजरातमें जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आप यहीं रहिए और मुझे धर्मोपदेश दीजिए।"

सूरिजीने कहाः—" मैं समझता हूँ कि, आपके समागमसे मैं अनेक धार्मिक लाभ उठा सकता हूँ। अर्थात् आपसे अनेक धार्मिक कार्य करा सकता हूँ। मगर कई अनिवार्य कारणोंसे श्रीविजयसेनसूरि मुझको बहुत ही जल्द गुजरातमें बुलाते हैं। इसलिए मेरा गुजरात जाना जरूरी है। वहाँ जाकर मैं यथासाध्य शीघ्रही विजयसेनसूरिको आपके पास भेजूँगा।"

अन्तमें सूरिजीका निश्चय देखकर बादशाहने उन्हें गुजरात जानेकी अनुमति दी। मगर इतनी याचना जरूर की कि, विजय-सेनसूरि यहाँ पहुँचे तबतक समय समय पर मुझे उपदेश देनेके लिये आप अपने एक उत्तम विद्वान् शिष्यको अवश्यमेव छोड जाइए।

बादशाहके इस आग्रहसे सूरिजीने श्रीशान्तिचंद्रजीको बाद-शाहके पास छोड़ा और आपने 'जेताशाह' को दीक्षा देकर वहाँसे विहार किया और वि. सं. १६४२ का चौमासा अभिरायाबादमें किया।

प्रकरण छठा।

विशेष कार्यसिद्धि।

चौथे प्रकरणमें यह उल्लेख हो चुका है कि, **अकबरने** अपनी धर्मसभाके १४० मेम्बरोंको पाँच भागोंमें विभक्त किया था। अर्थात् एकसौ चालीस मेम्बरोंकी पाँच श्रेणियाँ बनादी थीं। उनमें प्रथम श्रेणीमें जैसे **हीरविजयसूरि**का नाम है वैसे ही पाँचवीं श्रेणीमें भी **विजयसेनसूरि** और **भानुचंद्र** नामक दो महात्माओंके नाम हैं। **अबुलफ़ज़लने** ' आईन-इ-अकबरी ' के दूसरे भागके तीसवें आईनके अन्तमें इन एकसौ चालीस सभासदोंके नाम दिये हैं। उनमें ५४७ वें पेजमें इन दोनों महात्माओंके नाम हैं।—139 Bijaisen sur, 140 Bhanchand ये ' विजयसेनसूर ' और ' भानचंद ' ही **विजयसेनसूरि** और **भानुचंद्र** हैं। इन दोनों महात्माओंने भी अकबरकी सभामें जैनोपदेशकका कार्य किया था। इसलिए इनके संबंधमें भी यहाँ कुछ लिखना आवश्यक है। इन दोनों महात्माओंके विषयमें कुछ लिखनेके पहिले हम **शान्तिचंद्रजी**के लिए, जिनका पाँचवें प्रकरणमें नामोल्लेख हो चुका है और जिनको **सूरिजी** बादशाहके आग्रहसे आगरेहीमें छोड़ आये थे, कुछ लिखना आवश्यक समझते हैं। अर्थात् इस बातका उल्लेख करेंगे कि उन्होंने **अकबर**के पास रहकर क्या क्या कार्य किये थे?

यह बात तो निःसंदेह है कि **शान्तिचंद्रजी** महान् विद्वान् थे।

उनकी वाणीमें प्रभाव था; प्रत्येक सुननेवालेके हृदयपर आपका उपदेश असर करता था। इसपर भी आपमें एकसौ आठ अवधान करनेकी जो शक्ति थी वह तो अद्वितीयही थी। उन्होंने अकबरसे मिलनेके पहिले अनेक राजा महाराजाओंको अपनी विद्वत्ता और आश्चर्योत्पादक शक्तिसे अपना सन्मान कर्ता बनाया था; तथा अनेक विद्वानोंसे शास्त्रार्थ करके अपना विजय-डंका बजाया था। अकबरको भी उन्होंने बहुत प्रसन्न किया था। वे प्रायः बादशाहसे मिलते थे और उपदेश एवं अवधान करके बादशाहको चमत्कृत करते थे। उन्होंने 'कृपारसकोश' नामका एक सुंदर संस्कृत काव्य भी रचा था। उसमें १२८ श्लोक हैं। श्लोक बादशाहने जो दयाके कार्य किये थे उनके वर्णनसे परिपूर्ण हैं। यह काव्य वे अकबर बादशाहको सुनाते थे। बादशाह बड़ी उत्सुकता और प्रसन्नता के साथ, अपनी प्रशंसाके इस काव्यको सुनता था। हीरविजयसूरिकी तरह शान्तिचंद्रजीको भी बादशाह बहुत मानता था। इसीलिए इनके आग्रहसे उसने एक ऐसा फर्मान निकाला था, जिसकी रूहसे, बादशाहका जन्म जिस महीनेमें हुआ उस सारे महीनेमें, रविवार के दिनोंमें, संक्रान्तिके दिनोंमे, और नवरोजके दीनोंमें कोई भी व्यक्ति जीवहिंसा नहीं करसकती थी।

कहा जाता है कि, बादशाह जब लाहोरमें था तब शांतिचंद्रजी भी वहां थे। ईदके पहिले दिन वे बादशाह के पास गये। अवसर देखकर उन्होंने बादशाहको कहाः—"मैं यहाँसे विहार करना चाहता हूँ।" बादशाहने सविस्मय पूछाः—"सहसा यह विचार कैसे हो गया?" उन्होंने उत्तर दियाः—"मैंने सुना है कि, कल ईद है। सैकड़ों नहीं, हजारों नहीं, बल्कि लाखों जीवोंका कल वध होने वाला है। उन पशुओंका मृत्यु-आर्तक्रंदन मैं न सुन सकूँगा। मेरा

हृदय इस हत्याके नामसे ही काँप रहा है। यही कारण है कि, मैं आपही यहाँसे चला जाना चाहता हूँ।"

शान्तिचंद्रजीने उस समय 'कुरानेशरीफ़' की कई आयतें बताई, जिनका यह अभिप्राय था कि, रोजे सिर्फ़ शाक और रोटी खानेहीसे दर्गाह–इलाहीमें कुबूल हो जाते हैं। हरेक रूह–जीव पर महरबानी रखना चाहिए।

यद्यपि बादशाह इस बातसे अपरिचित नहीं था। वह भली प्रकारसे जानता था–मुख्यतया हीरविजयसूरिजीसे मिलने बाद उसको निश्चय हो गया था कि, जीवों को मारनेमें बहुत बड़ा पाप है। 'कुरानेशरीफ़' में भी जीव–हिंसाकी आज्ञा नहीं है। उसमें भी महेर–दया करनेकी ही आज्ञा दी गई है; तथापि विशेषरूपसे निश्चय करनेके लिए, अथवा अपने सर्दार–उमरावोंको निश्चय करादेनेके लिए उसने अबुलफ़ज़लको, अन्यान्य मौलवियोंको और सर्दार–उमरावोंको बुलाया और मुसलमानोंके माननीय धर्मग्रंथोंको पढ़वाया। तत्पश्चात् उसने लाहोरमें ढिंढोरा पिटवाया कि,–**कल–ईदके दिन कोई भी आदमी किसी जीवको न मारे।**

बादशाहके इस फर्मानसे करोड़ों जीवोंके प्राण बचे। श्रावकोंने स्वयं शहरमें फिरकर इस बातकी निगहबानी की कि, कोई मनुष्य गुप्त रूपसे किसी जीवको न मार डाले।

इसके बाद उन्होंने बादशाहको उपदेश दे कर मुहर्रमके महीनेमें और सूफ़ी लोगोंके दिनोंमें जीवहिंसा बंद कराई। 'हीरसौभाग्य' काव्यके कर्त्ताका कथन है कि बादशाहने अपने तीन लड़कों–सलीम, (जहाँगीर) मुराद और दानिआलका जन्म जिन महीनोंमें हुआ था उन महीनोंके लिए भी जीवहिंसा–निषेधका फर्मान निकाला था। इस

तरह सब मिलाकर एक वर्षमें छः महीने और छः दिनके लिए अकबरने अपने सारे राज्यमें, जीवहिंसा नहीं होने के फर्मान निकाले थे। इस कथनके सत्यासत्यका निर्णय करना आगेके लिए छोड़ कर, यह बताना आवश्यक है कि, शान्तिचंद्रजीने अकबरके पाससे जीवहिंसाके इतने कार्य कैसे कराये ? कहा जाता है कि, खास कारण 'कृपारसकोश' नामक काव्य है। अस्तु।

शान्तिचंद्रजीने उपर्युक्त फर्मानोंके अलावा 'जज़िया' बंद करानेका फर्मान भी प्राप्त किया था। इन फर्मानोंको प्राप्त करनेके बाद वे बादशाहकी सम्मति लेकर गुजरातमें आये और सिद्धपुरमें श्रीहीरविजयसूरिसे मिले। गुजरातमें आये तब वे नत्थु मेवाड़ाको साथ लाये थे। शान्तिचंद्रजीके पश्चात् भानुचंद्रजी बादशाहके पास रहे थे। ये वे ही भानुचंद्रजी हैं कि जो बादशाहके धर्मसभाके १४० वें नंबर के (पाँचवी श्रेणीके) सभासद थे।

भानुचंद्र और सिद्धिचंद्र–इन दोनों गुरु शिष्योंने–अकबरके पास रहकर अच्छी ख्याति प्राप्त की। ख्याति ही नहीं प्राप्त की, बल्कि वे अपनी विद्वत्ता और चमत्कारिणी विद्याके प्रभावसे बादशाहके आदरास्पद भी हुए। बादशाह जब कभी फतेहपुर या आगरा छोड़ कर बाहिर जाता था तब वह भानुचंद्रजीको भी अपने साथ ले जाता था। बादशाह सवारी पर जाता था। तब भानुचंद्रजी तो अपने आचारके अनुसार पैदल ही जाते थे। भानुचंद्रजी पर बादशाहकी दृढ श्रद्धा थी। उसको निश्चय हो गया था कि इन महात्माके वचनोंमें सिद्धि है। ऐसी श्रद्धा होनेके कई कारण भी थे।

एक बार बादशाहके सिरमें अत्यंत पीड़ा हुई। वैद्यों और हकीमोंने अनेक उपचार–इलाज किये मगर किसीसे कोई लाभ नहीं हुआ। अन्तमें उसने भानुचंद्रजीको बुलाया और अपनी शिरःपीडाका हाल

सुनाया, उनका हाथ लेकर अपने शिरपर रक्खा। भानुचंद्रजीने मधुर शब्दोंमें कहाः—"आप चिन्ता न करें। पीड़ा शीघ्र ही मिट जायगी।" थोड़ी ही देरमें बादशाहका दर्द मिट गया। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि, इसमें किसी यंत्र–मंत्रकी करामत न थी। इसका कारण था, बादशाहका भानुचंद्रजीके वचनोंपर अटल विश्वास और भानुचंद्रजीका निर्मल चारित्र! श्रद्धा और शुद्ध चारित्रका संयोग कौनसा कार्य सिद्ध नहीं करसकता है?

बादशाहकी शिरःपीड़ा मिटी, इसकी खुशी मनानेके लिए उमरावोंने पाँच सौ गउएँ एकत्रित कीं। बादशाहको जब यह बात मालूम हुई तब उसने उमरावोंसे पूछाः—"तुमने इतनी गउएँ क्यों जमा की हैं?" उन्होंने उत्तर दियाः—"हुजूरका सिरदर्द मिट गया इसकी खुशीमें ये गायें कुर्बान की जायँगी।" बादशाह क्रुद्ध होकर बोलाः—"अफ्सोस! मेरे आराम होनेकी खुशीमें दूसरोंकी कुर्बानी! दूसरोंको खुश करनेके बजाय उनको बिलकुल ही दुनियासे उठा देना!! इनको फौरन् छोड़ दो और बेखोफ़ फिरने दो।" तत्काल ही सारी गायें छोड़ दी गईं।

भानुचंद्रजी इस बातको सुनकर प्रसन्न हुए। उन्होंने बादशाहके पास जा कर उसको आशीर्वाद दिया।

बादशाह जब काश्मीर गया था, तब भानुचंद्रजी भी उसके साथ गये थे।

कहा जाता है कि राजा वीरबलने एकबार अकबरसे कहाः—"मनुष्यके काममें आनेवाले फल–मूल घास पात आदि सब पदार्थ सूर्यहीके प्रतापसे उत्पन्न होते हैं। अंधकारको दूर कर जगत्में प्रकाश फैलानेवाला भी सूर्य ही है। इसलिए आपको सूर्यकी आराधना करनी चाहिए।"

वीरवलके इस अनुरोधसे वादशाह सूर्यकी उपासना करने लगा था। वदाउनी लिखता है कि:—

"A second order was given that the sun should be worshipped four times a day, in the morning and evening, and at noon and midnight. His Majesty had also one thousand and one Sanskrit names for the sun collected, and read them daily, devoutly turning towards the sun."

(Al-Badaoni, translated by W. H. Lowe M. A. Vol. II p. 332.)

अर्थात्—दूसरा यह हुक्म दिया गया था कि, सवेरे, शाम, दुपरह और मध्यरात्रिमें–इस प्रकार दिनमें चार वार सूर्यकी पूजा होनी चाहिए। वादशाहने भी सूर्यके एक हजार एक नाम जाने थे और सूर्याभिमुख होकर भक्तिपूर्वक उन नामोंको वोल्ता था।

इस तरह हरेक लेखक लिखता है कि–अकवर सूर्यकी पूजा करता था। मगर किसीने यह नहीं वताया कि, उसने सूर्यके एक हजार एक नाम किसके द्वारा प्राप्त किये थे अथवा उसको सूर्यके नाम किसने सिखाये थे? जैनग्रंथोंमें इसके संबंधमें वहुतसी वातें लिखी गई हैं। ऋषभदास कवि तो 'हीरविजयसूरिरास' में यहाँतक लिखता है कि,—

"पातशाह कास्मीरें जाय, माणचंद पूंठे पणि थाय;
पूछइ पातशा ऋषिने जोइ, खुदा नजीक कोने वळी होइ ॥१९॥
माणचंद वोल्या ततखेव, निजीक तरणी जागतो देव;
ते समर्यो करि वहु सार, तस नामि ऋद्धि अपार ॥ २० ॥

हुओ हुकम ते तेणीवार, संभळावे नाम हजार;
आदित्य ने अरक अनेक, आदिदेवमां घणो विवेक ॥ २१ ॥

इससे मालूम होता है कि, बादशाह जब काश्मीर गया था, तब उसने भानुचंद्रजीसे आराधनाके लिए पूछा और उनके बताने पर वह सूर्यकी आराधना करने लगा। भानुचंद्रजीने उसको सूर्यके एक हजार नामोंका स्तोत्र भी सुनाया और सिखलाया था। कवि आगे चलकर यह भी लिखता है कि, बादशाह भानुचंद्रजीको प्रति रविवार स्वर्णके रत्नजडित सिंहासन पर बिठलाकर उनके मुखसे सूर्यके एक हजार आठ नामोंका स्तोत्र सुनता था।

इसके सिवा एक प्रबल प्रमाण और भी है। वह यह है कि,—भानुचंद्रजीने बादशाहको सुनाने और सिखानेके लिए एक हजार एक नामोंका जो स्तोत्र बनाया था उसकी एक हस्त लिखित प्रति पूज्यपाद गुरुवर्य शास्त्रविशारद–जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराजके पुस्तकभंडारमें है। उसका आरंभिक श्लोक यह है:—

" नमः श्रीसूर्यदेवाय सहस्रनामधारिणे।
कारिणे सर्वसौख्यानां प्रतापाद्भुततेजसे ॥

अन्तका भाग उसका इस प्रकार है:—

" यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा प्रयतो नरः।
प्रतापी पूर्णमायुश्च करस्थास्तस्य संपदः ॥
नृपाग्नितस्करभयं व्याधिभ्यो न भयं भवेत्।
विजयी च भवेन्नित्यं स श्रेयः समवाप्नुयात् ॥
कीर्तिमान् सुभगो विद्वान् स सुखी प्रियदर्शनः।
भवेद्वर्षशतायुश्च सर्वबाधाविवर्जितः ॥

नाम्नां सहस्रमिदमंशुमतः पठेद्यः
प्रातः शुचिर्नियमवान् सुसमाधियुक्तः ।
दूरेण तं परिहरन्ति सदैव रोगा
भीताः सुपर्णमिव सर्वमहोरगेन्द्राः ॥

इति श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णं ॥ अमुं श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रं प्रत्यहं प्रणमत्पृथ्वीपतिकोटीरकोटिसंघट्टितपदकमलत्रिखंडाधिपतिदिल्लीपतिपातिसाहिश्रीअकब्बरसाहिजलालदीनः प्रत्यहं शृणोति सोऽपि प्रतापवान् भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि, बादशाह सूर्यके हजार नाम जरूर सुनता था और सुनाते थे भानुचंद्रजी । कादम्बरीकी टीका, विवेकविलासकी टीका और भक्तामरकी टीका आदि अनेक ग्रंथोंमें भानुचंद्रजीके नामके पहिले ' सूर्यसहस्रनामाध्यापकः ' विशेषणका प्रयोग आया है । अतएव यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि, भानुचंद्रजी ही बादशाहको सूर्यके हजार नाम सिखलानेवाले थे । अस्तु ।

काश्मीर पहुँचकर बादशाहने एक ऐसे तालावके किनारे मुकाम किया जो चालीस कोसके घेरेमें था । तालाव पूरा भरा हुआ था । ' हीरसौभाग्यकाव्य ' के कर्ता लिखते हैं कि इस तालाव* को ' जयनल ' नामके राजाने बँधवाया था । उसका नाम 'झैनलंका'

---

* आईन-ई-अकबरीके दूसरे भागके, जॅरिरकृत अंग्रेजी अनुवादके पृ. ३६४ में, तथा बदाउनी के दूसरे भागके लवकृत अंग्रेजी अनुवादके पृ. ३९८ में लिखा है कि— इस तालावको बंधवानेवाला काश्मीर का बादशाह ' झैन-उल-आबिदीन ', जो कि— इ. स. १४१७ से १४६७ तक हुआ है, वह था। और इस तालावको झैनलंका (Zainlanka) कहते थे।

बंकिमचंद्रलाहिडी कृत ' सम्राट् अकबर ' नामक बंगाली ग्रंथके १८४ वें पेजमें भी इसका वर्णन आया है। ' हीरसौभाग्यकाव्य ' के कर्ताने जो ' जयनल ' नाम दिया है, सो ठीक नहीं है।

था। वहाँकी भयकंर सर्दी भानुचंद्रजीको सहन करनी पड़ती थी। बादशाह वहाँ भी निरंतर प्रति रविवार सूर्यके हजार नाम सुनता था। एक वार उसने भानुचंद्रजीसे पूछाः—"भानुचंद्रजी! आपको यहाँ कोई तक्लीफ तो नहीं है?" भानुचंद्रजीने मुसकुराते हुए उत्तर दियाः—"सम्राट्! हम साधु हैं। हमें कैसी ही तकलीफ़ हो सहनी पड़ती है; शान्तिसे तकलीफ वर्दाश्त करना ही हमारा धर्म है।" बादशाहने कहाः—"यह तो ठीक है, मगर आपको किसी चीजकी आवश्यकता हो तो बतलाइए।" भानुचंद्रजी बोलेः—"आजकल सर्दी बहुत ज्यादा पड़ती है, इसलिए यदि शरीरमें थोड़ी उष्णता रहे तो सरदीका असर कम हो।" बादशाहने कहाः—"यह तो कोई बड़ी बात नहीं है। दर्बारमें दुशाले वगेरा गरम कपड़े हैं। आप जितने आवश्यक हों ले सकते हैं।" भानुचंद्रजीने कहाः—"मैं दुशालोंसे शरीरमें उष्णता लाना नहीं चाहता। मेरे शरीरको सर्दीसे बचानेवाली उष्णता है धर्मके कार्य।" बादशाह बोलाः—"तब आप क्या चाहते हैं?" भानुचंद्रजीने कहाः—"मैं यह चाहता हूँ कि, हमारे पवित्र तीर्थ सिद्धाचल (पालीताना) की यात्रा करनेके लिए जानेवालोंसे जो 'कर' वहाँ पर लिया जाता है वह बंद हो जाय।"

बादशाहने यह बात मंजूर की। उसने बादमें फर्मानपत्र लिखकर हीरविजयसूरिके पास भेज दिया।

'हीरसौभाग्य काव्य' के कर्ताका कथन है कि, सिद्धाचलजीकी यात्राके लिए जानेवालेसे पहिले 'दीनार' (सोनेका सिक्का), फिर पाँच महमुदिका और फिर तीन महमुंदिका लिये जाते थे। अन्तमें बादशाहने यह 'कर' बंद कर दिया था।

कहा जाता है कि, बादशाह जब काश्मीरसे लौटा तब वह हिमालयके विषम मार्ग 'पीरपंजालकी घाटी' में हो कर आया था।

इस भयानक घाटीमें होकर पैदल गुजरते भानुचंद्रजी और उनके साथके अन्य साधुओंको बहुत कष्ट उठाना पड़ा। घाटीके तीखे कंकरों और पत्थरोंसे उनके पैर फटने लगे, इससे चलना बड़ा ही कष्ट साध्य हो गया। यह स्थिति देखकर बादशाहने उनको सवारीमें चढ़नेके लिए आग्रह किया। उन्होंने साधुधर्मके विरुद्ध होनेसे सवारीमें चढ़नेसे इन्कार कर दिया। बादशाहने भी उनको ऐसी अवस्थामें छोड़कर आगे जाना मुनासिब नहीं समझा। वहीं पड़ाव डाला। तीन दिनके बाद भानुचंद्रजी व अन्य साधुओंके पैर ठीक हुए तब बादशाहने वहाँसे कूच किया।

जब इस मुसाफरीसे लौट कर आये, तब लाहोरमें बड़ा मारी उत्सव हुआ। वहाँ के श्रावकोंने भी भानुचंद्रजी के उपदेशसे बीस हजार रुपये खर्च कर एक बड़ा उपाश्रय बनवाया।

इसी तरह बादशाह जब 'बुर्हानपुर' गया था, तब भी भानुचंद्रजी को अपने साथ ले गया था। कहा जाता है कि, यहाँ नगरको लूटनेसे बचानेमें भानुचंद्रजी का उपदेश ही काम आया था। इससे वहाँके निवासी इनसे बहुत प्रसन्न हुए थे।

वहाँसे वापिस आगरे आने पर भी उन्होंने बादशाहसे अनेक जीवदयाके कार्य कराये थे। एक बार बादशाहके सामने किसी विद्वान् ब्राह्मणसे शास्त्रार्थ हुआ। पंडित पराजित हुआ। इससे बादशाह बहुत ही खुश हुआ।

भानुचंद्रजीको 'उपाध्याय' की जो पदवी थी, वह भी बादशाहकी ही प्रसन्नताका परिणाम था। कवि ऋषभदासने 'हीरविजयसूरिरास' में इस विषयमें जो कुछ लिखा है उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

एक वार मूल नक्षत्रमें बादशाहके पुत्र शेखूजीके घर पुत्री पैदा हुई। ज्योतिषियोंने कहा कि, यदि यह लड़की जिंदा रहेगी तो बहुत बड़ा उत्पात होगा। इसलिए इसको पानीमें बहा दो। जब शेखूने भानुचंद्रजीसे इस विषयमें सलाह ली तब उन्होंने कहा कि, ऐसा करके बाल–हत्याका पाप करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। ग्रह–शान्तिके लिए अष्टोत्तरीस्नात्र पढ़ाना चाहिए। बादशाह और शेखू दोनोंको यह बात पसंद आई। उन्होंने ज्योतिषियोंके कथनानुसार न कर भानुचंद्रजीके कथनानुसार अष्टोत्तरीस्नात्र पढ़ानेका कर्मचंद्रजीको हुक्म दिया। बड़े उत्सवके साथ सुपार्श्वनाथका अष्टोत्तरीस्नात्र पढ़ाया गया। लगभग एक लाख रुपये खर्च हुए। श्रीमानसिंहजीने (खरतर गच्छीय श्रीजिनसिंहसूरिने) यह स्नात्र पढ़ाया था। इस अपूर्व उत्सवमें बादशाह और शेखूने भी भाग लिया। इस स्नात्रवाले दिन तमाम श्रावकश्राविकाओंने आंबिलकी तपस्या की थी। ऐसे पवित्र मांगलिक कार्यसे बादशाह और शेखूका विघ्न दूर हुआ। जिनशासनकी भी खूब प्रभावना हुई।

ऐसे उत्तम कार्यसे भानुचंद्रजीकी चारों तरफ खूब प्रशंसा हुई। एक वार बादशाहने श्रावकोंसे पूछाः—" भानुचंद्रजीको कोई पदवी है या नहीं ? है तो कौन सी है ? " श्रावकोंने उत्तर दियाः—" 'पंन्यास' की पदवी है। " तब बादशाहने हीरविजयसूरिको पत्र लिखा और उसमें भानुचंद्रजीको 'उपाध्याय' की पदवी देनेके लिए अनुरोध किया। सूरिजीने वासक्षेप मंत्र कर बादशाहके पास भेजा। वासक्षेप आनेपर बड़ी धूमधामके साथ भानुचंद्रजीको 'उपाध्याय' की पदवी दी गई। उस समय शेख अबुलफ़ज़लने पचीस घोड़े और दशहजार रुपयेका दान किया था। तदुपरान्त संघने भी बहुतसा दान किया था। "

'हीरसौभाग्यकाव्य' के रचयिताका कथन है कि,—" जब बादशाह लाहोरमें था, तब उसने हीरविजयसूरिजीको लिखकर उनके प्रधानशिष्य—पट्टधर विजयसेनसूरिको बुलाया था। उन्होंने लाहोरमें जाकर नंदिमहोत्सव करा कर भानुचंद्रजीको 'उपाध्याय' की पदवी दी थी। शेख अबुलफ़ज़लने उस वक्त छःसौ रुपये और कई घोड़ों आदिका दान किया था।" अस्तु।

बात दोनोंमेंसे कोईसी भी सत्य हो, मगर यह तो निर्विवाद है कि भानुचंद्रजीको 'उपाध्याय' पदवी लाहोरमें बादशाहके सामने उसीके अनुरोधसे हुई थी।

कहा जाता है कि, भानुचंद्रजीने अकबरके पुत्र जहाँगीर और दानीआलको भी जैनशास्त्र सिखलाये थे।

ऊपर हमने दो नवीन, कर्मचंद्र और मानसिंहके, नामोंका उल्लेख किया है। अतः इन दोनों महानुभावोंका संक्षिप्त परिचय यहाँ करा देना आवश्यक है।

कर्मचंद्र एक बार बीकानेरके महाराज कल्याणमलके मंत्री थे। धीरे धीरे उन्नत होते हुए अपने बुद्धिबल और कार्यचातुर्यसे उसने अकबरका मंत्रीपद प्राप्त किया था। मंत्री कर्मचंद्र, खरतरगच्छका अनुयायी, जैन था। इसलिए वह जैनधर्मकी उन्नतिके कार्यमें बड़े उत्साहके साथ योग देता था। बादशाह भी उससे बहुत स्नेह करता था। कर्मचंद्रहीके कारण खरतरगच्छके आचार्य श्रीजिनचंद्रसूरि अकबरके दर्बारमें गये थे। 'कर्मचंद्र चरित्रादि' कई ग्रंथोंसे मालूम होता है कि, जिनचंद्रसूरिने भी बादशाह पर अच्छा प्रभाव डाला था। उनके उपदेशसे उसने आषाढ़ सुदी ९ से १५ तक सात दिन तक कोई जीव हिंसा न करे, इस बातका फर्मान निकाला था और उसको

एक एक नकल अपने ग्यारह प्रान्तोंमें भेज दी थी*। यह उस समयकी बात है कि, जब बादशाह लाहोरमें रहता था। और भानुचंद्रजी आदि भी वहीं रहते थे।

दूसरा नाम मानसिंहका है। ये वे ही मानसिंह हैं जो जिन-चंद्रसूरिके शिष्य थे और जिनका प्रसिद्ध नाम जिनसिंहसूरि था। बादशाह जब काश्मीर गया था, तब वह भानुचंद्रजीकी तरह मानसिंह (जिनसिंहसूरिजी) को भी साथ ले गया था। जिनचंद्रसूरि लाहोरहीमें रहे थे। काश्मीरकी मुसाफिरीसे लौटकर आने पर मानसिंहको बड़ी धूमधामसे सूरि पद दिया गया था और उसी समय उनका नाम जिनसिंहसूरि रक्खा गया था। मानसिंहजीको आचार्य पदवी दी, इसकी खुशीमें बादशाहने खंभातके बंदरोंमें जो हिंसा होती थी उसको बंद कराई थी। लाहोरमें भी एक दिनके लिए कोई जीवहिंसा न करे इस बातका प्रबंध किया था। मंत्री कर्मचंद्रने इस अवसर पर बड़े उत्साहके साथ बहुतसा धन उत्सवार्थ खर्च किया था।

यह ऊपर कहा जाचुका है कि, जब शान्तिचंद्रजी बादशाहके पाससे रवाना हुए थे तब भानुचंद्रजीके साथ उनके सुयोग्य शिष्य सिद्धिचंद्रजी भी रक्खे गये थे। उनके सिवा उदयचंद्रजी आदि कई विद्वान् शिष्य भी वहाँ रहे थे। बादशाह सिद्धिचंद्रजीका भी बहुत

---

* यह असली फर्मानपत्र, सबसे पहिले परमगुरु शास्त्र-विशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराजको वि० सं० १९६८ के सालमें लखनौके खरतरगच्छका पुस्तक भंडार देखते हुए मिला था और उसकी एक नकल सरस्वतीके विद्वान् संपादक श्रीयुत महावीरप्रसादजी द्विवेदीको दी गई थी। उसको उन्होंने सं० १९१२ के जूनके 'सरस्वती' के अंकमें प्रकाशित किया था। इस फर्मानपत्रमें बादशाहने हीरविजयसूरिको, उनके उपदेशसे, पर्युषणके आठ और दूसरे चार ऐसे बारह दिनतक जीवरक्षाका जो फर्मान दिया था उसका भी उल्लेख है।

आदर करता था। इससे सरदार उमराव भी उन्हें बहुत मानते थे। कहा जाता है कि, एक वार बुरहानपुरमें बत्तीस चोर मारे जाते थे; उस समय दयाभावसे प्रेरित होकर वे बादशाहकी आज्ञा ले, स्वयं वहाँ गये थे और उन चोरोंको छुड़ाया था। 'जयदास जपो' नामका एक लाड बनिया हाथी तले कुचल कर मारा जाता था उसको भी उन्होंने छुड़ाया था।

सिद्धिचंद्रजी जैसे विद्वान् थे वैसे ही शतावधानी भी थे। इससे बादशाह उन पर प्रसन्न रहता था। उनके चमत्कारसे चमत्कृत होकर ही उसने उन्हें 'खुशफ़हम' की मानप्रद पदवी दी थी। उन्होंने फारसी भाषा पर भी अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था इससे कई उमरावोंके साथ भी उनकी अच्छी मुलाकात हो गई थी।

भिन्न भिन्न भाषाओंका ज्ञान, भिन्न भिन्न देशके मनुष्योंको उपदेश देनेमें अच्छी मदद देता है। कोई कितना ही विद्वान् हो, मगर यदि उसको भिन्न भिन्न भाषाओंका ज्ञान नहीं होता है तो वह अपने मनका भाव चाहिए उस तरहसे अन्यान्य भाषाएँ जाननेवालोंको नहीं समझा सकता है। केवल हिन्दी भाषाको जाननेवाला विद्वान् अपनी विद्यासे बंगालियोंको लाभ नहीं पहुँचा सकता है और बंगाली भाषा ही जाननेवाले विद्वान्की विद्या हिन्दी या गुजराती भाषियोंके लिए निरुपयोगी है। इसीलिए तो प्राचीनकालमें जिसको आचार्य पदवी दी जाती थी उसकी पहिले यह जाँच करली जाती थी कि, वह विद्वान् होनेके साथ बहुतसी भाषाओंका जानकार भी है या नहीं? अर्थात् आचार्यको भिन्न भिन्न देशोंकी भाषाएँ भी सीखनी पड़ती थीं। जो लोग उपदेशक हैं उन्हें इस बातका पूरा खयाल रखना चाहिए।

ऋषभदास कविका कहना है कि, बादशाहने, सिद्धिचंद्रजी

के साधुधर्मकी परीक्षा करनेके लिए उन्हें पहिले तो बहुत धनसम्पत्तिका लोभ दिखाया; जब वे लुब्ध न हुए तब उन्हें कत्ल करादेने की धमकी दी, परंतु सिद्धिचंद्रजी अपने धर्ममें दृढ रहे । उन्होंने लोभ और धमकीका उत्तर इन शब्दोंमें दियाथाः—" इस तुच्छ लक्ष्मीका और सुख सामग्रियोंका मुझे क्या लोभ दिखाते हैं? अगर आप सारा राज्य देनेको तैयार होंगे तो भी मैं लेनेको तैयार न होऊँगा । जिसको तुच्छ, हेय समझकर छोड़ दिया है उसे पुनः ग्रहण करना थूकेको निगलना है । इन्सान ऐसा नहीं कर सकता । और मौत? मौतका डर मुझे अपने चारित्रसे नहीं डिगा सकता । आज या दश दिन बाद नष्ट होनेवाला यह शरीर मुझे धर्मसे बढ़ कर प्यारा नहीं है । "

सिद्धिचंद्रजीके कथनसे बादशाहको बहुत आनंद हुआ । उसने भक्तिपूर्वक उनकी चरणवंदना की ।

भानुचंद्रजी और सिद्धिचंद्रजी प्रायः बादशाहके सामने विजयसेनसूरिकी प्रशंसा करते रहते थे । बादशाहको भी यह बात याद थी कि हीरविजयसूरिने अपने प्रधान शिष्य विजयसेनसूरिको भेजनेका वचन दिया है । एक बार बादशाह जब लाहोरमें था, तब उसके हृदयमें हीरविजयसूरिको बुलानेकी इच्छा हुई । उसने अबुलफ़ज़लके सामने अपनी इच्छा प्रकट की । अबुलफ़ज़लने कहाः—" हीरविजयसूरि वृद्ध हो गये हैं इस लिए उनको इस समय यहाँ तक बुलाना उचित नहीं है । " तत्पश्चात् उसने एक आमंत्रण पत्र विजयसेनसूरीको बुलानेके लिये भेजा, उसमें लिखाः—

" यद्यपि आप विरागी हैं परन्तु मैं रागी हूँ । आपने संसारके सारे पदार्थोंका मोह छोड़ दिया है इसलिए संभव है कि, आपने मेरा भी मोह छोड़ दिया हो और मुझे भुला दिया हो; परन्तु महाराज!

मैं आपको नहीं भूला । समय समय पर आप मुझे कोई न कोई सेवाकार्य अवश्यमेव बताते रहें । इससे मैं समझूँगा कि, मुझ पर गुरुजीकी कृपा अब भी वैसी ही है; और यह समझ मुझे बहुत आनंददायक होगी । आपको स्मरण होगा कि, रवाना होते समय आपने मुझे विजयसेनसूरिको यहाँ भेजनेका वचन दिया था । आशा है आप उन्हें यहाँ भेजकर मुझे विशेष उपकृत करेंगे ।"

उस समय सूरिजी राधनपुरमें थे । बादशाहका पत्र पढ़कर सूरिजी बड़े विचारमें पड़े । अपनी वृद्धावस्थामें विजयसेनसूरिको अपनेसे जुदा करना—लंबी मुसाफिरीके लिए रवाना करना—उन्हें अच्छा नहीं लगता था, साथ ही बादशाहको जो वचन दिया था उसको तोड़नेका भी साहस नहीं होता था । अन्तमें उन्होंने विजयसेनसूरिको भेजना ही स्थिर किया । उन्होंने भी गुरुकी आज्ञाको मस्तक पर चढ़ाकर वि० सं० १६४९ मिगसर सुदी ३ के दिन प्रयाण किया ।

वे पाटन, सिद्धपुर, मालवण, सरोत्तर, रोह, मुंडथला, कासद्रा, आबू, सीरोही, सादड़ी, राणपुर, नाडलाई, बांता, बगड़ी, जयतारण, मेड़ता, भरूंदा, नारायणा, झाक, साँगानेर, बैराट, बेरोज़, रेवाड़ी, विक्रमपुर, झज्झर, महिमनगर और समाना होते हुए, लाहोर पहुँचे । लाहौर पहुँचनेके पहिले जब वे लुधियानेके पास पहुँचे, तब फैजी उनकी अगवानीके लिए आया था । नंदिविजयजीने अष्टावधान सिद्ध करके बताया । फैजी इससे प्रसन्न हुआ । उसने बादशाह के पास जाकर उनकी बहुत प्रशंसा की । विजयसेनसूरि जब लाहोरसे पाँच कोश दूर रहे तब भानुचंद्रजी आदि उनके सामने आये । लाहोरमें प्रवेश करने के पहिले उन्होंने

खानपुरनामक स्थानमें मुकाम किया। विजयसेनसूरिके प्रवेशोत्सवके मौके पर बादशाहने हाथी, घोड़े, बाजा आदि बादशाही सामान दे कर प्रवेशोत्सवकी शोभाको द्विगुण कर दिया। इस तरह के उत्सव सहित विजयसेनसूरीने लाहोरमें वि० सं० १६४९ (ई० सं० १५९४) के ज्येष्ठ सुदि १२ के दिन प्रवेश किया।

विजयसेनसूरि भी अकबरके पास बहुत दिन तक रहे। उन्होंने अपनी विद्वत्तासे बादशाहको चमत्कृत करनेमें कोई कसर नहीं की। कहा जाता है कि, विजयसेनसूरि पहिले पहिल बादशाहसे लाहोरके 'काश्मीरीमहल' में मिले थे। हम पहिले यह बता चुके है कि नंदिविजयजी अष्टावधान साधते थे। ये विजयसेनसूरिके शिष्य थे। उन्होंने एक वार बादशाहकी सभामें भी अष्टावधान साधा, उस समय बादशाहके सिवा मारवाडके राजा मालदेवका पुत्र + उदयसिंह, जयपुरके राजा मानसिंह* कच्छवाह, खानखाना, अबुलफ़ज़ल, आजमखाँ, जालौरका राजा ग़ज़नीखाँ‡ और अन्यान्य राजामहाराजा एवं राजपुरुष वहाँ मौजूद थे। इन सबके बीचमें उन्होंने अष्टावधान साधा था। नंदिविजयजीका इस प्रकारका बुद्धिकौशल्य देखकर बादशाहने उनको 'खुशफ़हम' की पदवीसे विभूषित किया था।

+ यह उदयसिंह पन्द्रहसौ सेनाका स्वामी था और 'मोटाराजा' के नामसे ख्यात था। विशेष जानने के लिए ब्लॉकमॅन कृत आईन-इ-अकबरीके प्रथम भागके अनुवादका ४२९ वाँ पृष्ठ देखना चाहिए।

* यह मानसिंह जयपुरके राजा भगवानदासका पुत्र था। विशेष जानकारीके लिए ब्लॉकमॅन कृत आईन-इ-अकबरीके प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादका ३३९ वाँ पृष्ठ देखना चाहिए।

‡ यह चारसौ सेनाका नायक था। विशेष जाननेके लिए ब्लॉकमॅन कृत आईन-इ-अकबरीके प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादका ४९३ वाँ पृष्ठ देखो।

विजयसेनसूरिने थोड़े ही समयमें बादशाह पर अच्छा प्रभाव डाला था। इससे उनके लिए बादशाहके हृदयमें पूज्यभाव बढ़ गया। मगर जैनधर्मके कुछ द्वेषी मनुष्योंके लिए यह बात, असह्य हो गई।

भारतवर्षकी अवनतिका कारण द्वेषभाव बताया जाता है। वह मिथ्या नहीं है। जबसे इस ईर्ष्यावृत्तिने भारतमें प्रवेश किया है तभीसे देश प्रतिदिन नीचे गिरता जा रहा है। कइयोंके तो आपसमें नित्यवैरही हो गया है। ऐसे लोगोंमें 'यतियों' (साधुओं) 'ब्राह्मणों' की गिनती पहिले की जाती है। इसी लिए वैयाकरणोंने 'नित्यवैरस्य' इस समास सूत्रमें 'अहिनकुलम्' (सर्प और नकुल) आदि नित्य वैरवालोंके उदाहरणोंके साथ 'यतिब्राह्मणम्' उदाहरण भी दिया है। यद्यपि यह प्रसन्नताकी बात है कि, आज इस जीतेजागते वैज्ञानिक युगमें धीरे धीरे इस वैरका नाश होता जारहा है और समयको पहिचाननेवाले यति (साधु) और ब्राह्मण आपसमें प्रेमसे रहने लगे हैं। मगर हम जिस समयकी बात कह रहे हैं उस समय 'यतिब्राह्मणम्' का उदाहरण विशेष रूपसे चरितार्थ होता था, इतिहासकी कई घटनाएँ इस बातको प्रमाणित करती हैं।

विजयसेनसूरि लाहोरमें जब अकबरके पास थे उस समय भी एक ऐसी ही बात हो गई थी। कहा जाता है कि,—जब अकबर विजयसेनसूरिका बहुत ज्यादा सम्मान करने लगा और बार बार उनका उपदेश सुनने लगा। वहाँके जैन बड़े बड़े उत्सव करते उनमें भी बादशाह सहायता देने लगा, तब कई असहनशील ब्राह्मणोंने मौका देखकर बादशाहके हृदयमें यह बात जमा दी कि, जैनलोग जब परमकृपालु परमात्माहीको नहीं मानते हैं तब उनका मत फिर किस कार्यका है? जो लोग ईश्वरको नहीं मानते हैं उनकी सारी क्रियाएँ निकम्मी हैं।"

कहावत है कि—‘ राजालोग कानोंके कच्चे और दूसरोंकी आँखोंसे देखनेवाले होते हैं। ’ यह कहावत सर्वथा नहीं तो भी कुछ अंशोमें सत्य जरूर है। प्रायः राजा लोग अपने पास रहनेवाले लोगोंके कथनानुसार वर्ताव करनेवाले ही होते हैं। किसी वातकी पूरी तरहसे जाँच करके अपनी बुद्धिके अनुसार फैसला करनेवाले बहुत ही कम होते हैं। यही सबब है कि, भारतवर्षमें अब भी कई देशीराज्योंकी प्रजा इतनी दुःखी है कि, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। पार्श्ववर्ती मनुष्योंके हाथका खिलौना बना हुआ राजा यदि राजधर्मको भूल जाय तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जब आजके जैसे आगे बढ़े हुए जमानेमें भी ऐसी दशा है तो सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दिमें अकबर बादशाह यदि विद्वान् गिने जाने वाले पंडितोंके बहकानेसे बहक गया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

ब्राह्मणोंके उक्त कथनसे बादशाहके दिलमें चोट लगी। उसने विजयसेनसूरिको बुलाया और अपने हार्दिकभावोंको प्रकट न होने देकर उनसे ब्राह्मणोंने जो कुछ कहा था उसकी सत्यासत्यताके लिए पूछा। विजयसेनसूरिने कहा:—“ यदि इसका निर्णय करना हो तो आपकी अध्यतक्षामें एक सभा हो और उसमें इस बातका ऊहापोह किया जाय! ” बादशाहने स्वीकार किया। दिन मुकर्रिर करके सभा बुलाई गई। उसमें अनेक विद्वान् ब्राह्मण अपना मत समर्थन करनेके लिए जमा हुए। जैनियोंकी तरफसे केवल विजयसेनसूरि, नंदिविजयजी और दो चार अन्यान्य मुनि थे। वास्तविक रूपसे तो वाद करनेमें एक विजयसेनसूरि ही थे।

इस सभामें दोनों पक्षोंने अपने अपने मतका प्रतिपादन किया। अर्थात् ब्राह्मणोंने यह पक्ष प्रतिपादन किया कि जैन ईश्वरको नहीं

मानते हैं । विजयसेनसूरिने बताया कि, जैन ईश्वरको किस तरह मानते हैं ? उसका स्वरूप कैसा है ? कर्ममुक्त और सांसारिक बंधनोंसे छूटे हुए ईश्वरको जगत्का कर्ता माननेसे—उसको जगत् रचनाके प्रपंचमें गिरने वाला माननेसे—उसके स्वरूपमें कैसे कैसे विकार हो जाते हैं; उसके ईश्वरत्वमें कैसी कैसी बाधाएँ आजाती हैं, सो बताया और साथ ही हिन्दुधर्मग्रंथोंसे यह भी सिद्ध कर दिखाया कि, जैनलोग वास्तवमें ईश्वरको माननेवाले हैं । जिस स्वरूपमें वे ईश्वरको मानते हैं वह स्वरूपही वास्तवमें सत्य है । ‡

बादशाह विजयसेनसूरिकी अकाट्य युक्तियों और शास्त्र-प्रमाणोंसे बहुत प्रसन्न हुआ उसने अध्यक्षकी हैसियतसे कहाः—" जो लोग कहते हैं कि जैन ईश्वरको नहीं मानते हैं वे सर्वथा झूठे हैं । जैन लोग ईश्वरको उसी तरह मानते हैं जिस तरहसे कि, उसे मानना चाहिए ।

इसके सिवा ब्राह्मण पंडितोंने यह भी कहा था कि, जैन लोग सूर्य और गंगाको नहीं मानते हैं । इसका उत्तर भी विजयसेनसूरिने बहुत ही संक्षेपमें, मगर उत्तमताके साथ दिया । उन्होंने कहाः—" जिस तरह हम जैनलोग सूर्यको और गंगाको मानते हैं उस तरह दूसरा कोई भी नहीं मानता है । यह बात मैं दावेके साथ कह सकता हूँ । हम सूर्यको यहाँ तक मानते हैं, यहाँ तक उसका सम्मान करते हैं कि उसकी उपस्थितिके विना जल भी ग्रहण नहीं करते हैं । यह कितना सम्मान है ? यह कितनी दृढ मान्यता है ? जरा सोचनेकी बात है कि, जब कोई

‡ जैनोंने जो ईश्वरका स्वरूप माना है वह संक्षेपमें पाँचवें प्रकरणमें लिखा जा चु है । इसलिये यहाँ उसकी पुनरावृत्ति नहीं की गई है ।

मरजाता है तब उसके संबंधी मनुष्य, और यदि राजा मरजाता है तो उसकी प्रजा उस समय तक अन्न नहीं ग्रहण करते हैं जब तक कि, उस व्यक्तिका या उस राजाका अग्निसंस्कार नहीं हो जाता है। तब, दिवानाथ–सूर्यकी अस्तदशामें (रातमें) भोजन करनेवाले यदि सूर्यको माननेका दावा करते हैं तो वह दावा कहाँ तक सही हो सकता है? इस बातको हरेक बुद्धिमान समझ सकता है। इस लिए वास्तविक रूपसे सूर्यको माननेवाले तो हम जैन ही हैं।

" गंगाजीको माननेका उनका दावा भी इसी तरहका है। गंगाजीको माता–पवित्र माता मानते हुए भी उसके अंदर गिर कर न्हाते हैं, उसमें कुरले करते हैं। और तो क्या, विष्ठा और पेशाब भी उसके अंदर डालते हैं। गतप्राण मनुष्यके मुर्देको–जिसको छूने से भी हम अभड़ाते है–और उसकी हड्डियोंको पवित्र गंगामाताके समर्पण करते हैं। यह है उनकी गंगा माताकी मान्यता! यह है उनका गंगा माताका सम्मान! पवित्र और पूज्य गंगा माताकी भेटमें ऐसी वस्तुएँ रखनेवाले भक्तोंकी भक्तिके लिए क्या कहा जाय? मगर हमारे यहाँ तो गंगाके पवित्र जलका उपयोग बिंबप्रतिष्ठादि शुभ कार्योंमें ही किया जाता है। इस व्यवहारसे बुद्धिमान लोग समझ सकते हैं कि, गंगाजीका सच्चा सत्कार हम जैन लोग करते हैं या मेरे सामने वाद करनेके लिए खड़े हुए ये पंडित लोग? "

सूरिजीकी इन अकाट्य और प्रभावोत्पादक युक्तियोंसे सारी सभा चकित हुई। पंडित निरुत्तर हुए और बादशाहने प्रसन्न हो कर विजयसेनसूरिको 'सूरिसवाई' की पदवी दी।

अब बार बार यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि, श्रीविजयसेनसूरिने भी बादशाहको हीरविजयसूरिकी भाँति ही आकर्षित

किया था । उन्होंने बादशाहसे उपदेश देकर अनेक कार्य करवाये थे । उनमेंसे मुख्य ये हैं,—गाय, भैंस, बैल और भैंसेकी हिंसाका निषेध, मृत मनुष्यका कर लेनेका निषेध, आदि । उनके उपदेशसे बादशाहने जो कार्य किये थे उनका पूरा वर्णन 'विजयप्रशास्ति काव्य' में है । पं. दयाकुशल गणिने भी 'लाभोदय रास' नामके ग्रंथमें, विजयसेनसूरिके उपदेशसे बादशाहने जो कार्य किये थे उनका वर्णन किया है। उसका भाव यह है:—

" अकबर बादशाहने गुरुको जो बख्शिशें दीं, उनको सुनकर हृदय प्रसन्न होता है और इस तरहकी माँग करनेवाले गुरुके लिए जबान धन्य धन्य कह उठती है । बादशाहने गुरुकी (विजयसेनसूरिकी) इच्छानुसार सिंधु नदीमें और कच्छके जलाशयोंमें—जिनमें मच्छियाँ मारी जाती थीं—चार महीने तक जाल डालना बंद करके, वहाँकी मछलियोंके प्राण बचाये । गाय, भैंस, बैल और भैंसोंका मारना बंद किया, (युद्धमें) किसीको कैद नहीं करना स्थिर किया और मृतक मनुष्यका 'कर' लेना रोक दिया । "

× × × ×

अब तक जो बातें लिखी गई हैं उनसे यह स्पष्ट हो चुका है कि, आचार्य श्रीहीरविजयसूरि, श्रीशान्तिचंद्र उपाध्याय, श्रीभानुचंद्र उपाध्याय और श्रीविजयसेनसूरिने अकबर बादशाह पर प्रभाव डाल कर जनहितके, धर्मरक्षाके और जीवदयाके अनेक कार्य करवाये थे । गुजरातमें से 'जजिया' उठवाया था । सिद्धाचल, गिरिनार, तारंगा, आबू, ऋषभदेव, राजगृहीके पहाड और सम्मेतशिखर आदि तीर्थ क्षेतांबरोंके हैं । इसका एक * परवाना लिया था । सिद्धाचलजीमें जो 'कर'

* यह असल परवाना अहमदाबादके सेठ आनंदजी कल्याणजीकी पेढीमें मौजूद है । उसका अंग्रेजी अनुवाद राजकोटके राजकुमार कॉलेजके मुन्शी

प्रत्येक यात्रीसे लिया जाता था, बंद कराया; मृत मनुष्यका धन ग्रहण करनेका और युद्धमें बंदी–कैदी बनानेका निषेध कराया। इनके अलावा पक्षियोंको पिंजरेमेंसे छुड़ाना; तालावमेंसे जीवोंको छुड़ाना; गाय, भैंस, बैल, भैंसे आदिकी हिंसा रोकना आदि अनेक कार्य कराये थे। समय समयपर हिंसाके समय, बादशाहको उपदेश देकर हिंसा रोकी थी। सबसे महत्त्वका जो कार्य बादशाहसे उन्होंने कराया वह समस्त मुगल राज्यमें एक वर्षमें छः महीने और छः दिन तक कोई भी व्यक्ति हिंसा न करे इसका ढंढेरा था। इन दिनोंकी ठीक ठीक गिनती करना कठिन है। कारण,—यद्यपि हीरसौभाग्यकाव्य, हीरविजयसूरिरास, धर्मसागरकी पट्टावली, पालीतानेका वि० सं० १६५० का शिलालेख और जगद्गुरुकाव्य आदि जुदे जुदे अनेक जैनग्रंथोंमें अकबरने जीवदया पालनेके जो महीने और दिन नियत किये थे उनका उल्लेख है, तथापि उनमें कई महीने मुसलमानी त्योहारोंके होनेसे यह निर्णय होना कठिन है कि– उन महीनोंके कितने कितने दिन गिनने चाहिए अथवा उनमें किन किनका समावेश हो जाता है?

महम्मद अब्दुल्लाहने किया है। इस परवानेसे स्पष्टतया मालूम होता है कि वह **हीरविजयसूरि**के उपदेशसे दिया गया था। कई लोग कहते हैं कि उपर्युक्त तीर्थ श्वेतांबरोंके नहीं हैं मगर उनका यह कथन मिथ्या है। कारण–प्रथम उपर्युक्त परवाना है; दूसरे परवाना देनेके अमुक समय बाद अकबरने **मंत्री कर्मचंद्र**को–जो खरतरगच्छीय श्वेताम्बर जैन था; जो अकबरका मंत्री था– उक्त तीर्थ दिये हैं। इसका उल्लेख बादशाहके समकालीन पं० जयसोमने भी अपने बनाये हुए 'कर्मचंद्रचरित्र' नामके ग्रंथमें इस तरह किया है:—

> **"नाथेनाथ प्रसन्नेन जैनास्तीर्थास्त्समेऽपि हि।**
> **मंत्रिसाद्विहिता नूनं पुंडरीकाचलादयः ॥" ३९६ ॥**

अर्थात्—बादशाहने प्रसन्न होकर पुंडरीक (सिद्धाचल) आदि समस्त जैनतीर्थ मंत्रीको दे दिये। इसी प्रकार 'लाभोदयरास' में भी कहा है

ऐसा होने पर भी यह तो स्थिर है कि, पहिले गिनाये गये हैं उनमें व उनमेंके अमुक अमुक दिनोंमें बादशाहने अपने समस्त राज्यमें जीवहिंसाका निषेध किया था। उन दिनोंमें स्वयं बादशाह भी मांसाहार नहीं करता था। इस बातको अन्यान्य जैनेतर लेखकोंने भी माना है। बंकिमचंद्र लाहिडीने अपने 'सम्राट् अकबर' नामक बंगाली ग्रंथमें लिखा है:—

"सम्राट् रविवारे, चंद्र ओ सूर्यग्रहणदिने एवं आर ओ अन्यान्य अनेक समये कोन मांसाहार करितेन ना। रविवार ओ आर ओ कतिपय दिने पशुहत्या करिते सर्व साधारणके निषेध करिया छिलेन।"

अर्थात्—सम्राट् रविवारके दिन, चंद्र और सूर्यग्रहणके दिन और अन्य भी कई अन्यान्य दिनोंमें मांसाहार नहीं करता था। रविवार और अन्यान्य कई दिनोंमें उसने सर्वसाधारणमें पशुहत्या-निषेधकी मुनादी करवा दी थी।

इसी तरह अकबरका सर्वस्व गिना जानेवाला; अकबरके साथ रातदिन रहनेवाला शेख अबुलफ़ज़ल अपनी पुस्तक 'आईन-इ-अकबरी' में लिखता है:—

" Now, it is his intention to quit it by degrees, conforming, however, a little to the spirit of the age. His Majesty abstained from meat for some time on fridays, and then on Sundays: now on the first day of every solar month, on Sundays, on solar and lunar eclipses, on days between two fasts, on the Mondays of the months of Rajab, on the feastday of the every solar month, during the whole month of Farwardin and during the month, in which His Majesty was born, viz, the month of Aban.

[The Ain-i-Akbari translated by H. Blochmann M. A. Vol. I p. p. 61-62.]

अर्थात्—वह (अकबर) आयुकी लागणियोंका कुछ अंशोमें पालन करता हुआ भी शनैः शनैः मांसाहार छोड़नेका इरादा रखता है। वह बहुत दिन तक प्रत्येक शुक्रवार और पश्चात् रविवारके दिन मांसाहार का परहेज करता रहा था। अब प्रत्येक सौर महीनेकी प्रतिपदाको, रविवारको, सूर्य और चंद्र ग्रहणके दिनोंमें दो उपवासोंके बीचके दिनोंमें, रजब महीनेके सोमवारोंमें, सौर मासके प्रत्येक त्योहारमें, फरवरदीनके महीनेमें और बादशाह जन्मा था उस सारे महीनेमें—यानी सारे अबान महीनेमें मांसाहार नहीं करता है।

जैन लेखकोंके कथनकी सत्यता अबुल्फजलके उपर्युक्त कथन से दृढ होती है। कारण—जैनलेखकोंने जो दिन गिनाये हैं, लगमग वे ही दिन अबुल्फ़ज़लने भी गिनाये हैं। अलावा इसके जैनलेखकोंने बादशाहके छः महीने तक मांसाहार त्यागकी और छः महीने और छः दिन तक समस्त देशमें जीवहिंसानिषेधकी जो बात लिखी है वह बात बादशाहकी सभाके सदस्य, कट्टर मुसलमान बदाउनीके निम्नलिखित कथनसे भी पुष्ट होती है।

" At this time His Majesty promulgated some of his new-faugled decrees. The Killing of animals on the first day of the week was strictly prohibited, (P. 322) because this day is secred to the Sun, also during the first eighteen days, of the month of Farwardin; the whole of the month of Aban (the month in which His Majesty was born); and on several other days, to please the Hindus. This order was extended over the whole realm and punishment was inflicted on every one, who acted against the Command, Many a family was ruined, and his property was confiscated. During the time of those fasts

the Emperor abstained altogether from meat as a religious penance, gradually extending the several fasts during a year over six months and even more, with a view to eventually discontinuing the use of meat altogether."

[Al-Badaoni, Translated by W. H. Lowe, M. A., Vol. II, p. 331.]

अर्थात्—इस समय वादशाहने अपने कुछ नवीन प्रिय सिद्धान्तोंका प्रचार किया था। सप्ताहके पहिले दिनमें प्राणीवध निषेधकी कठोर आज्ञा थी; कारण यह सूर्यपूजाका दिन है। फरवरदीन महीनेके पहिले अठारह दिनोंमें, आवानके पूरे महीनेमें (जिसमें वादशाह का जन्म हुआ था) और हिन्दुओंको प्रसन्न करनेके लिए और भी कई दिनोंमें प्राणी-वधका निषेध किया था। यह हुक्म सारे राज्यमें जारी किया गया था। इस हुक्मके विरुद्ध चलनेवालेको सजा दी जाती थी। इससे अनेक कुटुंब वर्वाद हो गये थे और उनकी मिल्कतें जब्त कर ली गई थी। इन उपवासोंके दिनोंमें, वादशाहने धार्मिक तपश्चरणकी भाँति मांसाहारका सर्वथा त्याग किया था। शनैः शनैः वर्षमें छः महीने और उससे भी ज्यादा दिन तक उपवास करनेका अभ्यास वह इसलिए करता गया कि, अन्तमें मांसाहारका वह सर्वथा त्याग कर सके।

वदाउनीने ऊपर 'हिन्दु' शब्दका उपयोग किया है। उससे जैन ही समझना चाहिए। कारण—पशुवधका निषेध करनेमें और जीवदया संबंधी राजामहाराजाओंको उपदेश देनेमें यदि कोई प्रयत्नशील रहा हो तो वे जैन ही हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ भी अपने अकवर नामक पुस्तकके ३३९ वें पेजमें स्पष्टतया लिखता है कि,—

" He cared little for flesh food, and gave up the use of it almost entirely in the later years of his life, when he came under Jain influence."

अर्थात्—मांसाहार पर बादशाहकी बिलकुल रुचि नहीं थी। और अपनी पिछली जिन्दगीमें तो जबसे वह जैनोंके समागममें आया तभीसे, उसने इसका सर्वथाही त्याग कर दिया।

इससे सिद्ध होता है कि, बादशाहसे मांसाहार छुड़ानेमें और जीववध बंद करानेमें **श्रीहीरविजयसूरि** आदि जैनउपदेशकोंका उपदेशही कारगर हुआ था। डॉ० स्मिथ यह भी लिखते हैं कि,—

" But the Jain holy men undoubtedly gave Akbar prolonged instruction for years, which largely influenced his actions; and they secured his assent to their doctrines so far that he was reputed to have been converted to Jainism."

[Jain Teachers of Akber by Vincent A. Smith.]

अर्थात्—मगर जैनसाधुओंने वर्षों तक अकबरको उपदेश दिया था। बादशाहके कार्यों पर उस उपदेशका बहुत प्रभाव पड़ा था। उन्होंने अपने सिद्धान्त उससे यहाँ तक मनवा दिये थे कि, लोग उसे जैनी समझने लग गये थे।

लोगोंकी यह समझ केवल समझ ही नहीं थी, बल्कि उसमें वास्तविकता भी थी। कई विदेशी मुसाफिरोंको भी अकबरके व्यवहारोंसे यह निश्चय हो गया था कि, अकबर जैनसिद्धान्तोंका अनुयायी था।

इसके संबंधमें डॉ० स्मिथने अपने 'अकबर' नामक ग्रंथमें एक मार्केकी बात प्रकट की है। उसने उक्त पुस्तकके २६२ वें पृष्ठमें पिनहरो (Pinheiro) नामके एक पोर्टुगीज् पादरीके पत्रके उस

अंशको उद्धृत किया है जो उपर्युक्त कथनको प्रमाणित करता है। यह पत्र उसने लाहौरसे ता. ३ सितंबर सं. १५९५ के दिन लिखा था। उसमें उसने लिखा था,—

" He follows the sect of the Jains (Vertei).

अर्थात—अकबर जैनसिद्धान्तोंका अनुयायी है। उसने कई जैनसिद्धान्त भी उस पत्रमें लिखे हैं। इस पत्रके लिखनेका वही समय है जिस समय विजयसेनसूरि लाहोरमें अकबरके पास थे।

इस प्रकार विदेशियोंको भी जब अकबरके वर्तावसे यह कहना पड़ा था कि, अकबर जैनसिद्धान्तोंका अनुयायी है, तब यह बात सहज ही समझमें आजाती है कि, अकबरकी वृत्ति बहुत ही दयालु थी। और उस वृत्तिको उत्पन्न करनेवाले जैनाचार्य—जैनउपदेशक ही थे। इसके लिए अब विशेष प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है।

यह ऊपर कहा जाचुका है कि, बादशाहने अपने राज्यमें एक बरसमें छः महीनेसे भी ज्यादा दिनके लिए जीववधका निषेध कराया था, और उन दिनोंमें वह मांसाहार भी नहीं करता था। यह कार्य उसकी दयालुताका पूर्ण परिचायक है। पाँच पाँचसौ चिड़ियोंकी जीभें जो नित्य प्रति खाता था, मृगादि पशुओंकी जो नित्य शिकार करता था वही मुसलमान बादशाह हीरविजयसूरि आदि उपदेशकोंके उपदेशसे इतना दयालु बन गया, यह बात क्या उपदेशकोंके लिए कम महत्त्वकी है? जैनसाधुओंके (जैनश्रमणों) के उपदेशके इस महत्त्वको बदाउनी भी स्वीकार करता है। वह लिखता है:—

" And Samanas and Brahmans (who as far as the matter of private interviews is concerned (p. 257) gained the advantage over every one in attaining the honour of interviews with His Majesty, and in

associating with him, and were in every way superior in reputation to all learned and trained men for their treatises on morals, and on physical and religious sciences, and in religious ecstacies, and stages of spiritual progress and human perfections.) brought forward proofs, based on reason and traditional testimony, for the truth of their own, and the fallacy of our religion, and inculcated their doctrine with such firmness and assurance, that they affirmed mere imagination as though they were self-evident facts, the truth of which the doubts of the sceptic could no more shake.

[Al-Badaoni Translated by W. H. Lowe. M. A. Vol. II. p. 264.]

अर्थात् सम्राट् अन्य संप्रदायोंकी अपेक्षा श्रमणों * (जैनसाधुओं) और ब्राह्मणोंसे एकान्तमें विशेषरूपसे मिलता था। उनके सहवासमें विशेष समय विताता था। वे नैतिक, शारीरिक, धार्मिक और आध्यात्मिक शास्त्रोंमें, धर्मोन्नतिकी प्रगतिमें और मनुष्यजीवनकी सम्पूर्णता प्राप्त करनेमें दूसरे समस्त (सम्प्रदायों) विद्वानों और पंडित पुरुषोंकी अपेक्षा हरतरहसे उन्नत थे। वे अपने मतकी सत्यता और हमारे

* मूल फारसी पुस्तकके 'सेवड़ा' शब्दको अनुवादकने 'Samanas' (श्रमण) लिखा है, किन्तु यहाँ चाहिये 'सेवड़ा' क्योंकि उस समयमें जैनसाधु 'सेवड़ा' के नामसे पहचाने जाते थे। इस समय भी पंजाब आदि कई देशोंमें जैनसाधुओंको 'सेवडा' कहते हैं। दूसरी बात यह है कि-इस अंग्रेजी अनुवादक डब्ल्यु. एच. लॉ, एम. ए. ने अपने अनुवादके फुटनोटमें 'श्रमण' का अर्थ 'बौद्धश्रमण' किया है। मगर यह भी ठीक नहीं है। बादशाहके दरबारमें बौद्धश्रमण तो कोई गया भी नहीं था। इस विषयमें इसी प्रकरणमें आगे चल कर विशेष प्रकाश डाला जायगा। यहाँ सेवड़ाका अर्थ जैनसाधु ही समझना चाहिए।

(मुसलमान) धर्मके दोष बतानेके लिए बुद्धिपूर्वक, परंपरागत प्रमाण देते थे। वे ऐसी दृढता और युक्तिसे अपने मतका समर्थन करते थे कि, उनका कल्पना तुल्य मत स्वतः सिद्ध प्रतीत होता था। उसकी सत्यता के विरुद्ध नास्तिक भी कोई शंका नहीं उठा सकता था।"

इतना सामर्थ्य रखनेवाले जैनसाधु अकबर पर इतना प्रभाव डाले, यह बात क्या होने योग्य नहीं है? अस्तु।

अकबरने अपने बर्तावमें जब इतना परिवर्त्तन कर दिया था, तब इससे यह परिणाम निकालना क्या बुरा है कि अकबरके दया संबंधी विचार बहुत ही उच्च कोटि पर पहुँच गये थे। इस बातको दृढ करने वाले अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। बादशाहने राजाओंके जो धर्म प्रकाशित किये थे उनमें एक यह धर्म भी था,—

" × संसार दयासे जितना वशमें होता है उतना दूसरी किसी भी चीजसे नहीं होता। दया और परोपकार, ये सुख दीर्घायुके कारण हैं।"

अबुलफ़ज़ल लिखता है,—"अकबर कहा करता था कि, यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता कि, मांसाहारी जीव सिर्फ मेरे शरीरको खाकर ही तृप्त हो जाते और दूसरे जीवोंके भक्षणसे दूर रहते तो मेरे लिए यह बात बड़े सुखकी होती। या मैं अपने शरीरका एक अंश काटकर मांसाहारियोंको खिला देता और फिरसे वह अंश प्राप्त हो जाता तो मैं बड़ा प्रसन्न होता। मैं अपने एक शरीरद्वारा मांसाहारियोंको तृप्त कर सकता।" +

दया संबंधी कैसे सुंदर विचार हैं! मांसाहारियोंको अपना शरीर खिलाकर तृप्त करने और दूसरे जीवोंको बचानेकी भावना

× आईन-इ-अकबरी, खंड तीसरा, जेरिटकृत अंग्रेजी अनुवाद. पे० ३८३-३८४.

+ आईन-इ-अकबरी, खंड ३ रा, पृ. ३९५.

उच्च कोटिकी दयालुवृत्ति रखनेवाले व्यक्तिके सिवा अन्य कौन कर सकता है ?

अबुलफ़ज़ल आईन-इ-अकबरीके पहिले भागमें एक स्थान पर लिखता है:—

"His Majesty cares very little for meat, and often expresses himself to that effect. It is indeed from ignorance and cruelty that, although various Kinds of food are obtainable, men are bent upon injuring living creatures, and lending a ready hand in killing and eating them; none seems to have an eye for the beauty inherent in the prevention of cruelty, but makes himself a tomb for animals. If His Majesty had not the burden of the world on his shoulders, he would at once totally abstain from meat.

[Ain-i-Akbari by H. Blochmann Vol. I. p. 61].

भावार्थः—सम्राट् मांसकी बहुत ही कम परवाह करते हैं। और प्रायः इसके संबन्धमें अपनी सम्मति भी प्रकट किया करते हैं कि,—यद्यपि अनेक प्रकारके खाद्य पदार्थ मिलते हैं, तथापि मनुष्य जीवित प्राणियोंको दुःख देने, मारने और भक्षण करनेकी ओर प्रवृत्त रहते हैं। इसका कारण उनकी अज्ञानता तथा निर्दयता है। कोई भी आदमी निर्दयताको रोकनेमें जो आन्तरिक सौन्दर्य है उसको नहीं देखता। प्रायः लोग अपने शरीरको पशुओंकी कब्र बनाया करते हैं। अगर बादशाहके कंधोंपर संसारका (राजकारोबारका) बोझा न होता तो, वह मांसाहारसे सर्वथा दूर ही रहता।"

इसी तरह डा० विन्सेंट स्मिथने भी अकबरके विचारोंका उल्लेख किया है। वह लिखता है:—

" Men are so accustomed to eating meat that, were it not for the pain, they would undoubtedly fall on to themselves. "

" From my earliest years, whenever I ordered animal food to be cooked for me, I found it rather tasteless and cared little for it. I took this feeling to indicate the necessity for protecting animals, and I refrained from animal food. "

" Men should annually refrain from eating meat on the anniversary of the month of my accession as a thanks-giving to the Almighty, in order that the year may pass in prosperity. "

" Butchers, fishermen and the like who have no other occupation but taking life should have a separate *quarter and their association with others should be* prohibited by fine. "

[Akbar The Great Mogal, pp. 335-336.]

अर्थात्—" मनुष्योंको मांसाहारकी ऐसी खराब आदत पड़ जाती है कि, यदि उन्हें दुःख न हो तो वे अपने शरीरको भी खा जायँ। "

" मुझे अपनी छोटी उम्रहीसे मांसाहार नीरस लगता है। जब कभी मैं आज्ञा देकर मांस बनवाता था तब भी उसको खानेकी बहुत ही कम परवाह करता था। इसी स्वभावसे मेरी दृष्टि पशुरक्षाकी ओर गई और मैंने पीछेसे मांसाहारका सर्वथा त्याग कर दिया। "

" मेरे राज्याभिषेककी तारीखके दिन, प्रतिवर्ष, ईश्वरका उपकार माननेके लिए किसी भी मनुष्यको मांस नहीं खाना चाहिए, जिससे सारा वर्ष आनंदके साथ निकले। "

"कसाई मच्छीमार और ऐसे ही दूसरे मनुष्योंके-जिनका रोजगार हिंसा करना ही है-निवासस्थान बसतीसे अलग होने चाहिए।"

जीवदयाके ये कितने अच्छे विचार हैं! जीवदयाहीके क्यों अपनी उस प्रजाके-जो जीवहिंसा और मांसाहारसे घृणा करती थी-अन्तः-करण दुःखी न हों इसका भी पूरा खयाल रखता था। मुसलमान सम्राट् अकबरके उपर्युक्त विचारों और कार्यों पर आर्यावर्तके उन देशी राजाओंको ध्यान देना चाहिए कि, जो अपनी प्रजाके सुखदुःखका कुछ भी खयाल नहीं रखते हैं। अस्तु।

ऊपरके वृत्तान्तसे हमें यह तो निश्चय हो चुका है कि, **अकबर**की जीवनमूर्त्तिको सुशोभित-देदीप्यमान करनेके लिए जैसी चाहिए वैसी चतुराई यदि किसीने दिखाई हो तो वे **हीरविजयसूरि** आदि जैनसाधु ही थे। दूसरे शब्दोंमें कहें तो **अकबर** बादशाहकी जीवनयात्राको सफल बनानेमें सबसे ज्यादा प्रयत्न **हीरविजयसूरि** आदि जैनसाधुओंने ही किया था। इतना होने पर भी आश्चर्य इस बातका है कि **अकबर**का जीवन लिखनेवाले जैनेतर लेखकोंने, इस बातका उल्लेख नहीं किया है कि, **अकबर** पर जैनसाधुओंका कितना प्रभाव था। इसका मूलकारण क्या है? इसका विचार करना यहाँ उचित होगा।

यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि,-**अकबर**के दर्बारमें रहने वाले शेख **अबुलफ़ज़ल** और **बदाऊनी** **अकबर**के समयका खास इतिहास लिखनेवाले हैं। **अकबर**के विषयमें आजतक जो कुछ लिखा गया है उन्हींके ग्रंथोंके आधारसे लिखा गया है। वे (**अबुलफ़ज़ल** और **बदाऊनी**) **अकबर**के ऊपर प्रभाव डालनेवालोंमें 'जैनसाधुओं' का नाम देना भूले नहीं हैं। इतना जरूर है कि उन्होंने 'जैनसाधु' शब्द न लिखकर

उनका परिचय, ' श्रमण ' ' सेवड़ा ' या ' यति ' के नामसे कराया है। वे यह लिखना नहीं भूले हैं कि अकबरके दर्बारमें जैनसाधु गये थे और उस पर इनका खूब प्रभाव पड़ा था। मगर पीछेसे जितने इतिहासलेखक और अनुवादक हुए हैं उन्होंने असली बातको छिपाया है। यह बात उनके ग्रंथोंको ध्यानपूर्वक देखनेसे तत्काल ही मालूम हो जाती है। विशेष आश्चर्यकी बात तो यह है कि, अबुलफ़ज़लने आईन-इ-अकबरीके दूसरे भागके तीसवें आईनमें अकबरकी धर्मसभाके १४० मेम्बरोंको पाँच श्रेणियोंमें विभक्त करके उनकी जो लिस्ट दी है उसमें प्रथम श्रेणीमें **हरिजीसूर** (हीरविजयसूरि) और पाँचवीं श्रेणीमें **बिजयसेनसूर** और **भानचंद** (विजयसेनसूरि और भानुचंद्र) नाम दिये हैं। उनके होते हुए भी ये कौन थे ? किस धर्मके अनुयायी थे ? यह जाननेका प्रयत्न अनुवादकों और लेखकोंने नहीं किया। यदि वे प्रयत्न करते और जैनधर्मसे परिचय करते तो उन्हें तत्काल ही मालूम हो जाता कि, जिन तीन नामोंका उल्लेख अबुलफ़ज़लने किया है वे बौद्ध श्रमणों या अन्य धर्मवालोंके नहीं हैं; परन्तु जैनसाधुओंके ही हैं। ऐसा होने पर इतिहासमें आज जो छिपानेका कार्य हो रहा है वह न होता। इस छुपानेके कार्यसे अलग रह कर इतिहास क्षेत्रमें सत्यसूर्यका प्रकाश डालनेका सौभाग्य आज तक अजैन विद्वानोंमेंसे यदि किसीने प्राप्त किया है तो वह ' अकबर दी ग्रेट मुगल ' (Akbar the Great Mogul) नामक ग्रंथका लेखक डॉ० **विन्सेंट. स्मिथ** ही है। वह बहुत खोज करनेके बाद लिखता है कि, "**अबुलफ़ज़ल** और **बदाउनी**के ग्रंथोंके अनुवादकोंने अपनी अनभिज्ञताके कारण ही ' जैन ' शब्दके बजाय ' बौद्ध ' शब्दका प्रयोग किया है। कारण अबुलफ़ज़लने तो अपने ग्रंथमें स्पष्ट लिखा है कि,—सूफी, दार्शनिक, तार्किक, स्मार्त, सुन्नी, शिया, ब्राह्मण, यति, सेवड़ा,

चार्वाक, नाजरीन, यहूदी, सावी और पारसी आदि प्रत्येक वहाँके धर्मानुशीलनका अपूर्व आनंद लेते थे ×।"

इस स्थानमें 'यति' और 'सेवड़ा' शब्द हैं वे जैनसाधुओंके लिए आये हैं। बौद्धसाधुओंके लिए नहीं। तो भी जैसा कि डॉक्टर **स्मिथ** कहते है कि,—मि० **चैलमर्सने अकवरनामा**के अंग्रेजी अनुवादमें भूलसे उनका अर्थ 'जैन और बौद्ध' किया था। उनके बाद मुसलमानी इतिहासके संग्रहकर्ता **इलियट** और **डाउसन**ने भी वही भूल की। इन तीनोंकी भूलने **वाननोअर**को भी भूल करनेके लिए वाध्य किया। इस तरह हरेक लेखक, एकके वाद दूसरा, भूल करता गया और उसका परिणाम यहाँ तक पहुँचा कि, जैनेतर लेखकोंने 'जैन' शब्दको सर्वथा उड़ा ही दिया। अब जहाँ देखो वहीं 'बौद्ध' शब्द ही दिखाई देता है। आधुनिक हिन्दी, बंगाली या गुजराती लेखकोंने भी ऐसी ही भूलकी है। मगर किसीने यह जाननेकी कोशिश नहीं की कि, वास्तवमें **अकवर**के दरबारमें कोई बौद्धसाधु था या नहीं? या **अकवर**ने कभी बौद्धसाधुओंका उपदेश सुना भी था या नहीं?

वस्तुतः खोजनेसे यह पता चल चुका है और निर्विवाद यह बात मान ली गई है कि, **अकवर**को कभी किसी बौद्ध विद्वान्के साथ समागम करनेका अवसर नहीं मिला था। इसके लिए अनेक प्रमाण देकर पुस्तकके कलेवरको बढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं दिखती। सिर्फ **अबुलफ़ज़ल**के कथनको उद्धृत कर देना ही काफी होगा। वह आईन-इ-अकबरीमें लिखता है कि,—

" चिरकालसे बौद्ध साधुओंका कहीं पता नहीं है। वेशक

×—देखो-'अकवरनामा' वेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद खंड ३, अध्याय ४५, पृ० ३६५.

पेगू, तनासिरम और तिब्बतमें ये लोग कुछ हैं। बादशाहके साथ तीसरी बार रमणीय काश्मीरकी मुसाफरीमें जाते वक्त इस मतके (बौद्धमतके) दो चार वृद्ध मनुष्योंसे मुलाकात हुई थी। मगर किसी विद्वान्‌से भेट नहीं हुई*। "

इससे साफ जाहिर है कि, अकबर न कभी किसी बौद्ध विद्वानसे मिला था और न कभी कोई बौद्ध विद्वान् फतेपुरसीकरी की धर्मसभामें संमिलित हुआ था।

उपर्युक्त और अन्यान्य अनेक प्रमाणोंसे डॉ० विन्सेंट स्मिथ भी यही लिखता है कि,—

"To sum up. Akbar never came under Buddhist influence in any degree whatsoever. No Buddhists took part in the debates on religion held at Fatehpur -Sikri, and Abu-l Fazl never met any learned Buddhist. Consequently his knowledge of Buddhism was extremely slight. Certain persons who took part in the debates and have been supposed erroneously to have been Buddhists were really Jains from Gujarat."

[Jain Teachers of Akbar by V. A. Smith.]

भावार्थ—अकबरकी बौद्धोंके साथ न कभी भेट हुई थी और न उस पर उनका प्रभाव ही पड़ा था। न बौद्धोंने कभी फतेहपुर-सीकरीकी धर्मसभामें भाग लिया था और न कभी अबुलफ़ज़लके साथ ही किसी बौद्ध विद्वान् साधुकी मुलाकात हुई थी। इससे बौद्ध धर्मके विषयमें उसका (अकबरका) ज्ञान बहुत ही कम था। धार्मिक

*—देखो-आईन-इ-अकबरी ३ रा खंड, जॉरेटकृत अंग्रेजी अनुवाद का २१२ वा पृष्ठ.

परामर्श सभामें भाग लेनेवाले जिन दो चार लोगोंके लिए बौद्ध होनेका अनुमान किया जाता है वह भ्रम है। वास्तवमें वे गुजरातसे आये हुए जैनसाधु थे।"

इससे यह वात अच्छी तरह सावित हो गई है कि, अवतक जिनलेखकोंने **अकवर** पर प्रभाव डालनेवालोंमें बौद्धोंकी गिनती की है यह उनकी भूल है। उस भूलको सुधार कर सब स्थानोंमें 'बौद्ध' के स्थानमें 'जैन' समझना चाहिए।

इस तरह वि० सं० १६३९ से वि० सं० १६५१ तक **अकबर**के साथ जैनसाधुओंका संबंध लगातार रहा था, उसके बाद **अकबर** जीवित रहा तब तक उसको और उसके बाद उसके लड़के जहाँगीरको भी जैनसाधु मिलते और धर्मोपदेश देते रहे थे।"

प्रकरण सातवाँ ।

सूबेदारों पर प्रभाव ।

रविजयसूरिके प्रभावके विषयमें गत प्रकरणोंमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। तो भी यह कहना अनुचित न होगा कि, उन्होंने केवल अकबरके ऊपर ही प्रभाव नहीं डाला था बल्कि अन्यान्य सूबेदारों और राजा महाराजाओं पर भी उन्होंने प्रभाव डाला था। जो कोई राजा या सूबेदार उनसे एक बार मिलता था वह सूरिजीके पवित्र चारित्र और निर्मल उपदेशसे मुग्ध एवं चमत्कृत हुए बिना न रहता था। यद्यपि सामान्यतया विचार करने वालेको, अकबरके समान महान् सम्राट् पर प्रभाव डालनेवालेका मामूली सूबेदारों पर या राजा महाराजों पर प्रभाव डालना, कोई महत्वकी बात नहीं मालूम होगी; तथापि दीर्घदृष्टिसे विचार करनेवाला यह जरूर समझेगा कि, ज्ञानपिपासु अकबर पर प्रभाव डालनेकी अपेक्षा सामान्य सूबेदारों या राजामहाराजाओं पर प्रभाव डालना बहुत ही कठिन था। अधिकारके मदमें मस्त, उस समयकी अराजकताका लाभ उठाकर अपने आपको अहमिंद्र समझनेवाले सूबेदार या राजा क्या किसीकी सुननेवाले थे? वे स्वच्छंदी–जिनकी स्वच्छंदताका हम दूसरे प्रकरणमें उल्लेख कर चुके हैं; जो सत्यासत्यकी या मनुष्यके दर्जेकी कुछ भी परवाह किये बिना मारो, पकड़ो की आज्ञा दे देते थे–क्या किसीके उपदेश पर

ध्यान दे सकते थे ? कदापि नहीं। तो भी अपने चरित्रके प्रथम नायक श्रीमान् हीरविजयसूरिने समय समय पर उनपर अपने निष्कलंक चारित्र और उपदेश का प्रभाव डाल कर उनसे कई महत्वके कार्य कराये हैं। यद्यपि उनको किसी राजामहाराजा, सेठ साहूकार या फौजदार सूबेदारसे कोई मतलब न था—'निःस्पृहस्य तृणं जगत्' के समान उनको किसीकी परवाह न थी, तथापि जीवोंके कल्याणकी कामना उनके अन्तःकरणमें स्थापित थी। उसी कामनाके वश होकर वे जीवोंका कल्याण करानेके लिए, सूबेदारों या राजामहाराजाओंके निमंत्रणोंको स्वीकार करते थे और अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर भी उनके दर्बारमें आते जाते थे।

अनेक राजामहाराजाओं और सूबेदारों पर सूरिजीने प्रभाव डाला था; उनको सन्मार्ग पर चलाया था; मगर हम उन सबका उल्लेख न कर उनमेंसे कुछ का संक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ लिखेंगे।

× कलाखाँ।

वि० सं० १६३० ई० सं० १५७४ के लगभग जब सूरिजी

× कलाखाँका खास नाम खानेकलानमीरमहम्मद था। वह अतघखाँका बड़ा भाई था। हुमायुँ और कामरानका यह सेवक धीरे धीरे अकबरके समयमें बहुत ऊँचे दर्जे तक पहुँचा था। बहादुरीके अनेक काम करके अच्छा नाम कमाया था। बादशाहने सं० १५७२ ई० में गुजरातको फिरसे जीतनेके लिए कलाखाँको पहिले भेजा था। मार्गमें सीरोहीके पास एक राजपूतने किसी स्पष्ट कारणके विना ही उसे घायल कर दिया था। मगर कई दिनके बाद उसने अच्छा होकर गुजरातको जीता। इससे वह पाटनका सूबेदार नियत हुआ। ई० स० १५७४ में पाटनहीमें उसकी मृत्यु हुई थी। विशेष जाननेके लिए ब्लॉकमॅन कृत आईन-इ-अकबरी के अंग्रेजी अनुवादके प्र० भा० का ३११ वा पृष्ठ देखो।

पाटनमें पधारे थे, तब वहाँके हेमराज नामके जैनमंत्रीने, विजय-सेनसूरिके पाटमहोत्सवके अवसर पर, बहुतसा धन खर्च करके अनेक शुभ कार्य किये थे। उस समय कलाखाँ पाटनका सूबेदार था। उसके जुल्मसे प्रजा बहुत व्याकुल हो रही थी। प्रजा उससे इतनी नाराज थी कि, एक भी मनुष्यकी जुबान पर उसकी भलाईका शब्द न आता था। उस नगरमें पहुँच कर सूरिजीने अनेक व्याख्यान दिये। उनसे शनैः शनैः समस्त नगरमें उनकी विद्वत्ताकी प्रशंसा फैल गई। कलाखाँके कानों तक भी सूरिजीकी प्रशंसा पहुँची। इससे उसके हृदयमें सूरिजीसे मिलनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। उसने उन्हें मनुष्य भेजकर अपने पास बुलाया। यद्यपि इससे सूरिजीके अनुयायिकोंको—श्रावकोंको बहुत ही ज्यादा भय मालूम हुआ था, तथापि सूरिजीके निर्भीक हृदयमें कोई आशंका उत्पन्न नहीं हुई थी। वे समझते थे कि,—**सत्ये नास्ति भयं क्वचित्।**

बहुत देर तक अनेक तरहकी बातें होती रहीं। फिर कलाखाँने पूछा:—" महाराज ! सूर्य ऊँचा है या चंद्रमा ?

सूरिजीने उत्तर दिया:—" चंद्रमा ऊँचा है। सूर्य उससे कुछ नीचा है।"

यह उत्तर सुन कर कलाखाँको कुछ आश्चर्य हुआ। उसने कहा:—" क्या ? सूर्य से चंद्रमा ऊँचा है ? "

सूरिजीने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया:—" हाँ सूर्यसे चंद्र ऊंचा है।"

कलाखाँ बोला:—"हमारे यहाँ तो सूर्यसे चंद्रमा नीचे बताया गया है, तुम चंद्रमाको ऊँचा कैसे बताते हो ? "

सूरिजीने कहा:—" न तो मैं सर्वज्ञ हूँ और न मैं वहाँ जा कर देख ही आया हूँ। मैंने जो बात अपने गुरुकी जबानसे सुनी

है और धर्मशास्त्रोंमें पढ़ी है, वही मैं कह रहा हूँ। तुम्हारे शास्त्रोंमें यदि तुम कहते हो वैसे लिखा हो तो तुम भले वैसे ही मानो।"

आचार्यश्रीकी बात सुन कर **कलाखाँ** कुछ विचारमें पड़ा। उसने सोचा कि, जो वस्तु अगम्य है, परोक्ष है उसके लिए शास्त्रीय मोहसे हठ करके अपनी बातको सत्य मनानेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। उसने कहाः—

"महाराज! आपका कहना ठीक है। जिस बातको हमने देखा ही नहीं है, उसके लिए हठ करना,—हम मानते हैं वही ठीक हैं ऐसा आग्रह करना—फिजूल है। मैं आपकी सरलतासे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। मेरे लायक कुछ कार्य हो तो आज्ञा कीजिए।"

सूरिजीने अनुकंपादृष्टिसे उन कैदियोंको छोड़ देनेकी सूचना दी कि जिनको प्राणदंडकी आज्ञा दी गई थी। तदनुसार उसने कैदियोंको छोड़ दिया और शहरमें इस बातका ढिंढोरा पिटवानेका हुकम दिया कि, समस्त नगरमें एक मास तक कोई भी मनुष्य किसी भी जीवको न मारे।

उसके बाद उसने सत्कार पूर्वक **सूरिजीको** उपाश्रय पहुँचा दिया। यह उस समयकी बात है कि, जिस समय **सूरिजी** और **अकबर** बादशाहका कोई संबंध नहीं था।

×खानखाना।

अकबरके पाससे **सूरिजी** रवाना हो कर **गुजरातकी** ओर जा रहे थे, तब वे **मेडते** भी गये थे। उस समय **खानखाना** जो **सूरिजीकी** पवित्रता और विद्वत्तासे परिचित था—**मेडतेहीमें** था। उसने **सूरिजीको**, उन्हें नगरमें आये जान अपने पास बुलाया। और अच्छा सम्मान किया। उसने ईश्वरका स्वरूप जाननेके अभिप्रायसे प्रश्न किया,—

× इसी पुस्तकके १२० वें पेजका नोट देखो।

" महाराज ! ईश्वर रूपी है या अरूपी ? "

" ईश्वर अरूपी है । "

" ईश्वर यदि अरूपी है तो उसकी मूर्त्ति क्यों बनाई जाती है ? "

" मूर्त्ति ईश्वरका स्मरण करानेमें कारण होती है । अर्थात् मूर्त्तिको देखनेसे जिसकी वह मूर्त्ति होती है वह व्यक्ति याद आती है । जैसे कि किसीकी तसवीर देखनेसे वह व्यक्ति याद आता है । अथवा, जैसे नाम नामवालेकी याद दिलाता है, वैसे ही मूर्त्ति मूर्त्ति-वालेका—जिसकी वह मूर्त्ति होती है उसका—स्मरण करा देती है । जो मनुष्य कहते हैं कि, हम मूर्त्तिको नहीं मानते हैं, वे सचमुच ही बहुत बड़ी भूल करते हैं । संसारमें ध्याता, ध्यान और ध्येय इस त्रिपुटीको माने विना किसी भी आदमीका कार्य नहीं चलता । कारण ध्यान तब तक नहीं होता है जबतक मन किसी एक पदार्थ पर नहीं लगाया जाता है । दुनियामें अमूर्त्तक पदार्थोंका ज्ञान हमें मूर्त्तिहीसे होता है । आप मुझको साधु मानते हैं । कैसे ? सिर्फ मेरे वेषसे । अर्थात् मैं साधु हूँ इसबातका ज्ञान करानेमें यदि कोई बात कारणभूत है तो वह मेरा वेष ही है । ' यह हिन्दु है । ' 'यह मुसलमान है ।' ऐसा ज्ञान हमें कैसे होता है ? सिर्फ वेषसे । इस वेषहीका नाम मूर्त्ति है । आप और हम सभी अपने शास्त्रोंको देखकर ही कहते हैं कि, यह खुदाका कलाम है, यह भगवानकी वाणी है । खुदाके वचन तो जब वे जबानसे निकले थे तभी आकाशमें उड़ गये थे, फिर भी हम कहते हैं कि ये खुदाके शब्द हैं । सो कैसे ? सिर्फ यही जवाब देना पड़ेगा कि यह खुदाके शब्दोंकी मूर्त्ति है । अभिप्राय यह है कि, मूर्त्तिके विना किसीका भी काम नहीं चलता । जो मूर्त्तिको नहीं माननेका दावा करते हैं वे भी प्रकारान्तरसे मूर्त्तिको मानते तो हैं हीं । "

इसके सिवाय भी सूरिजीने कई ऐसे उदाहरण दिये जिनसे यह प्रमाणित होता था कि, प्रत्येक मनुष्य मूर्त्तिको मानता ही है। उसके बाद खानखानाने पूछाः—

" यह ठीक है कि, मूर्त्तिको माननेकी आवश्यकता है, लोग-मानते भी हैं; मगर यह बताइए कि, मूर्त्तिकी पूजा किस लिए करनी चाहिए और वह मूर्त्ति हमें क्या फायदा पहुँचा सकती है ?

सूरिजीने उत्तर दियाः—" महानुभाव ! जो मनुष्य मूर्त्तिकी पूजा करते हैं, वे वस्तुतः उस मूर्त्तिको नहीं पूजते हैं; वे तो उस मूर्त्तिके द्वारा ईश्वरकी पूजा करते हैं। पूजा करते समय पूजकका यह भाव नहीं होता है कि मैं इस पत्थरको पूज रहा हूँ। वह तो यही सोचता है कि—मैं परमात्माकी पूजा कर रहा हूँ। मुसलमान लोग मसजिदमें, या जहाँ कहीं वे नमाज पढ़ते हैं वहाँ, पश्चिम दिशाकी ओर मुख रखते हैं। उस समय वे यह नहीं समझते हैं कि, हम दीवारके सामने—जो उनके सामने होती है—नमाज़ पढ़ते हैं, मगर वे यह समझते हैं कि पश्चिम दिशामें मक्का है, उसीके सामने हम नमाज़ पढ़ रहे हैं। जिस लक्कड़को घड़कर चौकी बना ली जाती है, वह लक्कड़ चौकीहीके नामसे पुकारा जाता है। उसे कोई लक्कड़ नहीं कहता। संसारमें स्त्रियाँ सब एकसी हैं; परंतु पुरुष अपनी सहधर्मिणी उसीको मानता है जिसके साथ उसका पाणिग्रहण हुआ है। अर्थात् उस स्त्रीमें अपनी पत्नी माननेकी भावना स्थापित करता है। इसी भाँति पत्थर वास्तवमें तो पत्थर ही है; मगर जो पत्थर घड़कर मूर्त्ति बनाया जाता है और मंत्रादि विधिसे जो स्थापित होता है, उसमें परमात्माहीका आरोप किया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि, मूर्तिकी पूजा करनेवाले पत्थरकी पूजा नहीं करते हैं, बल्कि मूर्त्तिद्वारा परमात्माकी पूजा करते हैं।

"मूर्त्तिकी पूजासे लाभ यह है कि, उसकी पूजासे उसके दर्शनसे मनुष्य अपने हृदयको पवित्र बना सकता है। मूर्त्ति के दर्शनसे उस व्यक्तिके–परमात्माके–जिसकी वह मूर्त्ति होती है–गुण-याद आते हैं। उन गुणोंका स्मरण करना या उसके अनुसार आचरण करनेका प्रयत्न करना सबसे बड़ा धर्म है। मनुष्योंका हृदय वैसा ही बनता है, जैसे उन्हें संयोग मिलते हैं। वेश्याके पास जानेसे पाप लगता है। इसका कारण क्या है? क्या वेश्या उसको पाप दे देती है? वेश्याको तो पापका ज्ञान भी नहीं होता है। कारण यह है कि, वेश्यापाप नहीं देती मगर उसके पास जानेसे पुरुषका हृदय मलिन–अपवित्र हो जाता है। अन्तःकरणका मलिन होना ही पाप है। इसी भाँति यद्यपि परमात्माकी मूर्त्ति हम को कुछ देती लेती नहीं है; तथापि उसके दर्शन–पूजनसे मनुष्यका अन्तःकरण निर्मल–शुद्ध होता है। अन्तःकरणका शुद्ध होना ही धर्म है।"

यह और इसी तरहकी दूसरी अनेक युक्तियोंसे सूरिजीने मूर्त्तिपूजाका प्रतिपादन किया।

खानखाना बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मुक्तकंठसे सूरिजीकी प्रशंसा करते हुए कहा:—"सचमुच आप ऐसी ही इज्जतके काबिल हैं जैसि कि आपको अकबर बादशाहने बख्शी है। मैं आपके गुणोंकी दाद दिये विना नहीं रह सकता।"

तत्पश्चात् उसने कई मूल्यवान पदार्थ सूरिजीके समक्ष रख कर उन्हें ग्रहण करनेका आग्रह किया। सूरिजीने उन्हें साधुधर्मके लिए अग्राह्य बताकर साधुओंके पालने योग्य १८ × बातोंका विवेचन किया।

× जैनसाधुओंको निम्नलिखित १८ बातें पालनी चाहिए। (१) हिंसा (२) झूठ (३) चोरी (४) अब्रह्म (५) परिग्रह; इन पाँचोंसे दूर रहना। (६) रात्रिभोजन न करना (७) पृथ्वी (८) जल (९) अग्नि

इस प्रकार **खानखाना** पर भी सूरिजीने अपना प्रभाव डाला था।

महाराव सुरतान।*

सूरिजी विहार करते हुए जब **सीरोही** गये थे तब वहांके प्रतापी राजा **महाराव सुरतान** पर भी उन्होंने अच्छा प्रभाव डाला था। **रावसुरतान**का समागम करके **सूरिजीने** उसको अच्छा प्रबोध दिया था। कई 'कर'—जो प्रजा पर केवल जुल्म थे—भी उन्होंने बंद

---

(१०) वायु (११) वनस्पति (१२) त्रस; इन छः प्रकारके जीवोंको कष्ट न पहुँचाना, (१३) राजपिंड ग्रहण न करना—अर्थात् राजाके वहाँसे भोजन ग्रहण न करना। (१४) सोना चाँदी, काँसा, पीतल आदि धातुओंके निर्मित बर्तनोंमें भोजन न करना। (१५) पलंग व सुखदायी बिस्तरोंपर शयन नहीं करना। (१६) गृहस्थके घरमें नहीं बैठना (१७) स्नान नहीं करना और (१८) शृंगार नहीं करना।

* यह वि० सं० १६२८ में **सीरोही**की गद्दी पर बैठा था। उस समय उसकी आयु सिर्फ १२ वर्षकी थी। इसको अनेक बार राजपूतों और बादशाहकी फौजोंके साथ युद्ध करना पड़ा था। उनमें कई बार उसे हारना भी पड़ा था। राज्य गद्दी भी छोड़नी पड़ी थी। परन्तु अन्तमें उसने अपनी वीरतासे राज्य वापिस ले लिया था। वह प्रकृतवीर था। स्वाधीनता, महाराणा **प्रतापसिंह**की भाँति उसे भी बहुत प्यारी थी। इसलिए अपने जीवनका बहुत बड़ा अंश उसे युद्धोंमें ही बिताना पड़ा था। कहा जाता है कि, उसने सब मिलाकर ५१ युद्ध किये थे। जब वह **आबू** पहाड़का आश्रय ले कर युद्ध करता था तब बड़ीसे बड़ी सेनाको भी वह तुच्छ समझता था। जैसा वह उदार था वैसा ही बहादुर भी था। उसने अनेक गाँव दानमें दिये थे। उसके मिलनसार स्वभावके कारण अनेक राजाओंसे उसकी मित्रता थी

इसके संबंधमें जो विशेष जानना चाहते हैं वे पं० **गौरीशंकर हीराचंद** ओझाकृत 'सीरोही राज्यका इतिहास' के २१७ से २४४ तकके पृष्ठ देखें।

करवा दिये थे। सुरतानने सूरिजीके उपदेशसे अन्याय नहीं करनेका भी निश्चय कर लिया था। इनके अलावा सूरिजीके तपोबलसे एक महत्त्वकी बात और भी हुई थी। वह यह थी—

उसने विना ही कारण निर्दोष सौ श्रावकोंको अपराधी ठहरा कर कैद कर दिये थे। इससे समस्त संघमें हाहाकार मच गया था। संघके मुखियोंने अनेक प्रयत्न किये मगर सुरतानने श्रावकोंको नहीं छोड़ा।

एक वार सूरिजीके साथके साधु बाहिर दिशाजंगल गये और वापिस आकर 'इर्यावहिया'+ किये विना ही अपने अपने कामोंमें लग गये। सूरिजीने उनकी उस भूलको देखा और संध्याको सबसे कहा कि,—" कल तुम सबको 'आंबिल'× करना होगा; क्योंकि आज तुमने, दिशा जाकर 'इर्यावहिया' नहीं की है। " सारे साधुओंने इस प्रायश्चित्तको स्वीकारा। दूसरे दिन समस्त साधुओंने 'आंबिल' की तपस्या की। सूरिजी के साथ जब साधु आहार करनेके लिए बैठे तब उन्हें मालूम हुआ कि, आज सूरिजीने भी 'आंबिल' की ही तपस्या की है। उन्होंने पूछा:—" आज आपको आंबिल किस बातका है?" सूरिजीने उत्तर दिया:—" आज मेरा *मातरा पडिलेहण किये विना परठा‡ था। उस दिन सब मिला कर अस्सी आंबिल हुए। इस

+—जैन साधु जब पेशाब या पाखाने जाकर आते हैं, उस समय, जाते आते मार्गमें जितना चाहिये उतना उपयोग नहीं रहनेके कारण,—उपयोग स्खलनाके लिए—गुरुके पास प्रायश्चित्त रूप जो क्रिया करते हैं उसको **इरियावहिया** कहते हैं।

× आंबिलके लिए पेज १०७ का फुटनोट देखो।

* साधुलोग पेशाबको **मातरा,** कहते हैं।

‡ जैनसाधु गटर—मोरी आदि स्थानोंमें पेशाब नहीं करते। वे खुली जगहमें—जहाँ जीव-जन्तु नहीं होते हैं—पेशाब करते हैं। या किसी कूंडीमें

प्रकार आंबिल करने और करानेका सूरिजीका आन्तरिक हेतु जुदा था। सूरिजीकी इच्छा थी,–जो श्रावक आफतमें पड़े हैं उनको किसी भी तरहसे छुड़ाना। सूरिजीको आंबिलकी तपस्या पर बहुत श्रद्धा थी। जब जब वे कोई महत्त्वका कार्य करना चाहते थे तब तब वे प्रारंभमें आंबिल ही किया करते थे। एक तरफ़ सूरिजीने इस तरह आंबिलकी तपस्या की और दूसरी तरफ **सीरोहीके महाराव सुरतानसे** मिल कर उसे, निर्दोष कैदी श्रावकों को छोड़ देनेका उपदेश दिया। सूरिजीके उपदेशका **सुरतान**के हृदयमें असर हुआ और उसी दिन उसने शामके वक्त सबको मुक्त कर दिया।

सुल्तान हबीबुल्लाह।

विहार करते हुए सूरिजी एक बार **खंभात** गये। वहाँ **हबीबुल्लाह** नामका एक खोजा रहता था। उसकी एक वक्तकी खूराक लगभग एक मन थी। उसका शरीर खूब मोटा ताजा था। उसने धनका बहाना करके सूरिजीका बहुत अपमान किया। सूरिजीका द्वेषी **महिआ** नामका एक व्यक्ति भी उससे मिल गया। इससे वह सूरिजीको ज्यादा सताने लगा। परिणाम यह हुआ कि, उसने सूरिजीको शहरके बाहिर निकलवा दिया। इससे समस्त जैनसमाजमें खलबली मच गई। सूरिजीके इस अपमानको सब गच्छके साधुओंने अपना अपमान समझा। वे भी गाँवके बाहिर चले गये और सूरिजीके पास जाकर रहे। सूरिजीके अपमानका कृत्य वास्तवमें अक्षम्य था। इसका प्रतीकार करना जुरूरी था। स्वच्छंदी और निरंकुश मनुष्योंका मद यदि उतार

करके निर्दोष जमीनमें छिड़क देते हैं जिससे वह जल्दी सूख जाता है। दुर्गंध नहीं फैलती है और जीवोत्पत्ति भी नहीं होती है। ऐसा करनेको 'मातरा परठना' कहते हैं।

नहीं दिया जाता है तो वे जब तब, भलेसे भले आदमीका भी अपमान करते नहीं अचकाते हैं । इसलिए भविष्यमें ऐसी बात न हो इसका प्रबंध करनेके लिए, धनविजय नामके साधु हीरविजयसूरिके पाससे रवाना होकर अकबरके पास चले । शान्तिचंद्रजी उपाध्याय–जिनके विषयमें छठे प्रकरणमें लिखा जा चुका है–उस समय अकबरके पास ही थे । धनविजयजी जाकर उनसे मिले । शान्तिचंद्रजीने जाकर सारी बातें बादशाहसे कहीं । बादशाह क्रुद्ध होकर बोलाः—"उसको बाँध कर जूते मारते हुए यहाँ लानेका, मैं इसी वक्त हुक्म देता हूँ।"

उस समय हबीबुल्लाहका हीरानंद नामका एक अनुचर भी वहाँ विद्यमान था। उसने बादशाहसे नम्रतापूर्वक प्रार्थनाकी कि, "खुदावन्द ! माफ करें । मैं पत्र लिखकर सब ठीक ठाक कर देता हूँ।"

मगर बादशाहने उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया और हुक्म दिया कि,–"जिसने हीरविजयसूरिका अपमान किया है वह मारा जाय।"

यह आज्ञापत्र लेकर धनविजयजी गुजरातमें सूरिजीके पास पहुँचे । श्रावक बहुत प्रसन्न हुए । यह हाल जब हबीबुल्लाहको मालूम हुआ; श्रावकोंके पास जब उसने आज्ञापत्र पढ़ा, तब उसके होश उड़ गये । वह घबराहटके साथ विचारने लगा,–अब क्या होगा ? मेरे प्राण कैसे बचेंगे ? मुझे यह कैसी दुर्बुद्धि सूझी कि जिस पुरुषका सम्राट् अकबर भी मान करता है उसका अपमान किया।" अनेक प्रकारके विचारोंके बाद उसने अपने कई आदमी सूरिजीको सादर खंभातमें लानेके लिए भेजे । सूरिजी उस समय किसी अन्य गाँवमें थे ।

सूरिजीको तो अपने मानापमानका कुछ खयाल था ही नहीं। भविष्यमें साधुओंका अपमान न हो इसी लिए उन्होंने इतना किया था, इसलिए वे आनंदपूर्वक खंभातकी ओर चले। जब वे शहरसे थोड़ी दूर रहे तब हवीबुल्लाह अपनी चतुरंगिनी सेना सहित उनका स्वागत करनेके लिए गया और उनको देखते ही उनके पैरोंमें जा गिरा व उनके गुणगान करने लगा।

सूरिजी जब नगरमें उपाश्रयमें गये तब हवीबुल्लाह उनके पास गया और क्षमा याचना करता हुआ बोलाः-—" महाराज ! आप दयालु हैं। मैंने आपका जो अपमान किया है उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। मैं खुदाको साक्षी रखकर क़सम खाता हूँ कि भावीमें फिर कभी किसी महात्माका अपमान नहीं करूँगा। "

सूरिजी बोलेः—"सुल्तान साहब ! मैंने तो आपको पहिलेहीसे क्षमा कर दिया है। मेरे हृदयमें आपके लिए कोई दुर्भाव नहीं है। इसीका यह प्रमाण है कि, आपने मुझे अपने गाँवमें बुलानेको मनुष्य भेजे और मैं तत्काल ही आ गया। यदि मेरे दिलमें आपके लिए कोई बुरा खयाल होता तो मैं हरगिज यहाँ न आता।

हवीबुल्लाह इससे बहुत प्रसन्न हुआ। सूरिजीकी मुखमुद्रा और असल फकीरीका निरीक्षण करते ही उसके अन्तःकरणमें किसी और ही तरहके भाव उत्पन्न हुए। उसको विश्वास हुआ कि, ऐसे गुणी महात्माका यदि अकबर बादशाह और अन्यान्य लोग सत्कार करते हैं तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

उसके बाद भी हवीबुल्लाह प्रायः सूरिजीका उपदेश सुननेके लिये उपाश्रयमें आया करता था। एक बार सूरिजी व्याख्यान बाँच रहे थे तब वह आया। उस समय सूरिजीके मुखपर

'मुँहपत्ती ×' बंधी हुई थी। उसे देखकर उसने पूछाः—" महाराज ! आपने मुँह पर कपड़ा किस लिए बाँध रक्खा है ?"

सूरिजीने उत्तर दियाः—" इस समय शास्त्र मेरे हाथमें है। बोलते हुए कहीं इस पर थूकका छींटा न पड़ जाय, इस लिए यह कपड़ा बाँधा गया है।"

हवीबुल्लाहने फिर पूछाः—थूक क्या नापाक है ?"

सूरिजीने उत्तर दिया—" बेशक, जबतक वह मुँहमें रहता है पाक होता है। मुँहसे निकलते ही नापाक हो जाता है।"

सूरिजीके उत्तरसे वह प्रसन्न हुआ। उसने निवेदन कियाः-" महाराज! मेरे लायक कोई कार्य हो तो बताइए।"

सूरिजीने कई कैदियोंको छोड़ देनेकी और जीवरक्षा करानेकी सूचना की। तदनुसार उसने कई बंदियोंको छोड़ दिया और शहरमें

× मुँहपत्तीका संस्कृत नाम 'मुखवस्त्रिका' है। इसको जैनसाधु हमेशा अपने हाथमें रखते हैं। जब वे बोलते हैं तब मुँहके आगे धर लेते हैं। प्राचीन कालमें जब कागजोंका प्रचार नहीं हुआ था और ग्रंथ लंबे लंबे ताड़पत्रों पर लिखे हुए थे तब, उन ग्रंथोंके पृष्ठोंको दोनों हाथोंमें पकड़कर व्याख्यान बाँचना पड़ता था। इससे दोनों हाथ बँधजानेके कारण साधुओंको 'मुँहपत्ती' मुखपर बाँधनी पड़ती थी। हेतु यह था कि, थूक उड़कर शास्त्र पर न पड़े। मगर अब लंबे लंबे पृष्ठ हाथमें लेकर शास्त्र नहीं बाँचना पड़ता है। अब तो मजेदार ऐसे कागजों पर शास्त्र छप गये हैं कि जिन्हें दोनों हाथोंमें लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए वर्तमान कालमें 'मुँहपत्ती' मुखपर बाँधकर व्याख्यान बाँचनेकी कोई आवश्यकता हमें नहीं दिखती। एक हाथमें पृष्ठ और दूसरे हाथमें मुँहपत्ती रखनेसे काम चल सकता है। तो भी पुराना रिवाज अब भी कहीं कहीं दिखाई देता है। मगर व्याख्यानके समय मुँहपर 'मुखवस्त्रिका' बाँधनेका जो खास कारण था वह मिट गया है, इसलिए उस पुराने रिवाजको पकड़े रहनेकी कोई आवश्यकता अब नहीं है।

अमारी घोषणा करादी—कोई किसी जीवको न मारे ऐसा ढिंढोरा पिटवा दिया।

आज़मखाँ *।

वि० सं० १६४८ में हीरविजयसूरि अहमदावाद गये थे। उस समय आज़मखाँ वहाँका सूबेदार था। वह दूसरी वार इस सूबेमें आया था। उसकी सूरिजी पर बहुत श्रद्धा थी। एक वार वह सोरठ पर चढ़ाई करनेकी तैयारी कर रहा था, उस समय धनविजयजी साधुने उससे मिल कर कहाः—"मुझे सूरिजी महाराजने आपके पास भेजा है।" उसने उत्सुकता के साथ पूछाः—"महाराजने मेरे लायक कोई कार्य बताया है?" धनविजयजीने उत्तर दियाः—"हाँ, आप जानते हैं कि, हमारे पवित्र तीर्थ—गिरिनार, शत्रुंजय आदि बादशाहकी तरफसे हमारे सिपुर्द हुए हैं। उनके परवाने भी हमें दिये गये हैं, मगर अफसोस है कि, अबतक उनपर पूरा अमल नहीं हुआ। कई विघ्न बीच बीचमें आजाया करते हैं, इस लिए आप पूरा बंदोबस्त कर दीजिए।"

उसने उत्तर दियाः—"सूरिजी महाराजसे मेरा सलाम कहना और कहना कि, इस वक्तमें युद्धमें जारहा हूँ। वापिस आने पर आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।"

धनविजयजी सूरिजीके पास लौट आये। आज़मखाँने सोरठ पर चढ़ाई की। सबसे पहिले उसने जामनगर पर हमला किया। एक तरफ़ थी आज़मखाँकी फौज और दूसरी तरफ थे हाला, झाला

---

* यह वही आज़मखाँ है जो ख़ानेआज़म या मिर्ज़ा अज़ीज़-कोकाके नामसे पहिचाना जाता है। यह ई० स० १५८७ से १५९२ तक अहमदाबादका सूबेदार था। विशेष जाननेके लिए मीराते सिकंदरीमें (गुजराती अनुवाद) पृ० १७२ से १८५ तक देखो।

और काठी। घमसान युद्ध हुआ। आज़मखाँको सूरिजी पर बहुत श्रद्धा थी। उसको विश्वास था कि, लड़ाईके लिए तैयार होते वक्त ही मुझे सूरिजी महाराजके प्रतिनिधि श्रीधनविजयजीके दर्शन हुए थे इसलिए अवश्यमेव मेरी जीत होगी। आज़मखाँ इसी विश्वासके साथ युद्ध कर रहा था। उसकी सेना धीरता और वीरताके साथ आगे बढ़ी जा रही थी। अचानक जामनगरके जाम ×सताजामका घोड़ा चमका। इससे दूसरे सवारोंमें भी गड़बड़ी मच गई। आज़मखाँका दाव चल गया। उसकी फौजने आगे बढ़कर शत्रुको परास्त किया। यद्यपि जामके जसा वज़ीरने बहुत वीरता दिखाई परन्तु अन्तमें वह मारा गया और सताजामको युद्धस्थल छोड़कर भाग जाना पड़ा।

नयानगर (जामनगर) को जीतकर आज़मखाँने जूनागढ़पर चढ़ाई की। वहाँ भी विजय प्राप्त कर वापिस अहमदाबाद आया।

---

१ सताजामका खास नाम सतरलसाल (शत्रुशल्य) था। वह जाम विभोजीके चार पुत्रोंमें सबसे बड़ा था। वह जामसताके नामसे प्रसिद्ध हुआ था। जब वह सिंहासन पर बैठा तब गुजरातमें बहुत बड़ी अव्य-वस्था थी। ई० स० १५६९में उसके पिताके स्वर्गवासी होने पर वह राज्य-गद्दी पर बैठा था। जाम सताजीके समयहीसे सुल्तान मुजफ्फरकी आज्ञासे जामनगरके जाम कोरी (जामनगर राज्यका चलनी सिक्का) पाड़ने लगे थे। इस जामके वज़ीरका नाम जसा वज़ीर कहा जाता है। उसका पूरा नाम वजीर जसा लाधक था। उसने और जामके पुत्र कुंवर अजाजीने बहादुरीके साथ आज़मखाँसे लड़ाई की थी। मगर अन्तमें दोनों ही युद्धमें काम आये। आज़मखाँ और जाम सताजीके इस युद्धका विशेष वृत्तान्त जिनको जानना हो वे 'अकबरनामाके तीसरे भागके (बेवरिजकृत अंग्रेजी अनुवाद) पृ० ९०२ में; 'काठियावाड़ सर्व संग्रह' (गुजराती अनुवाद) के पृ. ४५४-४५५ में; 'मीरातेअहमदी' (गुजराती अनुवाद) के पृ० १७७ में एवं मीरातेसिकंदरी (गुजराती अनुवाद) पे. ४३१ आदिमें देखें।

अमदावाद आते ही उसने सूरिजीको बुलाया । वे सोमविजयजी और धनविजयजीको साथ लेकर आज़मख़ाँके बँगले गये। राजवाड़ामें प्रवेश करते ही आज़मख़ाँने सूरिजीका सत्कार किया। थोड़ा वार्तालाप होने पर आज़मख़ाँने कहा:—

" महाराज ! आपके पवित्र नामसे मैं मुद्दतसे परिचित हूँ । आपके शुभ नामका स्मरण करनेहीसे मुझे अपने कार्यमें पूर्णतया सफलता हुई है । मैं चिरकालसे आपके दर्शनोंके लिए उत्सुक था। सच तो यह है कि, जबसे बादशाह अकबर आपका मुरीद बना तभीसे मैं आपसे भेट करनेकी इच्छा कर रहा था। आज मेरी इच्छा पूरी हुई। इससे मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ। "

इस तरह विवेक बतानेके बाद उसने कहा:—" महाराज ! आप किस पैगंबरके चलाये हुए धर्मको मानते हैं ? "

सूरि०—महावीरस्वामीके ।

आज०—उनको गुजरे कितने बरस हुए हैं ?

सूरि०—करीब दो हजार बरस ।

आज़०—तब तो आपका धर्म बहुत पुराना नहीं है ।

सूरि०—मैं जिन महावीरस्वामीका नाम लेता हूँ वे तो हमारे चौवीसवें तीर्थंकर-पैग़म्बर हैं । उनके पहिले भी तेईस पैग़म्बर हो गये हैं । हम महावीरस्वामीके साधु कहलाते हैं । क्योंकि उन्होंने जो मार्ग बताया है उसी पर हम चलते हैं ।

आज०—आपके पहिले और आखिरी पैग़म्बरमें क्या कोई फर्क है ?

सूरि०—पहिले पैग़म्बरका नाम ऋषभदेव है । उनका शरीर

पाँचसौ धनुषका था । उनके बाद दूसरे, तीसरे पैगम्बर जैसे जैसे होते गये वैसे ही वैसे उनका शरीरप्रमाण भी कम होता गया । उनके वस्त्रों और लक्षणोंमें भी फरक है । ऋषभदेव भगवानने सफेद वस्त्र बताये हैं। वे भी नापके । महाव्रत पाँच बताये—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । पहले और आखिरी तीर्थंकरोंके साधुओंके आचार तो करीब करीब एकसे ही हैं; परन्तु बीचके बाईस तीर्थंकरोंके साधुओं-के आचारमें कुछ फर्क है । बाईस तीर्थंकरोंने पाँच वर्णके वस्त्र बताये हैं । उनका कोई प्रमाण भी नहीं बताया । उन्होंने महाव्रत भी चार ही बताये । अर्थात् उन्होंने ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह दोनोंका एकहीमें समावेश कर दिया । इस तरह भेद होनेका और कोई कारण नहीं है कारण सिर्फ एक है । वह यह कि,—बाईस तीर्थंकरोंके समयके मनुष्य सरल और बुद्धिमान थे, इसलिए थोड़ेमें बहुत समझ जाते थे । मगर इस कालके मनुष्य वक्र और जड़ कहलाते हैं । इसलिए जितना आचार बताया गया है उतना भी वे नहीं पाल सकते हैं । यह बात खास तरहसे ध्यानमें रखना चाहिए कि, आचारमें अन्तर होने पर भी उनके प्रकाशित किये हुए सिद्धान्तोंमें कोई अन्तर नहीं है । पहिलेके तीर्थंकरोंने जैसे सिद्धान्त प्रकाशित किये हैं वैसे ही सिद्धान्त पीछेके तीर्थंकरोंने भी किये हैं । प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवको हुए असंख्य वर्ष बीत गये हैं । अन्तके महावीरस्वामीको हुए लगभग दो हजार वर्ष बीते हैं । बस उन्हींके बताये हुए मार्गमें हम द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार चल रहे हैं ।

आजमखाँको बड़ा आनंद हुआ । कुछ देर बाद उसने और पूछाः—" आपको साधु हुए कितने वर्ष हुए ? "

सूरिजी—बावन बरस ।

आज़मखाँ—इतने वरसोंमें आपने कोई चमत्कार दिखानेवाली शक्ति प्राप्त की है? कभी आपको खुदाके दर्शन हुए हैं?

सूरिजी—खाँसाहिब! खुदा संसारमें नहीं आ सकता। इसलिए उसके दर्शन भी कैसे हो सकते हैं? और चमत्कार दिखानेवाली शक्तिसे हमें कोई प्रयोजन नहीं है। हम घर, वार, धनमाल, स्त्री, पुत्र आदि समस्त पदार्थोंका त्याग कर चुके हैं। हमें न राज्यप्राप्तिकी इच्छा है और न पैसेहीका लोभ है। हमें चमत्कारोंसे क्या लेना देना है? हाँ, दुनियामें चमत्कारिणी विद्याएँ जुरूर मौजूद हैं। परन्तु उनका साधन करनेवाले निःस्पृही और त्यागी महात्मा संसारमें बहुत ही थोड़े हैं। कालिकाचार्य ईंटका सोना वना देते थे? सनत्कुमारके थूकसे शरीरका रोग मिट जाता था? पहिले इसी तरहकी और भी अनेक विद्याओंके जाननेवाले महापुरुष थे। मगर उन्होंने अपनी संततिको इसलिए विद्याएँ नहीं दीं कि वे इन विद्याओंका अभिमान करके कहीं अपना साधुत्व न नष्ट करदें। अगले जमानेके साधु विद्याओंका दुरुपयोग नहीं करते थे। जब कभी धर्मका कोई कार्य आपड़ता था तभी वे उनका उपयोग करते थे। अब भी साधु यदि अपने चारित्रको निर्मल रक्खें और साधुधर्मको बरावर पालें तो इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं। चारित्रका प्रभाव ही ऐसा है कि, मनुष्य विना जवान हिलाये ही हजारों पर अपना प्रभाव डाल सकता है। चारित्रके प्रभावहीसे साधुओंके पास आनेवाले जातिवैरवाले जन्तु भी अपना स्वभाव भूल जाते हैं। मगर चाहिए चारित्रकी सम्पूर्ण निर्मलता। ऐसे चारित्रवानको मंत्र-तंत्रादिकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। उसके निर्मल चारित्रहीसे सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं। हम इस समय इसलिए खुदाकी बंदगी करते हैं और साधुधर्म पालते हैं कि, धीरे धीरे हम भी खुदाके जैसे हो जायँ।

सूरिजीका कथन सुननेके बाद आज़मखाँने एक हास्योत्पादक कथा सुनाई। उसने कहाः—

" मेरे कहेका आप बुरा न मानें । हिन्दु लोग कभी खुदाको नहीं पा सकते । केवल मुसल्मान ही पासकते हैं । देखिए एक बार हिन्दु और मुसलमानोंके आपसमें झगड़ा हुआ । हिन्दु कहने लगे कि, खुदाके पास हम जा सकते हैं और मुसल्मान कहने लगे कि हम जा सकते हैं । अन्तमें यह स्थिर हुआ कि, दोनों एक एक आदमीको खुदाके पास रवाना करें । जिसका आदमी खुदाके पास जाकर आजायगा; समझना कि, वही पक्ष खुदाके पास है । फिर हिन्दुओंमेंसे एक बहुत बड़ा विद्वान् खुदाके पास जानेको तैयार हुआ । अपना शरीर छोड़कर वह खुदाके पास पहुँचनेके लिये रवाना हुआ । रस्तेमें उसे एक महान् भयानक और बीहड़ जंगल मिला । उसको पार करके वह आगे नहीं जासका । इस लिए वापिस लौट आया । लोगोंने उसे पूछा कि,—"तुम खुदाके पास हो आये ?" तो उसने उत्तर दियाः—" हाँ, हो आया । " फिर उससे पूछा गया कि,—"खुदा कैसा है ?" उसने उत्तर दियाः—" बड़ाही सुंदर है । " मगर वह कोई चिहन न बता सका । इससे उसकी झुठाई खुल गई ।

" फिर एक मुसलमान अपना शरीर छोड़ कर खुदाके पास चला । रस्तेमें उसने अनार, बादाम, किश्मिश, चारोली, पिश्ता, आम आदिके फल देखे; स्वर्णके महल देखे । झरणोंमेंसे अमृतके समान उसने जल पिया । आखिर वह मंजिले मक़सूदपर पहुँचा । उसने खुदाको रत्नजडित सिंहासन पर बैठे और उनकी हाजरीमें फरिश्तोंकी फौजको खड़े देखा । खुदाको सलाम करके वह तत्काल ही वापिस लौटा । खुदाके पास जाकर आया है इस बातकी सुबूतके लिए वह एक मिरचीका झूमका बगलमें दबाकर लेता आया । इससे सिद्ध होता है

कि, मुसलमानोंके सिवा दूसरा कोई भी आदमी खुदाके पास नहीं जा सकता है।"

इस कथाको सुनकर सूरिजी और उनके साथके साधु हँसे। उन्हें हँसते देखकर आज़मखाँने पूछा:—" आप हँसते क्यों हैं?

सूरिजीने उत्तर दिया:—" आपकी इस कथाको सुनकर हँसी न आवे तो और क्या हो? जिस मनुष्यमें थोड़ीसी भी समझ है, वह आपकी इस कथाको सच मान सकता है? मनुष्य शरीर छोड़कर खुदाके पास जानेको रवाना हो और जंगलको पार न कर सकनेसे वापिस लौट आवे या खुदाके पास पहुँचकर उसे रत्नजडित सिंहासन पर बैठा देखे और वहाँकी निशानीके तौर पर रास्तेमेंसे मिरचीका झूमका बगलमें दबा कर लेता आवे, ये बातें क्या हवाम महल चुनानेकीसी नहीं हैं? खुदा क्या शरीरवाला है जो स्वर्णसिंहासन पर जा बैठा? जानेवाला मुसलमान जब शरीर ही यहाँ रख गया था तब उसके बगल फिर कहाँसे आगई थी जिसमें दबाकर मिरचका झूमका लेता आया था?"

आज़मखाँ भी खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने स्पष्ट कहा कि, मैंने सचमुच ही यह एक हवाई किलाही खड़ा किया था। उसने सूरिजीकी बहुत प्रशंसा की और कहा:—"मेरे लायक कोई काम हो तो फर्माइए।"

सूरिजीने झगड़ूशाह नामके श्रावकको—जो कैदमें था—छोड़ देनेके लिए कहा। आज़मखाँने तत्काल ही उसको छोड़ दिया। उस पर एक लाखका जुर्माना किया था वह भी माफ कर दिया।

उसके बाद बड़ी धूमधामसे आज़मखाँने सूरिजीको उपाश्रय पहुँचाया। झगडूशाहके छूटनेसे और आज़मखाँ पर सूरिजीका

प्रभाव पड़नेसे अहमदाबादके श्रावक बहुत प्रसन्न हुए। अपनी प्रसन्नता व्यक्त करनेके लिए उन्होंने बहुतसा धन खर्चकर महोत्सव भी किया।

आज़मख़ाँको सूरिजी पर बहुत श्रद्धा हो गई थी। इसलिए जब उसको अवकाश मिलता तभी सूरिजीके पास जाता और उनके दर्शन करके व अमृतमय वचन सुनके आनंद मानता।

कहाजाता है कि, सूरिजीने वि० सं० १६५१ में जब ऊनामें चौमासा किया था तब भी वह हज (मक्काकी यात्रा) से वापिस लौटते वक्त सूरिजीके दर्शनार्थ गया था ×। उस समय उसने सातसौ रुपये सूरिजीके भेट किये। सूरिजीने उसे समझाया,—"हम लोग कंचन और कामिनीके सर्वथा त्यागी हैं। इसलिए हम ये रुपये नहीं ले सकते" आज़मख़ाँने वे रुपये दूसरे सन्मार्गमें खर्च करदिये। वहाँ भी सूरिजीका उपदेश सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ था।

क़ासिमख़ाँ। *

वि० सं० १६४९ में सूरिजी पाटन गये थे। उस समय वहाँका सूबेदार क़ासिमख़ाँ था।

× जूनागढ फतेह करनेके बाद वि० सं० १६५० में आज़मख़ाँ कुटुंब परिवार, दासदासियों और सौ नोकरोंको साथमें ले, सरकारी ओहदे और अमीरोंको छोड़ मक्का गया था। मक्कासे पीछे लौटते वक्त वह सूरिजी से वि० सं० १६५१ में मिला था। इससे मालूम होता है कि, वह मक्कामें लगभग एक बरस तक रहा था। विशेषके लिए आईन-इ-अकबरी (ब्लॉकमैनकृत अंग्रेजी अनुवाद) में पृ० ३२५ से ३२८ तक देखो।

* वह कुंदालिवालबारहके खान सैयदमुहम्मदका पुत्र था। वह पहिले खान आलमकी मातहतीमें नौकर रहा था। इसने मुहम्मद-हुसेन-मिर्जाका-जो मुहम्मद अज़ीज़ कोकासे हार कर दक्षिणमें भागा था-पीछा करनेमें वीरता दिखाई थी। धीरे धीरे उसकी तरक्की होती रही। अन्तमें वह

उस समय तेजसागर और सामलसागर नामके दो साधुओंको किसी कारणसे समुदाय बाहरकी सजा दी गई थी। इससे वे दोनों साधु क्रुद्ध होकर क़ासिमख़ाँसे मिले। उस समय उसके शरीरमें कोई रोग था। साधुओंने औषध करके वह रोग मिटा दिया। इससे क़ासिमख़ाँ उनसे प्रसन्न हुआ। और बोला:—"मेरे लायक़ कोई कार्य हो तो कहो।" साधुओंने कहा:—"अगर तुम हमसे खुश हो तो हीरविजयसूरिको समझाकर हमें वापिस समुदायमें शामिल करा दो।"

क़ासिमख़ाँने तत्काल ही हीरविजयसूरिजीको अपने पास बुलाया। यद्यपि उसने यह सोचा था कि, मैं सूरिजीको दबाकर इन साधुओंको समुदायमें शामिल करा दूँगा। मगर हीरविजयसूरिजीको और उनकी भव्य आकृतिको देखते ही उसका वह विचार जाता रहा। उनके चारित्रका उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि, उसने जिस हेतुसे सूरिजीको बुलाया था उसका कोई जिक्र ही नहीं किया। वह सादर उनके साथ वार्तालाप करने लगा। प्रसंगोपात्त सूरिजीने उसको जीवहिंसा—त्यागका उपदेश दिया। क़ासिमख़ाँने कहा:—

"संसारमें जीव जीवका भक्षण है। ऐसा कौनसा मनुष्य है जो जीवोंका भक्षण नहीं करता है। लोग अनाज खाते हैं,वह क्या है? उसमें भी तो जीव है। लोग अनाजके अनेक जीवोंका भक्षण करते हैं, इसकी अपेक्षा केवल एक ही जीवका वध कर उसका भक्षण किया जाय तो इसमें बुराई क्या है?"

सूरिजी बोले:—"सुनिए खाँसाहब! खुदाने सारे जीवों पर

गुजरातका सूबेदार नियत हुआ। ई० स० १५९८ में उसका देहान्त हुआ। मरा उस समय वह पन्द्रह सौ सेनाका नायक था। विशेषके लिए आईन-इ-अकबरी (ब्लॉकमॅनकृत अंग्रेजी अनुवाद) का ४१९ वाँ पृष्ठ देखो।

महर रखनेकी आज्ञा की है। इस बातको शायद आप भी जरूर स्वीकार करेंगे। समस्त जीवोंपर रहम–दया करके उसके भक्षणसे दूर रहना, यह सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। मगर ऐसा करना मनुष्य जातिके लिए अशक्य है। क्योंकि पेट हरेकको भरना पड़ता है। इसलिए यह बात विचारणीय है कि, जीवहिंसा जितनी हो सके उतनी कम करके पेट कैसे भरा जा सकता है ?

" संसारमें जीव दो तरहके हैं। 'त्रस' और 'स्थावर'। जो जीव अपने आप हलन चलन नहीं कर सकते हैं वे 'स्थावर' कहलाते हैं। जैसे–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। अनाजके जीव भी 'स्थावर' जीव हैं। जो जीव अपने आप हलनचलन कर सकते हैं वे त्रस जीव होते हैं! नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ' त्रस ' कहलाते हैं। 'स्थावर' जीवोंके सिर्फ एक ही इन्द्री होती है। 'त्रस' जीवोंके दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रियाँ होती हैं। एकेन्द्रियकी अपेक्षा द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियकी अपेक्षा त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रियकी अपेक्षा चतुरिन्द्रिय और चतुरिन्द्रियकी अपेक्षा पंचेन्द्रियका पुण्य विशेष होता है। यदि पुण्यमें न्यूनाधिकता न होती तो फिर इन्द्रियोंमें न्यूनाधिकता कैसे होती ? पाँच इन्द्रिय जीवोंमें भी पशु, मनुष्य आदि हैं। पशुओंकी अपेक्षा मनुष्योंका पुण्य ज्यादा होता है। मनुष्योंमें भी पुण्यकी न्यूनाधिकता है। कोई गरीब है और कोई राजा है। कोई साधु है और कोई गृहस्थ है। इस भिन्नताका कारण पुण्यकी न्यूनाधिकता ही है। अब मैं आपसे पूछता हूँ कि, जो मनुष्य अनाजके जीवोंको और पशुओंके जीवोंको समान गिनके पशुओंका मांस खाते हैं, वे मनुष्योंका मांस क्यों नहीं खाते हैं ? क्योंकि उनकी मान्यतानुसार तो अनाज, पशु और मनुष्य सबके जीव समान ही हैं। मगर नहीं खाते। कारण–सारे जीवोंके पुण्यमें न्यूनाधिकता है। जिन जीवोंमें पुण्यकी

न्यूनता है उन जीवोंकी हिंसाका पाप भी कम होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि, जब तक थोड़े पुण्यवाले जीवोंकी हिंसासे काम चलता है तब तक विशेष पुण्यवाले जीवोंकी हिंसा करना बुरा है। इस तरह जब हमारा कार्य अनाजसे चल जाता है तब हमें विशेष इन्द्रियवाले जीवोंका संहार किस लिए करना चाहिए। जो विशेष इन्द्रियवाले जीवोंको खाते हैं–जो मांसाहारी हैं उनके अन्तःकरणोंमें, यह बात निर्विवाद है कि, खुदाके हुक्मके माफ़िक महर–दया नहीं रहती है।"

सूरिजीके वक्तव्यसे **क़ासिमखाँ** बहुत प्रसन्न हुआ। उसके अन्तःकरणमें दयाभाव उत्पन्न हुए। उसने **सूरिजीसे** कोई कार्य बतानेको कहा। **सूरिजीने** जो बकरे, भैंसे, पक्षी और बंदीवान बंद थे उन्हें छोड़ देनेके लिए कहा। उसने **सूरिजीकी** आज्ञाका पालन किया। सबको छोड़ दिया।

इस कार्यद्वारा **क़ासिमखाँने सूरिजीको** प्रसन्न करके उनसे एक याचना की,—

" आपने अपने जिन दो शिष्योंको गच्छ बाहिर निकाला है उन्हें यदि आप वापिस गच्छमें लेलेंगे तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।"

सूरिजीने कहाः—" सैयद साहब ! शायद आप जानते होंगे कि, हम मनुष्यको, उसके कल्याणार्थ, साधु बनानेके लिए कितना प्रयत्न करते हैं ? एक जीव संसारी बंधनोंको तोड़कर साधु बनता है तब हमें बहुत आनंद होता है। जब वस्तुस्थिति ऐसी है तब बने हुए साधुओंको हम, बिना ही कारण अलग करदें यह कभी संभव है ? मगर किया क्या जाय ? वे किसीका कहना नहीं मानते और स्वतंत्र रहते हैं, इसीलिए मुझे ऐसा करना पड़ा है। तो भी आपके आग्रहको मानकर मैं उन्हें वापिस समुदायमें शामिल करलेता हूँ; परन्तु आप उन्हें समझा दीजिए कि, वे आगेसे हमेशा मेरी आज्ञामें रहें।"

क़ासिमखाँने तत्काल ही तेजसागरजी और सामलसागरजीको वुलाया और कहा:—" महाराज, तुम्हें वापिस समुदायमें लेलेते हैं, मगर आगेसे महाराजकी आज्ञाका उल्लंघन न करना।"

फिर सूरिजीको उसने जुलूसके साथ उपाश्रय पहुँचाया।

सुल्तान मुराद।*

वि० सं० १६५० में पाटनसे सिद्धाचलजी जानेके लिए एक वहुत वड़ा संघ निकला था। सूरिजी भी उसके साथ थे। संघ जव अहमदावाद पहुँचा तव सुल्तान मुरादने सूरिजी और संघका वहुत सत्कार किया। उसने उत्तमोत्तम रत्न रखकर सूरिजीकी पूजा की और संघका भी अच्छा आतिथ्य किया।

सुल्तानने सूरिजीके मुखसे धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट की। सूरिजीने उसे धर्मोपदेश दिया। सूरिजीने उस समय हिंसाका त्याग, सत्यका आचरण, परस्त्री त्याग, अनीति अन्यायसे दूर रहने, और भंग, अफीम, मदिरा आदि व्यसनोंसे वचनेका खास उपदेश दिया। उसने सूरिजीके उपदेशको मानकर उस दिन कोई जीव हिंसा न करे ऐसा ढिंढोरा पिटवा दिया। जव सूरिजीने वहाँसे विहार किया तव उसने दो मेवड़े भी उनके साथ भेजे।

इसके उपरान्त सूरिजीने अपने भ्रमणमें दूसरे भी अनेक सुल्तानों और सूवेदारोंको उपदेश दिया था और उनसे जीवदयाके कार्य कराये थे।

---

* अहमदावादका सूवेदार आजमखाँ जव मक्काकी यात्राके लिये गया था तव उसके स्थानमें वादशाह अकवरने अपने पुत्र सुल्तान मुरादको नियत किया था। इसके वारेमें जो विशेष जानना चाहें वे 'मीराते अहमदी' (गुजराती अनुवाद) का पृ० १८६ देखें।

प्रकरण आठवाँ ।

दीक्षादान ।

दरत अपना काम किये ही जाती है । कुदरती कानूनोंके विरुद्ध चलनेकी कोशिशमें मनुष्यको कभी सफलता नहीं मिलती । समयके अनुकूल प्रत्येक प्रवृत्तिमें परिवर्तन हुआ ही करता है । आबू गिरिनार, तारंगा, पालीताना और राणपुर आदिके गगनस्पर्शी और भव्य मंदिर आज भी भारतकी प्राचीन विभूतिका प्रत्यक्ष प्रमाण दे रहे हैं । उनको देखनेसे कइयोंके मनमें यह प्रश्न उठा करता है कि,—"उस कालके वे लक्ष्मीपुत्र कैसे थे कि, जिन्होंने अपनी अखूट लक्ष्मीका व्यय ऐसे मंदिर बनवानेमें किया ! क्यों नहीं उन्हें बोर्डिंग, बालाश्रम, विश्वविद्यालय, अनाथाश्रम और पाठशालाएँ आदि स्थापन करनेका खयाल आया ? "

ऐसी कल्पना करनेवाले यदि थोड़ा बहुत संसारकी परिवर्तनशीलताका अवलोकन करेंगे तो उनका हृदय ही उनके प्रश्नोंका उत्तर दे देगा । कोई समय समान नहीं रहता । उसमें परिवर्तन हुआ ही करता है । जिस जमानेमें जैसे कार्योंकी आवश्यक्ता मालूम होती है उस जमानेमें मनुष्योंकी बुद्धि उसी प्रकारकी हो जाती है । कोई काल दर्शनके उदयका आता है । उस समय लोगोंकी प्रवृत्ति मुख्यतया स्थान स्थान पर मंदिर बनवाने, प्रतिष्ठाएँ करवाने, संघ निकालने और बड़े बड़े उत्सव करानेकी तरफ होती है । कोई समय ज्ञानके

उदयका आता है उस समय लोग, स्थान स्थान पर पाठशालाएँ स्कूल बनवाने, विश्वविद्यालय स्थापन करने और पुस्तकालयोंका उद्घाटन करनेमें लग जाते हैं। कोई समय चारित्रके उदयका आता है उस समय साधुओंकी वृद्धि ही दृष्टिगत होती है।

विक्रमकी सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दिका समय, जिस समयका हम जिक्र कर रहे हैं, प्रधानतया चारित्रके उदयका था। उस समय संसारकी अनित्यताका भान होते ही बहुतसे गृहस्थ—बहुतसे गर्भश्रीमंत भी गृहस्थावस्थाका परित्याग कर चारित्र (दीक्षा) ग्रहण कर लेते थे। और इसीका यह परिणाम था कि, सैकड़ों ही नहीं बल्कि हजारोंकी संख्यामें जैनसाधु विचरण करते थे।

कर्तव्यभ्रष्ट मनुष्य संसारमें निंदा पात्र बनते हैं। यद्यपि यह बात सत्य है कि, संसारके समस्त मनुष्य समान प्रकृतिके, समान विद्वत्तावाले और समान ही कार्य करनेवाले नहीं होते। तो भी इतना जरूर है कि, किसीको अपने लक्ष्यबिंदुसे च्युत नहीं होना चाहिए। जैसे दीक्षा लेनेवालेको यह भली प्रकारसे समझ लेना चाहिए कि, दीक्षा लेनेका उद्देश्य क्या है? इसी तरह दीक्षा देनेवालेको भी यह न भूलजाना चाहिए कि, दीक्षा देनेका उद्देश्य क्या है?

दीक्षा परम सुखका कारण है। दीक्षा मोक्षकी निसेनी है। दीक्षित मनुष्य जिस सुखका अनुभव करता है, वह इन्द्र, चंद्र नागेन्द्रको भी नहीं मिलता। ऐसी इस भव और परभव दोनोंमें सुख देनेवाली दीक्षा अंगीकार करना प्रत्येक सुखाभिलाषी मनुष्यके लिए आवश्यक है। मगर उस ओर मनुष्यकी अभिरुचि नहीं होती। इसका कारण संसारके अनित्य पदार्थों परकी आसक्ति और चारित्रके महत्त्वकी अज्ञानता है। कई वार ऐसा भी बनता है कि, दीक्षा लेनेके बाद भी

मनुष्य स्व-पर-उपकारका साधन करनेमें तत्पर नहीं रहता है, विषय-वासनाओंमें लिप्त हो जाता है, मोहमूर्च्छासे मूर्च्छित बनजाता है। उसकी स्थिति धोबीके गधेकीसी हो जाती है। वह आप भी डूबता है और दूसरी भी अनेक आत्माओंको अपने साथमें डुबोता है। मगर ऐसी स्थिति उसी मनुष्यकी होती है जिसका दीक्षाका यह उद्देश्य होता है,—

> मूँड मुँडाये तीन गुण, मिटे सीसकी खाज।
> खानेको लड्डू मिलें, लोक कहें महाराज॥

मगर जो '**साध्नोति स्व-परकार्याणीति साधुः**‡' अथवा '**यतते इन्द्रियाणीति यतिः**'* इन वाक्योंको जो अपने हृदयपट पर अंकित कर रखते हैं, उनकी स्थिति कभी ऐसी नहीं होती। इसीलिए कहा गया है कि, मनुष्य अपने लक्ष्यबिंदुको न चूके।

इसी प्रकार दीक्षादान करनेवालेको चाहिए कि, वह अपनी उदार भावनाको हमेशा स्थिर रक्खे। यह कहनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं दिखती कि, दीक्षा लेनेवालेकी अपेक्षा देनेवाले पर उत्तर दायित्व विशेष रहता है। उसको हमेशा इस बातका प्रयत्न करना पड़ता है कि, दीक्षालेनेवाला जगत्का कल्याणकर्ता कैसे हो? विषयवासनाओंसे उसका चित्त कैसे हटे? उसका जीवन आदर्श कैसे बने? आदि। इस प्रकार सचेष्ट वही गुरु—दीक्षा देनेवाला—रह सकता है कि, जो संसारके आरंभ समारंभमें मस्त और विषय वासना तथा क्रोधादि कषायोंसे तृप्त जीवको, दया और शासनहितकी भावनासे, दीक्षा देता है। मगर जो सिर्फ बहुतसे शिष्योंके गुरु कहलानेके लोभसे

---

‡ जो स्व-पर कार्योंकी साधना करता है वह साधु होता है।

* जो इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह '**यति**' होता है।

और मिथ्या आडंबरसे लोगोंको खुश करनेकी इच्छासे दीक्षाएँ देते हैं, वे दीक्षा लेनेवालेकी कोई भलाई नहीं कर सकते। वे तो मनुष्यको गृहस्थावस्थासे निकाल कर अपने समुदायमें मिला लेनेहीमें अपने कर्तव्यकी 'इतिश्री' समझते हैं। इसका परिणाम प्रायः यह आता है कि, दीक्षालेनेवाला थोड़े ही दिनोंमें वापिस गृहस्थी बन जाता है। यदि कोई कुलकी लाजसे गृहस्थी नहीं बनता है तो भी उसको जीवनभर, साधुतामें जो वास्तविक सुख है वह नहीं मिलता। न तो वह समाजकी भलाई कर सकता है और न वह अपना हित ही कर सकता है। ऐसे गुरु और शिष्य सचमुचही समाजके लिए भार रूप हो जाते हैं।

अपने नायक हीरविजयसूरि महान् विचक्षण, शासनप्रेमी और जगत्के कल्याणकी इच्छा करनेवाले थे। इसीलिए वे जब कभी किसीको दीक्षा देते थे तब पवित्र उद्देश्यको सामने रखकर ही देते थे। उनके उपदेशसे अनेक दीक्षा लेनेको तैयार होते थे। उन्हें दीक्षा देनेके अनेक प्रसंग मिले। उनमेंसे थोड़ेसे प्रसंगोंका यहाँ उल्लेख किया जाता है। उनसे पाठकोंको उस समयकी दीक्षाओं, मनुष्योंकी भावनाओं और अन्य कई व्यावहारिक बातोंका स्वरूप मालूम हो जायगा।

एक प्रकरणमें इस बातका उल्लेख किया जा चुका है कि, जिस समयकी हम बात कर रहे हैं उस समय कई स्वच्छंदी पुरुष नये नये मत निकालने और उनके प्रचार करनेमें थोड़े बहुत सफल होजाते थे। इससे हीरविजयसूरिके समान धर्मरक्षकोंको विशेष रूपसे प्रयत्न शील रहना पड़ता था।

लौंका नामक गृहस्थके मतको—जिसका उल्लेख प्रथम प्रकरणमें किया जा चुका है—माननेवाले यद्यपि अनेक साधु और गृहस्थ थे,

तथापि जबसे जगह जगह हीरविजयसूरि सप्रमाण मूर्त्तिपूजाको सिद्ध करने लगे तबसे मूर्त्तिको नहीं माननेवाले अनेक साधुओं और श्रावकोंके विचार फिरने लगे। इतना ही नहीं अनेक साधु तो अपने मतको छोड़कर हीरविजयसूरिजीके पास पुनः दीक्षित हुए । और मूर्त्तिपूजक बने। इस तरह लौंकामत छोड़कर मूर्त्तिपूजक बने हुए साधुओंमेंसे मेघजीऋषिके—जो एक साथ तीस साधुओं सहित अपना मत छोड़कर तपागच्छमें आये थे—दीक्षा प्रसंगका यहाँ उल्लेख किया जाता है।

लौंकामतमें मेघजी नामक एक साधु मुख्य गिना जाता था। यद्यपि पहिले वह लौंकाका अनुयायी था, मगर पीछेसे जैनसूत्रोंका अवलोकन करनेसे उसको विदित हुआ कि, जैनसूत्रोंमें मूर्त्तिपूजाका उल्लेख है। मगर जो मूर्त्तिपूजाका विरोध करते हैं वे झूठे हैं, कदाग्रही हैं। मेघजीकी श्रद्धा मूर्त्ति और मूर्त्तिपूजाको माननेकी हुई। शनैः २ उसने अन्य भी कई साधुओंको अपनी मान्यता समझाई। वे भी उसको ठीक समझने लगे। तपागच्छके साधुओंमें उस समय हीरविजयसूरि मुख्य थे। मेघजी आदि लौंकागच्छके अनुयायी साधुओंकी इच्छा हीरविजयसूरिसे तपागच्छकी दीक्षा लेनेकी हुई। सूरिजीको इस बातकी सूचना मिलते ही वे तत्काल ही अहमदाबादमें आये। क्योंकि उस समय मेघजी आदि साधु वहीं थे। सूरिजीके अहमदाबाद पहुँचने पर मेघजी आदिने उनसे पुनः दीक्षा ग्रहण करना स्थिर किया। अहमदाबादके श्रीसंघने उत्सव करना प्रारंभ किया।

उस समय एक और भी आश्चर्योत्पादक बात हुई। वह यह है,— सम्राट् अकबर उस समय अचानकही अहमदाबाद आ गया था*। साथ

* अकबरका यह आगमन उस समयका है कि, जब उसने गुजरात पर प्रथम बार चढ़ाई की थी। वह ई. स. १५७२ के नवम्बरकी २० वीं तारीखको अहमदाबादमें आया था और ई. स. १५७३ की १३ वीं अप्रेलको

उसका कृपापात्र अनुचर थानसिंह रामजी नामक जैनगृहस्थ भी था। उसके प्रभावसे शाही बाजा पल्टन आदि भी इस उत्सवके लिए मिले थे। उससे उत्सवका और जैनोंका गौरव बढ़ गया था।

इस प्रकार बड़ी धूमधामसे मेघजी× ऋषिने लौंकामतका त्यागकर हीरविजयसूरिजीके पास संवत् १६२८ में दीक्षा ली। सूरिजीने मेघजीका नाम उद्योतविजय रक्खा।

मेघजीके समान एक प्रभावशाली साधु अपने मतको छोड़कर शुद्ध मार्ग पर आया, उसके तीस+ शिष्य—अनुयायी भी उसके

गुजरात छोड़ कर चला गया था। लगभग पाँच महीने तक वह गुजरातमें रहा था। (देखो-'अकबरनामा,' ३ रा भाग, बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद, पृ० ११ से ४८ तक) उसी समय मेघजीकी दीक्षाका प्रसंग भी आया था।

× ऋषभदास कविके कथनसे मालूम होता है कि, मेघजी गृहस्थावस्थामें प्राग्वंशी था।

+ मेघजीने कितने साधुओंके साथ सूरिजीसे पुनः दीक्षा ली, इस विषयमें लेखकोंके भिन्न भिन्न मत हैं। 'हीरसौभाग्य' काव्यके नवमें सर्गके ११५ वें श्लोकमें तीस आदमियोंके साथ दीक्षा लेना लिखा है–' विनेयैस्त्रिंशता समम्'

इसी प्रकार कवि ऋषभदास भी हीरविजयसूरिरासमें तीसके साथ दीक्षा लेना लिखता है,—' साथई साथ लिओ नर त्रीश.'

' विजयप्रशस्ति ' काव्यके आठवें सर्गके नववें श्लोक की टीकामें लिखा है कि, दीक्षा सत्ताईसने ली थी—' सप्तविंशतिसंख्यैः परीतः सन्'

गुणविजयजीके शिष्य संघविजयजीने वि. सं. १६७९ के मिगसर सुद ५ के दिन बनाये हुए ' अमरसेन–वयरसेन ' आख्यानमें लिखा है कि, उन्होंने अठाईस ऋषियोंके साथ आकर प्रसन्नता पूर्वक हीरविजयसूरिको वंदना की। (' अट्ठावीस ऋषिस्युं परवर्या, आवी वंदइ मनकोडि' ९७) इन्हीं संघविजयजीने 'सिंहासनबत्तीसीमें भी अठाईसके साथ ही दीक्षा लेनेका उल्लेख किया है। इसलिए यह स्थिर नहीं किया जा सकता है

साथ तपागच्छमें दाखिल हुए, और हीरविजयसूरिसे दीक्षित हुए। उन तीसमें मुख्य आंवो, भोजो, श्रीवंत, नाकर, लाडण, गांगो, गणो (गुणविजय) माधव और वीरआदि थे। उनके गृहस्थ अनुयायी दोसी श्रीवंत, देवजी, लालजी और हंसराज आदि भी सूरिजीके अनुयायी वने।

यह बात अभूतपूर्व हुई। इससे जैसे श्वेतांबर मूर्त्तिपूजकोंकी प्रशंसा हुई वैसे ही हीरविजयसूरिजीके प्रभावमें भी बहुत ज्यादा अभिवृद्धि हो गई। मेघजी आदि मुनियोंकी प्रशंसा इनसे भी ज्यादा हुई। क्योंकि उन्होंने सत्यका स्वीकार करनेमें लोकापवादका लेशमात्र भी भय न रक्खा।

चरित्रनायक सूरिजी गीतार्थ थे। वे उत्सर्ग और अपवादके मार्गको जानते थे। शासनके प्रभावक थे। उनको न था शिष्योंका लोभ और न थी मानकी अभिलाषा। उनके अन्तःकरणमें केवल यही भावना रहती थी कि, जगज्जीवोंका कल्याण कैसे हो? जैनधर्ममें प्रभावक पुरुष कैसे पैदा हों? और स्थान स्थान पर जैनधर्मकी विजयवैजयन्ती कैसे फहरावे? और इसीलिए उनके उपदेशका इतना प्रभाव होता था कि, अनेक वार अनेक लोग उनके पास दीक्षा लेनेको तत्पर होते थे। शुद्ध हृदय और परोपकारबुद्धिप्रेरित उपदेश असर क्यों न करेगा?

वि. सं. १६३१ में हीरविजयसूरि जब खंभातमें थे, तब उन्होंने एक साथ ग्यारह मनुष्योंको दीक्षा दी थी। यह और ऊपरकी वात यही प्रमाणित करती हैं। इन दोनों वातों पर विशेष रूपसे प्रकाश

कि, मेघजीऋषिके साथ कितनोंने दीक्षा ली थी। यह संभव है कि, पहिले मेघजीके साथ तीस तत्पर हुए हों और पीछेसे दो तीन निकल गये हों और लेखकोंने निकले हुओंको कम करके संख्या लिखी हो।

डालनेसे पाठकोंको विदित होगा कि, उस समयके लोग आत्मकल्याण करनेके लिए कितने उत्सुक रहते थे ।

पाटनमें **अभयराज** नामका एक ओसवाल गृहस्थ रहता था । वह कालान्तरमें अपने कुटुंब सहित **दीव** बंदरमें जा रहा । अभयराज दीवबंदरका एक बहुत बड़ा व्यापारी समझा जाता था । कारण-चार तो उसके पास वाहण-जहाज ही थे । उसने अपने ही उद्योगसे धन कमाया था । उसकी स्त्रीका नाम **अमरादे** था । उसके **गंगा** नामक एक कन्या भी थी । वह बालकुँवारी थी । **कमलविजयजी** ×

× ये बड़े **कमलविजयजी**के नामसे प्रसिद्ध हैं । उनका मूल निवास **द्रोणाड़ा** (मारवाड़) था । ये छाजेड़ गोत्रके ओसवाल थे । उनके मातापिताका नाम **गेलमदे** और **गोविंदशाह** था । उनका जन्म नाम **केल्हराज** था । बारह वर्षकी आयुहीमें उनके पिताका स्वर्गवास हो गया था । इसलिए वे अपनी माताके साथ **जालोर** (मारवाड़) गये । वहाँ पंडित **अमरविजयजी**के सहवाससे उनके हृदयमें दीक्षा लेनेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी । बड़ी कठिनतासे उन्होंने मातासे आज्ञा लेकर धूमधामके साथ पं. **अमरविजयजी**के पास दीक्षा ली । नाम **कमलविजयजी** रक्खा गया । थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने आगमों-शास्त्रोंका अच्छा अभ्यास कर लिया । उनको योग्य समझ कर आचार्य **श्रीविजयदानसूरि**ने उनको गंधारमें **पंडित** पद दिया (वि.सं. १६१४) में उन्होंने मारवाड़, मेवाड़ और सोरठ आदि देशोंमें विहार किया था, और अनेकोंको उपदेश दे कर दीक्षित किया था । उनकी त्यागवृत्ति बहुत ही प्रशंसनीय थी । महीनेमें छः उपवास तो वे नियमित किया करते थे । नित्यप्रति ज्यादासे ज्यादा, वे दिनभरमें केवल सात चीजोंका उपयोग करते थे । वि. सं. १६६१ में उन्होंने आचार्य **श्रीविजयसेनसूरि**के आदेशसे महेसानेमें चातुर्मास किया था । वहाँ आषाढ सुदी १२ के दिन उनके शरीरमें व्याधि उत्पन्न हुई । यद्यपि सातदिनका उपवास करनेके बाद कुछ दिनके लिए उनका रोग शान्त हुआ था, तथापि उसी महीनेके अन्तमें आषाढ सुद १२ के दिन ७२ वर्षकी आयुमें उनका स्वर्गवास हो गया । (विशेषके लिए ऐतिहासिक रासंग्रह, भा. ३ रा पृ. १२९ देखो ।)

पन्यासकी एक साध्वीके पास वह निरन्तर अध्ययन किया करती थी। अध्ययन करते हुए उसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने अपनी मातासे दीक्षा लेनेकी बात कही। माताको बहुत दुःख हुआ। उसके पिताने उसे समझाया कि दीक्षा लेनेकी अपेक्षा उसको पालनेमें कितना ज्यादा कष्ट उठाना पड़ता है; उसमें कितने धैर्य और कितनी सहनशीलताकी आवश्यक्ता है। मगर **गंगा** अपने निश्चय पर दृढ रही। माताने कहाः—" अगर तू दीक्षा लेगी तो मैं भी तेरे साथ दीक्षा ले लूँगी।" **अभयकुमार**ने सोचा,–जब कन्या और पत्नी दोनों मिलकर दीक्षा ले रहे हैं, तब मैं भी क्यों न दीक्षित हो जाऊँ। सोचता था, मगर उसके मार्गमें एक बाधा थी। उसके एक **मेघकुमार** नामका लड़का था। उसकी उम्र छोटी थी। इससे **अभयकुमार** सोचता था कि, मेरे बाद लड़केकी क्या दशा होगी। एक दिन उसने कहाः—" वत्स! तेरी बहिन, तेरी माता और मैं तीनों आदमी दीक्षा लेंगे। तूने सुखपूर्वक संसारमें रहना और आनंद करना।"

मेघकुमारने उत्तर दियाः—" पिताजी! आप मेरी चिन्ता न कीजिए। मैं भी आपहीके साथ दीक्षा लेनेको तैयार हूँ। अपने मातापिता और अपनी बहिनके साथ मुझे दीक्षा लेनेका अवसर मिलता है यह तो मेरे लिए सौभाग्यकी बात है। ऐसा अपूर्व अवसर मुझे फिर कब मिलेगा?"

पुत्रकी बातसे **अभयराज**को बहुत प्रसन्नता हुई। आत्मकल्याणके सोपान पर चढ़नेको तत्पर बने पुत्रके शब्दोंसे उसके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा।

मेघकुमारकी वैराग्य भावना देख कर उसकी काकीको भी दीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। एक एक करके सारे कुटुंब को। (पाँच आदमियोंको) दीक्षा लेनेके लिए तैयार होते देख कर **अभयराज**के चार

मुनीम-गुमास्तोंको भी संसारसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने भी उनके साथ दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। इस तरह नौ मनुष्योंका एक साथ दीक्षा लेनेका विचार स्थिर हुआ। फिर **अभयकुमारने** आचार्य **श्रीहीरविजयसूरिको** एक पत्र लिखा। उसमें उसने उक्त आठ आदमियों सहित दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। **सूरिजी** उस समय **खंभातमें** थे। उन्होंने उत्तरमें दीक्षा देनेकी प्रसन्नता प्रकट की।

ऐसे लज्जासंपन्न, कुलसम्पन्न, विनयसम्पन्न, धनसम्पन्न और हरतरहसे योग्य वैरागी मनुष्योंको दीक्षा देनेकी आचार्य श्रीउत्सुकता बतावें इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

सूरिजीका उत्तर मिलते ही **अभयराज** सबको लेकर **खंभात** गया। वहाँ वे **वाघजीशाह** नामक गृहस्थके घर पर ठहरे। दीक्षोत्सवकी तैयारी होने लगी। आसपासके गाँवोंके लोग जमा होने लगे। **अभयराजकी** ओरसे नित्यप्रति साधर्मीवत्सल होने लगे। दान दिया जाने लगा। इस तरह बराबर तीन महीने तक शुभ कार्य होते रहे। लगभग ३९ हजार 'महमूंदिका' (उस समयका चलनी सिक्का) खर्च हुई। **अभयराज** का लक्ष्मी पाना सार्थक हुआ।

इस तरह धनधान्य, ऋद्धि-सिद्धिका परित्याग कर; उनको शुभ कार्यमें लगा **अभयराजने** अपनी स्त्री, पुत्री, भाई की पत्नी, पुत्र और चार नौकरों सहित **खंभातके** पासके '**कंसारीपुर**'*

---

* '**कंसारीपुर**' खंभातसे लगभग एक माइलके अन्तर पर एक छोटासा गाँव है। यद्यपि इस समय वहाँ न कोई मंदिर ही है और न कोई श्रावकका घर ही, तथापि कई प्रमाणोंसे यह मालूम होता है कि पहिले वहाँ ये सब कुछ थे। सत्रहवीं शताब्दिके सुप्रसिद्ध कवि **ऋषभदासने** खंभातकी **चैत्यपरि-**

में आंवासरोवरके+ पास, रायणवृक्षके नीचे, हीरविजयसूरिसे दीक्षा लेली।

पाटी बनाई है। वह उसीके हाथकी लिखी हुई है, उसमें कंसारीपुरका वर्णन करते हुए वह लिखता है,—

भीडिभंजन जिनपूजवा, 'कंसारीपुर' मांहिं जईइ;
वावीस व्यंव (बिंब) तिहां नमी, भविक जीव निर्मलहइ थईइ।
बीजइ देहरइ जइ नमुं स्वामि ऋषभजिणंद;
सत्तावीस व्यंव प्रणमता, सुपरषमनि आणंद ॥ ४६ ॥

इससे मालूम होता है कि, 'कंसारीपुर' में उस समय दो मंदिर थे। एक था ऋषभदेवका और दूसरा था भीडभंजनपार्श्वनाथका। ऋषभदेवके मंदिरमें सत्ताईस प्रतिमाएँ थीं और भीडभंजनपार्श्वनाथके मंदिरमें बाईस।

सं० १६३९ में सुधर्मगच्छके आचार्य श्रीविनयदेवसूरि खंभात गये थे। तब वे 'कंसारीपुर' में तीन दिन तक ठहरे थे। उस समय उन्होंने वहाँ पार्श्वनाथ के दर्शन किये थे। मनजीऋषिने यह बात विनयदेवसूरि-रासमें लिखी है।

गछपति पांगर्या, परिवारइ बहु परवर्या,
गुणभर्या कंसारीइं आविया ए;
पासजिणंद ए अश्वसेनकुलिचंद ए,
वृंद ए भावधरीनइं वंदीया ए;
बंधा पासजिणेसर भावइं त्रिण्ण दिवस थोभी करी;
हवइ नयरि आवइ मोती वधावइ शुभ दिवस मनस्यउं धरी॥

इसी भाँति विधिपक्षीय श्रीगजसागरसूरिके शिष्य ललितसागरके शिष्य मतिसागरने भी सं. १७०१ में खंभातकी तीर्थमाला बनाई है। उसमें भी उन्होंने चिन्तामणिपार्श्वनाथका, आदिनाथका और नेमिनाथका इस तरह तीन मंदिरोंका होना लिखा है।

अभी खंभातके खारवाड़ाके मंदिरमें 'कंसारीपार्श्वनाथ'की मूर्त्ति है। कहाजाता है कि, यह मूर्ति कंसारीपुरसे लाई गई थी। संभव है कि, यही पार्श्वनाथकी मूर्त्ति पहिले भीडभंजनपार्श्वनाथके नामसे ख्यात हो।

+ वर्तमानमें 'आंबासरोवर'का नाम 'आंबाखाड़' है। यह कंसारीपुरसे लगभग आधे माइलकी दूरी पर पश्चिम दिशामें है।

इस भाँति एक साथ नौ मनुष्योंको दीक्षा लेते देख, श्रीमाली ज्ञातिके **नाना नागजी** नामक गृहस्थकोभी वैराग्य उत्पन्न हो गया। इससे उसने भी उसी समय दीक्षा ले ली। उसका नाम **भाणविजय** रक्खा गया।

इस तरह क्षणमात्रमें वैराग्यके उत्पन्न होते ही दीक्षाका लेना या देना कइयोंको अनुचित मालूम होगा। मगर वस्तुतः वह अनुचित नहीं था। क्योंकि '**श्रेयांसि बहु विघ्नानि**' श्रेष्ठ कार्योंमें अनेक विघ्नोंकी संभावना रहती है, इसीलिए कहा है कि, **धर्मस्य त्वरिता गतिः** धर्मके कार्यमें देर नहीं करना चाहिए। उसमें भी मुख्यतया दीक्षा-कार्यके लिए तो हिन्दुधर्म शास्त्रोंमें भी यही कहा गया है कि,— **यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्**। यानि जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन दीक्षा ले लेनी चाहिए। यह ठीक ही है। जिस समय तीव्र वैराग्य हो उसी समय, एक मुहूर्त्तकी भी प्रतीक्षा न कर दीक्षा ले लेनी चाहिए। न जाने दूसरे मुहूर्त्तमें कैसे विचार आवें और शुभ समय हाथसे जाता रहे। हाँ, यह बात ठीक है कि, दीक्षा देनेवालेको लेनेवालेकी योग्यताका विचार अवश्यमेव करलेना चाहिए।

दूसरे प्रकरणमें यह कहा जा चुका है कि, **हीरविजयसूरि** एक बार जब खंभातमें गये थे तब वहाँके '**रत्नपाल दोशी**' नामक गृहस्थने **सूरिजी**को वचन दिया था कि, 'मेरा लड़का **रामजी** बीमार है, यदि वह अच्छा हो जायगा तो, मैं उसे, अगर वह चाहेगा तो, आपके सिपुर्द कर दूंगा। पीछेसे वह लड़का अच्छा हो गया तो भी **सूरिजी**को न सौंपा गया *।' **रामजी** इस दीक्षाके समय वहीं खड़ा था। वह पहिलेहीसे यह जानता था कि, मेरे मातापिताने मुझे **हीरविजयसूरिजी**को सौंपनेका वचन दिया था। मगर पीछे से सौंपा

* पृष्ठ २७ देखो।

नहीं था। यद्यपि में सौंपा नहीं गया हूँ तथापि वास्तवमें तो मैं सूरिजीका शिष्य हो चूका हूँ। अतः मुझे उनकी सेवामें जाना ही चाहिए। इसी जानकारीके कारण, पिताका आग्रह होनेपर भी उसने व्याह नहीं किया था।

जिस वक्त दस आदमियोंकी दीक्षा हो रही थी उस समय **रामजी** भी वहीं मौजूद था। उसका मन ऐसे अपूर्व प्रसंग पर दीक्षा लेनेके लिये तलमला रहा था। मगर करता क्या? उसका पिता और उसकी बहिन इसके सख्त विरोधी थे। रामजीने **भानुविजयजी**–जिन्होंने रामजीके कहनेहीसे दीक्षा ली थी–नामक साधुकी ओर देखा और उसको इशारेसे समझाया कि, मुझे किसी न किसी तरहसे दीक्षा दो।

उस समय कुछ ऐसा प्रयत्न किया गया कि, उसी समय **गोपालजी** नामका एक श्रावक **रामजीको** रथमें बिठाकर **पीपलोई**× ले गया। उसके पीछे एक पंन्यास भी गया। उसने जाकर **रामजीको** दीक्षा दी। वहाँसे वे **वडली**‡ गये।

दिक्षा लेनेवालेका मन यदि दृढ होता है तो हजारों विघ्न भी कुछ नहीं कर सकते हैं। यह बात निर्विवाद है। **रामजीका** मन दृढ था। दीक्षा लेनेकी उसके हृदयमें इच्छा थी तो दूर जाकर भी अन्तमें उसने दीक्षा ले ली। यद्यपि इस प्रकारकी दीक्षासे उसके बहिन भाइयोंने गड़बड़ मचाइ परन्तु पीछेसे **उदयकरणके** सम-

× पीपलोई खंभातसे ६–७ माइल दूर है। वर्तमानमें भी उसको **पीपलोई** ही कहते हैं।

‡ वडलीको वर्तमानमें **वडदला** कहते हैं। अभी वहाँ कोई मंदिर नहीं है। मगर श्रावकोंके थोड़ेसे घर अब भी वहाँ हैं। खंभातसे यह ९–१० माइल दूर है।

ज्ञानेसे वे समझ गये थे। नवदीक्षित रामजी खंभात बुलाया गया और उसकी दीक्षाके लिये उत्सव मनाया गया।

उपर्युक्त प्रकारसे मेघकुमार (मेघविजय) आदि ग्यारह मनुष्योंने एक साथ दीक्षा ली। अहमदाबादमें भी इसी प्रकार एक प्रसंग बना था। वहाँ भी सूरिजीने एक साथ अठारह मनुष्योंको दीक्षा दी थी।

वीरमगाँवमें **वीरजी मलिक** नामका एक वजीर रहता था। वह **पोरवाल** ज्ञातिका था। यह मनुष्य बड़ा नामी और प्रभावशाली था। पाँचसौ घुड़सवार हर समय उसके साथ रहते थे। **वीरजीका** पुत्र **सहसकरण** मलिक था। यह भी बहुत प्रसिद्ध था। **महम्मदशाह** * बादशाहका मंत्री था। **सहसकरणके गोपालजी** नामका एक पुत्र था।

गोपालजीकी बचपनहीसे धर्म पर अच्छी प्रीति थी। उसका हृदय विषयवासनासे सदा विरक्त रहता था। **गोपालजी** साधुओंके सहवासमें ज्यादा रहता था। उसने छोटी उम्रमें ही न्याय-व्याकरण आदिका अच्छा अभ्यास कर लिया था। नैसर्गिक शक्तिके कारण वह अपनी छोटी आयुहीमें कविता करने लगा था। बारह वर्षकी आयुमें उसने ब्रह्मचर्यव्रत लिया था।

थोड़े ही कालके बाद **गोपालजीका** हृदय वैराग्यवासित हो गया। उसके हृदयमें दीक्षा लेनेकी भावना लहराने लगी। उसने हार्दिकभाव अपने कुटुंबियोंसे कहे। कुटुंबी विरोधी हुए। मगर वह अपने विचारसे न टला। इतना ही नहीं, उसने अपने भाई कल्याणजी और अपनी

---

* यह वह **महम्मदशाह** है कि, जिसने ई० स० १५३६ से १५५४ तक राज्य किया था। विशेषके लिये देखो 'मुसल्मानी रियासत' (गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित) पृ. २२२.

वहिनको भी दीक्षा लेनेके लिए तत्पर किया। तीनों भाईबहिन हीरविजयसूरिके पास अहमदाबाद गये। वे वहाँ जौहरी कुँवरजीके यहाँ उतरे। दीक्षाका उत्सव प्रारंभ हुआ। जुलूस निकलने लगे। कुँवरजी जौहरीने इस उत्सवमें बहुतसा धन खर्चा। गोपालजी और कल्याणजीको दीक्षा लेते देख शाह गणजी नामक एक व्यक्तिको भी वैराग्य हो आया। उसने भी उन्हींके साथ दीक्षा ले ली। इनके सिवाय धनविजय नामक साधु हुए। उनके साथ ही उनके दो भाईयों (कमल और विमल) तथा मातापिताने भी दीक्षा लेली। इनके अलावा सदयवच्छ भणशाली, पद्मविजय, देवविजय और विजयहर्ष आदि ऐसे सब मिलाकर अठारह आदमियोंने उस समय दीक्षा ली थी।

गोपालजीका नाम सोमविजय रक्खा गया था। ये वे ही सोमविजयजी हैं कि, जिन्हें उपाध्यायकी पदवी थी और जो हीरविजयसूरिके प्रधान थे। कल्याणजीका नाम कीर्त्तिविजयजी और उनकी वहिनका नाम साध्वी विमलश्री रक्खा गया था। ये वेही कीर्त्तिविजयजी हैं कि, जो सुप्रसिद्ध उपाध्याय श्रीविनयविजयजीके गुरु थे।

हीरविजयसूरि प्रायः ऐसोंहीको दीक्षा दिया करते थे कि, जो खानदानी और लज्जा–विनयादि गुणसम्पन्न होते थे। यह बात बिलकुल ठीक है कि, जब तक ऐसे मनुष्योंको दीक्षा नहीं दी जाती है; दूसरे शब्दोंमें कहें तो–जब तक उत्तमकुलके और व्यावहारिक कार्योंमे कुशल बहादुर मनुष्य दीक्षा नहीं लेते हैं, तब तक वे साधुवेषमें रहते हुए भी शासनके प्रति जो उनका कर्तव्य होता है उसको पूर्ण नहीं कर सकते है। यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिए कि, देश, समाज या धर्मकी उन्नतिका मुख्य आधार साधु ही हैं। जब तक साधु सच्चे निःस्वार्थी, त्यागी और उपदेशक नहीं होते हैं, तब तक उन्नतिकी आशा केवल भावनामें ही रह जाती है। जब जब शासनमें

महान् कार्य हुए हैं, तब तब उसमें मुख्यता साधुओंकी ही रही है। यानी साधुओंके उपदेशसे ही महान् कार्य हुए हैं। देश-देशान्तरोमें घूम घूम कर साधु ही लोगोंके हृदयोंमें धर्मकी जागृति किया करते हैं। राजसभाओंमें भी साधु ही प्रवेश करके, धर्मबीजबोनेका प्रयत्न करते हैं। ऐसे साधु वृक्षोंसे या आकाशसे नहीं उतरते। गृहस्थोंमेंसे ही ऐसे व्यक्ति निकलते हैं और वे साधु बनकर शासनकी उन्नति करते हैं। जब वस्तुस्थिति ऐसी है तब जो गृहस्थ अपने को सुशिक्षित समझते हैं, और प्रायः इस तरहके आक्षेप करके-कि, 'साधु कुछ भी धर्महितका कार्य नहीं करते हैं; श्रावकोंको उचित उपदेश नहीं देते हैं; अपनेको शासनहितैषी होनेका दावा करते हैं वे साधुत्व ग्रहण करके क्यों नहीं समाज या धर्मकी उन्नतिके कार्यमें लगते हैं? क्यों नहीं वे स्वयं साधु बन कर आधुनिक साधुओंके लिए आदर्श बनते हैं? यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि, जमाना काम करके बतानेका है, बातें बनानेका नहीं। करना कुछ नहीं और बड़ी बड़ी बातें बनाना या दूसरों पर आक्षेप करना, केवल धृष्टता है। लाखों खंडी बोलनेवालेकी अपेक्षा पैसे भर कार्य करनेवालेका प्रभाव विशेष होता है। इस नियमको हमेशा याद रखना चाहिए। यद्यपि हम यह मानते हैं कि, वर्तमान साधुओं द्वारा जितना कार्य हो रहा है उतनेहीमें हमें सन्तोष करके बैठ नहीं जाना चाहिए। वर्तमान समयके अनुसार कार्य करनेवाले तेजस्वी साधुओंकी विशेष आवश्यकता है। इस बातको हम मानते हैं। कारण शास्त्रकार कहते हैं कि,—' जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा। ' जो कार्य करनेमें वीरता दिखाते हैं वे ही धर्म भी वीरताके साथ पाल सकते हैं। इसलिए शासनोन्नतिकी आशाको यदि विशेष फलवती करना हो तो ऐसे योग्य साधु पैदा करने चाहिए। साधुवर्गको भी इस विषय पर विचार करना चाहिए।

अकबरके पास एक जेताशाह नामका नागौरी गृहस्थ रहता था । बादशाहकी उस पर पूर्ण कृपा थी । जब हीरविजयसूरि बादशाहके पाससे रवाना होने लगे तब जेताने प्रार्थनाकी कि, यदि आप दो तीन महीने तक यहाँ और ठहरें तो मैं आपके पास दीक्षा लूँ । "

सूरिजीके लिए यह बात विचारणीय थी । जेताशाहके तुल्य बादशाहके कृपापात्र और प्रतिष्ठित मनुष्यको दीक्षा देनेका लाभ कुछ कम न था; मगर गुजरातकी ओर प्रयाण करना भी जरूरी था । सूरिजी बड़े विचारमें पड़े । थानसिंहने जेताशाहसे कहा:—" जब तक बादशाहकी आज्ञा न मिलेगी तुम दीक्षा नहीं ले सकोगे । " तत्पश्चात् उसने (थानसिंहने) और भानुकल्याणने बादशाहसे जाकर अर्ज की,—" जैतानागोरी हीरविजयसूरिजीके पास दीक्षा लेना चाहता है । मगर आपकी आज्ञाके विना यह काम नहीं होगा । "

बादशाहने जैताशाहको बुलाया और कहा:—" तू साधु क्यों होना चाहता है ? अगर तुझे किसी तरहका दुःख हो तो मैं उसको मिटानेके लिए तैयार हूँ । गाँव, जागीर, धन—दौलत जो कुछ चाहिए मांग । मैं दूँगा । "

जैताशाहने उत्तर दिया:—" आपकी कृपासे मेरे पास सब कुछ है । मुझे किसी गाँव, जागीर या धन—दौलतकी चाह नहीं है । मेरे स्त्रीपुत्र भी नहीं हैं । मैं आत्मकल्याण करना चाहता हूँ । इसलिए साधु बननेकी इच्छा है । कृपा करके प्रसन्नतापूर्वक मुझे साधु होनेकी आज्ञा दीजिए । "

जैताशाहको अपने विचारोंमें दृढ देखकर बादशाहने उसको दीक्षा लेनेकी आज्ञा दी । तब थानसिंहने कहा:—" सूरिजी महाराज तो चले जाते हैं फिर इसको दीक्षा कौन देगा ? "

बादशाह बोलाः—" जाओ सूरिजी महाराजको मेरी ओरसे प्रार्थना करो कि, जहाँ धर्मोन्नतिका लाभ हो वहाँ साधुओंको रहना ही चाहिए। जैताशाह आपके पास दीक्षा ग्रहण करना चाहता है, अतः कृपा करके आप थोड़े दिन ठहर जाइए। "

सुतरां सूरिजीको ठहरना ही पड़ा। जैताशाहकी दीक्षाके लिए उत्सव प्रारंभ हुआ। बादशाहकी अनुमतिसे धूमधामके साथ जैताशाहको सूरिजीने दीक्षा दी। उसका नाम जीतविजयजी रक्खा गया। ये जीतविजयजी 'बादशाही यति' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

जैताशाहके समान प्रसिद्ध और बादशाहके कृपापात्र मनुष्यके दीक्षा लेनेसे जैनधर्मकी कितनी प्रभावना हुई होगी, इसका अंदाजा सहजहीमें लगाया जा सकता है।

आचार्य हीरविजयसूरिजीके उपदेशमें ऐसा असर था कि उससे कई बार तो कुटुंबके कुटुंब दीक्षा ले लेते थे।

सूरिजी जब सीरोहीमें थे तब उन्हें एक बार ऐसा स्वप्न आया कि,—हाथीके चारबच्चे सूंडमें पुस्तक पकड़ कर पढ़ रहे हैं। इस स्वप्नका विचार करनेसे उन्हें विदित हुआ कि, चार उत्तम शिष्य मिलेंगे। कुछ ही दिनोंमें उनका स्वप्न सच्चा हुआ। रोहके * सुप्रसिद्ध श्रीवंत सेठ और उनके कुटुंबके मनुष्योंने सूरिजीके पास दीक्षा ली। उनमें चार उनके पुत्र (धारो, मेघो, कुँवरजी (कलो) और अजो) पुत्री, बहिन, बहनोई, भानजा और स्त्री लालबाई (इसका दूसरा नाम शिणगारदे था) थे। इन दसोंके नाम दीक्षाके बाद निम्न प्रकारसे रक्खे गये थे।

* आबूसे लगभग १२ माइल पर, दक्षिण दिशामें यह ग्राम है। आर. एम. आर. रेल्वेका वहाँ स्टेशन भी है। स्टेशनका नाम भी 'रोह' ही है।

१—श्रीवंत शेठका नाम (क्या रक्खा गया मालूम नही हुआ)

२—लालबाईका	लाभश्री	७—पुत्रीका	सहजश्री
३—धाराका	अमृतविजय	८—वहिनका	रंगश्री
४—मेघाका	मेरुविजय	९—बहनोईका	शार्दूलऋषि
५—कुंवरजी	विजयानंदसूरि	१०—भानजेका	भक्तिविजय
६—अजाका	अमृतविजय		

इस तरह सारे कुटुंबका दीक्षा लेना आश्चर्यमें नहीं डालेगा ? उपर्युक्त दीक्षा ग्रहण करनेवाले व्यक्तियोंमें **कुंवरजी** विशेप प्रसिद्ध हुआ था। **कुंवरजी** पीछेसे **विजयानंदसूरि** के नामसे प्रसिद्ध हुए थे।

सीरोहीमें ही **वरसिंह** नामका एक गृहस्थ रहता था। वह बहुत बड़ा धनी था। पूर्ण युवावस्था होनेसे उस समय उसके ब्याहकी तैयारीयाँ हो रही थी। ब्याह मँड चुका था। जवारे बो दिये थे। नित्य मंगलगान होने लगे थे। सुबो शाम नगारे बजते थे। जीमनके लिए मिष्टान्न तैयार होने लग रहा था। इस तरह ब्याहके सब सामान तैयार हो गये थे। फेरे फिरनेमें कुछ ही दिन बाकी रहे थे।

वरसिंह एक धार्मिक मनुष्य था। हमेशा उपाश्रयमें जाता और धार्मिक क्रियाएँ करता था। लग्नका दिन निकट आजाने और आनंद उत्सव होने पर भी वह अपनी धर्मक्रियाओंको छोड़ता न था।

एक दिन **वरसिंह** उपाश्रयमें बैठा हुआ, सिरपर कपड़ा ओढ़ कर सामायिक कर रहा था। उसका मुँह कपड़ेसे ढका हुआ था। वह इस तरह बैठा हुआ था कि उसे कोई पहिचान न सकता था। उपाश्रयमें साधुओंको वंदना करनेके लिए अनेक स्त्रीपुरुष आते थे और वे साधुओंके साथ ही **वरसिंह**को भी वंदना कर जाते थे। **वरसिंह**की भावीपत्नी भी आई और अन्यान्य स्त्रीपुरुषोंकी भाँति उसको वाँद गई।

उसके पासमें बैठा हुआ एक गृहस्थ हँसा और बोलाः—" **वरसिंह** ! अब तू व्याह नहीं कर सकेगा; क्योंकि तेरी स्त्री अभी ही तुझे साधु समझकर वंदन कर गई है और वंदनाके द्वारा यह सूचना दे गई है कि,—' अब भी चेत जाओ ' अतः तुझे अब व्याह नहीं करना चाहिए। "

वरसिंहने उत्तर दियाः—" बंधु, मैं तुम्हारी बातको मानता हूँ। मैं अब ऐसा ही करूँगा जिससे वह (मेरी होनेवाली पत्नी) और अन्यान्य स्त्रीपुरुष हमेशा ही वंदना किया करें।

घर आकर उसने कहा कि, 'मुझे अब व्याह नहीं करना है।' उसका सारा कुटुंब जमा हुआ। उसको अनेक तरहसे समझाने लगा; दीक्षा नहीं लेनेके लिए विवश करने लगा। मगर उसने किसीकी बात न मानी और कहा:—" यदि तुम मुझे दीक्षा नहीं लेने दोगे तो मैं आत्मघात करूँगा। " **वरसिंह** अन्नजल छोड़कर घरमें बैठ गया। मातापिताने हारकर उसको दीक्षा लेनेकी आज्ञा देदी। विवाहोत्सवके लिए जो तैयारियाँ हुई थीं उनका उपयोग दीक्षाके लिए किया गया। **वरसिंह**ने उत्सवके साथ दीक्षा ली।

मातापिता, स्त्रीपुत्रादिके क्षणिक मोहमें लुब्ध होजानेवाले, दीक्षा ग्रहण करनेके अभिलाषी कमजोर हृदयवालोंको उक्त घटनासे सबक सीखना चाहिए। केवल अजानमें लोगोंद्वारा वंदन कर जाने पर वास्तविक वंद्य बननेके लिये सर्वस्वका त्याग कर देना, क्या कम मनोबल है ?

यही **वरसिंह** धीरे धीरे पंन्यास हुए। और इनके एकसौ और आठ शिष्य भी हुए।

इसके अलावा **संघजी** नामके एक सद्गृहस्थने **पाटनमें** दीक्षा ली थी, वह घटना भी उल्लेखनीय है।

संघजी पाटनमें एक धनिक व्यक्ति था। उसके यहाँ धनवैभवकी कमी नहीं थी। उसके कुटुंबमें सुशीला पत्नी और पुत्रीके सिवा और कोई नहीं था। उसकी आयु जब बत्तीस बरसकी हुई, तब उसके हृदयमें **सूरिजीका** उपदेश सुनकर दीक्षा लेनेकी भावना उत्पन्न हुई। वह रोज **सूरिजीका** उपदेश सुननेके लिए जाता था। एक बार वह उपदेश सुनकर वापिस घर आया और अपनी स्त्रीको बत्तीस हजार महमूंदिका देकर बोला:—" इनको लो और मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दो।" उसकी पत्नी भी धर्मपरायणा थी। उसने उत्तर दिया:—" मैं तुम्हें दीक्षा लेनेसे नहीं रोकती; मगर लड़की छोटी है इस लिए प्रार्थना है कि, इसका व्याह करने के बाद आप दीक्षा लें।"

संघजीने उत्तर दिया:—" उसके व्याहका भार क्या मेरे ही ऊपर है? यदि मैं नहीं होऊँगा तो क्या व्याह नहीं होगा? काम किसीके बिना नहीं अटकता। प्रत्येकका कार्य उसके पुण्यप्रतापसे होता ही रहता है। यदि इस समय मेरे आयुकर्मकी स्थिति पूर्ण होजाय तो फिर क्या हो? क्या उसका व्याह हुए बिना रह जाय?"

पतिका दृढ निश्चय देखकर पत्नीने अनुमति देदी। उसके बाद उत्सवके साथ शुभ मूहूर्तमें **संघजीने दौलतखाँकी*** वाड़ीमें—बागीचेमें **सूरिजीके** पास दीक्षा ले ली।

इस तरह **सूरिजीने** अनेक भव्यात्माओंको दीक्षा दी; उनका उद्धार किया और उन्हें जैनधर्मका सच्चा उपदेशक बनाया। अगर कवि **ऋषभदासके** शब्दोंमें कहें तो:—

सिष्य दिपीआ एकसो नि साठ, साधइ हीर सुगतिनी वाट; ४६
एक सो साठि पंडितपद दीध, साति उवज्झाय गुरु हीरि कीध।

पृ० २२१

इससे मालूम होता है कि, सूरिजीने एक सौ साठ आदमियोंको दीक्षा दी थी; और एक सौ साठ साधुओंको **पंडितपद** दिया था और सातको **उपाध्याय**के पदसे विभूषित किया था।

१–यह दौलतखाँ, ऐसा जान पड़ता है कि, खंभातके राय कल्याणका नौकर था। इसके लिए जो विशेष जानना चाहें वे मीराते अहमदी (गुजराती अनुवाद) का १४८ वाँ पृष्ठ देखें।

प्रकरण नवाँ।

शिष्य-परिवार।
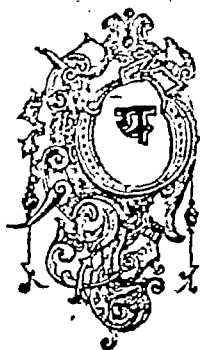
यह वात निर्विवाद है कि, पुण्यकी प्रवलताके विना अधिकार नहीं मिलता। एक ही माताकी कूखसे दो पुत्र उत्पन्न होते हैं, मगर पुण्यकी प्रवलता और हीनताके कारण एकको हजारों-लाखों मनुष्य मानते हैं; उसके वचनोंको, ईश्वरीय वाक्य समझ कर लोग मस्तक पर चढ़ाते हैं और उसकी कलमसे लिखे गये शब्दोंकी सत्यताको संसार स्वीकार करता है और दूसरेको कोई पूछता भी नहीं है। हजारों मनुष्य सम्मान प्राप्त करनेके लिए जीतोड़ परिश्रम करते हैं; परन्तु उन्हें सम्मान नहीं मिलता; हजारों घुटने टेककर प्रतिष्ठित वननेके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं, मगर उनकी प्रतिष्ठा नहीं होती। इसका कारण? कारण पुण्यकी कमी ही है। एक वात और भी है। किसी भी चीजकी अभिलाषा उस वस्तुकी प्राप्तिमें वाधक होती है।

अनमाँगे मोती मिलें, माँगी मिले न भीख।

यह लोकोक्ति सत्यसे ओतप्रोत भरी है। जो नहीं माँगता है, उसको हरेक चीज़ अनायास ही मिलजाती है। निःस्पृह और निरीह मनुष्योंको पदार्थ अनायास ही मिलजाते हैं। अपने चरित्रके प्रथम नायक सूरिजी कितने निःस्पृह थे सो उनके जीवनकी जो घटनाएँ अव तक कही गई हैं उनसे भली प्रकार मालूम हो चुका है। उनकी

निःस्पृहताके कारण ही वे जहाँ जाते थे वहाँ सम्मान पाते थे और इच्छित कार्य समाप्त कर सकते थे। इतना ही नहीं उन्हें अचिन्तित शिष्य-संपदा भी आ मिलती थी। इसीसे वे धीरे धीरे दो हजार साधुओंके अधिकारी-आचार्य-हो गये थे।

यहाँ यह बात जरूर ध्यानमें रखनी चाहिए कि, किसी भी 'पद' के प्राप्त करनेमें इतनी कठिनता नहीं है, जितनी उस 'पद' का-'ऊपरी' पनका उत्तरदायित्व समझनेमें है। आचार्य श्रीहीरविजयसूरि आचार्य हुए, गच्छनायक हुए और दो हजार जैनसाधुओं व लाखों जैनगृहस्थोंके नेता हुए, उससे वे जितने प्रशंसाके पात्र हैं उससे भी विशेष प्रशंसाके पात्र इस लिए हैं कि उन्होंने अपने 'पद'का उत्तर-दायित्व समझ कर युक्ति पुरस्सर विशाल-भावसे उन्होंने समुदायकी सँभाल रक्खी थी और शासनके हितार्थ अनेक कठिनाइयाँ झेली थीं।

सदासे चला आया है उस तरह हीरविजयसूरिके समयमें भी कई क्लेशप्रिय और संकुचित हृदयके मनुष्य, झूठे सच्चे कारण खड़े कर समाजमें क्लेश उत्पन्न करते थे। कई सम्मानके भूखे और प्रतिष्ठाके पुजारी मनुष्य अपनी इच्छा तृप्त करनेके लिए समाजमें फूट डालते थे और कई ईर्ष्यालु हृदयी दूसरेकी कीर्त्ति न सह सकनेसे अनिष्ट उपद्रव खड़े करते थे। ऐसे मौकों पर सूरिजी जल्दबाजी, दुराग्रह और छिछोरापन न कर इस तरहसे काम लेते थे कि, जिसका परिणाम उत्तम ही होता था। कईबार सूरिजीकी कृति उनके अनुयायियोंको भी ठीक नहीं जँचती थी, मगर पीछे से जब वे उसका शुभ परिणाम देखते थे तब उन्हें इस बातकी सत्यता पर विश्वास होता था कि,— 'महात्माओंके हृदयसागरका किसीको भी पता नहीं लगता है।' ऐसे प्रसंगोंको दबादेनेका सूरिजीको जितना खयाल रखना पड़ता था

उतना ही, बल्के उससे भी ज्यादा खयाल उन्हें इस बातका रखना पड़ता था कि, समाजमें एकका छूत दूसरेको न लग जाय। जब कोई ऐसी बात उपस्थित होती थी तब सूरिजी गंभीरता पूर्वक उस पर विचार करते थे और उसके बाद कोई मार्ग ग्रहण करते थे। सूरिजीको ऐसे अनेक प्रसंगोंका मुकाबिला करना पड़ा था। हम उनमेंसे एक दो का यहाँ उल्लेख करते हैं।

हीरविजयसूरि जब **अकबर** बादशाहके पास थे तब उनकी अनुपस्थितिमें द्वेषी लोगोंने **गुजरात**में अनेक उपद्रव खड़े किये थे। **खंभात**के ×**रायकल्याण**ने कई जैनोंसे अमुक कारणको सामने कर बारह हजार रुपयोंका खत लिखवा लिया था और कइयोंके सिर मुँडवा डाले थे। कइयोंने, प्राणभयसे इस उपद्रवमें जैनधर्मका भी त्याग कर दिया था। इस उपद्रवसे सारे **गुजरात**में हाहाकार मच गया। दूसरी तरफ **पाटन**में **विजयसेनसूरि**के साथ **खरतरगच्छ**वालोंने शास्त्रार्थ करना प्रारंभ किया था*।

× यह राज्याधिकारियोंमेंसे एक था। खंभातहीका रहनेवाला वैश्य था। इसके विषयमें विशेष जाननेके लिए '**अकबरनामा**' के तीसरे भागके अंग्रेजी अनुवादका ६८३ वाँ तथा '**बदाउनी**' के दूसरे भागके अंग्रेजी अनुवादका २४९ वाँ पृष्ठ देखना चाहिए।

* यह उस समयका शास्त्रार्थ है कि, जब **विजयसेनसूरि**ने **पाटन**में चौमासा किया था। इस शास्त्रार्थमें खरतरगच्छवाले निरुत्तर हो गये थे। उसके बाद उन्होंने **रायकल्याण**का आश्रय लेकर **अहमदाबाद**में फिरसे शास्त्रार्थ शुरू किया था। अहमदाबादका यह शास्त्रार्थ वहाँके सूबेदार **खानखाना**की सभामें हुआ था। वहाँ भी कल्याणराय और खरतरगच्छके अनुयायियोंको **विजयसेनसूरि**के शिष्योंसे निरुत्तर होना पड़ा था। इस विषयमें विशेष जानना हो तो 'विजयप्रशस्तिकाव्य' के दसवें सर्गका १ से १० वाँ श्लोक पढ़ना चाहिए।

ये सारी वातें हीरविजयसूरिजीको लिखी गई। सूरिजी उस समय गुजरातसे बहुत दूर थे। वे सहसा न तो गुजरातमें ही पहुँच सकते थे और न उनके पत्रहीसे यह विग्रह शान्त हो सकता था। क्योंकि विग्रहकर्ता उनके अनुयायी नहीं थे, दूसरे थे। इसलिए सूरिजीके लिए यह वात बड़ी विचारणीय हो गई थी कि, विग्रह कैसे शान्त किया जाय? उनको रह रह कर यह भी खयाल आ रहा था कि यदि इस समय उचित प्रबंध न होगा तो भविष्यमें अन्य भी इस तरहके हमले करते रहेंगे। इसलिए कोई ऐसा दृढ उपाय करना चाहिए कि, जिससे सदाके लिए शान्ति हो जाय। फिर कोई हमला करनेका साहस न करे।

उसका एक ही उपाय उन्हें सूझा और वह यह कि, बादशाहको कहलाकर उससे कोई प्रबंध करवाना। सूरिजी उस समय अभिरामाबादमें थे।

वे अभिरामाबादसे फतेहपुर आये। वहाँ उन्होंने जैनियोंकी एक सभा बुलाई। उसमें इस बात पर विचार किया गया कि—गुजरातके उपद्रवका क्या उपाय किया जाय? उस सभामें यह प्रस्ताव पास किया गया कि, अमीपाल दोशी बादशाहके पास भेजा जाय। बादशाह उस समय नीलाव * नदीके किनारे था। शान्तिचंद्रजी और भानुचंद्रजीभी वहीं थे। अमीपालने जाकर पहिले सारी बात

* नीलाव, सिंधु, या अटक नदीका दूसरा नाम है। पंजाबकी दूसरी पाँच नदियोंकी अपेक्षा यह नदी बड़ी है। देखो. 'आईन-इ-अकबरी' (एच. एस. जेरिट कृत अंग्रेजी अनुवाद) के दूसरे भागका ३२५ वाँ पृष्ठ। वि० सं० १६४२ (ई० स० १५८६) की यह बात है। अकबर उस समय अटक पर था। यह बात 'अकबरनामा' से भी सिद्ध होती है। देखो 'अकबरनामा' तीसरे भागके अंग्रेजी अनुवादका पृष्ठ ७०९—७१५.

शान्तिचंद्रजीसे कही। तत्पश्चात् उन्होंने भानुचंद्रजीको बुलाया। उन्हें भी सारी बातें कही गईं। उन दोनोंने जाकर वे बातें अबुलफ़ज़लसे कहीं। उनकी सलाहसे अमीपाल दोशी बादशाहके पास गया और नजराना करके खड़ा रहा। बादशाहने सूरिजीके कुशल समाचार पूछे। शेख अबुलफ़ज़लने बादशाहसे कहाः—" गुजरातमें हीरविजयसूरिके जो शिष्य हैं उन्हें बहुत तकलीफ हो रही है, इसलिए उनको तकलीफसे छुड़ानेका कोई प्रबंध करना चाहिए। " फिर उसने गुजरातकी सारी घटना सुनाई। सुनकर बादशाहने अहमदाबादके सूबेदार मिर्जाख़ान को पत्र लिखा और उसमें लिखा कि, जो हीरविजयसूरिके शिष्योंको कष्ट पहुँचाते हों उन्हें तत्काल ही दंड दो।

पत्र अहमदाबादके श्रावकोंके पास आया। उन्होंने वीपुशाहको यह पत्र ले कर खानसाहेबके पास जानेके लिए कहा। उसने सलाह दी कि,—" यथासाध्य प्रयत्न करके आपसमें झगड़ा मिटा लेना ही अच्छा है। राज्याधिकारीयोंसे दूर रहनेमें ही अपना भला है। कल्याणरायके पास विट्ठल नामका कार्यकर्ता है। वह बहुत ही बदमाश और खटपटी है उसका चलेगा तब तक वह हमें दंड दिलाये बिना नहीं रहेगा। "

यह बात लोगोंको ठीक न लगी। जीवा और सामल नामके दो नागोरी श्रावकोंने कहा कि, " हम लोग मिर्जाख़ानसे मिलने और बादशाहका पत्र उसे देने जानेको तैयार हैं। मगर हमें अपना पक्ष समर्थनके लिए प्रमाण भी जुटा रखने चाहिएं। इसके लिए हमारी यह सलाह है कि, खंभातमें जिन लोगोंके सिर मुँडवाये गये हैं, वे यहाँ बुला लिये जायँ।

खंभातसे अन्याय—दंडित लोग बुलाये गये। जब वे आ गये

तब उन्हें ले कर दोनों नागौरी सज्जन खानके पास गये। खानके हाथमें बादशाहका पत्र दिया गया। पत्र पढ़ कर उसने सादर उन्हें बिठाया और पूछाः—" मेरे लायक जो काम हो सो कहिए।" उन्होंने खंभातमें जो घटना हुईथी, सो सुनाई और कहा कि, इस तरह रायकल्याणके मारे हमें अपना धर्म पालना भी कठिन हो रहा है। इसलिए इसका प्रबंध होना चाहिए।

मिर्जाखाँने उसी समय रायकल्याणको पकड़लानेका हुक्म दिया। विठ्ठल वहीं था। वह पकड़ा गया। सारे गाँवमें फिराया गया और तीन दर्वाजेके पास बाँध कर दंडित किया गया। रायकल्याणको पकड़नेके लिये दोसौ घुड़सवार खंभात भेजे गये। यह खबर सुनकर रायकल्याग वहाँसे भागकर अहमदाबाद सूबेदारके पास आया। खाँने उसको बहुत बुरा भला कहा और साधुओंसे क्षमा माँगने की सूचना दी। रायने जाकर साधुओंसे माफी माँगी और उनकी पद्धूली मस्तक पर चढ़ाई। उसने जुल्मसे बारह हजारका जो खत लिखा लिया था वह रद्दी किया गया और जिन्होंने भयके मारे जैनधर्मको छोड़ दिया था वे भी पुनः जैनी हो गये।

वसीला क्या काम नहीं कर सकता है? हजारों ही नहीं बल्के लाखों रुपये खर्च करने पर भी जो काम नहीं होता है वह वसीलेसे हो जाता है। इसी लिए तो शासनशुभैषी, धर्मधुरंधर पूर्वाचार्य मानापमानकी पर्वाह किये बिना राज-दर्बारमें प्रवेश करते थे और रुके हुए धर्मके कार्यको अनायास ही पूर्ण करा लेते थे। इतिहासमें ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

एकबार सूरिजी खंभातमें थे तब अहमदाबादमें विमलहर्ष

उपाध्यायके साथ **भदुआ** * नामक श्रावकका किसी कारणसे विवाद हो गया। विवादमें **भदुआने** ऐसी ऐसी बातें उपाध्यायजीको कहीं कि, जिनका कहना श्रावकोंके लिए सर्वथा अनुचित था। उपाध्यायजीने यह बात **सूरिजीको** लिखी। **सूरिजीको** यह पढ़कर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कि, इसी तरह यदि गृहस्थ अपनी मर्यादाका त्याग करेंगे, तो परिणाम यह होगा कि, साधु और श्रावकोंके बीचमें एक गंभीर मर्यादा है वह न रहेगी अतः इस अनुचित स्वाधीनता पर अंकुश रखना चाहिए।

यह सोचकर उन्होंने अहमदवादस्थ साधुओंको एक पत्र इस अभिप्रायका लिखनेके लिये, **सोमविजयजीको** कहा कि,—**भदुआ** श्रावकको संघ बहार निकालकर उसके यहाँ गोचरी जाना बंद कर दो।

जब पत्र रवाना किया जाने लगा तब **विजयसेनसूरिने हीर-विजयसूरिसे** प्रार्थनाकी कि, पत्र यदि अभी न भेजा जाय तो अच्छा हो; परन्तु **सूरिजीने** उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। पत्र भेज दिया। पत्र पाकर अहमदाबादमें साधुओंने **भदुआको** संघबाहर कर दिया और उसके घर गोचरी–पानी जाना छोड़ दिया। अहमदाबा-दका संघ इससे बहुत चिन्तित हुआ।

इसमें तो किसीको शंका नहीं थी कि, **भदुआने** साधुओंके अपमानका महान् अपराध किया था। साधुओंने **भदुआको** दंड

१–भदुआ **हीरविजयसूरिके** भक्त श्रावकोंमेंसे एक था। मगर वह अमुक समयके लिए धर्मसागरजीके पक्षमें मिल गया था। जान पड़ता है कि, इसीलिए **विमलहर्ष** उपाध्यायके साथ कुछ विवाद हो गया होगा। भदुआ श्रावक संघ बहार निकाल दिया गया था। पं० **दर्शनविजयजीने** यह बात अपने बनाये हुए 'विजय-तिलकसूरिरास'में भी लिखी है। ऐतिहासिक रास संग्रह ४ थे भागका २३ वां पृष्ठ देखो।

आचार्यश्रीकी आज्ञासे दिया था, इसलिए श्रावक साधुओंको कुछ कह भी नहीं सकते थे। इसलिए भदुआको वापिस संघमें लेनेके लिए आचार्य महाराजसे क्षमा माँगनेके सिवा और कोई उपाय नहीं था। बहुत कुछ सलाह-मशवरा करनेके बाद संघ भदुआको ले कर खंभात गया। वहाँ उसने और भदुआने बड़ी ही नम्रताके साथ सूरिजीसे क्षमा माँगी। सूरिजीने, विना आग्रह भदुआको क्षमा करके, वापिस संघमे ले लिया।

संघकी भलाईके लिए, शासन-मर्यादाको भंग न होने देनेके लिए बड़ोंको अपनी सत्ताका उपयोग करना चाहिए, यह बात जितनी उचित है उतनी ही उचित यह भी है कि, अपना कार्य सफल हो जानेके बाद दुराग्रह न करके अपनी सत्ताके दौरको बंद कर देना चाहिए। इससे विपरीत चलना बुरा है। सूरिजी संपूर्णतया इस नियमका पालन करते थे। उनकी कृतियोंसे यह बात भली प्रकार सिद्ध होती है।

अहमदाबादका संघ वापिस अहमदाबाद आया। वहाँ आकर भदुआने विमलहर्षजीके पाससे क्षमा माँगी; मनमें किसी तरहका ईर्ष्याभाव न रक्खा।

इसके अलावा सुप्रसिद्ध उपाध्याय धर्मसागरजी-जो महान् विद्वान थे और जिनके रोमरोममें शासनका प्रेम प्रवाहित हो रहा था-के अमुक ग्रंथोंके लिए जैनसंघमें उस समय बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। मगर सूरिजीने हरतरहसे धर्मसागरजीको समझा कर उन्हें संघसे माफी माँगनेके लिए बाध्य किया। उन्होंने क्षमा माँगी। इस गंभीर मामलेको उन्होंने ऐसी युक्तिसे सुधारा था और उसको ऐसे सँभाल रक्खा था कि, सब तरह शान्ति ही रही और उनकी

अनुपस्थितिमें जैसा बुरा परिणाम हुआ वैसा उनकी उपस्थितिमें नहीं हुआ।

बड़ोंको बड़ी चिन्ता। सारे समुदायकी रक्षाका कार्य कुछ छोटा नहीं है। बड़ोंको कितने धैर्य और कितनी दूरदर्शितासे कार्य करना चाहिए, इस बातको सूरिजी भली प्रकार जानते थे। इसीसे उस समयके सारे समुदाय पर उनका प्रभाव पड़ता था।

यह पहिले कहा जा चुका है कि, हीरविजयसूरि लगभग दो हजार साधुओंके अधिकारी थे। इन साधुओंमें कई व्याख्यानी थे, कई कवि थे, कई वैयाकरण थे, कई नैयायक थे, कई तार्किक थे, कई तपस्वी थे, कई योगी थे, कई अवधानी थे, कई स्वाध्यायी थे और कई क्रियाकांडी थे। इस तरह भिन्न भिन्न साधु भिन्न भिन्न विषयोंमें दक्ष थे। और इसीसे वे अन्यान्य लोगों पर प्रभाव डाल सकते थे। सूरिजीकी आज्ञानुसार चलनेवालोंमेंसे खास ये थे।—

१–विजयसेनसूरि, जब इनके कार्योंका विचार करते हैं तब हम यह कहे विना नहीं रह सकते हैं कि, इनको गुरुके अनेक गुण विरासतमें मिले थे। संक्षेपमें ही हम यह कह देना चाहते हैं कि, वे हीरविजयसूरिजीकी तरह ही प्रतापी थे। छठे प्रकरणसे हमारे इस कथनको पुष्टि मिलती है। उन्होंने अपनी विद्वत्तासे बादशाह पर अच्छा प्रभाव डाला था। वे नाड़लाई (मारवाड़) के रहनेवाले थे। उनकी वंशावली देखनेसे मालूम होता है कि, वे राजा देवड़की पैंतीसवीं पीढ़ीमें हुए थे। उनका नाम जयसिंह था। उनके माता-पिताका नाम क्रमशः कोडिमदे और कमाशाह था। वि. सं. १६०४ के फाल्गुन सुदी १५ को उनका जन्म हुआ था।

वे जब सात वर्षके थे तब उनके पिताने और नौ बरसके हुए तब

यानी वि. सं. १६१३ ज्येष्ठ सुदी ११ के दिन उन्होंने अपनी माताके साथ सूरतमें विजयदानसूरिजीके पास दीक्षा ली थी। विजयदान-सूरिने उन्हें दीक्षा देकर तत्काल ही, हीरविजयसूरिके आधीन कर दिया था। योग्य होने पर सं. १६२६ में खंभातमें उन्हें 'पंडित' पद, सं.१६२८ के फाल्गुन सुदी ७ के दिन अहमदावादमें 'उपाध्याय' पद और 'आचार्य' पद मिला था। (उस समय मूला सेठ और वीपा पारेखने उत्सव किया था) सं. १६३० के पौष कृष्ण ४ को उनकी पाटस्थापना हुई थी। उनकी योग्यताका यह ज्वलंत उदाहरण है कि, उन्होंने योगशास्त्रके प्रथम श्लोकके सातसौ अर्थ किये थे। कहा जाता है कि, उन्होंने कावी, गंधार चाँपानेर, अहमदावाद और पाटन आदि स्थानोंमें लगभग चार लाख जिनबिंबोंकी अपने हाथोंसे प्रतिष्ठा की थी। उनके उपदेशसे तारंगा, शंखेश्वर, सिद्धाचल, पंचासर, राणपुर, आरासर और बीजापुर आदिके मंदिरोंके उद्धार भी हुए थे। उनके समुदायमें ८ उपाध्याय, १५० पंडित और दूसरे बहुतसे सामान्य साधु थे।

वे जैसे विद्वान् थे वैसे ही वादी भी थे। उनकी वाद करनेकी अपूर्वशक्तिका यह प्रमाण है कि, उन्होंने अकबरके दर्बारमें ब्राह्मण पंडितोंको और सूरतमें भूषण * नामक दिगम्बराचार्यको शास्त्रार्थमें निरुत्तर किया था।

उनकी त्यागवृत्ति और निःस्पृहता भी ऐसीही प्रशंसनीय थी। ६८ वर्षकी आयु पूर्णकर सं० १६७२ के ज्येष्ठ वद ११ के दिन

*-वि० सं० १६३२ के वैशाख सुदी १३ के दिन जयवंत नामक गृहस्थके किये हुए उत्सव पूर्वक चाँपानेरमें प्रतिष्ठा करके सूरिजी सूरतमें आये थे। सूरिजीने वह चौमासा सूरतहीमें किया था। चौमासा उतरनेके बाद चिन्तामणि मिश्र आदि पंडितोंकी मध्यस्थतामें यह शास्त्रार्थ हुआ था। देखो-'विजयप्रशस्ति महाकाव्य' सर्ग ८ वाँ श्लोक ४२-४९।

खंभातके पास बसे हुए अकबरपुरमें× उन्होंने शरीर छोड़ा था। उनका स्तूप बनवानेके लिए जहाँगीर बादशाहने दश बीघे जमीन मुफ्तमें दी थी। और तीन दीन तक पाखी पाली थी (बाजार आदि बंद रखाये थे।) उनका जहाँ अग्निसंस्कार हुआ था वहाँ खंभातनिवासी सोमजीशाहने स्तूप कराया था। *

×–अकबरपुर खंभातके पास एक पुरा है। कवि ऋषभदासकी बनाई हुई और उसीके हाथसे लिखी हुई 'चैत्यपरिपाटी' को देखनेसे मालूम होता है कि, उस समय वहाँ तीन मंदिर थे। १- वासुपूज्यजीका, २- शान्तिनाथजी का (उसमें इक्कीस जिनबिंब थे) और ३- आदीश्वरका उसमें बीस प्रतिमाएँ थीं। कालके प्रभावसे आज उस स्थान पर एक भी मंदिर या प्रतिमा नहीं है।

*–सोमजी शाहने जो स्तूप बनवाया उसमेंका अकबरपुरमें कुछ भी नहीं है। मगर खंभातके भोंयरावाड़ेमें शान्तिनाथका मंदिर है। उसके मूल गभारेमें–जहाँ प्रतिमा स्थापित होती ह उस स्थानमें–बायें हाथकी तरफ एक पादुकावाला पत्थर है। उसके लेखसे ज्ञात होता है कि, यह वही पादुका है जो सोमजी शाहने विजयसेनसूरिजीके स्तूप पर स्थापित की थी। कालके प्रभावसे अकबरपुरकी स्थिति खराब हो जाने पर यह पादुकावाला पत्थर यहाँ लाया गया होगा। इस लेखसे निम्न लिखित बातें मालूम होती हैं। " वि. सं० १६७२ के माघ सुदी १३ रविवारके दिन सोमजीने अपने तथा अपने कुटुंबियोंके-बहिन धर्माई, स्त्रियाँ सहजलदे और बयजलदे, पुत्र सूरजी और रामजी आदिके कल्याणार्थ, विजयसेनसूरिकी यह पादुका उनके शिष्य विजयदेवसूरिसे स्थापित कराई। सोमजी, खंभातनिवासी वृद्ध-शाखीय ओसवाल शाह जगसीका पुत्र था। उसकी माता, काका और काकीके नाम क्रमशः सेजलदे, श्रीमल्ल और मोहणदे थे। लेखमें लिखे हुए-'पादुकाः प्रोत्तुंगस्तूपसहिताः कारिताः' इन शब्दोंसे यह भी सिद्ध होता ह कि, यह पादुका एक ऊँचे स्तूपके साथ स्थापन की गई थी। पूर्ण लेख इस प्रकार है—

॥ ६० संवत् १६७२ वर्षे माघसितत्रयोदश्यां रवौ वृद्धशाखीय। स्तंभतीर्थनगरवास्तव्य उसवालज्ञातीय सा० श्रीमल्ल

२-शान्तिचंद्रजी उपाध्याय, इनके गुरुका नाम सकलचंद्रजी था। उन्होंने ईडरके राजा रायनारायणकी [1] सभामें वादीभूषण नामके दिगंबराचार्यको परास्तकर जय पाई थी। यह बात उन्हींके शिष्य अमरचंद कविने कुलध्वजरास-जो सं० १६७८ के वैशाख सुदि ३ रविवारके दिन बनाया गया है-की प्रशस्तिमें लिखी है।

उन्होंने संस्कृत भाषामें ऋषभदेव और वीरप्रभुकी स्तुति बनाई है। वह स्तुति उन छंदोंमें बनाई गई है जिनका प्रयोग 'अजितशान्तिस्तव' में किया गया है। उन्होंने सं० १६५१ में जंबूद्वीपपन्नति की टीका भी बनाई है। वे कैसे प्रभावशाली थे सो तो अक-

---

भार्या मोहणदे लघुभ्रातृ सा० जगसी भार्या तेजलदे सुत सा० सोमा नाम्ना भगिनी धर्माई भार्या सहजलदे ययजलदे सुत० सा० सूरजी स(रा)मजी प्रमुखकुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्रीअकब्बरसुरत्राणदत्तबहुमानभट्टारकश्रीहीरविजयसूरिपट्टपूर्वाचलसटीसहस्रकिरणानुकारकाणां । ऐदंयुगीनराधिपतिचक्रवर्तिसमान श्रीअकब्बरछत्रपतिप्रधानपर्षदि प्राप्तप्रभूतभट्टाचार्यादिवादिवृंदजयवादलक्ष्मीधारकाणां । सकलसुविहितभट्टारकपरंपरापुरंदराणां । भट्टारकश्रीविजयसेनसूरीश्वराणां पादुकाः प्रोत्तुंगस्तूपसहिताः कारिताः प्रतिष्ठापिताश्च महामहःपुरःसरं प्रतिष्ठिताश्च श्रीतपागच्छे । भ० श्रीविजयसेनसूरिपट्टालंकारहारसौभाग्यादिगुणगणाधारसुविहितसूरिशृंगारभट्टारकश्री विजयदेवसूरिभिः ।

लेखके संवत्से स्पष्ट विदित होता है कि, इस पादुकाकी स्थापना उसी साल हुई है जिस साल विजयसेनसूरिका देहावसान हुआ था।

१-यह वही राजा है कि, जिसका नाम अकबरनामाके तीसरे भागके अंग्रेजी अनुवादके पृ० ५९ वेंमें और आईन-इ-अकबरीके पहले भागके ब्लॉकमेनकृत अंग्रेजी अनुवादके पृ० ४२२ में आया है। यह राजा राठोड़ राजपूत था। और दूसरे नारायणके नामसे पहिचाना जाता था।

वर बादशाहसे उन्होंने जो कार्य कराये थे उन्हींसे विदित हो जाता है।×

२-भानुचंद्रजी उपाध्याय; ये भी उस समयके प्रभाविक पुरुषोंमेंसे एक थे। उनकी जन्मभूमि **सिद्धपुर** थी। उनके पिताका नाम **रामजी** और माताका **रमादे** था। उनका गृहस्थावस्थाका नाम **भाणजी** था। वे सात वर्षकी आयुमें स्कूल भेजे गये थे। दस वर्षकी आयुमें तो वे अच्छे होशियार हो गये थे। उनके बड़े भाईका नाम **रंगजी** था। **सूरचंद्रजी*** पंन्यासका सहवास होने पर उन दोनों भाइयोंने दीक्षा ली थी। अनेक ग्रंथोंका अभ्यास करनेके बाद उनको **पंडित** पद मिला था। **हीरविजयसूरि**ने उन्हें योग्य समझकर **अकबर** बादशाहके पास रक्खा था। **अकबर** भी उनके उपदेशोंसे बहुत प्रसन्न हुआ था। उसी प्रसन्नताके कारण उसने उनके उपदेशोंसे अनेक अच्छे अच्छे कार्य किये थे। उन कार्योंका वर्णन छठे प्रकरणमें किया जा चुका+ है

अकबरका देहान्त हो गया, उसके बाद **भानुचंद्रजी** फिरसे **आगरे** गये थे। वहाँ उन्होंने **जहाँगीर**से परवानोंका-जो **अकबर**ने दिये थे--अमल कायम रखनेके लिए हुक्म लिया था। **अकबर**की तरह **जहाँगीर**की भी **भानुचंद्रजी** पर बहुत श्रद्धा थी। जब वह **माँडवगढ़**में था तब मनुष्य भेजकर उसने **भानुचंद्रजी**को अपने पास बुलाया था। वहाँ उसने अपने लड़के **शहरयार**को **भानुचं**-

---

× पृ. १४४ से १४७ तक देखें।

* ये वेही **सूरचंद्रजी** पंन्यास है कि; जिन्होंने **धर्मसागरजी** उपाध्यायके बनाये हुए 'उत्सूत्रकंदकुद्दाल' नामक ग्रंथको आचार्य **विजयदान-सूरिजी**की आज्ञासे पानीमें डुबा दिया था (देखो ऐतिहासिक **रासमाला** भा. ४ था पृ. १३).

+ देखो पृ. १४७-१५४.

द्रजीके पास पढ़ने बिठाया था। भानुचंद्रजी जब माँडवगढ़में गये तब जहाँगीरने कहा:—

" मिल्या भूपनइं[1], भूप आनंद पाया,
भलेइं[2] तुंमे[3] भलइं[4] अहीं[5] भाणचंद आया;
तुम पासिथिइं[6] मोहि सुख बहूत होवइं[7],
सहरिआर भणवा तुम वाट जोवइं[8]। १३०९
पढावो अह्म[9] पूतकुं धर्म्मवात,
जिउं[10] अवल सुणता तुह्म[11] पासि तात;
भाणचंद! कदीम[12] तुंमे हो हमारे,
सबही[13] थकी तुह्यहो हम्मं[14]महि प्यारे। १३१०

भानुचंद्रजी जब बुरहानपुर गये थे तब उनके उपदेश से वहाँ दश मंदिर बने थे। मालपुरमें * उन्होंने 'बीजामतियों' से शास्त्रार्थ करके उन्हें परास्त किया था। यहाँ भी उनके उपदेशसे एक भव्य मंदिर बना था, स्वर्णकलश चढ़ाया गया था। प्रतिष्ठा भी उन्होंने ही कराई थी। जब वे मारवाड़—अन्तरगत जालौरमें गये थे तब उन्होंने एक साथ इक्कीस आदमियोंको दीक्षा दी थी। कवि ऋषभदास लिखता है कि, उनके सब मिलाकर ८० विद्वान् शिष्य और १३ पंन्यास थे।

४—पद्मसागर; ये अच्छे वादी थे। प्रसंग प्राप्त होने पर शास्त्रार्थ करके दूसरोंको परास्त करनेमें वे अच्छे कुशल थे। सीरोहीके राजाके सामने नरसिंह भट्टको उन्होंने वातों ही वातोंमें निरुत्तर कर दिया था। वह घटना इस तरह हुई थी,—

---

१ राजासे; २—श्रेष्ठ; ३—तुम; ४ अच्छा हुआ; ५—यहाँ; ६—तुमसे; ७—होता है; ८—देखता है; ९—मेरे; १०—जैसे; ११—तुमसे; १२—तुम हो; १३—सबसे; १४—मुझे।

* यह गाँव जयपुर रियासतमें अजमेरसे लगभग पचास माइल पूर्वमें है।

एक वार पद्मसागरजीने यज्ञमें भी पशुहिंसाका निषेध किया था। उस समय वहाँ कई व्याख्यान सुनने वाले ब्राह्मण वैठे थे। उनमेंसे एक वोलाः—" हम वकरेको अपनी इच्छासे नहीं मारते हैं। वह चिल्ला२ कर हमसे कहता है कि, हे मनुष्यो! मुझे जल्दी मारकर स्वर्ग पहुँचाओ जिससे मैं इस पशुयोनिसे छुटकारा पाऊँ।"

पद्मसागरजीने इस युक्तिवादका उत्तर देते हुए कहाः—" पंडितप्रवर! आप ऐसी कल्पना न करें। यह स्वार्थमय कल्पना है। पशु तो चिल्लाकर कहता है कि,—'हे सज्जनो! मैं न तो स्वर्गकी इच्छा रखता हूँ और न मैंने मुझे स्वर्ग पहुँचानेकी तुमसे प्रार्थना ही की है। मैं तो हमेशा तृण भक्षण करनेहीमें सन्तुष्ट हूँ। अगर यह सच है कि, यज्ञमें जितने जीव होमे जाते हैं वे सभी स्वर्गमें जाते हैं तब तुम अपने मातापिता, पुत्रभार्या आदि कुटुंबियोंको क्यों नहीं सबसे पहिले यज्ञमें होमते हो? ताकी वे अतिशीघ्र स्वर्गलाभ करें।,' सज्जनो! स्वार्थमय युक्तियाँ व्यर्थ हैं। इनसे कोई लाभ नहीं। वास्तविकताका विचार करना चाहिए। जैसे हमको लेशमात्र भी दुःख प्रिय नहीं है वैसे ही दूसरे जीवोंको भी दुःख अच्छा नहीं लगता है। इसलिए किसी जीवको, किसी भी निमित्तसे मारना अनुचित है।"

पद्मसागरजीकी उपर्युक्त युक्तिसे सब चुप होगये। उसी समय कर्मसी नामके भंडारीने एक प्रश्न किया। उसने मूर्त्तिपूजाकी अनावश्यकता बताते हुए कहा,—

" किसी स्त्रीका पति परदेश गया। पीछेसे वह स्त्री पतिकी मूर्त्ति बनाकर पूजा करती रही; परन्तु उस मूर्त्तिने पतिके तुल्य कोई लाभ नहीं पहुँचाया। इसी तरह भगवानकी मूर्त्ति पूजना भी व्यर्थ है।"

पद्मसागरजीने उत्तर दियाः—" मैं कोई दूसरा उदाहरण दूँ

इसके पहिले तुम्हारे ही दिये हुए उदाहरण पर जरा विचार करो। मैं यह मान लेता हूँ कि, पतिकी मूर्त्तिको पूजनेसे स्त्रीको कोई लाभ नहीं पहुँचा। मगर यह तो तुम्हें माननाही पड़ेगा कि, जब जब वह स्त्री अपने पतिकी मूर्त्ति देखती होगी तब तब उसे अपने पतिका और पतिके गुणावगुणका स्मरण हुआ ही होगा। इससे तुम क्या यह स्वीकार न करोगे कि, पतिका और उसके गुणावगुणका स्मरण करनेमें पति-मूर्त्ति स्त्रीके लिए उपयोगी हुई? मूर्तिका कितना माहात्म्य है इसके लिए मैं एक दृष्टान्त और देता हूँ।

किसी आदमीके दो स्त्रियाँ थीं। एकबार वह परदेश गया तब उसकी दोनों स्त्रियोंने पतिकी भिन्न२ मूर्त्तियाँ स्थापित कीं। एक स्त्री रोज उठकर अपने पति-मूर्त्तिकी पूजा करती थी और दूसरी हमेशा उठकर पति-मूर्त्तिपर थूकती थी। जब पुरुष आया और उसे अपनी स्त्रियोंके व्यवहारोंकी बात मालूम हुई तब उसने अपनी मूर्त्तिकी पूजा करने वालीको बड़े प्रेमसे व आदरसे रक्खा और थूकने व ठुकराने वालीको अनादर और घृणाके साथ। इससे सहजहीमें यह बात समझमें आजाती है कि, मूर्त्तिसे कितना असर होता है? +

पद्मसागरजीने अनेक युक्तियों द्वारा मूर्त्ति और मूर्त्तिपूजाकी आवश्यक्ताको सिद्ध कर दिया। इससे सारी सभा बहुत प्रसन्न हुई और पद्मसागरजीके बुद्धि-वैभवकी प्रशंसा करने लगी।

इसी तरह पद्मसागरजीने 'केवली आहार लेते हैं या नहीं और स्त्रीको मुक्ति होती है या नहीं' इस विषयमें दिगंबर पंडितोंके साथ शास्त्रार्थ करके उन्हें निरुत्तर किया था।

+ मूर्त्ति और मूर्त्ति-पूजाके विषयमें विशेष जाननेके लिए, देखो पृष्ठ १८५—१८७

पद्मसागरजी जैसे तार्किक थे वैसे ही विद्वान् भी थे। उन्होंने अनेक ग्रंथ भी रचे हैं। उनमेंसे मुख्य ये हैं–' उत्तराध्ययनकथा ' (सं० १६५७) ' यशोधरचरित्र ' ' युक्तिप्रकाश–सटीक ' ' नय प्रकाश–सटीक ' (सं० १६३२)'प्रमाणप्रकाश–सटीक' 'जगद्गुरुकाव्य' 'शीलप्रकाश' 'धर्मपरीक्षा ' और ' तिलकमंजरीकथा ' (पद्य) आदि।

५–**कल्याणविजयवाचक**; इनका जन्म लालपुरमें वि० सं० १६०१ के आसोज व० ५ को हुआ था। सं० १६१६ के वैशाख व० २ के दिन महेसानेमें उन्होंने हीरविजयसूरिके पाससे दीक्षा ग्रहण की थी। सं० १६२४ के फागण वद ७ के दिन उन्हें पंडित पद मिला था। वे जैसे विद्वान् थे वैसे ही व्याख्यानी और तार्किक भी थे। उनका चरित्र बड़ा निर्मल था। इससे श्रोताओं पर उनके व्याख्यानका बड़ा प्रभाव पड़ता था।

एकबार राजपीपलामें राजा बच्छ* तिवाड़ीके आमंत्रणसे छः हजार ब्राह्मण पंडित जमा हुए थे। राजा उदार मनवाला था। उसने ब्राह्मण विद्वानोंकी इस विराट् सभामें कल्याणविजयजीको भी

---

* यह राजपीपलाका राजा था। जातिका ब्राह्मण था। (देखो–आईन–इ–अकबरीके दूसरे भागके अंग्रेजी अनुवादका २५१ वाँ पृष्ठ)' बच्छ, उसका नाम था। और ' तिवाडी ' उसकी अटक (Surname) थी। अकबरनामाके अंग्रेजी अनुवाद तीसरे भागके ६०८ वें पृष्ठमें लिखा गया है कि, तीसरा मुजफ्फर, जो गुजरातका अन्तिम बादशाह था, फतेहपुर सीकरीसे भागकर राजपीपलाके राजा तरवारी (तिवाड़ी) के पास गया था। मीराते सिकंदरीके गुजराती अनुवादमें–जो आत्मारामजी मोतीरामजी दीवानजीका किया हुआ है–' तरवारी ' को एक ' स्थान ' बतानेकी भूल की है। देखो पृष्ठ ४५८। इसी तरह की भूल मीराते–अहमदी' के गुजराती अनुवादमें भी—जो पठान निजामखाँ नूरखाँका किया हुआ है–हुई है। देखो पृष्ठ १३८।

बुलाया और पंडितोंके साथ वाद करनेके लिए कहा। राजा मध्यस्थ बना। वाद प्रारंभ हुआ। ब्राह्मण पंडितोंने हरि (ईश्वर) ब्राह्मण और शैवधर्म इन तीन तत्त्वोंकी स्थापना की। अर्थात्–" हरि ईश्वर है। वह जगत्का कर्ता, हर्ता व पालनकर्ता है। ब्राह्मण सच्चे गुरु हैं और शैवधर्म ही सच्चा धर्म है।" कल्याणविजयजीने इसका उत्तर देते हुए कहाः—"जो ईश्वर है वह कदापि जगत्का कर्ता, हर्ता या पालक नहीं हो सकता है। क्योंकि वह ईश्वर उसी समय बनता है जब वह समस्त कर्मोंको नष्ट कर संसारसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। संसार-मुक्त ईश्वरको ऐसी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है कि, जिससे वह दुनियाके प्रपंचमें पड़े। और यह एक कुदरती बात है कि मतलबके बिना किसी की भी प्रवृत्ति, किसी कार्यमें, नहीं होती है। कहा है कि—

'प्रयोजनमनुद्दिश्य मंदोऽपि न प्रवर्तते।'

अतएव ईश्वर कर्ता, हर्ता या पालक कदापि नहीं गिना जा सकता है। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि ईश्वर अपनी इच्छासे सृष्टिको बनाता है। क्योंकि इच्छा उसीको होती है जो राग-द्वेष-युक्त होता है। रागद्वेषका परिणाम ही इच्छा है। और ईश्वर तो वही माना जाता है कि, जो रागद्वेपसे सर्वथा मुक्त होता है। अगर ईश्वर भी रागद्वेषयुक्त मान लिया जायगा तो फिर उसमें और हममें अन्तर ही क्या रह जायगा? दूसरी बात यह है कि, जगत्में जितनी वस्तुएँ हैं उन सबको शरीरधारीने बनाया है। अगर यह मान लिया जाय कि, सृष्टि ईश्वरने बनाई है तो, ईश्वर शरीरी प्रमाणित होगा। जब ईश्वर शरीरी होगा तो वह कर्ममलसे लिप्त माना जायगा। मगर ईश्वरके तो कर्मोंका सर्वथा अभाव है इसलिए यह युक्ति भी ठीक नहीं

है। संसारमें ऐसे पापी जीव भी देखे जाते हैं कि, जो दूसरे जीवोंका संहार करते हैं। परम दयालु परमेश्वर ऐसे पापी जीवोंको उत्पन्न करके क्या अपनी दयालुताको कलंकित करेगा ? किसीका जवान २० वरसका पुत्र मर जाता है, क्या यह कहोगे कि, उसका ईश्वरने हरण कर लिया ? अगर ईश्वरने वास्तवमें उसको उठा लिया है तो फिर उसकी दयालुता किस कामकी है ?

अतएव चारों तरफ़से विचार करने पर यह भली प्रकारसे निश्चित हो जाता है कि, ईश्वरने न इस संसारको बनाया है न वह इसका संहार या पालन ही करता है।

इस प्रकार ईश्वरके कर्ता, हर्ता और पालनकर्ताके संबंधमें उत्तर देनेके बाद उन्होंने ब्राह्मणोंके स्थापन किये हुए गुरुत्वके संबंधमें इस प्रकार उत्तर दिया:—" बेशक ब्राह्मण गुरु हो सकते हैं। कहा भी है कि, '**वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः**' ब्राह्मण समस्त वर्णोंका गुरु है। मगर वे ब्राह्मण शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, शास्त्रोंके पारगामी, ब्रह्मचर्यको पालनेवाले, अहिंसाके उपासक, कभी जूठ नहीं बोलनेवाले, बगेर पूछे किसीकी चीज न लेनेवाले और सन्तोषवृत्तिके धारक होने चाहिए। इन गुणोंके धारक ब्राह्मण ही गुरु होने या कहलानेका दावा कर सकते हैं। गुण बिनाके गुरु, गुरु नहीं कहला सकते हैं। इसी तरह शैवधर्मको धर्म माननेसे किसीको इन्कार नहीं है अगर उसमें कल्याणका मार्ग हो और अहिंसाका पूर्ण रूपसे प्रतिपादन किया गया हो। धर्मकी परीक्षा चार तरहसे होती है। श्रुत (शास्त्र) शील (आचार) तप और दयासे। जिसमें इन चारों बातोंकी उत्कृष्टता हो, वही धर्म हरेकके मानने लायक है। वह धर्म चाहे किसी भी नामसे पहिचाना जाता हो। अमुक धर्महीको मानना चाहिए, अमुक गुरुहीको मानना

और अमुकको नहीं मानना चाहिए, हमने माना उस स्वरूपवाला ईश्वर ही सच्चा है दूसरा नहीं, यह वृत्ति संकुचित है।

कल्याणविजय वाचककी ये और इसी तरहकी दूसरी अनेक युक्तियाँ सुन कर वच्छराज बहुत प्रसन्न हुआ। उसने जैनधर्मकी बहुत प्रशंसा की। वह कल्याणविजयजीको उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण देने लगा। उन्होंने अस्वीकार कर उसे साधुधर्म समझाया, जिससे वह इस बातको समझ गया कि, साधुओंके लिए इन चीजोंका ग्रहण करना मना है। वह साधुओंके त्याग धर्मसे और भी विशेष प्रसन्न हुआ और उन्हें बड़ी धूमधामसे उपाश्रय पहुँचाया।

कल्याणविजयजी वाचकने वि. सं. १६५६ का चौमासा सूरतमें किया था। उस समय धर्मसागरजीके अनुयायियों और हीरविजयसूरिके अनुयायियोंमें बहुत विवाद चल रहा था। इस विवादमें यद्यपि वाचकजीको भी बहुत कुछ सहन करना पड़ा था, तथापि उन्होंने बहुत ही समयसूचकतासे काम लिया था, और आचार्य विजयसेनसूरिको सारी बातें लिखकर अपराधीको दंड दिलाया था।×

उपर्युक्त मुख्यमुख्य साधुओंके सिवा, सिद्धिचंद्रजी, नंदिविजयजी, सोमविजयजी, धर्मसागर उपाध्याय, प्रीतिविजयजी, तेजविजयजी, आनंदविजयजी, विनीतविजयजी, धर्मविजयजी, और हेमविजयजी आदि भी धुरंधर साधु थे। वे हमेशा स्व-पर कल्याणहीमें लगे रहते थे। उनके आदर्शजीवनका जनता पर बहुत प्रभाव पड़ता था। ऋषभदास कवि हीरविजयसूरि रासमें सूरिजीके मुख्य मुख्य साधुओंके नाम गिना कर अन्तमें लिखता है—

× इस विषयमें जिनको विशेष जानना हो वे ऐतिहासिक राससंग्रह भा. ४ था (विजयतिलकसूरिरास) देखें।

हीरना गुणनो नहि पारो, साध साधवी अढी हजारो ।
विमलहर्ष सरीषा उवझाय, सोमविजय सरिषा ऋषिराय ॥१॥
शान्तिचंद परमुष वली सातो, वाचक पदे एह विष्यातो ।
सिंहविमल सरिषा पंन्यासो, देवविमल पंडित ते षासो ॥ २ ॥
धर्मशीऋषि सवली लाजो, हेमविजय मोटो कविराजो ।
जससागर वली परमुष षास, एकसो ने साठह पंन्यास ॥ २ ॥

हीरविजयसूरिजीकी आज्ञाको सर्वतो भावसे माननेवाला केवल साधुवर्ग ही नहीं था बल्कि सैकड़ों और हजारों श्रावकोंका समूह बंगाल और मद्रास के सिवा समस्त भारतके प्रायः गामोंमें था। उनकी हीरविजयसूरि पर अनन्य श्रद्धा थी। किसी भी कार्यमें हीरविजयसूरिकी आज्ञा मिलने पर वे हजारों ही नहीं बल्कि लाखों रुपये आनंदसे खर्च कर देते थे।

सूरिजीकी सूचना मिलने पर शंकाके लिए स्थान नहीं रहता था। श्रावकोंको जिस तरह इस बातका पूर्ण विश्वास था कि, हीरविजयसूरि हमें निरर्थक कामोंमें पैसा खर्च करनेका उपदेश नहीं देंगे; उसी तरह सूरिजी भी इस बातको पूर्णतया समझते थे कि, जिस धनको गृहस्थ लोहीका पानी बनाकर और अनेक तरहके पापोंका सेवन कर संग्रह करते हैं; उस धनको बेमतलब अपने स्वार्थके लिए खर्च कराना नीतिका भंग करना ही नहीं है बल्के विश्वासघात करना है। इसी हेतुसे सूरिजीकी हर जगह प्रशंसा होती थी। उनके मुख्य श्रावकोंमेंसे कुछके नाम यहाँ दिये जाते हैं।

गंधारमें इन्द्रजी पोरवाल सूरिजी का परम भक्त था। ग्यारह बरसकी आयुमें उसके हृदयमें दीक्षा लेनेकी भावना उत्पन्न हुई थी। मगर उसके भाई नाथाको उससे बहुत प्रेम था. इसी लिए उसने उसको दीक्षा नहीं लेने दी थी। यद्यपि उसका भाई उसको ब्याह देना

चाहता था; परतु इन्द्रजीने व्याह न किया । वह यावज्जीवन बाल-ब्रह्मचारी ही रहा ।

इन्द्रजी एक धनी मनुष्य था । अपनी आयुमें उसने छत्तीस प्रतिष्ठाएँ कराई थीं । इसी गंधारका रहने वाला रामजी श्रीमाली भी सूरिजीका परम भक्त था । उसने सिद्धाचलजी पर सूरिजीके उपदेशसे एक विशाल और सुंदर मंदिर बँधवाया था* । खंभातमें संघवी सोमकरण, संघवी उदयकरण× सोनी तेजपाल, राजा श्रीमल्ल, ठक्कर जयराज, जसवीर, ठक्कर लाइया, ठक्कर कीका, वाघा, ठक्कर कुँवरजी, शाह धर्मशी, शाह लक्को, दोसी हीरो, श्रीमल्ल, सोमचंद और गाँधी कुंअरजी वगैरह मुख्य थे+ । इसी खंभातके रहनेवाले

* यह मंदिर सिद्धाचलजी पर आदीश्वर भगवानके मंदिरकी परिक्रमाके ईशानकोनमें है । चौमुखजीके मंदिरके नामसे पहिचाना जाता है । इसके अंदरके लेखसे मालूम होता है कि, वि० सं० १६२० के कार्तिक सुद २ के दिन इस मंदिरकी प्रतिष्ठा हुई थी । और हीरविजयसूरिके उपदेशसे गंधारनिवासी श्रीमाली ज्ञातीय पासवीरके पुत्र वर्धमान, और उसके पुत्र सा. रामजी, लहुजी, हंसराज और मनजीने चार द्वारवाला यह शान्तिनाथका मंदिर बनवाया था ।

× यह हीरविजयसूरिका परम श्रद्धालु श्रावक था । उसने सूरिजीके स्वर्गवासके बाद तत्काल ही उनके (सूरिजी) पगलोंकी सिद्धाचलजी पर स्थापना की थी । यह पादुका अब भी ऋषभदेव भगवानके मंदिरके पश्चिममें एक छोटेसे मंदिरमें मौजूद हैं । उस परके लेखसे मालूम होता कि, सूरिजीका स्वर्गवास हुआ उसी वर्षमें यानी सं० १६५२ के मिगसर वद २ और सोमवारके दिन उदयकरणने विजयसेनसूरिके हाथसे, महोपाध्याय कल्याणविजय और पंडित धनविजयजीकी विद्यमानतामें प्रतिष्ठा कराई थी । लेखके आन्तिम भागमें सूरिजीने अकबरको प्रतिबोध देकर जो कार्य कराये थे उनका संक्षिप्त वर्णन है । संघवी उदयकरण खंभातका प्रसिद्ध श्रावक था । कवि ऋषभदासने हीरविजयसूरिरासमें स्थान स्थानपर उसका नामोल्लेख किया है ।

+ ऋषभदास कविने वि० सं० १६८५ के पोष शुक्ला १३ रविवारके

राजिया और वजिया सूरिजीके परम भक्त थे। इन्होंने सूरिजीके उपदेशसे अनेक समयोचित कार्य किये थे। यद्यपि वे खंभातके रहने-वाले थे; परन्तु रहा करते थे प्रायः **गोवाहीमें**। गोवामें उनका व्यापार बहुत अच्छा चलता था। इतना ही नहीं वहाँ राजदर्बारमें भी उनका अच्छा प्रभाव था। इन्होंने पाँच तो बड़े बड़े मंदिर बन-वाये थे। उनमेंसे एक खंभातमें है। उसमें *चिन्तामणिपार्श्वनाथकी

दिन खंभातहीमें '**मल्लीनाथरास**' बनाया है। उसके अन्तमें खंभातके मुख्य श्रावकोंका परिचय दिया है। उसका भाव यह है,—

"श्रावक **वजिया** और **राजिया**की कीर्त्ति सारे संसारमें हो रही है। उसने साढ़े तीन लाख रुपये पुण्यार्थ खर्च किये और गाँवगाँवमें अहिंसाधर्मका पालन कराया॥ २८२॥ त्रंबावती निवासी **तेजपाल** ओसवालने शत्रुंजय पर उद्धार कराया उसमें उसने दो लाख ल्याहरी खर्च किये ॥ २८३॥ संघवी **सोमकरण** और **उदयकरण**ने, राजा **श्रीमल** ओसवालने, ठक्कर **जसराज** और **जसवीर**ने और ठक्कर **कीका वाघा**ने प्रत्येकने आध लाख रुपये पुण्य-कार्यमें खर्चे।

* **राजिया** और **वजिया**का बनवाया हुआ चिन्तामणिपार्श्वनाथका यह मंदिर अब भी मौजूद है। इस मंदिरके रंगमंडपकी एक भींतमें एक पत्थर पर २८ पंक्तियोंका एक लेख है। उसमें ६१ श्लोकोंमें एक प्रशस्ति दी गई है। प्रशस्ति पूर्ण होनेके बाद अन्तिम दो पंक्तियोंमें यह लिखा है—

"॥ ६० ॥ ॐ नमः ॥ **श्रीमद्विक्रमनृपातीत सं० १६४४ वर्षे प्रवर्तमानशाके १५०९ गंधारीय प० जसिआ तद्भार्या बाई जसमादे संप्रतिश्रीस्तंभतीर्थवास्तव्य तत्पुत्र प० वजिआ प० राजिआभ्यां वृद्धभ्रातृभार्या विमलादे लघुभ्रातृभार्या कमलादे वृद्धभ्रातृपुत्रमेघजी तद्भार्या मयगलदे प्रमुख। निजपरिवार-युताभ्यां। श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथश्रीमहावीरप्रतिष्ठा कारिता श्रीचिन्तामणिपार्श्वचैत्यं च कारितं कृता च प्रतिष्ठा सकल-मंडलाखंडलशाहिश्रीअकब्बरसन्मानित श्रीहीरविजयसूरीशपट्टा-**

प्रतिमा स्थापन कराई थी। दूसरा गंधारमें है, उसमें नवपल्लवपार्श्वनाथकी स्थापना कराई थी। तीसरा *नेजामें है। उसमें ऋषभदेवकी प्रतिमाकी स्थापना कराई थी। दो मंदिर बरडोलामें बनवाकर उनमें करेडा-पार्श्वनाथ और नेमिनाथकी मूर्त्तिकी स्थापना कराई थी। इन्होंने संघवी बनकर आबू, राणपुर और गोडीपार्श्वनाथकी यात्राके लिए संघ निकाले थे। इन दोनोंका इतना मान था कि, अकबर बादशाहने भी इनका कर माफ कर दिया था। जीवदयाके कार्योंमें भी दोनों भाई हमेशा अगुआ रहते थे। उन्होंने सरकारसे यह आज्ञा प्राप्त की थी कि, घोघलामें× कोई मनुष्य जीवहिंसा न करे। सन् १६६१ में जब भयंकर दुष्काल पड़ा था, तब उन्होंने चार हजार मन अनाज खर्च

लंकारहारसदृशैः शाहिश्रीअकब्बरपर्षदि प्राप्तवर्णवादैः श्रीविजयसेनसूरिभिः।

इस लेखसे मालूम होता है कि, वि० सं० १६४४ में राजिया और वजियाने मंदिर बनवाकर उसमें चिन्तामणि पार्श्वनाथ और महावीरस्वामीकी प्रतिष्ठा कराई थी। प्रतिष्ठा श्रीविजयसेनसूरिने की थी। इस लेखमें केवल प्रतिष्ठाका संवत् लिखा गया है। मिति या वार नहीं लिखे गये। मगर इस लेखमें जिस मूर्तिके स्थापन करनेका वर्णन है उस मूर्ति (चिन्तामणिपार्श्वनाथकी मूर्त्ति) परके लेखमें प्रतिष्ठाकी तिथि सं० १६४४ का जेठ सुद १२ सोमवार दी गई है। इसी प्रकार 'विजयप्रशस्तिकाव्य' और 'हीरविजयसूरिरास' में भी यही तिथि दी गई है। ऊपर जो लेख दिया गया है उससे यह भी मालूम होता है कि, राजिआ और वजिआ मूल गंधारके रहनेवाले थे, मगर मंदिर हुआ उस समय वे खंभातमें रहते थे।

* नेजा यह छोटासा गाँव, खंभातसे लगभग ढाई माइल उत्तरमें है। वर्तमानमें न तो गाँवमें कोई मंदिर है और न किसी श्रावकका घर ही। गाँव भी लगभग बस्ती बिनाईहीका है। वहाँ केवल एक सरकारी बगीचा है।

× यह गाँव दीव बंदरसे लगभग दो माइल दूर है।

कर अनेक कुटुंबोंको मरनेसे बचाया था। अपने नौकरोंको गाँव गाँव भेजकर उनके द्वारा अनेक दरिद्रोंकी धन देकर रक्षा की थी।

कहा जाता है कि, एक वार चिउलके एक खोजगीको और दूसरे कई आदमियोंको गोवाके फिरंगी (पोर्टुगीज़) लोगोंने कैद कर लिया था। फिरंगियोंका स्वामी उन्हें किसी भी तरहसे छोड़ता न था। आखिरकार वह एक लाख ल्याहरी दंड लेकर छोड़नेको राजी हुआ। मगर यह दंड आवे कहाँसे। अन्तमें खोजगीने राजिया, वजियाका नाम बताया। राजिया फिरंगियोंके स्वामी विजरेल (वॉयसराय)के पास गया, एक लाख ल्याहरी देकर खोजगीको छुड़ा लाया। और उसको कई दिन तक अपने यहां रखने पर चिउल पहुँचा दिया। पीछेसे खोजगीने एक लाख ल्याहरी वापिस राजियाको दे दी।

एक वार उपर्युक्त खोजगीने बाईस चोरोंको कैद किया था। जब वह उन्हें मारने लगा तब उन्होंने कहाः—" आप बड़े आदमी हैं। हमारे ऊपर दया कीजिए। और आज राजियासेठका बड़े त्योहारका (भादवासुद २)का दिन भी है।

'राजियाके त्योहारका दिन है।' यह सुनते ही उसने चोरोंको मारना तो दूर रहा, सर्वथा मुक्त ही कर दिया और कहा कि, वे मेरे मित्र हैं, इतना ही नहीं वे मेरे जीवनदाता भी हैं। उनके नामसे मैं जितना करूँ उतना ही थोड़ा है।

राजिया और वजियाकी तारीफ़में पं० शीलविजयजीने अपनी तीर्थयात्रामें जोकुछ लिखा है उसका भाव यह है,—"श्रावक वजिया और राजिया बड़े प्रतापी हुए। उन्होंने बड़े बड़े पाँच मंदिर कराकर

उनमें प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराईं। उनकी दुकान गोआ बंदरमें है। उस पर स्वर्णका कलश सुशोभित होता है। उनकी बात किसीने नहीं टाली। फिरंगियोंके स्वामीने भी उनके सामने सिर झुकाया।"

हीरविजयसूरिके श्रावक ऐसे ही उदार और शासनप्रेमी थे। इसी तरह राजनगरमें वच्छराज, नाना वीपु, जौहरी कुँअरजी, शाह मूलो, पूँजो बंगाणी और दोषी पनजी आदि थे। वीसलनगर (वीसनगर) में शाह वाघो, दोशी गला, मेघा, वीरपाल, वीजा और जिनदास आदि थे। सीरोहीमें आसपाल, सचवीर, तेजा, हरखा, म्हेता पूँजो और तेजपाल आदि थे। वैराटमें संघवी भारमल और इन्द्रराज* आदि थे। पीपाड़में हेमराज, तालो पुष्करणो आदि थे। अलवरमें शाह भैरव× था। जेसलमेरमें मांडण

* हीरविजयसूरि जब अकबरके पाससे रवाना होकर गुजरातमें आते थे तब पीपाड़ नगरमें सूरिजीकी वंदना करनेके लिए, वैराटके संघवी भारमलका पुत्र इन्द्रराज आया था। उसने सूरिजीसे अपने नगरमें चलनेकी साग्रह विनती की थी। मगर सूरिजीको शीघ्र ही सीरोही जाना था इसलिए स्वयं न जाकर उन्होंने कल्याणविजयजी उपाध्यायको भेज दिया। इन्द्रराजने चालीस हजार रुपये खर्च कर बड़ी धामधूमके साथ कल्याणविजयजीसे प्रतिष्ठा कराई थी।

× भैरव हुमायुँका मानीता मंत्री था। कहा जाता है कि, उसने अपने पुरुषार्थसे नौलाख बंदियोंको छुड़वाया था। बंदियोंसे यहाँ अभिप्राय कैदियोंसे नहीं है। युद्धमें जो लोग पकड़े जाते थे वे बंदी कहलाते थे। उन बंदियोंको मुसलमान बादशाह गुलामकी तरह खुरासान या दूसरे देशोंमें बेच देते थे। ऐसे नौलाख बंदियोंको भैरवने छुड़ाकर अभयदान दिया था। कवि ऋषभदासने 'हीरविजयसूरिरास' में उसका उल्लेख किया है। उस घटनाका संक्षिप्त सार यह है,—

"हुमायुँने जब सोरठ पर चढ़ाई की तब उसने नौलाख मनुष्योंको बंदी बनाया। उसने उन लोगोंको मुकीमके सिपुर्द किया और उन्हें खुरासानमें

कोठारी, नागौरमें जयमल महेता और जालोरमें मेहाजल रहता था। वह वीसा पोरवाल था। उसने लाख रुपये खर्चकर चौमुखजीका मंदिर

बेच आनेकी उसको आज्ञा की। ये सब लोग पहिले अलवरमें लाये गये। वहाँके महाजनोंने उन्हें छोड़ देनेकी प्रार्थना की; परन्तु वे छोड़े न गये। उनमेंसे दसबीस मनुष्य सदैव रक्षकोंकी वेपरवाहीसे मरते रहते थे। भैरवको यह बात अत्यंत दुखःदाई मालूम हुई। वह हुमायूँका मानीता मंत्री था। ऐसी अवस्थामें भी यदि वह कुछ न करता तो फिर उसकी दयालुता और सन्मान क्या कामके थे? सवेरेके वक्त बादशाह जब दातन करने बैठा तब उसने अपनी अंगूठी भैरवके हाथमें दी। भैरवने एक कोरे कागज पर अंगूठीकी मुहर लगा ली। जब वह बादशाहके पाससे आया तब एकान्तमें बैठकर उसने धूजते हाथों उस कागजपर फर्मान लिखा। इस फर्मानको लेकर वह मुकीमके पास गया। आप रथमें बैठा रहा और अपने एक नौकरको फर्मान लेकर मुकीमके पास भेजा। फर्मानमें लिखा था,–"तत्काल ही नौलाख बंदियोंको भैरवके हवाले कर देना।" बादशाहकी मुहर–छापका फर्मान देखकर मुकीमने भैरवको अपने पास बुलाया; उसका सत्कार किया और बंदियोंको उसके आधीन कर दिया। बंदी स्त्री, पुरुष, बालक–बूढे सभी भैरवको अन्तःकरण-पूर्वक आशीर्वाद देने लगे। भैरवने उसी रात उन सबको रवाना कर दिया और खर्चेके लिये एक एक स्वर्ण मुद्रा सभीको दी। उनमेंके पाँचसौ मुखिओंको एक एक घोड़ा भी, उसने सवारीके लिए दिया।

सबेरे ही भैरव देवपूजा, गुरुवंदनादि आवश्यक कार्योंसे निवृत्त हो, एक विचित्र बाघा पहिन बादशाहके पास गया। बादशाह सहसा उसे न पहिचान सका। उसने पूछाः—"तुम कौन हो?" भैरवने कहाः—"मैं आपका दास भैरव हूँ। आज मैंने हुजूरका बहुत बड़ा गुनाह किया है। मैंने उन नौलाख कैदियोंको छुड़ा दिया है और बहुतसा धन भी खर्चा है। बादशाह यह सुनकर क्रुद्ध हुआ और उसने "किसलिए ऐसा किया? किसकी आज्ञासे किया" आदि कई बातें कह डालीं। भैरव आहिस्तगीके साथ बोलाः—"हुजूरके सिर एक आपत्ति है, इसी लिए मैंने सब बंदियोंको घोड़े और धन देकर रवाना करदिया है। वे बेचारे अपने बालबच्चों और सगेसंबंधियोंसे जुदा होगये थे। मैंने उनकी जुदाई मेटकर उनकी दुआएँ ली हैं और खुदावंदकी उम्र दराज–बढ़ी आयु–की है।" इस युक्तिसे बादशाह शान्तही नहीं होगया बल्के भैरवसे प्रसन्न भी हुआ।

बनवाया था। आगरेमें §थानसिंह, मानुकल्याण और ‡दुर्जनशाल था। फीरोजनगरमें अक्कु संघवी था वह बहुत पुण्यशाली था। छियानवे बरसकी आयु होजाने पर भी उसकी इन्द्रियाँ अच्छी हालतमें थीं। उसकी मौजूदगीमें उसके घरमें इकानवे पुरुष पगड़ी बाँधते थे। उसने कई

---

§ इसने फतेहपुरमें उत्सवपूर्वक सूरिजीके हाथसे जिनबिंबकी प्रतिष्ठा करवाई थी। शान्तिचंद्रजीको उसी समय उपाध्याय पद दिया गया था। इसी तरह उसने आगरेमें भी चिन्तामणिपार्श्वनाथका मंदिर बनवाकर उसमें प्रतिष्ठा करवाई थी। यह मंदिर अब भी आगरेके रोशन मुहल्लेमें विद्यमान है। उसमें मूलनायकजीकी मूर्त्ति तो वही है; परन्तु मंदिर वही मालूम नहीं होता।

‡ वि० सं० १६५१ के वैशाख महीनेमें कृष्णदास नामके कविने लाहौरमें दुर्जनशालकी एक 'बावनी' बनाई है। उससे मालूम होता है कि, वह ओसवाल था। गोत्र 'जड़िया' था। वह जगुशाहका वंशज था। जगुशाहके तीन पुत्र थे १-विमलदास, २-हीरानंद और ३-संघवी नानू। दुर्जनशाल नानूका पुत्र था। इस दुर्जनशालके गुरु हीरविजयसूरि थे। बावनीके ५३ वें पद्यसे यह बात स्पष्ट मालूम होती है.—

हरषु धरिउ मनमज्झि जात सोरीपुर किद्धि,
संघ चतुरविधि मेलि लच्छि सुभमारग दिद्धी;
जिनप्रसाद उद्धरइ, सुजस संसार हि संजइ,
सुपतिष्ठा संघपूज दानि छिय दंसन रंजइ;
संघाधिपत्ति नानू सुतन दुरजनसाल धरम्मधुर,
कहि क्रिश्नदास मंगलकरन हीरविजयसूरिंद गुर॥५३॥

इस कवितासे यह भी मालूम होता है कि उसने सोरीपुरकी यात्रा कर चतुर्विध संघकी भक्ति करनेमें अपनी लक्ष्मीका सदुपयोग किया था। जिनप्रासादका उद्धार और प्रतिष्ठा भी कराये थे।

आगे चलकर दुर्जनशालकी प्रशंसा करते हुए कवि कहता है—

लछिन अंगि बतीस चारिदस विद्या जाणइ,
पातिसाहि दे मानु पान सुलितान बषाणइ;

पौषधशालाएँ और जिनप्रासाद वनवाये थे। वह केवल धनी ही नहीं था कवि भी था। उसने कई कविताएँ वनाई थीं। सीरोहीमें आसपाल और नेता थे। इन दोनोंने चौमुखजीके मंदिरमें वड़ी धूमधामके साथ क्रमशः आदिनाथजी और अनंतनाथजीकी प्रतिष्ठा कराई थीं। बुरहानपुरमें संघवी उदयकरण, भोजराज, ठक्कर संघजी, हाँसजी, ठक्कर संभूजी, लालजी, वीरदास, ऋषभदास और जीवराज आदि थे। मालवेमें डामरशाह और सूरतमें गोपी, सूरजी, व्होरो सूरो और शाह नानजी आदि थे। वडौदेमें सोनी पासवीर और पंचायण, नयेनगरमें अवजी भणशाली और जीवराज आदि थे। और दीवमें पारख मेघजी, अभेराज, पारेख दामो, दोसी जीवराज, शवजी और वाई लाड़की आदि थे।

इस प्रकार अनेक गाँवोंमें सूरिजीके अनेक भक्त श्रावक रहते थे। उनकी सूरिजीपर अटल श्रद्धा थी। सूरिजीके उपदेशसे प्रत्येक कार्य करनेको वे सदा तत्पर रहते थे। इतना ही नहीं, सूरिजीकी पधरामणी और इसी प्रकारे के दूसरे प्रसंगोमें वे हजारों रुपये दान दिया करते थे।

हीरविजयसूरि एकवार खंभातमें थे तव उनका पूर्वावस्थाका एक अध्यापक वहाँ चला गया। यद्यपि सूरिजी उस समय साधु थे, लाखों मनुष्योंके गुरु थे, तो भी उन्होंने अपनी पूर्वावस्थाके गुरुका

लाहनूरगढ मज्झि प्रवर प्रासाद करायउ,
विजयसेनसूरि वंदि भयो आनंद सवायउ;
जां लगइ सूर ससि मेर महि सुरसरिजलु आयासि ध्रुअ,
कहि किश्नदास तां लग तपइ दुरजनसाल प्रताप तुअ ॥५४॥

इससे एक खास मतलवकी वात मालूम होति है और वह यह कि, दुर्जनशालने लाहोरमें एक मंदिर वनवाया था।

वहुत सत्कार किया और फिर कहा–" आप भेट–सत्कारके योग्य हैं; मगर आप जानते हैं कि, मैं निर्ग्रंथ हूँ। इसलिए मैं आपको कुछ भी भेट नहीं कर सकता हूँ।"

अध्यापकने कहाः—" महाराज! इस बातका आप कोई खयाल न करें। मैं तो आपके पास किसी दूसरे ही उद्देश्यसे आया हूँ। मुझे एक दिन सर्पने काट खाया था। अनेक उपाय करने पर भी उसका विष न उतरा। अन्तमें एक सद्गृहस्थने आपके नामका स्मरण कर उस जगहकी चमड़ीको चूंसा जिस जगह सर्पने काटा था। आपके नामके प्रभावसे जहर उतर गया और मेरे प्राण बच गये। तब मैंने विचारा कि, जिनके नाम–प्रभावसे मैं बचा हूँ उनके दर्शन करके अपनेको कृतार्थ करना चाहिए। बस इसी लिए मैं आपके पास आया हूँ।"

उस समय संघवण साँगदे वहाँ बैठी हुई थी। उन्होंने पूछाः— " ये ब्राह्मण क्या आपकी पूर्वावस्थाके पाधे–शिक्षक हैं?" सूरिजीने उत्तर दियाः–"पाधे नहीं गुरु हैं।" यह सुनकर संघवणने तत्काल ही अपने हाथमेंसे कड़ा निकाला और दूसरे बारहसौ रुपये जमा कर ब्राह्मणके भेट किये। ब्राह्मण आनंद पूर्वक सूरिजीके नामका स्मरण करते हुए रवाना हो गया।

इसी तरह एक बार सूरिजी जब आगरेमें थे, तब भी ऐसे ही कीर्त्तिदानका प्रसंग आया था। बात यह हुई थी कि, सूरिजीके पधारनेके निमित्त लोगोंने अनेक तरहके दान किये। उस समय अकू नामके एक याचककी स्त्री पानी भरनेके लिए गई थी। उसे घर आनेमें कुछ देर हो गई। जब वह घर पहुँची तब उसके पतिने उसको धमकाया और कहाः—" इतनी देर कहाँ लगाई? मैं तो कभी का

भूखा बैठा हूँ।" स्त्री ने कहाः—" पानी भरके लाना कुछ सरल नहीं है। देर भी हो जाती है। अगर ऐसा दिमाग़ रखते हो तो एकाध हाथी ही कहीं से ले आओ।"

याचक क्रोधमें घरसे निकल गया और श्रावकोंके मंडलमें जाकर **हीरविजयसूरि**के गुण गाने लगा। अपने गुरुके गुण गाते देख श्रावक उस पर बहुत प्रसन्न हुए। और अनेक प्रकारका दान देने लगे मगर उस याचकने कुछ भी नहीं लिया और कहाः—" मैं उसीका दान ग्रहण करूँगा जो मुझे हाथी देगा।"

उसकी बात सुनकर '**सदारंग**' नामके गृहस्थने घरसे अपना हाथी मँगाया और लूँछणा कर याचक को देना चाहा। एक भोजक वहाँ बैठा हुआ था। उसने कहाकि,—" लूँछणा की हुई चीज पर तो भोजकहीका हक होता है दूसरेका नहीं।" **सदारंग**ने तत्काल ही वह हाथी भोजकको दे दिया और **अकू** याचकके लिए दूसरा हाथी मँगवा दिया। **थानसिंह**ने उस हाथीका शृंगार कर दिया। **अकू** याचक हाथमें अंकुश लेकर हाथी पर सवार हुआ और उमरावोंके तथा बाद-शाहके पास जाकर भी **हीरविजयसूरि**की प्रशंसा करने लगा। फिर वह घर जाकर स्त्रीके सामने अपनी बहादुरी दिखाने लगा। स्त्री बड़ी ही प्रसन्न हुई। कुछ देरके बाद वह बोलीः—" हाथी वे रख सकते हैं जो बड़े राजामहाराजा होते हैं, या गाँव–गरासके मालिक होते हैं। हम तो याचक हैं। अपने यहाँ हाथी नहीं शोभता। इसको बेचकर नक़द रुपये कर लेना ही अच्छा है।"

अकूको भी यह बात उचित मालूम हुई। उसने हाथी सौ महरोंमें एक मुगलके हाथ बेच दिया।

एक वार सूरिजी जब अहमदावाद गये थे तब उनके पधारनेकी खुशीमें अच्छे अच्छे गायकोंने सूरिजीकी स्तुतिके सुमधुर गीत गाये। गायकोंके सुमधुर स्वरों और अलौकिक भावोंसे सारी सभा चित्रवत् स्थिर हो गई । भदुआ नामका श्रावक गायकोंपर बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने अपना बारहजारके मूल्यका स्वर्णका कंदोरा उतार कर गायकोंको दे दिया । उसके बाद दूसरे श्रावकोंने भी अंगूठी, कंठी, मोती आदि पदार्थ दान दिये । एक चंदेकी सूची भी हुई । लगभग बारहसौ रुपये जमा हुए । वे भी गायकोंको दे दिये गये ।

इसी तरह पता नामके एक भोजकने हीरविजयसूरिका रास गाया था, उससे प्रसन्न होकर श्रावकोंने उसको एक लाख टके दिये थे ।

अभिप्राय कहनेका यह है कि, सूरिजीके भक्त इस प्रकार अवसर आने पर बहुतसा धन खर्च देते थे । यह भी सूरिजीहीके पुण्य प्रकर्षकी महिमा के सिवा और क्या है ?

अब इस समय एक खास वातकी तरफ़ पाठकोंका ध्यान खींचना हम आवश्यक समझते हैं ।

हीरविजयसूरिके उपर्युक्त भक्त श्रावकोंके कामोंकी तरफ़ दृष्टि डालते हैं तो मालूम होता है कि उनकी प्रवृत्ति बहुधा मंदिर बनवानेमें, प्रतिष्ठाएँ करवानेमें, संघ निकालनेमें और ऐसे ही अन्यान्य कार्योंके समय बड़े बड़े उत्सव करानेमें हुई है । ऋषभदास कविके कथनानुसार केवल सूरिजीने ही पचास प्रतिष्ठाएँ करवाई थीं । और उनके उपदेशसे लगभग पाँच सौ मंदिर बने थे। जैसे—मूलाशाह, कुँवरजी जोहरी, सोनी तेजपाल,× रायमल, आसपाल, भारमल, थानसिंह, मानु-

× सोनी तेजपाल खंभातका रहनेवाला था। वह सूरिजीके अनेक

कल्याण, दुर्जनमल, गोनाकक्कू, राजिया, वजिया, ठक्कर जसु, शाह

धनाढ्यों और उदार श्रावकोंमेंसे एक था। वि० सं० १६४६ में **हीरविजयसूरि** जब खंभातमें आये तब ज्येष्ठ सुदी ९ के दिन उसने अनंतनाथकी प्रतिष्ठा कराकर पचीस हजार रुपये खर्चे थे। उसी समय **सोमविजयजीको** उपाध्यायकी पदवी दीगई थी। उसने खंभातमें एक बहुत बड़ा जिनभुवन बनवाया था। उसका वर्णन करते हुए कवि **ऋषभदास** हीरविजयसूरिरासमें लिखता है कि,

> इन्द्रभुवन जस्युं देहरुं कराव्युं, चित्रलिखित अभिराम;
> त्रेवीसमो तीर्थंकर थाप्यो, विजयचिंतामणि नाम हो. ही० ६
> **ऋषभतणी** तेणे मूरति भरावी, अत्यंत मोटी सोय;
> भुंइरामां जइने जुहारो, समकित निरमल होय हो. ही० ७
> अनेक बिंब जेणे जिननां भराव्यां, रूपकनकमणि केरां;
> ओशवंश उज्ज्वल जेणे करीओ, करणी तास भलेरा हो. ही० ८
>
> पृ० १६६

यह मंदिर इस समय खंभातके माणिकचौकको खिड़कीमें विद्यमान है। उसके भोंयरेमें ऋषभदेवकी बड़ी प्रतिमा है। इस भोंयरेकी भींत पर एक लेख है। वह उपर्युक्त कथनको ही प्रमाणित करता है। लेख यह है,—

॥ ६० ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीविक्रमनृपात् ॥ सं० १६६१ वरषे वैशाष शुदि ७ सोमे ॥ श्रीस्तंभतीर्थनगरव्यास्तव्य ॥ ऊकेशज्ञातीय ॥ आवूहरागोत्रविभूषण ॥ सौवर्णिक कालासुत सौवर्णिक ॥ वाघा भार्या रजाई ॥ पुत्र सौवर्णिक वछिआ ॥ भार्या सुहासिणि पुत्र सौवर्णिक ॥ तेजपाल भार्या ॥ तेजलदे नाम्न्या ॥ निजपति ॥ सौवर्णिक तेजपालप्रदत्ताज्ञया ॥ प्रभूतद्रव्यव्ययेन ॥ सूभूमिगृहश्रीजिनप्रासादः कारितः ॥ कारितं च तत्र मूलनायकतया ॥ स्थापनकृते श्रीविजयचिन्तामणिपार्श्वनाथबिंबं प्रतिष्ठितं च श्रीमत्तपागच्छाधिराजभट्टारकश्रीआनंदविमलसूरिपट्टालंकार ॥ भट्टारकश्रीविजयदानसूरि तत्पट्टप्रभावक ॥ सुविहितसाधुजनध्येय ॥ सुगृहीतनामधेय ॥ पात ॥ साहश्रीअकब्बरप्रदत्तजगद्गुरुबिरुदधारक ॥ भट्टाकर ॥ श्रीहीरविजयसूरि ॥ तत्पट्टोदयशैल ॥

सहस्रपाद ॥ पातसाहश्रीअकब्बरसभासमक्षविजितवादिवृंद-समुदभूतयशःकर्पूरपूरसुरभीकृतदिग्वधूवदनारविंदभट्टारक श्री-विजयसेनसूरिभिः ॥

क्रीडायातसुपर्वराशिरुचिरो यावत् सुवर्णाचलो-
मेदिन्यां ग्रहमंडलं च वियति ग्रध्नेंदुमुख्यं लसत् ।
तावत्पन्नगनाथसेवितपदश्रीपार्श्वनाथप्रभो-
मूर्त्तिश्रीकलितोयमत्र जयतु श्रीमज्जिनेन्द्रालयः॥१॥छः॥.॥

इस लेखसे मालूम होता है कि,-सोनी तेजपाल ओसवाल ज्ञातिका था । उसका गोत्र आवूहरा था । उसके पिताका नाम वछिआ और माताका नाम सुहासिनी था । इससे एक महत्वकी बात भी मालूम होती है । वह यह है कि, यह भूमिगृहवाला जिनमंदिर सोनी तेजपालकी भार्या तेजलदेने अपने पतिकी आज्ञासे बहुतसा धन खर्च करके बनवाया था । बिंबकी प्रतिष्ठा सं० १६६१ के वैशाख वद ७ के दिन विजयसेनसूरिने की थी ।

इसी तेजपाल सोनीने एक लाख ल्याहरी खर्चकर सिद्धाचलजीके ऊपर मूल श्रीऋषभदेव भगवानके मंदिरका जीर्णोद्धार कराया था । यह बात सिद्धाचलजी पर मुख्य मंदिरके पूर्वद्वारके रंगमंडपमें एक स्तंभ पर खुदे हुए शिलालेखसे भी सिद्ध होती है ।

इस लेखमें कुल ८७ पंक्तियाँ हैं । प्रारंभमें आदिनाथ और महावीरस्वामीकी स्तुति की गई है । फिर हीरविजयसूरि तक पट्टावली दी गई है और तत्पश्चात् हीरविजयसूरि और विजयसेनसूरिके प्राभाविक कार्योंका वर्णन किया गया है । उसके बाद तेजपालके पूर्वजोंका नाम देकर लिखा गया है कि, तेजपालने हीरविजयसूरि और विजयसेनसूरिके उपदेशसे जिनमंदिर बनवानेमें और संघभक्ति करनेमें अगणित धन खर्चा था । उसमें खासकरके सं० १६४६ में खंभातमें सुपार्श्वनाथका मंदिर बनवाया था । उसका भी उल्लेख किया गया है । उसके बाद प्रस्तुत ऋषभदेवके मंदिरका जीर्णोद्धार करानेकी बात लिखकर मंदिरकी ऊंचाई, उसके झरोखे, उसके तोरन आदि तमाम चीजोंका वर्णन है । उसके बाद लिखा है कि,-मंदिर सं० १६४९ में तैयार हुआ था । उसका नाम नंदिवर्धन रक्खा गया था । वहीं संघसहित उसने (तेजपालने) शत्रुंजयकी यात्रा की थी और हीरविजयसूरिके हाथसे मंदिरकी प्रतिष्ठा कराई थी ।

सूरिजीके हाथोंसे उनकी प्रतिष्ठाएँ कराई थीं। उनके निमित्त बड़े बड़े उत्सव कराये थे। शाह हीराने नयेनगरमें, कुँवरजी * वादुआने

साथ यह भी बताया गया है कि, इस मंदिरके उद्धारके साथ ही शा रामजी, जसु ठक्कर, कुँअरजी और मूला सेठके बनवाये हुए मंदिरोंकी प्रतिष्ठा भी, सूरिजीने उसी समय की थी।

अन्तमें सूत्रधार-तर्खान वस्ता, प्रशस्तिके लेखक कमलविजय पंडितके शिष्य हेमविजय, शिलापर लिखनेवाले पंडित सहजसागरके शिष्य जयसागर और शिलामें अक्षर खोदनेवाले माधव तथा नाना नामक शिल्पियोंके नाम देकर यह लेख समाप्त किया गया है।

उपर्युक्त कार्योंके अलावा तेजपालने शासनकी प्रभावनाके और भी अनेक कार्य किये थे। कवि ऋषभदासने 'हीरविजयसूरिरास' में तेजपालकी प्रशंसामें जोकुछ लिखा है, उसका भाव यह है,–

"उसने आबूजीका संघ निकाला था। रास्तेमें लाहणी (भाजी) बाँटता हुआ गया था। आबू पर जाकर अचलगढ़में ऋषभदेवजीकी पूजा की थी। सातों क्षेत्रोंमें उसने धन खर्चा था। हीरविजयसूरिका यह श्रावक था। इसके बराबर कोई 'पोसा' करनेवाला नहीं था। यह विकथा कभी नहीं करता था। उसके हाथमें हमेशा उत्तम पुस्तक ही रहती थी।"

* कुँवरजीने कावीमें–जो खंभातके पास है–दो बड़े बड़े मंदिर बनवाये हैं। दोनों मंदिर इस वक्त मौजूद हैं। एक मंदिर धर्मनाथजीका कहलाता है और दूसरा आदीश्वरजीका। धर्मनाथजीके मंदिरके रंगमंडपके बाहिर दर्वाजेकी भींतमें एक लेख है। उसमें कुँवरजीका संक्षिप्त परिचय है। उस लेखका संवत् है–१६५४ का श्रावण वदी ९ शनिवार। उसमें बताया गया है कि, इस मंदिरका नाम 'रत्नतिलक' दिया गया है। इसके अलावा इसी मंदिरके मूलनायककी परिकरकी दाहिनी तरफ़के काउसगिया पर एक लेख है। उसमें लिखा है कि, सं० १६५६ के वैशाख सुद ७ के दिन कुँवरजीने विजयसेनसूरिसे प्रतिष्ठा कराई थी।

आदीश्वरके मंदिरमें मूलगभाराके दर्वाजेमें घुसते दाहिने हाथकी तरफ़ झरोखेमें ३२ श्लोकोंकी प्रशस्ति सहित एक लेख है। उससे भी कुँवरजीके विषयमें निम्न लिखित उल्लेख है।

कावीमें, शाह लहुजीने गंधारमें और शाह हीराने चिउलमें जिनमंदिर बनवाये थे। इनके अलावा लाहोर, आगरा, मथुरा, मालपुर, फतेहपुर, राधनपुर, कलिकोट, माँडवगढ, रामपुर और हमोल आदिमें अनेक मंदिर उनके उपदेशसे बने थे। भारमल शाहने चिराटमें, वस्तुपालने सीरोहीमें, वच्छराज और रूपाने राजनगरमें, ककू शाहने पाटनमें, वधु और धनजीने वडली और कुणगेरमें, श्रीमल, कीका और वाघाने शक्करपुरमें * देवालय और पोषधशालाएँ बनवाई थीं। ठक्कर जसराज और जसवीरने महिमदपुरमें मंदिर बनवाया था और आबूका संघ

गुजरातके वडनगर गाँवमें लघुनागर ज्ञातीय सियाणा गोत्रका गाँधी-देपाल रहता था। उसका पुत्र अलुआ और पौत्र लाडिका था। इसके वाढुक और गंगाधर नामके दो लड़के हुए। वाढुकके दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम था पोपटी और दूसरीका हीरादेवी। उन दोनों के तीन पुत्र हुए। पोपटीका कुँवरजी और हीरादेवीका धर्मदास और वीरदास। धन कमानेकी इच्छासे वाढुआ गाँधी खंभातमें जा बसा था। खंभातमें उसने हरतरहकी उन्नति की थी। उस समय 'कावी' तीर्थमें एक मंदिर था। वह अत्यंत जीर्ण हो गया था। उसका जीर्णोद्धार करानेकी कुँवरजीकी इच्छा हुई। परन्तु उसने–जैसा कि प्रशस्तिमें कहा गया है–ततः श्रद्धवता तेन भूमि शुद्धिपुरःसरम्। स्वभुजार्जितवित्तेन प्रासादः कारितो नवः। उस श्रद्धालु श्रावकने निज भुजबलसे उत्पन्न किये हुए द्रव्यसे, जमीनसे लेकर सारा मंदिर नवीन तैयार कराया था। और सं० १६४९ के मार्गशीर्ष शुक्ला १३ सोमवारके दिन श्री आदीश्वर भगवानकी स्थापनाकर विजयसेनसूरिके पाससे उसकी प्रतिष्ठा करवाई थी।

* शक्करपुर, यह खंभातसे लगभग दो माइल पर एक पुरा है। अभी वहाँ दो मंदिर हैं। एक चिन्तामणि पार्श्वनाथका और दूसरा सीमंधर-स्वामीका। दोनों मंदिरोंमें जाननेलायक एक भी लेख नहीं है। केवल आ-चार्योंकी पादुकाओं पर और ऐसे कुछ ही दूसरे भिन्न भिन्न लेख हैं, जो प्रायः अठारहवीं शताब्दिके हैं। ऊपर जिन गृहस्थोंका वर्णन है उनके नामका एक भी लेख नहीं है।

निकाला था। ठक्कर लाईने अकबरपुरमें मंदिर और उपाश्रय बनवाये थे। ठक्कर वीरा और सोढाने भी जिनभुवन बनवाये थे। कुंवरपालने दिल्लीमें भव्य जिनमंदिर निर्माण कराया था।

वर्तमानमें कुछ लोगोंको यह बात अनुचित मालूम होगी; परन्तु हमें यह कहना पड़ता है कि, हम जिस समयका अवलोकन कर रहे हैं उस समयके लिए सूरिजीका उपदेश समुचित-योग्य था। क्योंकि कालके प्रभावसे कुछ ही समय पहिले, कुछ मुसलमान शासकोंके जुल्मके सबबसे अनेक स्थानोंके मंदिर नष्ट होगये थे और अनेक स्थानोंमें मूर्तियाँ असातनाके भयसे गुप्त स्थानोंमें छिपा दी गई थीं। वैसी दशामें धर्मकी रक्षाके लिए मंदिर बनवानेका उपदेश समयके अनुकूल ही था।

संक्षेपमें यह है कि—अपने नायक हीरविजयसूरिके तमाम कामोंको ध्यान पूर्वक देखनेवाला हरेक सहृदय यही कहेगा कि, उन्होंने समयके प्रवाहको ध्यानमें रखकर ही उपदेश दिये थे।

प्रकरण दसवाँ।

शेष पर्यटन।

पाँचवें प्रकरणके अन्तमें हम अपने नायक हीरविजयसूरिको अभिरामाबादमें छोड़ आये हैं। अब हम उनके शेष पर्यटनका हाल लिखेंगे।

वि० सं० १६४२ (ई. स. १५८६) का चौमासा उन्होंने अभिरामाबादमें विताया था। उसके बीचमें उन्हें—गुजरातमें जो भयंकर उपद्रव उपस्थित हुए थे उन्हें शमन करानेके लिए—एक वार फिर फतहपुरसीकरी जाना पड़ा। गत प्रकरणमें इस बातका उल्लेख हो चुका है। अभिरामाबादसे विहार करके सूरिजी मथुरा और गवालियरकी यात्रा कर आगरेमें आये। पाँचवें प्रकरणमें यह बात लिखी जाचुकी है। उनके आगमनसे आगरेमें धर्मके अनेक उत्तमोत्तम कार्य हुए। वहाँसे विहारकर सूरिजी फिर मेड़ते पधारे। फाल्गुन चातुर्मास उन्होंने मेड़ताहीमें विताया। वहाँसे विहार कर नागोर गये। वहाँ सूरिजीका बहुत सत्कार हुआ। संघवी जयमल भक्तिपूर्वक सूरिजीको वाँदनेके लिए सामने गया। मेहाजल महताने भी सूरिजीकी बहुत भक्ति की। यहाँ जैसलमेरका संघ भी सूरिजीकी वंदना करनेके लिए आया था। माँडण कोठारी उनमें मुख्य था। इस संघने सूरिजीकी सोनैयासे पूजा की। सं० १६४३ का चौमासा खतम होने पर सूरिजी पीपाड़ पधारे। सूरिजीके पधारनेकी खुशीमें वहाँके ताला नामक एक पुष्करणा

ब्राह्मणने बहुतसा धन खर्चा । वहाँसे सूरिजी सीरोही पधारे । गुजरातसे विजयसेनसूरि सूरिजीके सामने आते थे, वे भी यहीं मिले। दोनों आचार्योंके एकत्रित होनेसे लोगोंमें अपूर्व उत्साह फैला। दोनों आचार्य सीरोहीमें थोड़े ही दिन तक एक साथ रहे; क्योंकि कई अनिवार्य कारणोंसे विजयसेनसूरिको सूरिजीकी आज्ञासे सीरोही छोड़कर गुजरातमें तत्काल ही जाना पड़ा था। सीरोहीमें हीरविजयसूरिके विराजनेसे और उनके उपदेशासे शासनोन्नतिके अनेक उत्तमोत्तम कार्य हुए । उस समय सीरोहीके श्रावक इतने उत्साहमें थे कि उन्होंने सूरिजीको आबूकी यात्रा करा कर वापिस सीरोही चलनेकी साग्रह, भक्तिपूर्वक प्रार्थना की और सीरोहीमें लेजाकर उनको चौमासा करवाया । (वि० सं० १६४४) सूरिजीको सीरोहीमें चौमासा कराने के लिए राय सुलतान और पूंजा महताका अत्यंत आग्रह था। सीरोहीमें भी अनेक दीक्षामहोत्सव और अन्यान्य धर्मोन्नतिके कार्य कराकर सूरिजी पाटण पधारे। वि० सं० १६४५ का चौमासा उन्होंने पाटणहीमें किया । पाटणसे विहार कर सूरिजी खंभात गये। यहाँ उन्होंने प्रतिष्ठादि कई कार्य किये । ऐसा मालूम होता है कि, उन्होंने सं० १६४६ का चातुर्मास खंभातहीमें किया था। उसी वर्ष धनविजय, जयविजय, रामविजय, भाणविजय, कीर्त्तिविजय और लब्धिविजयको पंन्यास पद्वियाँ दी गई थीं। वि० सं० १६४७ में इस तरह कई कार्य कर सूरिजी अहमदाबाद गये । अहमदाबादमें सूरिजीका अच्छा सत्कार हुआ । उनके पधारनेकी खुशीमें कई श्रावकोंने बहुतसा धन दानमें दिया और बड़े बड़े उत्सव किये । वि० सं० १६४८ के साल सूरिजी अहमदाबादहीमें रहे थे। उस समय नवाब आजमखाँके साथ उनका विशेप रूपसे परिचय हुआ ।

उसका वर्णन सातवें प्रकरणके अन्तमें किया जा चुका है । सूरिजी वहाँसे विचरण करते हुवे राधनपुर पधारे । वहीं अकबर का वह पत्र मिला था, जिसमें उसने विजयसेनसूरिको अपने पास भेजनेकी प्रार्थना की थी । तदनुसार वे भेजे गये थे राधनपुरमें लोगोंने छः हजार सोना महोरोंसे, सूरिजीकी पूजा की । वहाँसे विहार कर सूरिजी पाटन पधारे । पाटनमें उस समय उन्होंने तीन प्रतिष्ठाएँ की थीं । कासमखाँके साथ धर्मचर्चा–जिसका उल्लेख सातवें प्रकरणमें किया जा चुका है–करनेका अवसर भी सूरिजीको उसी समय मिला था ।

जिस समय सूरिजी पाटनमें थे उस समय उन्हें एक दिन स्वप्न आया कि,–वे हाथी पर सवार होकर पर्वतपर चढ़ रहे हैं और हजारों लोग उन्हें नमस्कार कर रहे हैं ।

सूरिजीने सोमविजयजीको अपना स्वप्न सुनाया । बहुत सोचविचारके बाद सोमविजयजीने उत्तर दिया:—" इस स्वप्नका फल आपको सिद्धाचलजीकी यात्रा करना होगा । " थोड़े ही दिनोंमें यह स्वप्न सत्य हुआ । सूरिजी सिद्धाचलजीकी यात्रा करनेके लिए तत्पर हुए । वहाँ के जैनसंघने भी ' छरी '× (एक प्रकारकी क्रिया)

× विधिपूर्वक तीर्थयात्रा करनेवालेको ' छरी ' पालनेकी शास्त्राज्ञा है । अर्थात् जिनके अन्तमें ' री ' आवे ऐसी छः बातें पालनी पड़ती हैं,–वे ये हैं, १ **एकाहारी** (एकबार भोजन करना). २ **भूमि संस्तारी** (पृथ्वी पर ही सोना) ३ **पादचारी** (पैदल चलकर ही जाना) ४ **सम्यक्त्वधारी** (देव, गुरु और धर्मपर पूर्ण श्रद्धा रखना) ५ **सचित्तहारी** (सचित्त–जीववाली वस्तुओंका त्याग करना) और ६ **ब्रह्मचारी** (घरसे रवाना हुए उस समयसे लेकर, यात्रा करके वापिस घर आवें तब तक बराबर ब्रह्मचर्यव्रत पालना ।)

इस प्रकार ' छरी ' पालते हुए जो यात्रा की जाती है वह यात्रा सविधि कही जाती है ।

पालते हुए सूरिजीके साथ ही सिद्धाचलजीकी यात्रा करना स्थिर किया। संघने गुजरात और काठियावाड़के गाँवोंमें और पंजाब, काश्मीर और बंगालके बड़े बड़े शहेरोंमें कासिदोंके साथ निमंत्रण भेजे। शुभ मुहूर्त्तमें संघ सूरिजी और मुनिमंडल सहित धूमधामसे रवाना हुवा। गाडियाँ, रथ, पालकी, ऊँट, घोड़े और हजारों आदमियों सहित संघ आगे बढ़ने लगा। कई मंजिलें पूरी करके संघ अहमदाबाद पहुँचा। उस समय अहमदाबादका सूबेदार अकबरका पुत्र मुराद था। उसने संघ और सूरिजीकी बहुत भक्ति की। सूरिजीके उपदेशसे प्रसन्न होकर उसने दो मेवड़े भी सूरिजीकी सेवामें भेजे।

क्रमशः विहार करता हुआ संघ धोल्के पहुँचा। खंभात निवासी संघवी उदयकरणने विनति करके संघको थोड़े दिनों तक वहाँ ठहराया। उसीके बीचमें बाई साँगदे और सोनी तेजपाल भी अपने साथ छत्तीस सेजवाला लेकर खंभातसे आगये। वे भी इस संघके साथ ही सिद्धाचलजीकी यात्राको चले।

जब यह बड़ा संघ पालीतानासे थोड़ा ही दूर रहा तब 'सोरठ'के अधिपति नौरंगखाँको मालूम हुआ कि, सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हीरविजयसूरि एक बड़े संघके साथ सिद्धाचलकी यात्रा करनेके लिए जा रहे हैं, तब वह तत्काल ही उनकी अगवानीके लिए आया। सोरठके सुबेदारके साथ थोड़ी देर तक सूरिजी वार्तालाप करते रहे। फिर उन्होंने अकबरके दिये हुए कुछ फर्मान उसको बताये। सुबेदार बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सूरिजीका बड़ा सत्कार किया। आनंदोत्सवके साथ सूरिजीका पालीतानामें प्रवेश कराया। एक ओर अनेक प्रकारके बाजोंसे गूँजते हुए गगनमंडलमें भाटोंकी विरुदावलीकी ध्वनि थी। और दूसरी ओर भजनमंडलियों द्वारा खेलाजानेवाला दाँडियारास और

अन्तिम भागमें चलती हुई, सुंदरियोंके, सिद्धाचलजीके चरणस्पर्श करनेको उत्साहित करनेवाले गीत अन्तःकरणोंको आनंदसे भरदेते थे। लाखों मनुष्योंकी भीड़में चलते हुए सूरीश्वरजीको हजारों मनुष्य सोना चाँदीके फूलोंसे वधाते थे। गृहस्थ एक दूसरेको केशरके छींटोंसे रँग कर उस दिनके अपूर्व प्रसंगका हर्ष प्रकट करते थे। कवि ऋषभदासने लिखा है कि,–उस यात्रामें सूरिजीके साथ बहतर संघवी–सिंघी–थे। उनमें शाह श्रीमल्ल, सिंघी उदयकरण, सोनी तेजपाल, ठक्कर कीका, काला, शाह मनजी, सोनी काला, पासवीर, शाह संघजी, शाह सोमजी, गाँधी कुँअरजी, शाह तोला, वहोरा वरजाँग, श्रीपाल, आदि मुख्य थे। शाह श्रीमल्लके साथ केवल पाँचसौ तो रथ ही थे। घोड़े–पालकी आदि तो हजारों थे। उसके साथ चार जोड़ी नौवत तथा निशान भी थे–ध्वजाएँ थीं।

इनके अलावा पाटनसे ककुशेठ भी संघ लेकर आये। अवजी महता, सोनी तेजपाल, दोसी लालजी और शाह शिवजी आदि भी पाटणसे संघके साथ आये। अहमदाबादसे तीन संघ आये थे। शाह वीपू और पारख भीमजी संघपति होकर आये थे। पूँजा बंगाणी, शाह सोमा और खीमसी भी आये थे।

मालवेसे डामरशाह भी संघ लेकर आया था। उसके साथ चंद्रभान, सूरा और लखराज आदि भी थे। मेवातसे कल्याण बंबू भी संघ लेकर आया था। उसने दो सेर शक्करकी भाजी बाँटी थी। मेडतासे सदारंग भी संघ लेकर आया था।

---

* यह आगराका रहनेवाला था। उसने सम्मेतशिखरकी यात्राके लिए एक बहुत बड़ा संघ निकाला था। संघने पूर्वदेशके समस्त तीर्थोंकी यात्रा की थी। श्रीकल्याणविजयजी वाचकके शिष्य पं० जयविजयजीने इस यात्राका

उपर्युक्त स्थानोंके अलावा इस यात्रामें जेसलमेर, वीसनगर, सिद्ध-पुर, महसाना, ईडर, अहमदनगर, हिम्मतनगर, सावली, कपडवणज, मातर, सोजित्रा, नडियाद, वडनगर, डाभला, कड़ा, महेमदावाद, वारेजा, वडोदा, आमोद, शीनोर, जंवूसर, केरवाडा, गंधार, सूरत, भडूच, रानेर, दीव, ऊना, घोघा, नयानगर, माँगरोल, वेरावल, देवगिरि, वीजापुर, वैराट, नंदरवार, सीरोही, नडुलाई, राधनपुर, वडली, कुण-गेर, प्रांतिज, महिअज, पेथापुर, वोरसद, कडी, धोलका, धंधूका, वीरमगाम, जूनागढ और कालावड आदि गाँवोंके संघ भी आये थे। 'विजयतिलकसूरि रास' के कर्त्ता पं० दर्शनविजयजीके कथनानुसार, इस संघमें सब मिलकर दो लाख मनुष्य इकट्ठे हुए थे।

जिस समयकी हम वात लिख रहे हैं, वह वर्त्तमान समयके जैसा न था। उस समय एक नगरसे दूसरे नगर खबर पहुँचानेमें अनेक दिन लग जाते थे। आज तो घंटों और मिनिटोंमें समाचार पहुँचाये जा सकते हैं। उस समय तीर्थयात्रा करनेमें महीनों बीत जाते थे। हजारों लाखों रुपये खर्च होते थे और अनेक प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते थे। इस समयमें तो कुछ ही दिनोंमें, थोड़ा ही धन खर्च करने पर विना कठिनतासे लोग यात्रा कर आते हैं। उस समय वहुत ज्यादा धन और समय खर्च करने और जोखम उठाने पर तीर्थयात्रा होती थी, इस लिए वहुत ही कम लोग यात्रार्थ जाते थे। जब वड़े वड़े संघ निकलते थे तभी लोग यात्रार्थ जाते थे।

प्रस्तुत यात्रामें इतने प्रान्तोंके संघ आये थे। इसका यही कारण था कि, ऐसा अपूर्व प्रसंग वार वार नहीं आता है। उस समय

वर्णन अपनी 'समेतशिखर-तीर्थमाला' में किया है। देखो तीर्थमाला संग्रह भाग पहला पृ. २२-३२ तक।

आनेवाले लोगोंको स्थावर और जंगम दोनों तरहके तीर्थोंकी यात्रा करनेका अपूर्व अवसर मिला था। स्थावरतीर्थ थे 'सिद्धाचलजी' और जंगमतीर्थ थे हीरविजयसूरि। यही हेतु था कि, लाखों मनुष्य उस समय एकत्रित हो गये थे। ऋषभदास कविने लिखा है कि उस यात्रामें एक हजार साधु हीरविजयसूरिके साथ थे।

कल चैत्री पूर्णिमा है। कलहीके दिन पुंडरीक स्वामी पाँच करोड मुनियों सहित मोक्षमें गये थे। इस लिए हमें भी कलही यात्रा करनी चाहिए। पालीताना गाँवसे शत्रुंजयगिरि लगभग दो माइल दूर है। सवेरे सारा संघ एक साथ रवाना न हो सकेगा यह सोचकर संघ सहित सूरिजीने चतुर्दशीहीको पर्वतकी ओर प्रस्थान किया।

शत्रुंजयगिरिकी तलहटीमें, इस समय यात्रियोंके आरामके लिए अनेक साधन हैं; परन्तु उस समय कोई साधन नहीं था। इस लिए हीरसौभाग्यकाव्यके कर्ताका कथन है कि—सूरिजीने शिवजीके मंदिरमें चौदसकी रात विताई थी। और संघने मैदानमें।

दूसरे दिन अर्थात् पूर्णिमाके दिन सवेरे ही बड़े बड़े धनाढ्य गृहस्थोंने सोने चाँदीके पुष्पों और सच्चे मोतियोंसे इस पहाड़को बधाया और सूरिजी सहित सारे संघने शत्रुंजयके पवित्र पर्वत पर चढ़ना प्रारंभ किया। धीरे धीरे बड़े उत्साहके साथ, एकके बाद एक मेखला और टेकरीको लाँघते हुए सबने पर्वतके ऊपरि भागके प्रथम दुर्गमें प्रवेश किया। इसके बाद सूरिजी और संघने कहाँ कहाँ दर्शन किये? इसका वर्णन 'हीरसौभाग्यकाव्य' में इस प्रकार किया गया है,—

" संघने और सूरिजीने प्रथम दुर्गमें प्रवेश करते ही हाथी पर अवस्थित मरुदेवी माताकी मूर्तिको प्रणाम किया। वहाँसे, शान्ति-

नाथके, अजितनाथके मंदिरोंमें, पश्चात् पेथडशाहके बनाये हुए मंदिरोंमें दर्शन करते हुए छीपावस्तीमें प्रवेश किया। वहाँसे टोटरा और मोल्हा नामक मंदिरोंमें दर्शनकर कपर्दियक्ष और अदवददादाके आगे स्तुति की। फिर वे मरुदेवी शिखरसे उतरकर स्वर्गारोहण नामकी टूंक पर अनुपमादेवीके बनवाये हुए अनुपम नामके तालाबको देखते हुए ऊपर चढ़े और ऋषभदेवके मंदिरवाले दुर्गमें गये। इस दुर्गके पास वस्तुपालकी बनवाई हुई गिरिनारकी रचना है; उसको देखा। वहाँसे खरतरवसती नामके मंदिरमें गये। राजीमती और नेमनाथकी मूर्तियों की वंदना की। वहाँसे घोड़ाचौकी नामके मंदिरके और पादुकाके दर्शन कर तिलकतोरण नामके जिनालयमें दर्शन किये। वहाँसे सूर्यकुंडको देखते हुए मूल मंदिरके कोटमें घुसे और सीढ़ीयाँ चढ़ने लगे। जीनों पर चढ़ते हुए क्रमशः तोरन, मंदिरका रंगमंडप, ध्वजाओं रंगमंडपके स्तंभों, हाथी पर बैठी हुइ मरुदेवा माता, मंदिरके गभारे और खास ऋषभदेव प्रभुकी मूर्त्तिको देखकर सूरिजीको अत्यन्त आनंद हुआ। ऊपर चढ़कर मूल मंदिरकी परिक्रमामें देवरियोंके अंदर विराजमान प्रतिमाओंके और रायणवृक्षके नीचेवाली पादुकाके दर्शन किये। उसके पश्चात् जसु ठक्करके बनवाये हुए तीन द्वारवाले मंदिरके, रामजीशाहके बनवाये हुए चार द्वारवाले मंदिरके और ऋषभदेवके सामने विराजमान पुंडरीक स्वामीके दर्शन करके मूल मंदिरमें प्रवेश किया। मंडपके अंदर स्थित मरुदेवा माताकी मूर्त्तिको नमस्कार कर ऋषभदेव भगवानकी भावसहित स्तुति की। तत्पश्चात् बाहर आकर मूलद्वारके आगे जो खुली जगह है उसमें दीक्षादान, व्रतोच्चारण आदि धर्म–क्रियाएँ सूरिजीने करवाई। वहाँसे पुंडरीक गणधरकी प्रतिमाके सामने आकर सूरिजीने 'शत्रुंजयमाहात्म्य' पर व्याख्यान दिया।"

उपर्युक्त वर्णनके सिवा हीरसौभाग्यकाव्यके कर्ताने एक महत्त्वकी बात लिखी है; और वह यह है कि, सूरिजी कई दिनों तक सिद्धाचलपर्वत पर रहे थे ।

सिद्धाचलजीके समान पवित्र तीर्थस्थानपर रात रहना निषिद्ध है, परन्तु हीरविजयसूरिकी अवस्था ज्यादा हो गई थी । वारवार चढ़ना उतरना उनके लिए कठिन था, इसलिए विवश होकर अपवाद रूपसे वे ऊपर रात रहे थे । हीरसौभाग्यकी टीकामें भी वे क्यों ऊपर रात रहे थे ? इस प्रश्नका यही उत्तर दिया गया है * ।

कवि ऋषभदासने भी हीरविजयसूरिरासमें इस यात्राका वर्णन किया है । वह भी खास जानने योग्य है । उसने लिखा है:—

" तलहटीमें तीन स्तूप हैं । उनमेंसे एकमें ऋषभदेवजीकी, दूसरेमें धनविजयजीकी और तीसरेमें नाकरकी चरण पादुकाएँ हैं । उन तीनों स्थानोंमें सूरिजीने और संघने स्तुति की । वहाँसे धोलीपरव पर जाकर कुछ विश्राम किया । वहाँ शर्वत पिलाया जाता था । वहाँसे तीसरी बैठकमें गये । यहाँ कुमारकुंड है । चौथी बैठकका नाम ' हिंगलाजका हड़ा ' है । सूरिजी पाँचवीं बैठक पर चढ़नेमें थक गये थे, इस लिए उन्होंने सोमविजयजीका सहारा लिया । शलाकुंड पर यात्रियोंने जल पी कर थोड़ा आराम लिया । यहाँ ऋषभदेवजीकी पादुका भी है । संघ सहित सूरिजीने इनकी वंदना की । वहाँसे आगे चले । छठी बैठक पर दो समाधियाँ देखीं । वहाँसे सातवीं बैठकमें गये । वहाँ दो मार्ग दिखाई दिये । बारीमें घुसकर

* देखो हीरसौभाग्यकाव्य सर्ग १६, श्लोक १४१ पृ. ८४७.

जाते हुए **चौमुखजी**का मंदिर आता है और दूसरे मार्गसे जाते हुए **सिंहद्वार** आता है। **सूरिजी** संघ सहित सिंहद्वार होकर गये। सबसे बड़े मंदिरमें पहुँच कर पहिले **श्रीऋषभदेव** भगवानके दर्शन किये और फिर तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। परिक्रमामें एक सौ चौहद छोटे छोटे चैत्य हैं। उनमें एक सौ बीस जिनबिंब हैं। उनके दर्शन किये। फिर एक सौ आठ मध्यम चैत्योंमें और बड़े मंदिरोंमें सब मिलकर २४९ जिनबिंब हैं, उनके दर्शन किये। इनके अलावा एक सुंदर समवसरण है। उसके दर्शन कर **रायणवृक्ष**के नीचेकी चौरानवे पादुकाओंके और तलघरके अंदरकी दो सौ प्रतिमाओंके भी दर्शन किये। वहाँसे **सूरिजी** और दूसरे सभी लोग कोटके बाहर आये। कोटसे बाहिर आकर सबसे पहिले **खरतरवसी**में दो सौ जिनबिंबोंके दर्शन किये। यहाँ **ऋषभ-देव**की मनोहर मूर्त्तिने सबका ध्यान अपनी तरफ खींचा। वहाँसे पौषधशालामें आकर **सूरिजी**ने और संघने थोड़ी देर विश्राम लिया। कोटके बाहिर सत्रह मंदिर हैं। उनमें दो सौ प्रतिमाएँ हैं। उनको वंदना की। वहाँसे **अनोपमतालाव** और **पाँडवोंकी देवरी** पर होते हुए **अदबदजी**के मंदिरमें पहुँचे। उनके दर्शन किये। वहाँसे **कवडयक्ष**के दर्शन करते हुए **सवासोमजी**के **चौमुखाजी** के मंदिरमें गये। वह नया बना था। उसके चारों तरफ बावन देव-रियाँ थीं। वहाँ एक तलघरमें सौ प्रतिमाएँ थीं। उनके भी दर्शन किये। वहाँ एक पीठिका पर दश पादुकाएँ थीं। उनके भी दर्शन करके **पुंडरीकजी**के मंदिरमें आकर दर्शन किये। यहाँ **सूरिजी**ने शत्रु-ञ्जयका माहात्म्य सुनाया।"

उपर्युक्त प्रकारसे **सूरिजी**ने लाखों मनुष्योंके साथ **सिद्धाचलजी**की यात्रा की। **ऋषभदास** कविके लिखे हुए वृत्तान्तसे यह बात सहज ही मालूम हो जाती है कि, **सूरिजी**ने यात्रा की उस समय (वि॰

सं० १६९० में) सिद्धाचलजी पहाड़ पर किस जगह क्या था और खास खास स्थानोंमें कितनी कितनी मूर्त्तियाँ थीं।

सूरिजीके इस यात्रा-वर्णनसे यह बात भी सहजही ध्यानमें आ जाती है कि, जमाना कितनी तेजीके साथ बदलता रहता है। कहाँ भाव-भक्ति सहित अपने सारे जीवनमें सिर्फ एक दो बार यात्रा करके जीवनको सफल बनाने, और समझनेवाले पहिलेके यात्री! और कहाँ गर्मीकी मोसिममें केवल हवा खानेके लिए अथवा व्यापार-रोजगारके बोझेसे व्याकुल होकर आराम लेनेके लिए जाने वाले वर्तमानके यात्री! (इस कथनसे किसीको यह नहीं समझना चाहिए कि भक्तिभावके साथ यात्रार्थ जानेवाले अब हैं ही नहीं। अब भी अनेक भक्तिपुरस्सर यात्रार्थ जाने वाले यात्री हैं।) कहाँ इतने विशाल तीर्थस्थानमें अँगुलियों पर गिनने योग्य मूर्त्तियाँ और कहाँ आजकी हजारों मूर्त्तियाँ! कहाँ तीर्थयात्र करनेके बाद सत्य, ब्रह्मचर्य, अनीति-त्याग, इच्छा निरोध आदिकी भावनाएँ ओर कहाँ आज अनेक बार तीर्थयात्रा करने पर भी इन गुणोंकी ओर प्रवृत्त होनेकी उपेक्षा! कहाँ तीर्थस्थानोंमें वह शान्तिका साम्राज्य और कहाँ अज्ञानताके कारण चारों तरफ बढ़ा हुआ आजका अज्ञानतापूर्ण आडंबर! कहाँ तीर्थस्थानों और देवमंदिरोंकी रक्षाके लिए लोगोंकी आन्तरिक भावना और स्थिरप्रवृत्ति और कहाँ उनकी रक्षाके बहाने चलाये जाने वाले पक्षपातपूर्ण राजसीठाटके कारखाने! ये बातें क्या बताती हैं? जमानेका परिवर्त्तन या और कुछ?

उस समय जिन लोगोंको तीर्थस्थानोंमें जानेका अवसर मिलता था वे, अपना अहोभाग्य समझते थे। तीर्थोंकी पवित्रभूमिका स्पर्श करते ही वे अपने आपको कृतकृत्य मानने लगते थे। जब तक वे तीर्थस्थानोंमें रहते थे तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायोंको

मंद करते थे और अपने जीवनको सुधारनेके लिए उत्तमोत्तम नियम ग्रहण करते थे।

सर्वत्र देववंदना करनेके बाद **सूरिजी** एक स्थान पर बैठे। तब सारे संघवालोंने गुरुवंदना प्रारंभ की। **डामर** संघवीने **सूरिजी**को वंदना करते हुए सात हजार महमूदिकाएँ खर्चीं। गंधारका **रामजीशाह** जब गुरुवंदन करने लगा, तब **सूरिजी**की उस पर दृष्टि पड़ी। **सूरिजी**ने उसको कहाः—" क्यों ? वचन स्मरण है न ? " **रामजीशाह**ने उत्तर दियाः—" हाँ साहिब ! मैंने वचन दिया था कि जब मेरे सन्तान होजायगी तब मैं ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लूँगा।" **सूरिजी**ने कहाः— " तब, अब क्या विचार है ? मैंने सुना है कि, तुम्हारे सन्तान हो गई है।" **रामजी**ने कहाः—" महाराज ! मेरा सद्भाग्य है कि, मुझे ऐसे पवित्र स्थानमें आपके समान महान गुरुके पाससे व्रत लेनेका अवसर मिला है।" उसके बाद उसी समय **रामजी**ने और उसकी स्त्रीने— जिसकी आयु केवल बाईस बरसकी थी—जीवनभरके लिए ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया। छोटी उम्रमें इन दोनों स्त्री पुरुषोंको ब्रह्मचर्यव्रत धारण करते देख दूसरे अनेक स्त्री–पुरुषोंने भी ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार किया।

उसके बाद **पाटण**के **ककु** शेठने भी ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया। उनके साथ अन्य तिरपन मनुष्योंने भी ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया। **ऋषभदास** कवि लिखते हैं कि—हीरविजयसूरिकी पूजा करनेमें ग्यारह हजार मरुची (एक प्रकारकी मुद्रा) की उपज हुई थी।

इस तरह **सिद्धाचल**जी तीर्थ पर शुभ भाव पूर्वक देववंदन और व्रतग्रहणादि क्रियाएँ करनेके बाद सब नीचे उतरे; **पालीताना** गाँवमें आये।

कुछ काल पालीतानेमें रहनेके बाद, सूरिजीनें विहार करनेका और संघने विदा होनेका निश्चय किया। भिन्न भिन्न स्थानोंसे आये हुए गृहस्थ सूरिजीसे अपने अपने स्थान पर पधारनेकी विनती करने लगे। उनमेंसे भी खास करके खंभातके सिंघी उदयकरणकी और दीवके मेघजी पारख, दामजी पारख और सबजशाहकी विनति विशेष आग्रहपूर्ण थी। इन दोनों स्थानोंके गृहस्थोंने अपने अपने नगरमें पधारनेका अत्यंत अनुरोध किया। दीवकी लाड़वीबाई नामकी एक श्राविका थीं। उन्होंने सूरिजीसे प्रार्थना करते हुए कहाः—" आपने स्थान स्थान पर विहार करके सर्वत्र प्रकाश किया है परन्तु हम अब तक अँधेरेहीमें भटकते हैं। इस लिए दया करके आपको दीव पधारना ही चाहिए।" अन्तमें सूरिजीने दीवके संघको कहाः—" जैसी तुम्हारी इच्छा होगी और जिससे सबको सुखशान्ति होगी वही काम किया जायगा।"

दीवका संघ बहुत प्रसन्न हुआ। एक मनुष्य बधाई लेकर पालीतानेसे दीव पहुँच गया। वहाँके श्रावकोंने इस शुभ समाचारको सुन कर आनंद प्रकट किया और बधाई देनेवालेको चार तोले स्वर्णकी जीभ, वस्त्र और बहुतसी स्याहरियाँ इनाममें दीं।

जब अनेक देशों और गाँवोंके बहुत बड़े जन-मंडलमेंसे सूरिजी रवाना हुए तब वह मंडल गुरु-विरहके दुःखसे दुखी हुआ। उस समय बिछुड़ते हुए संघके हृदयमें इस बातका स्वभावतः विचार होने लगा कि—न जाने अब सूरिजीके दर्शन होंगे या नहीं? और इस विचारने उन्हें और भी दुखी बनादिया। गुरुजीसे दूर होते समय सबका चहरा उदास था। सूरिजी और उनके शिष्यवर्गने निराग भावसे दीवकी तरफ विहार किया। पालीताणासे रवाना होकर दाठा, महुवा आदि स्थानोंमें होते हुए सूरिजी देलवड़े पहुँचे। वहाँसे

अंजार पहुँचकर अजरापार्श्वनाथकी यात्रा की। दीवका संघ सूरिजीको वंदना और विनति करनेके लिये आया और बड़ी धूम-धामके साथ यहाँसे दीवमें ले गया। वहाँसे ऊने जाते हुए लोगोंने सूरिजीको मोतियोंके थालोंसे वधाया। कहा जाता है कि, उस समय सूरिजीके साथ पचीस साधु थे। वहाँ रहकर सूरिजी प्रति दिन नवीन नवीन अभिग्रह-नियम लेने लगे।

सूरिजी हमेशा ऊनामें व्याख्यान, करने लगे। हजारों लोग उनसे लाभ उठने लगे। अनेक उत्सव हुए। मेघजी पारख, लखराज रूडो और लाड़कीकी माँने सूरिजीसे प्रतिष्ठाएँ करवाई। श्रीश्रीमालवंशी शाह्वकोरने अपना द्रव्य सद्मार्गमें खर्च कर सूरिजीके पाससे दीक्षा ली। इनके अलावा और भी अनेक क्रियाएँ जैनोंमें हुई। सूरिजी जब ऊनामें थे तब जामनगरके जाम साहबका दीवान अबजी भनसाली भी सूरिजीको वंदना करने आया था। उसने सूरिजीकी और दूसरे साधुओंकी स्वर्णमुद्रासे नवआँगी पूजा की थी। एक लाख मुद्राका लुंछन किया था और याचकोंको बहुतसा दान दिया था। सं० १६५१ का चौमासा सूरिजीने ऊनाहीमें बिताया। चौमासा बीतने पर यद्यपि सूरिजीने विहारकी तैयारी की तथापि श्रावकोंने विहार नहीं करने दिया। क्योंकि सूरिजीकी तबीयत खराब थी। अतः उन्हें वहीं रहना पड़ा।

प्रकरण ग्यारहवाँ ।

जीवनकी सार्थकता ।

जैसे सूर्य उदय होकर अस्त भी जरूर होता है उसी तरह जन्मके पश्चात् मृत्यु भी अवश्यमेव आती है । सम्राट् हो या मंडलेश्वर, धनी हो या निर्धन, गरीब हो या अमीर, बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष, चाहे कोई हो; साक्षात् देव ही क्यों न हो–जो जन्मा है उसे जल्दी या देरमें मरना अवश्य होगा । मगर मौतमौतमें भी फरक है । जिन्होंने जन्म धारण करके अपने जीवनको सार्थक कर लिया है उन्हें अपनी मृत्यु आनंददायक मालूम होती है । कारण–उन्हें यह विश्वास होता है कि, मुझे निंद्य–तुच्छ–मानवी देहका त्यागकर दिव्य शरीर प्राप्त होगा । सच है, जिस मनुष्यको विश्वास हो कि मुझे इस झौंपड़ीको छोड़नेके बाद महल रहनेके लिये मिलेगा, वह झौंपड़ी छूटनेसे दुखी नहीं होता । विपरीत इसके जो अपने जीवनको सार्थक न करके हाय ! हाय ! में रहता है उसे मरना भी हाय ! हाय ! में ही पड़ता है और जन्मान्तरमें भी वह हाय ! हाय ! उसका पीछा नहीं छोड़ती है ।

जीवनकी सार्थकता उत्तमोत्तम गुणोंके आचरणमें है । दया, दाक्षिण्य, विनय, विवेक, समभाव और क्षमादि बातें ही उत्तम गुण हैं । ये ही जीवनकी सार्थकताके हेतु हैं । अपने नायक हीरविजयसूरि

ऐसे उच्चत्तम गुणोंके भंडार थे। वार बार अपने जीवनमें आनेवाली तकलीफोंको उन्होंने जिस सहनशीलताके साथ झेली हैं वे उनके जीवनकी सार्थकताको बताती हैं। गुजरात जैसे रम्य और परम श्रद्धालु प्रदेशको छोड़ना; अनेक प्रकारके कष्ट उठाते हुए फतेहपुरसीकरी तक जाना; चार बरस तक उस प्रदेशमें रहना; अकबरके समान बादशाहको अपना भक्त बनाना और सारे साम्राज्यमेंसे छःमहीने तकके लिए जीवहिंसा बंद करवाना क्या उनके जीवनकी कम सार्थकता थी? उनका समभाव कैसा था? इतने ऊँचे दर्जे तक पहुँचने पर भी वे कैसी नम्रता विवेक, विनय और लघुता रखते थे? और उनकी गुरुभक्ति कैसी थी? इनका उत्तर जब उनके जीवन-प्रसंग देखते हैं तब हम आनंदसे कह उठते हैं—जीवन यही धन्य है!

हीरविजयसूरि अपने साधुधर्ममें कितने दृढ थे और अपने निमित्त तैयार की गई चीजोंका उपयोग नहीं करनेकी वे कितनी सावधानी रखते थे इस संबंधकी केवल एक घटनाका हम यहाँ उल्लेख करेंगे।

एक बार सूरिजी अहमदाबादके कालूपुरके उपाश्रयमें आये और श्रावकोंसे एक गोखड़ेमें—ताकमें—जो नवीन बनाया गया था—बैठकर उपदेश देनेकी अनुमति चाही। श्रावकोंने कहाः—"महाराज! हमसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह गोखड़ा तो खास आपहीके लिये बनवाया गया है।" सूरिजीने कहाः—"तब तो यह हमारे निरुपयोगी है। क्योंकि हमारे निमित्तसे जो चीज तैयार कराई जाती उसको हम काममें नहीं ला सकते।" इसके बाद वहाँ लकड़ीकी एक चौकी पड़ी थी उस पर बैठ कर सूरिजीने व्याख्यान दिया।

एक बार गोचरीमें किसी श्रावकके यहाँसे खिचड़ी आई।

सूरिजीने उसे खाई। साधु लोग अभी आहारपानी कर भी न चुके थे कि, वह श्रावक–जिसके यहाँसे खिचड़ी आई थी–दौड़ता हुआ आया और सूरिजीके शिष्योंको कहने लगा:—"आज मुझसे बहुत बड़ा अनर्थ हो गया है। मेरे यहाँसे जो खिचड़ी आई है वह बहुत खारी है। इतनी खारी है कि, मैं उसका एकसे दूसारा नवाला तक न ले सका।" यह बात सुनकर साधु निस्तब्ध हो गये। कारण–दैवयोगसे उस दिन सूरिजीने उसके यहाँकी खिचड़ी ही खाई थी और खाते हुए उन्होंने किसी भी प्रकारसे यह प्रकट नहीं होने दिया था कि, खिचड़ी खारी है। वे सदाकी भाँती ही सन्तोषपूर्वक खाते रहे थे। इस घटनासे यह प्रकट हो जाता है कि, अपनी रसनेन्द्रियपर उनका कितना अधिकार था। रसनेन्द्रियको अधिकारमें करना कितना कठिन है इसको हरेक समझ सकता है। अन्यान्य इन्द्रिय–विषयोंपर अधिकार करनेवाले हजारों मनुष्य होंगे; परन्तु रसना इन्द्रियको न रुचे इस प्रकारकी वस्तु प्राप्त होनेपर भी सन्तोषपूर्वक–उसका मनमें दुर्भाव लाये बिना उपयोग करनेवाले तो विरले ही निकलेंगे। हरेक मनुष्यको, खास करके साधुओंको, जिनके निर्वाहका आधार केवल भिक्षावृत्ति ही है; जो संसारत्यागी हैं–तो रसना इन्द्रियको अपने काबूमें करनी ही चाहिए। कई नाम-धारी साधु साधुओंके लिए अग्राह्य पदार्थको भी कई बार ग्रहण कर लेते हैं। इसमें उन्हें जरासा भी संकोच नहीं होता। इसका कारण रसना इन्द्रियमें आसक्तिके सिवा और कुछ भी नहीं है।

इसी प्रकार ऊनामें भी एक खास स्मरणीय बात हुई थी। सूरिजी जब ऊनामें थे तब उनकी कमरमें एक फोड़ा हुआ था। वे समझते थे कि जब पापका उदय होता है तब रोगसे भरे हुए इस शरीरमेंसे कोई न कोई रोग बाहर निकलताही है। इस लिए रोगको शान्तिके साथ सहलेना ही मनुष्यका काम है। हाय! हाय! करनेसे

वेदना शान्त तो नहीं होती; परन्तु वह नवीन असाता वेदनीके कर्मोंको उत्पन्न करती है । इन्हीं भावनाओंके कारण, यद्यपि शरीर-धर्मके अनुसार उन्हें फोड़ेसे अत्यन्त वेदना होती थी; तथापि वे उसे समभाव पूर्वक सहन करते थे । एक दिन ऐसा हुआ कि, सूरिजीने रातके वक्त संथारा किया । एक श्रावक उनकी भक्ति—सेवा करनेके लिए आया । उसकी अँगुलीमें एक सोनेकी अंगूठी आँटोंवाली थी । वह सूरिजीका शरीर दाब रहा था । दबातेहुए अंगूठीकी नोक फोड़ेमें घुस गई । फोड़ेकी वेदना अनेक गुणी बढ़ गई । रक्त निकला । सूरिजीकी चद्दर भीग गई । इतना होने पर भी सूरिजी पूर्ववत् ही शान्तिसे रहे । उस श्रावकको भी उसकी इस असावधानताके लिए कुछ नहीं कहा । उन्होंने यह सोचकर मनको स्थिर रक्खा कि, जितनी वेदना भोगना मेरे भाग्यमें बदा होगा उतनी मुझे भोगनी ही पड़ेगी । दूसरेको दोष देनेमें क्या लाभ है? सवेरे ही श्रीसोमविजयजीने सूरिजीकी चद्दर रक्तवाली देखी । उसका कारण जाना और श्रावककी असावधानीके कारण बहुत खेद प्रकट किया । सूरिजीने उन्हें प्राचीन ऋषियोंके उदाहरण दे देकर समझाया कि, वे जब इससे भी अनेक गुणी ज्यादा वेदना सहकर विचलित नहीं हुए थे और आत्मभावमें लीन रहे थे, तब इस तुच्छ कष्टके लिए अपने आत्मभावोंको विसार देना हमारे लिए कैसे शोकास्पद हो सकता है?

सूरिजीमें अनेक गुण थे । उनमेंसे एक खास महत्त्वका और अपनी ओर ध्यान खींचनेवाला था । वह था 'गुणग्राहकता'। सूरिजी आचार्य थे । दो ढाई हजार साधु उनकी सेवामें रहते थे । लाखों श्रावक उनकी आज्ञानुसार चलते थे। अनेक राजा महराजा उनके उपदेशानुसार कार्य करते थे । इतना होने पर भी वे जब कभी किसीमें कोई गुण देखते थे तो उसका सत्कार किये विना नहीं रहते थे ।

सूरिजीके समयहीमें अमरविजयजी * नामके एक साधु हुए हैं। वे त्यागी, वैरागी और महान् तपस्वी थे। निर्दोष आहार लेनेकी ओर तो उनका इतना ज्यादा ध्यान था कि, कई बार उनको निर्दोष आहार न मिलनेके कारण तीन तीन चार चार दिन तक उपवास करने पड़ते थे। हीरविजयसूरि उनकी त्यागवृत्ति पर मुग्ध थे। एक बार जब सब साधु आहारपानी ले रहे थे उस समय सूरिजीने उनसे कहा:—" महाराज, आज तो आप मुझे अपने हाथसे आहार दीजिए।" कितनी लघुता! गुणीजनोंके प्रति कितना अनुराग! इतनी उच्चस्थितिमें पहुँचने पर भी कितनी निरभिमानता! अमर-विजयजीने सूरिजीके पात्रमें आहार दिया। एक महान् पवित्र-तपस्वी महापुरुषके हाथसे आहार लेनेमें सूरीश्वरजीको जो आनंद हुआ वह वास्तवमें अवर्णनीय है। सूरिजीने उस दिनको पवित्र मानकर अपनी गिनतीके पवित्र दिनोंमें जोड़ा और अपने आपको भी उस दिन उन्होंने धन्य माना।

सूरिजीमें जैसी गुण-ग्राहकता थी वैसी ही लघुता भी थी। हम इस बातको भली प्रकार जानते हैं कि, अकबरने जीवदयासे संबंध रखनेवाले और इसी तरहके जो काम किये थे उन सबका श्रेय हीरविजयसूरिहीको है। यद्यपि विजयसेनसूरि, शान्तिचन्द्रजी भानुचंद्रजी और सिद्धिचंद्रजीने बादशाहके पास रहकर कई काम करवाये थे; तथापि प्रताप तो सूरिजीहीका था। कारण बादशाहके पास रहकर दीर्घकालतक उन्होंने जो बीज बोये थे—बीज ही नहीं उसके अंकुर भी फुटाये थे—उन्हींके वे फल थे। इसलिए उनका सारा यश सूरिजीहीको है। इतना होनेपर भी सूरिजी यही समझते

* पृ० २१३ के फुटनोटमें पं० कमलविजयजीके बारेमें कहा गया है। अमरविजयजी उन्हींके गुरु थे।

थे कि, मैंने जो कुछ किया है या करता हूँ अपना कर्तव्य समझकर किया है; या करता हूँ। मैंने विशेष कुछ नहीं किया। मैं तो, मेरे सिरपर जितना कर्तव्य है उतना भी पूर्ण नहीं कर रहा हूँ।

एक वार किसी प्रसंगपर एक श्रावकने सूरिजीसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहाः—" आप जैसे शासनप्रभावक पुरुष धन्य हैं कि, जिन्होंनें अकबर बादशाहको उपदेश देकर उससे वर्षमेंसे छः महीनोंके लिए सारे भारतमेंसे जीवहिंसा बंद करवादी।"

सूरिजीने कहाः—" भाई! जगत्के जीवोंको सन्मार्गपर लानेका प्रयत्न करना तो हमारा धर्म ही है। हम तो केवल उपदेश देनेके अधिकारी हैं। उपदेशके अनुसार व्यवहार करना या न करना श्रोताओंके अधिकारकी बात है। हम जब उपदेश देते हैं तब कई सावधान होकर सुनते हैं; कई बैठे हुए ऊँघा करते हैं। कई अव्यवस्थित रीतिसे बैठकर मनको इधरउधर भमाते हैं और कई तो उठकर चलते भी जाते हैं। अभिप्राय यह है कि, हजारों को उपदेश देनेपर भी लाभ तो बहुत ही कम मनुष्योंको हुआ करता है। अकबरने जो काम किये हैं इनका कारण तो उसका स्वच्छ अन्तःकरण ही है। यदि उसने वे काम न किये होते तो हम क्या कर सकते थे? मैंने जब सिर्फ पर्युषणोंके आठ दिन माँगे तब उसने अपनी तरफ़से चार दिन और जोड़कर बारह दिनका पर्वाना कर दिया। यह उसकी सज्जनता थी या और कुछ? यदि विचार करेंगे तो मालूम होगा कि, श्रेष्ठ कार्यमें याचना करनेवालेकी अपेक्षा दानकरनेवालेकी कीर्त्ति विशेष होती है। मैंने माँगकर अपना कर्तव्य पूर्ण किया, बादशाहने देकर—कामकर अपनी उदारता दिखाई। कार्य करनेकी अपेक्षा उदारता दिखाना विशेष श्लाघ्य है। इसके उपरान्त मुझे स्पष्टतया यह कह देना

चाहिए कि, बादशाहने जितनी अमारीघोषणाएँ कराई–जीवहिंसाएँ बंद करवाई और गुजरातमें प्रचलित जजिया नामका जुल्मी कर बंद कराया इन सबका श्रेय शान्तिचंद्रजीको है और शत्रुंजयादिके फर्मान लेनेका यश भानुचंद्रजीको है। क्योंकि ये कार्य उन्हींके उपदेशसे हुए हैं।”

कितना स्पष्ट कथन! कितनी लघुता! कितनी निरभिमानता!! सचमुच ही उत्तम पुरुषोंकी उत्तमता ऐसे ही गुणोंमें समाई हुई है।

सूरिजीम गुरुभक्तिका गुण भी प्रशंसनीय था। गुरुकी आज्ञाको वे परमात्माकी आज्ञा समझते थे। एक बार उनके गुरु विजयदान-सूरिने उन्हें किसी गाँवसे एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा था कि, इस पत्रको पढ़ते ही जैसे हो सके वैसे यहाँ आओ।

पत्र मिलते ही सूरिजी रवाना हो गये। उस दिन दो दिनके उपवासका पारणा करना था। पारणाकर विहार करनेकी श्रावकोंने बहुत विनती की; परन्तु उन्होंने किसीकी बात नहीं मानी। वे यह कह रवाना हो गये कि,–गुरुदेवकी आज्ञा तत्काल ही रवाना होनेकी है, इसलिए मुझे रवाना होना ही चाहिए। बहुत जल्दी, सहसा, गुरुके पास जा पहुँचे। गुरुजीको बड़ा आश्चर्य हुआ कि,–वे इतने जल्दी कैसे जा पहुँचे। पूछनेपर उन्होंने उत्तर दिया कि,–जब आपकी आज्ञा तत्काल ही आनेकी थी तब एक क्षणके लिए भी मैं कहीं कैसे ठहर सकता था? विजयदानसूरि अपने शिष्यकी ऐसी भक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। पीछेसे जब उन्हें यह मालूम हुआ कि; हीरविजयसूरि दो दिनके उपवासका पारणा करने जितनी देर भी नहीं ठहरे, तबतो उनकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न रहा। गुरुकी आज्ञापालन करनेमें कितनी उत्सुकता! कितनी तत्परता! ऐसे शिष्य

गुरुकी पूर्ण कृपा प्राप्त करें और संसारमें सुयश–सौरभ फैलावें तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

हीरविजयसूरिमें उपर्युक्त प्रकारके उत्तमोत्तम गुण थे। वे उपदेशद्वारा हजारों मनुष्योंका कल्याण करनेका अश्रान्त प्रयत्न करते थे, इसलिए उनका जीवन तो वास्तविक अर्थमें सार्थक ही था। तो भी वे यह मानते थे–और यह सचभी है–कि, बाह्य प्रवृत्तियोंकी अपेक्षा आध्यात्मिक प्रवृत्ति ही विशेष लाभदायक होती है। आध्यात्मिक प्रवृत्तिद्वारा प्राप्त हार्दिक पवित्रता बाह्य प्रवृत्तिमें बहुत सहायता पहुँचाती है। हार्दिक पवित्रताविहीन मनुष्यका लाखों ग्रंथ लिखे जायँ इतना उपदेश भी निष्फल जाता है। हृदयकी पवित्रतावाले मनुष्यको बहुत बोलनेकी भी आवश्यकता नहीं होती है। उसके थोड़े ही शब्द मनुष्योंके हृदयोंपर अपना पूरा असर डालते हैं।

हीरविजयसूरिजीने जैसे उपदेशादि बाह्य प्रवृत्तियोंसे अपने जीवनको सार्थक किया था वैसे ही बाह्य प्रवृत्तिकी पूर्ण सहायक–कारण आध्यात्मिक प्रवृत्तिको भी वे भूले न थे। वे समय समयपर एकान्तमें बैठकर घंटों ध्यान करते थे। कईबार तपी हुई रेती पर बैठ 'आतापना' भी लिया करते थे। रात्रिके पिछले पहरमें–जो योगियोंके ध्यानके लिए अपूर्व गिना जाता है–उठकर ध्यान तो वे नियमित रूपसे किया ही करते थे। सूरिजीकी इस आध्यात्मिक प्रवृत्तिसे प्रायः लोग अज्ञान ही थे। और तो और उनके साथ रहनेवाले साधुओंमेंसे भी बहुत कम साधु इस बातको जानते थे।

एक दिनकी बात है। सूरिजी उस समय सीरोहीमें थे। वे हमेशाके नियमानुसार पिछली रातमें उठकर ध्यानमें खड़े थे। अवस्था और शारीरिक अशक्तिके कारण उनको चक्कर आ गया। वे धड़ामसे

जमीनपर गिरकर बेहोश हो गये। धमाका सुनकर साधु जागृत हुए। खोजनेसे पता चला कि, सूरिजी ही अशक्तिके कारण ध्यान करते हुए गिर गये हैं। थोड़ी देर बाद जब उन्हें चेत हुआ तब सोमविजयजीने विनीत भावसे कहाः—" महाराज! अब आप वृद्ध हुए हैं। जैनशासनोन्नतिकी चिन्तामें आपने अपना शरीर सुखा दिया है। शरीर बहुत ही कमजोर हो गया है। इस दशामें ऐसी आभ्यन्तरिक क्रियाओंसे दूर रहा जाय तो उत्तम है। आपने परमात्माके शासनके लिए जो कुछ किया है या जो कुछ करते हैं वह कुछ कम नहीं है। यदि आपके शरीरमें विशेष शक्ति रहेगी तो विशेष कार्य कर सकेंगे और हमारे समान अनेक जीवोंका उद्धार भी कर सकेंगे।"

सूरिजीने सोमविजयजी आदि साधुओंको समझाते हुए कहाः—" भाई! तुम जानते हो कि, शरीर क्षणभंगुर है। कब नष्ट हो जायगा इसकी खबर नहीं है। इस अंधेरी कोठड़ीमें अमूल्य रत्न भरे हुए हैं। उनमेंसे जितने अपने हाथ आवें उतने ले लेने चाहिए। शरीरकी दुर्जनताका विचार करनेसे मालूम होता है कि, उसको तुम कितना ही खिला पिलाकर हृष्टपुष्ट करो मगर, अन्तमें वह जुदा हो ही जायगा—यहींपर रह जायगा। तो फिर उसपर मोह किस लिए करना चाहिए। उससे तो बन सके उतना काम लेना ही अच्छा है। इस बातको भी ध्यानमें रखना चाहिए कि, हजारों लाखों मनुष्य वशमें किये जा सकते हैं; परन्तु आत्माको आधीन करना बहुत ही कठिन है। जब आत्मा आधीन हो जाता है तब सारा संसार आधीन हो जाता है। 'अप्पा-जीए सव्वं जीअं।' आत्माको जीता तो सबको जीता। जगतको जीतनेमें—मनुष्योंपर अपना प्रभाव डालनेमें भी आत्माको जीतनेकी आवश्यकता है। इस आवश्यकताको पूर्ण करनेके लिए अध्यात्म-

प्रवृत्ति बहुतही जरूरी है। आध्यात्मिक बल लाखों मनुष्योंके बलोंसे भी करोड गुणा अधिक है। जिस कामको लाखों मनुष्य नहीं कर सकते हैं उस कामको आध्यात्मिक बलवाला अकेला कर सकता है।"

सूरिजीके वचन सुनकर साधु स्तब्ध होगये; एक शब्द भी वे न बोल सके। उनको यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होने लगा कि;–जगत्में इतनी प्रतिष्ठा और पूजा प्राप्त करके भी सूरिजी इतने वैरागी हैं! साधुओंको सँभालनेमें, लोगोंको उपदेश देनेमें और समाजहितके कामोंमें सतत परिश्रम करनेपर भी बाह्य प्रवृत्तिसे वे इतने निर्लेप हैं!

यहि अध्यात्म है। मनको वशमें करनेकी इच्छासे–आत्माको जीतनेके इरादेसे जो अध्यात्म–प्रवृत्ति करते हैं वे आध्यात्मिक प्रवृत्तिका आडंबर नहीं करते। जो सच्चे अध्यात्म–प्रिय हैं वे कभी भी आडंबर प्रिय नहीं होते। जहाँ आडंबर प्रियता है वहाँ सच्चा अध्यात्म नहीं रहता। आध्यात्मिकोंमें इन्द्रियदमन, शारीरिक मूर्च्छाका त्याग और वैराग्य–ये गुण होनेही चाहिएँ। इन गुणोंके विना अध्यात्मज्ञानमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। वर्तमानमें कुछ शुष्क आध्यात्मिक अध्यात्मविद् होनेका दावा करते फिरते हैं; मगर देखने जाँयगे तो किसीमें उपर्युक्त गुणोंमेंसे थोड़ासा अंश भी नहीं मिलेगा। ऐसोंको अध्यात्मिविद् कहना या मानना ठगोंको उत्साहित करना है।

हीरविजयसूरिके जीवनकी सार्थकताके संबंधमें अत्र विशेष कुछ कहना नहीं है। आध्यात्मिक प्रवृत्तिसे और उपदेशादि बाह्यप्रवृत्तिसे–दोनों तरहसे उनका जीवन जनताके लिए आशीर्वादरूप था। कर्मोंको क्षय करनेके लिए उन्होंने तपस्या भी बहुत की थी। संक्षेपमें यह है कि; जैसे वे एक उपदेशक थे वैसे ही तपस्वी भी थे। स्वभावतः

उनमें त्यागवृत्ति विशेष थी । सदैव वे गिनतीकी बारह चीजें ही काममें लाते थे । छट्ठ, अट्ठम, उपवास, आंबिल, नीवि और एकासनादि तपस्याएँ तो वे बातकी बातमें करलिया करते थे । ऋषभदास कविके कथनानुसार उन्होंने जो तपस्याएँ अपने जीवनमें की थीं वे इस प्रकार हैं:—

" इकासी तेले, सवा दो सौ बेले, छत्तीस सौ उपवास, दो हजार आंबिल और दो हजार नीवियाँ की थीं । इनके सिवाय उन्होंने वीस स्थानककी आराधना वीस बार की थी; उसमें उन्होंने चारसौ चौथ और चारसौ आंबिल किये थे । भिन्न भिन्न भी चारसौ चौथ किये थे । सूरिमंत्रकी आराधना करनेके लिए वे तीन महीनेतक ध्यानमें रहे थे। तीन महीने उन्होंने एकासन, आंबिल, नीवि और उपवासादिहीमें बिताये थे। ज्ञानकी आराधना करनेके लिए भी उन्होंने बाईस महीने तक तपस्या की थी । गुरुतपमें भी उन्होंने तेरह महीने बेले, तेले, उपवास, आंबिल और नीवि आदिक तपस्याओंमें बिताये थे । इसी तरह उन्होंने ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी आराधनाके ग्यारह महीनोंका और बारह प्रतिमाओंका भी तप किया था । " आदि

आत्म–शक्तियोंका विकास यूँहीं नहीं होता । यदि खानेपीने और इन्द्रियोंके विषयोंहीमें लुब्ध रहनेसे आत्मशक्तियोंका विकास होता तो क्या संसारका हरेक आदमी नहीं कर लेता ? आत्मशक्तिका विकास करनेमें–लाखों मनुष्योंपर प्रभाव डालनेकी शक्ति प्राप्त करनेमें अत्यन्त परिश्रम करना पड़ता है । महावीरदेव सम्पूर्ण आत्मशक्तिको कब विकसित कर सके थे ? जब उन्होंने बारह बरसतक लगातार तपस्या की थी तब । इन्द्रिय–विषयासक्ति मिटाये बिना, दूसरे शब्दोंमें कहें तो इच्छाका निरोध किये बिना तपस्या नहीं होती । तपस्याके बिना कर्मोंका क्षय होना असंभव है । हीरविजयसूरिने जगत्पर उपकार

करनेका महान् प्रयत्न करते हुए भी, आत्मशक्तिके विकासार्थ भरसक तपस्याकी थी और जीवनको सार्थक बनाया था ।

सूरिजीकी विद्वत्ताके विषयमें भी यहाँ कुछ कहना आवश्यक है। वे साधारण विद्वान् नहीं थे। यद्यपि उनके बनाये हुए 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका' और 'अन्तरिक्षपार्श्वनाथस्तव' आदि बहुत ही थोड़े ग्रंथ उपलब्ध हैं तथापि उन्हें देखने और उनके किये हुए कार्योंपर दृष्टिपात करनेपर उनकी असाधारण विद्वत्ताके विषयमें लेशमात्रभी शंका नहीं रहती है। उस समयके बड़े बड़े जैनेतर विद्वानोंके साथ वाद करनेमें तथा आलिमफाजिल सूबेदारोंपर और खास करके समस्त धर्मोंका तत्त्व-शोधनेमें अपनी समस्त जिंदगी बिताने वाले अकबर बादशाहपर धार्मिक प्रभाव डालनेमें सफलता प्राप्त करना, साधारण ज्ञानवालेका काम नहीं हो सकता, यह स्पष्ट है। अकबरने अपनी धर्मसभाके पाँच वर्गोंमेंसे पहले वर्गमें उन्हीं लोगोंको दाखिल किया था कि, जो असाधारण विद्वान् थे। उसी प्रथम वर्गके सूरिजी सभासद थे। इस बातका पहले उल्लेख हो चुका है।

इन सारी बातोंसे यह बात सहज ही समझमें आ सकती है कि, हीरविजयसूरि प्रखर पंडित थे।

अब उनके जीवनके संबंधमें कहने योग्य कोई भी बात नहीं रही। ज्ञान, ध्यान, तपस्या, दया, दाक्षिण्य, लोकोपकार और जीवदयाका प्रचार आदि सब बातोंसे अपने ग्रंथनायक हीरविजयसूरिने निज जीवनको सार्थक किया था। इस प्रकार जीवनको जो सार्थक कर लेते हैं उन्हें मृत्युका भय नहीं रहता। उनको मृत्युसे इतनी ही प्रसन्नता होती ही जितनी प्रसन्नता मनुष्यको झोंपड़ीसे महलमें जानेमें होती है।

प्रकरण बारहवाँ।

निर्वाण।

गत प्रकरणके अन्तमें यह कहा जा चुका है कि, सूरिजी वि. सं० १६५१ का चातुर्मास समाप्त-कर जब ऊनासे विहार करने लगे थे तब उनका शरीर अस्वस्थ था, इसलिए संघने उन्हें विहार नहीं करने दिया। विवश सूरिजीको वहीं रहना पड़ा।

जिस रोगके कारण सूरिजीने अपना विहार बंद रक्खा था वह रोग विहार बंद रखनेपरभी शान्त न हुआ। प्रति दिन रोग बढ़ता ही गया। धीरे धीरे पैरों पर भी सूजन आगई। श्रावकोंने सब तरहकी औषधियोंका प्रबंध करना चाहा; परन्तु सूरिजीने उन्हें रोक दिया। उन्होंने कहाः—" मेरे लिए दवाका प्रबंध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा धर्म है कि, मैं उदयमें आये हुए कर्मोंको समतापूर्वक भोग लूँ। रोगोंसे भरे हुए विनश्वर शरीरकी रक्षाके लिए अनेक प्रकारके पापपूर्ण कार्य करना सर्वथा अनुचित है।"

विधि—अपवादको जाननेवाले श्रावकोंने शास्त्रीय प्रमाणोंद्वारा यह बतानेकी कोशिश की कि, आपके समान शासनप्रभावक गच्छ-नायक सूरीश्वरको अपवादरूपसे, रोगनिवारणार्थ यदि कुछ दोषका सेवन करना पड़े तो वह भी शास्त्रोक्त ही है। मगर सूरिजीने उनकी बात नहीं मानी। सूरिजी इस अपवादमार्गसे अनभिज्ञ नहीं थे। वे शास्त्रोंके पारगामी थे; गीतार्थ थे और महान् अनुभवी थे। इसलिए

वे इस बातसे अपरिचित नहीं थे, तो भी वे निषेध करते थे। कारण–उनको यह निश्चय हो गया था कि, मेरी आयु अब बहुत ही थोड़ी है। अब मुझे बाह्य उपचार और औषधकी अपेक्षा धर्मौषधका सेवन ही विशेष रूपसे करना चाहिए। अल्प अवशेष जीवनके लिए ऐसी आरंभ–समारंभवाली औषधें करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसी कारणसे वे श्रावकोंको निषेध करते रहे। श्रावकोंको बड़ा दुःख हुआ। वे सभी उपवास करके बैठ गये। उन्होंने कहा,–**सूरिजी** यदि दवा नहीं करने देंगे तो हम भोजन नहीं करेंगे। **ऋषभदास** कवि तो यहाँ तक लिखता है कि, कई स्त्रियोंने उस समय तकके लिए अपने बच्चों तकको धवाना छोड़ दिया जब तककी **सूरिजी** उपचार करानेके लिए राजी न हों। सारे ऊनामें हाहाकार मच गया। **सूरिजी**के शिष्योंको भी बहुत कष्ट हुआ। अन्तमें **सोमविजयजीने** **सूरिजी**से निवेदन किया:–"महाराज! ऐसा करनेसे श्रावकोंके मन स्थिर नहीं रहेंगे। जैसे आप दवा लेनेसे इन्कार करते हैं वैसे ही श्रावक भी अन्नजल ग्रहण नहीं करनेकी हठ पकड़के बैठे हैं। इसलिए संघका मान रखनेके लिए भी आपको औषध लेनेकी स्वीकारता देनी चाहिए। यह बात तो आपसे छिपी हुई है ही नहीं कि, पहिलेके ऋषियोंने भी रोगके उपस्थित होनेपर दवा ग्रहण की है। अतः आपको भी कुछ छूट रखनी ही चाहिए। शुद्ध और थोड़ी दवा ही ग्रहण करनेकी हाँ कहिए।"

सोमविजयजीके विशेष आग्रहसे अपनी इच्छाके विरुद्ध भी सूरिजीने दवा लेनेकी स्वीकारता दी। संघ बहुत प्रसन्न हुआ। स्त्रियाँ बच्चोंको धवाने लगीं। सुदक्ष वैद्य औषधोपचार करने लगा। प्रतिदिन व्याधिमें भी कुछ न्यूनता होने लगी। तो भी शारीरिक अवस्था सुखसे ज्ञान, ध्यान, क्रिया करने योग्य न हुई।

हीरविजयसूरिके प्रधान शिष्य और उनकी गद्दीके अधिकारी **विजयसेनसूरि** उस समय **अकबर** बादशाहके पास **लाहौरमें** थे। **सूरिजीको** गच्छकी बहुत चिन्ता रहा करती थी। उनके हृदयमें ये ही विचार बार बार आया करते थे कि,—**विजयसेनसूरि** यहाँ नहीं हैं। वे बहुत दूर हैं। यदि पासमें होते तो गच्छ संबंधी सारी बातें उन्हें बता देता। एक दिन उन्होंने अपने पासके समस्त साधुओंको एकत्रित करके कहा कि, "जैसे हो सके वैसे जल्दी **विजयसेनसूरिको** यहाँ बुलानेका प्रयत्न करो।"

साधुओंने विचार करके और किसी आदमीको न भेजकर **धनविजयजीहीको** रवाना किया। बड़ी बड़ी मंजिलें तै करके वे बहुत जल्दी **लाहौर** पहुँचे। उन्होंने **विजयसेनसूरिसे** कहा कि,—" सूरिजी विशेष रूपसे रुग्ण हैं और आपको बहुत स्मरण किया करते हैं।" इस समाचारको सुनकर **विजयसेनसूरिको** बड़ा दुःख हुआ। उनका शरीर शिथिल पड़ गया। वे थोड़ी देरमें अपने आपको सँभालकर बादशाहके पास गये और **सूरिजीकी** रुग्णताके समाचार सुनाकर बोले कि,—"महाराजने मुझे शीघ्र ही बुलाया है"। उस समय बादशाह उन्हें अपने पास ही रहनेका आग्रह न कर सका। उसने **विजयसेनसूरिजीको** गुजरात जानेकी अनुमति दे दी। अपनी ओरसे सूरिजीको प्रणाम करनेके लिए भी कहा।

'विजयप्रशस्तिमहाकाव्य' के कर्ताका मत है कि, **विजयसेनसूरि** जब **अकबर** बादशाहके पास **नंदिविजयजीको** रखकर गुजरातमें आते थे तब महिमनगरमें उन्हें हीरविजयसूरिकी बीमारीके समाचार मिले थे।

चाहे कुछ भी हो मगर इतनी बात तो निर्विवाद है कि,

सूरिजीकी रुग्णताके समय विजयसेनसूरिजी उनके पास नहीं थे। इन्हें उनकी रुग्णताके समाचार दिये गये थे।

इधर जैसे जैसे हीरविजयसूरिकी रुग्णता वढ़ती गई वैसे ही वैसे विजयसेनसूरिकी अविद्यमानताकी चिन्ता भी वढ़ती गई। उनके हृदयमें वारवार यही विचार आने लगे कि,—वे अवतक क्यों नहीं आये? यदि इस समय वे मेरे पास होते तो अन्तिम अनशनादि क्रियाओंमें मुझे वड़ा उल्लास होता।"

वहुत विचार और यथासाध्य चेष्टा करने पर भी मनुष्य चल तो उतना ही सकता है जितनी उसम शक्ति होती है। मनुष्योंके पंख नहीं होते कि, वे झटसे उड़कर इच्छित स्थानपर पहुँच जायँ। इसी तरह विजयसेनसूरि साधु होनेसे यह भी नहीं कर सकते थे कि, वे वादशाहके किसी पवनवेगसे चलनेवाले घोड़ेपर सवार होकर लाहौरसे तत्काल ही ऊना जा पहुँचते।

हीरविजयसूरि जितनी आतुरतासे विजयसेनसूरिके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे उतनी ही वल्कि उससे भी विशेष आतुरता विजयसेनसूरिको हीरविजयसूरिकी सेवामें पहुँचनेके लिए हो रही थी। मगर हो क्या सकता था? वहुत दिन वीत जानेपर भी जव विजयसेनसूरि नहीं पहुँचे तव एक दिन हीरविजयसूरिने सव साधुओंको अपने पास बुलाया और कहाः—

"विजयसेनसूरि अवतक नहीं आये। मैं चाहता था कि, वे अन्तिम समयमें मुझसे मिल लेते तो समाज संवंधी कई वातें मैं उनसे कह जाता। अस्तु! अव मुझे अपनी आयु वहुत ही अल्प मालूम होती है, इसलिए तुम्हारी सवकी सम्मति हो तो मैं आत्मकार्य साधनका प्रयत्न करूँ।"

हीरविजयसूरिके वचन सुनकर साधुओंके हृदयमें बड़ा आघात लगा । **सोमविजयजी**ने कहाः—" महाराज ! आप लेशमात्र भी चिन्ता न करें । आपने तो ऐसे विषमकालमें भी आत्मसाधन करनेमें कोई कमी नहीं की है । त्याग, वैराग्य, तपस्या, ध्यान और क्षान्त्यादि गुणोंद्वारा तथा असंख्य जीवोंको अभयदान देने और दिलानेद्वारा आपने तो अपने जीवनको सार्थक कर ही लिया है । निश्चित रहिए । आप शीघ्र ही नीरोग हो जायँगे । **विजयसेनसूरि** भी शीघ्र ही आपकी सेवामें उपस्थित हो जायगे । "

सूरिजी बोलेः—"तुम कहते हो सो ठीक है । मगर चौमासा शुरू होजानेपर भी **विजयसेनसूरि** अबतक नहीं आये । न मालूम वे कब आयँगे ? "

सोमवियजीने पुनः कहाः—"महाराज अब आप बहुत जल्दी स्वास्थ्य लाभ करेंगे । **विजयसेनसूरि** भी शीघ्र ही आयँगे । "

इस तरह करते करते पर्युषणा पर्व आ पहुँचा । यह बात बड़े आश्चर्य की है कि, इतनी रुग्ण दशामें भी पर्युषणामें कल्पसूत्रका व्याख्यान **हीरविजयसूरि**हीने बाँचा था । व्याख्यान बाँचनेके श्रमसे उनका शरीर विशेष शिथिल हो गया । पर्युषणा समाप्त हुए । सूरिजीको अपने शरीरमें विशेष शिथिलता मालूम हुई । तब उन्होंने भादवा सुदी १० (वि० सं० १६५२) के दिन मध्यरात्रिके समय अपने साथके **विमलहर्ष** उपाध्याय आदि सारे साधुओंको एकत्रित कर कहाः—

" मुनिवरो ! मैंने अब अपने जीवनकी आशा छोड़ दी है । जो जन्मता है वह मरता ही है । जल्दी या देरमें सबको यह मार्ग लेना ही पड़ता है । तीर्थंकर भी इस अटल सिद्धान्तसे छूट नहीं सके

हैं। आयुष्यको क्षणमात्र बढ़ानेके लिए भी कोई समर्थ नहीं हुआ है। इसलिए तुम लेशमात्र भी दुखी न होना। विजयसेनसूरि यदि यहाँ होते तो मैं तुम सबकी उन्हें उचित भोलामन देता। कल्याणविजय उपाध्याय भी अन्तमें न मिले। अस्तु। अब मैं जो कुछ तुम्हें कहना चाहता हूँ वह यह है कि,तुम किसी भी तरहकी चिन्ता न करना। तुम्हारी सारी आशा विजयसेनसूरि पूर्ण करेंगे। वे साहसी, सत्यवादी और शासनके पूर्ण प्रेमी हैं। मेरी यह सूचना है कि, तुम जिस तरह मुझे मानते हो उसी तरह उनको भी मानना और उनकी सेवा करना। वे भी पुत्रकी तरह तुम्हारा पालन करेंगे। तुम सभी मेलसे रहना और जिससे शासनकी शोभा बढ़े वही काम करना। विमलहर्ष उपाध्याय और सोमविजयजी! तुमने मुझे मुख्यतया बहुत सन्तुष्ट किया है। तुम्हारे कार्योंसे मुझको बहुत प्रसन्नता हुई है। मैं तुमसे भी अनुरोध करता हूँ कि, तुम शासनकी शोभा बढ़ाना और सारा समुदाय सदा एकतासे रहे ऐसे प्रयत्न करते रहना"।

साधुओंको उपर्युक्त प्रकारका उपदेश देकर सूरिजी अपने पापोंकी आलोचना और समस्त जीवोंसे क्षमायाचना करने लगे। जिस समय वे साधुओंसे क्षमा माँगने लगे उस समय साधुओंके हृदय भर आये। आँखोंसे आँसू गिरने लगे और गला रुक गया। सोमविजयजी भराई हुई आवाजमें बोले:—"गुरुदेव! आप इन बालकोंसे क्यों क्षमा माँगते हैं? आपने तो हमें प्रियपुत्रोंकी तरह पाला है; पुत्रोंसे अधिक समझकर आपने हमारी सार सँभाल ली है और अज्ञानरूपी अंधकारसे निकालकर हमें ज्ञानके प्रकाशमें ला बिठाया है। आपके हमपर अनन्त उपकार हैं। आप—पूज्य हमसे क्षमा माँगते हैं इससे हमारे हृदयमें व्यथा होती है। हम आपके अज्ञानी—अविवेकी बालक हैं। पद पदपर हमसे आपका अपराध हुआ होगा। समय

समयपर हमारे लिए आपका हृदय दुखा होगा। उसके लिए हम आपसे क्षमा माँगते हैं। प्रभो! आप तो गुणके सागर हैं। आपने जो कुछ किया होगा वह हमारे भलेके लिए ही किया होगा। मगर हमने उसे न समझकर आपके विपरीत कुछ विचार किया होगा। हमारे उस अपराधको क्षमा कीजिए। गुरुदेव! विशेष क्या कहें! हम अज्ञानी और अविवेकी हैं। अतः मन, वचन और कायासे आपका जो कुछ अविनय, अविवेक और असातना हुए हों उनके लिए हमें क्षमा करें।"

सूरिजीने कहाः—"मुनिवरो! तुम्हारा कथन सत्य है; परन्तु मुझे भी तुमसे क्षमा माँगनी ही चाहिए। यह मेरा आचार है। साथमें रहनेसे कई बार कुछ कहना भी पड़ता है और उससे सामनेवालेका दिल दुखता है। यह स्वाभाविक है। इसलिए मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ।"

इस प्रकार समस्त जीवोंसे क्षमा माँगनेके बाद सूरिजीने पापकी आलोचना की और अरिहंत, सिद्ध, साधु, और धर्म इन चार शरणोंका आश्रय लिया।

सूरिजी समस्त बातोंकी तरफसे अपने चित्तको हटा कर अपने जीवनमें किये हुए शुभकार्यों—विनय, वैयावच्च, गुरुभक्ति, उपदेश, तीर्थयात्रा आदिकी—अनुमोदना करने लगे। ढंढण, दृढप्रहारी, अरणिक, सनत्कुमार, खंधककुमार, कूरगडु, भरत, बाहुबली, बलिभद्र, अभयकुमार, शालिभद्र, मेघकुमार, और धन्ना आदि पूर्व ऋषियोंकी तपस्या और उनके कष्ट सहन करनेकी शक्तिका स्मरण करने लगे। तत्पश्चात् नवकार मंत्रका ध्यानकर उन्होंने दश प्रकारकी आराधना की।

कुछ देरके लिए सूरिजी मौन रहे। उनके चहरेसे मालूम

होता था कि, वे किसी गंभीर ध्यानसागरमें निमग्न हैं। उन्हें घेरके बैठे हुए मुनि टगर टगर उनके मुखकी ओर देख रहे हैं, और उत्कंठासे गुरुदेवके वचन सुननेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सैकड़ों श्रावक श्राविकाएँ आते हैं और सूरिजीकी पूजा कर उदास मुख बैठ जाते हैं।

भादवा सुदी ११ (वि० सं० १६५२) का दिन था। संध्या समय निकट आ रहा था। सूरिजी अब तक ध्यानमें मग्न थे। साधु उनके मुखारविंदको देख रहे थे। अकस्मात् उन्होंने आँखें खोलीं। प्रतिक्रमणका समय जाना। सब साधुओंको अपने पास बिठा-कर प्रतिक्रमण कराया। प्रतिक्रमण पूर्ण होनेके बाद सूरिजीने अन्तिम शब्दोच्चार करते हुए कहाः—

"भाइयो! अब मैं अपने कार्यमें लीन होता हूँ। तुमने हिम्मत नहीं हारना। धर्मकार्य करनेमें वीरता दिखाना।" फिर वे आत्म-चिन्तवनमें लीन हुए—"मेरा कोई नहीं है; मैं किसीका नहीं हूँ; मेरा आत्मा ज्ञान-दर्शन चारित्रमय है; सच्चिदानंदमय है, शाश्वत है; मैं शाश्वत सुखका मालिक होऊँ; मैं आत्माके सिवाय अन्य सब भावोंका त्याग करता हूँ; आहार, उपाधि और इस तुच्छ शरीरका भी त्याग करता हूँ।" इत्यादि वाक्योच्चार कर सूरिजी चार शरणोंका स्मरण करने लगे। उस समय सूरिजी पद्मासनमें विराजमान हुए। हाथमें माला लेकर जाप करने लगे। चारमालाएँ समाप्तकर पाँचवीं फेरना चाहते थे, इतनेहीमें माला हाथसे गिर पड़ी। लोगोंमें हाहाकार मच गया। जगत्का हीरा मानवी देहको छोड़कर चला गया। जिस समय सुरलोकमें हीरका स्वागत हुआ; सुरघंटका नाद हुआ। उसी समय भारतवर्षको गुरुविरहरूपी भयंकर बादलोंने आच्छादित कर लिया।

× × × ×

हीरविजयसूरिका निर्वाण होते ही सर्वत्र हाहाकार मच गया। ऊनाके संघने यह दुःखदायी समाचार गाँव-गाँवमें पहुँचानेके लिए कासीद रवाना किये। जिस गाँवमें यह समाचार पहुँचा उसीमें शोक छागया। गाँवों और नगरोंमें हड़तालें पड़ने लगीं। हिन्दु, मुसलमान और अन्यान्य धर्मवालोंको इस समाचारसे दुःख हुआ। जिन पुरुषरत्नोंकी विद्यमानतासे भारतवर्षकी राष्ट्रीय और धार्मिक स्थितिमें बहुतसे सुधार हुए थे; जिनके कारण भारतवासी कुछ सुखके दिन देखने लगे थे उनमेंसे एक रत्न चल बसा। उसके चले जानेसे दुःख किसे न होता? ऐसी कमीसे-जो पूरी नहीं हो सकती थी-किसके हृदयपर आघात न लगा होगा?

दूसरी तरफ सूरिजीकी अन्त्येष्ठी कियाके लिए ऊना और दीवका संघ तैयारी करने लगा। उन्होंने तेरह खंडका एक विमान बनवाया। वह कथिया मखमल और मशरुसे मढा गया था। मोतीके झूमकों, चाँदीके घंटों, स्वर्णकी घूघरियों, छत्र, चामर, तोरण और चारों तरफ अनेक प्रकारकी फिरती हुई पुतलियोंसे वह ऐसा सुंदर सजाया गया था कि, देखनेवाले उसको एक देवविमान ही समझने लगे। कहा जाता है कि, उसको बनानेमें दो हजार लाहरियाँ खर्च हुई थीं। उनके अलावा दो ढाई हजार लाहरियाँ दूसरी खर्च हुई थीं।

केशर, चंदन और चूआसे सूरिजीके शरीर पर लेप किया गया। उसके बाद शव पालकीमें रक्खा गया। घंट नाद हुआ। बाजे बजे। प्रतिष्ठित पुरुषोंने पालकीको उठाया। जय जय नंदा! जय जय भद्दा! के शब्दोंसे आकाशमंडल गूँज उठा। हजारों लोग अपनी श्रद्धाके अनुसार रुपये पैसे और बादाम उछालने लगे। मार्गमें पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। आबाल वृद्ध नरनारी अपने मकानोंकी छतोंपर और झरोखोंपर चढ़ चढ़कर भावपूर्वक वंदना करने लगे। पालकीके पीछे

हजारों आदमी सिर झुकाए चले जा रहे थे। गाँवके बड़े बड़े मार्गोंसे निकलकर पालकी आंवावाड़ीमें पहुँची। वहाँ निर्जीव भूमिमें उत्तम जातिके चंदनकी चिता रची गई। सूरिजीका शव उसमें रखा गया। चितामें आग लगानेका कोई साहस नहीं करता था। सबकी आँखोंमें फिरसे पानी भर आया। सूरिजीके मुखकी तरफ़ देखते हुए सभी स्थिर होकर खड़े रहे। कुछ लोग गद्गद् कंठसे बोले:—" हे गुरुदेव! आप हमें मधुर देशना दीजिए! हे हीर! आप धर्मके विचार प्रकट कीजिए! देव! आपके भक्त रुदन कर रहे हैं तो भी आप बोलते क्यों नहीं हैं? क्यों आप अपना पवित्र हाथ हमारे सिर पर रख कर हमें पवित्र नहीं बनाते हैं? आप हमें रोते छोड़कर कहाँ जाते हैं? हम किसके दर्शन करके पवित्र होंगे? आपके सिवा हमारे संदेहोंको कौन दूर करेगा? हे गुरु, आपकी मधुरवाणी अब हम कहाँ सुनेंगे? हमारे समान संसारमें फँसे हुए प्राणियोंका उद्धार कौन करेगा?"

अन्तमें हृदय कड़ाकर लोगोंने चितामें अग्नि लगाई। चितामें पन्द्रह मन चंदन, तीन मन अगर, तीन सेर कपूर, दो सेर कस्तूरी, तीन सेर केसर और पाँच सेर चूआ डाला गया था।

सूरिजीका मानवी शरीर भस्मसात् हो गया। केवल यशः-शरीर संसारमें रह गया। सूरिजीके शरीर संस्कारमें सब मिलाकर सात हजार ल्याहरियाँ खर्च हुई थीं। समुद्रके किनारे अमारी पाली गई। समुद्रमें कोई जाल न डाले इस बातका प्रबंध किया गया। गुरु—विरहसे दुःखी साधुओंने तीन तीन दिन तक उपवास किये। अग्नि संस्कार करके श्रावकोंने मंदिरमें जाकर देववंदन किया। और फिर साधुओंका वैराग्यपूर्ण उपदेश सुन सब अपने अपने घर गये।

जिस बागीचेमें हीरविजयसूरिका अग्नि संस्कार हुआ था वह

बागीचा और उसके आसपासकी बाईस बीघे* जमीन अकबर बादशाहने जैनोंको देदी थी। इसी बागीचेमें—जहाँ सूरिजीका अग्नि संस्कार हुआ था—दीवकी लाड़कीबाईने एक स्तूप बनाकर उस पर सूरिजीकी पादुका स्थापन की थी।+

× × × ×

हीरविजयसूरिके निर्वाणके पन्द्रह दिन पीछे, कल्याणविजयजी उपाध्याय ऊना पहुँचे थे। उन्हें सूरिजीके स्वर्गवासके समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ। सूरिजीके अद्वितीय गुण उन्हें बार बार याद आने लगे और जैसे जैसे वे गुण याद आते वैसेही वैसे उनका हृदय भर आता और आँखोंसे पानी निकल पड़ता। कल्याणविजयजीको श्रावकों और साधुओंने अनेक प्रकारसे समझाकर शान्त किया। फिर उन्होंने अग्नि संस्कारवाले स्थानपर जाकर स्तूपके दर्शन किये।

दूसरी तरफ़ लाहोरसे रवाना होकर विजयसेनसूरि हीरविजयसूरिके निर्वाणवाले दिन कहाँतक पहुँचे थे इस बातकी खबर न थी। विजयसेनसूरिभी विश्राम लिए विना, इस इच्छासे ऊनाकी तरफ बढ़े आरहे थे कि, जल्दी जाकर गुरुके चरणोंमें मस्तक रक्खूँ और अपने आपको पावन करूँ। मगर प्रबल भावीके सामने किसीका क्या जोर चल सकता है? विजयसेनसूरिके भाग्यमें गुरुके अन्तिम

* देखो 'हीरसौभाग्य काव्य' सर्ग १७, श्लोक १९५, पृष्ठ ९०९

+ यह पादुका अब भी मौजूद है। उस पर जो लेख है उससे विदित होता है कि, इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १६५२ के कार्तिक वदि ५ बुधवारके दिन विजयसेनसूरिने की थी। लेखमें सूरिजीके निर्वाण की तिथि (भादवा सुदी ११) भी दी गई है। हीरविजयसूरिजीने जो बड़े बड़े कार्य किये थे उनका उल्लेख भी इसमें है। यह लेख 'श्रीअजारापार्श्वनाथजी पंचतीर्थी महात्म्य और जीर्णोद्धारका द्वितीय रीपोर्ट नामकी पुस्तकके २४ वें पृष्ठमें प्रकाशित हुआ है।

दर्शन नहीं लिखे थे इसलिए उनके बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें दर्शन नहीं हुए। भादवा वदि ६ के दिन **विजयसेनसूरि** **पाटणमें** मंदिरमें पहुँचे उस समय **पाटणके** श्रावक **हीरविजयसूरिके** निर्वाण समाचार सुनकर देववंदन कर रहे थे। **विजयसेनसूरिने** इस शुभाशाको लिए हुए **पाटणमें** प्रवेश किया था कि, **पाटणमें** मुझे गुरुजीके स्वास्थ्यके समाचार मिलेंगे; उनको तो वहाँ पहुँचनेपर विघातक समाचार मिले। **सूरिजीकी** निर्वाणकी बात सुनकर उनके हृदयमें एक आघात लगा। थोड़ी देर निस्तब्ध होकर वे खड़े रहे। अन्तमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद जब उनकी मूर्च्छा गई तब वे बेचैन होकर इधर उधर घूमने लगे। कभी बैठ जाते, कभी उठ खड़े होते बड़बड़ाते,–" अरे यह क्या हुआ? मैं ऊना जाकर किसको वाँदूँगा? अब वहाँ क्या है? गुरुदेव मुझे दर्शन देनेको भी न ठहरे?" अनेक प्रकारके संकल्प विकल्प उनके मनमें उठने लगे। वे न आहार करते थे न जल पीते थे; न उपदेश देते थे न किसीके साथ बातचीत ही करते थे। जब कभी कोई उन्हें देखता वे गंभीर विचारमें निमग्न दिखाई देते। जब कभी बोलते तो यही बोलते "अरे हीर-हंस मानसरोवरसे उड़ गया! प्रभो! हमको बीचमें छोड़कर कहाँ चले गये? अब हमारी क्या दशा होगी? हम किसकी प्रेमछायामें रहेंगे? जैनशासनका क्या होगा?" इसी तरह तीन दिन निकल गये।

चौथे दिन **पाटणका** संघ एकत्रित हुआ। उसने **विजयसेनसूरिको** अनेक तरहसे समझाया; आश्वासन दिया। इससे उनका चित्त कुछ स्थिर हुआ। उन्होंने अपने हृदयको मजबूत बनाया; धैर्य धारण किया। उस दिन उन्होंने कुछ आहारपानी लिया। उसके बाद वे अपने साथके मुनियों सहित ऊना पहुँचे। वहाँ **सूरिजीकी** पादुकाकी भाव सहित वंदना की।

यही विजयसेनसूरि, हीरविजयसूरिके पाटपर बैठे। हीरविजयसूरिकी तरह इन्होंने भी जैनधर्मकी विजयवैजयन्ती फराई।

× × × ×

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले हीरविजयसूरिके निर्वाणके समय एक आश्चर्यकारक घटना हुई थी उसका उल्लेख करना भी आवश्यक है।

कवि ऋषभदास लिखता है कि,--जिस दिन हीरविजयसूरिका निर्वाण हुआ था उस दिन रातके समय, जहाँ सूरिजीका अग्नि संस्कार हुआ था वहाँ पासके खेतमें रहनेवाले एक नागर बनिएने नाचरंग होते देखा था। सवेरे ही गाँवमें जाकर उसने लोगोंको यह बात सुनाई। लोगोंके झुंडके झुंड बगीचेमें आने लगे। वहाँ उन्हें नाचरंग तो कुछ नहीं दिखाई दिया; मगर आमके पेडोंपर फल देख पड़े। किसीपर मौरके साथ छोटे छोटे आम थे; किसी पर जाली पडे हुए आम थे और किसीपर परिपक्व हो रहे थे। कई ऐसे आमके पेड़ भी फलोंसे भरे हुए थे जिनपर कभी फल आता ही न था और जो वंध्य आमके नामसे प्रसिद्ध थे। भादवेका महीना और आम! लोगोंके आश्चर्यका कोई ठिकाना न रहा। एक दिन पहले जिन वृक्षोंपर मौरका भी ठिकाना न था दूसरे दिन उन्हीं वृक्षोंको फलोंसे लदा देखकर किसे आश्चर्य न होगा?

श्रावकोंने कुछ आम उतार लिये और उनमेंसे अहमदाबाद, खम्भात और पाटण आदि शहरोंमें थोडे थोडे भेजे। अकबर और अबुलफजलके पास भी उनमेंसे आम भेजे गये। जिन लोगोंने वे आम देखे उनको अत्यंत आश्चर्य और आनंद हुआ। सम्राट्को भी सूरिजीके पुण्य बाहुल्यपर अभिमान हुआ। सूरिजीके

प्रति उसकी भक्ति अनेक गुनी बढ़ गई। उसको और अबुलफज-लको सूरिजीके स्वर्गवासका बहुत दुःख हुआ। वह अनेक प्रकारसे सूरिजीकी स्तुति करने लगा। कवि ऋषभदासने बादशाहके मुखसे सूरिजीकी स्तुतिके जो शब्द कहलाये हैं उन्हींके भावके साथ हम इस प्रकरणको समाप्त करते हैं:—

" उन जगद्गुरुका जीवन धन्य है जिन्होंने सारी जिन्दगी दूसरोंका उपकार किया और जिनके मरने पर (असमयमें) आम्रफले और जो स्वर्गमें जाकर देवता बने ॥ ५ ॥

× × × × इस जमानेमें उनके जैसा कोई सच्चा फकीर न रहा × × × × ॥ ६ ॥

जो सच्ची कमाई करता है वही संसारसे पार होता है। जिसका मन पवित्र नहीं होता है उसका मनुष्यभव व्यर्थ जाता है ॥ ७ ॥

प्रकरण तेरहवाँ।

सम्राट्का शेषजीवन।

अपने प्रथम नायक हीरविजयसूरिके संबंधमें बहुत कुछ कहा जा चुका है। अब अपने दूसरे नायक सम्राट् अकबरके अवशिष्ट जीवन पर कुछ प्रकाश डाला जायगा। यद्यपि अकबरके गुण-अवगुणके संबंधमें तीसरे प्रकरणमें और उसके किये हुए जीवदया संबंधी कार्योंके विषयमें पाँचवें प्रकरणमें उल्लेख हो चुका है तथापि अकबरके जीवनसे संबंध रखनेवाली अन्यान्य बातोंकी उपेक्षाकर यदि पुस्तक समाप्त कर दी जाय तो उतने अंशोंमें न्यूनता रह जाय। इसलिए इस प्रकरणमें अकबरके जीवनकी अवशिष्ट बातोंका उल्लेख किया जायगा।

यह प्रसिद्ध बात है कि अकबर बचपनहीसे तेजस्वी और चंचल स्वभावका था। तीसरे प्रकरणमें इस विषयमें उल्लेख हो चुका है। यद्यपि उसको अक्षरज्ञान प्राप्त करनेकी रुचि नहीं थी, तथापि नई नई बातें जानने और विविध कलाएँ सीखनेके लिए वह इतना आतुर रहता था, जितना अफीमची वक्तपर अफीमके लिए रहता है। बाल्यावस्थाहीसे वह चाहता था कि, मैं जगत्में प्रसिद्ध होऊँ और लाखों करोड़ों मनुष्योंको अपने आज्ञापालक बनाऊँ। राज्यगद्दीपर बैठनेके बाद भी जबतक वह बहेरामखाँके आधीन रहा तबतक अपनी भावनाएँ पूर्ण न कर सका। जब वह बहेरामखाँके बंधनसे मुक्त हुआ

और राज्यकी पूर्ण सत्ता अधिकारमें करचुका तब उसने सोचा कि, मैं अब अपनी इच्छानुसार हरएक कार्य कर सकूँगा। अकबरका जीवन यह बात अच्छी तरहसे प्रमाणित करता है कि, पुरुषार्थी जब चाहते हैं तभी अपने कार्यमें सफलता लाभ कर सकते हैं। राज्यकी पूर्ण सत्ता अपने हाथमें लेनेके बाद अकबरने अपनी इच्छाएँ पूर्ण करनेके प्रयत्न प्रारंभ किये।

अकबरके कामोंसे हम यह कह सकते हैं कि, उसके मनमें तीन चार बातें खास तरहसे चक्कर लगा रही थीं। प्रथम यह कि, उसके पहलेवाले राजा जैसे, अपना नाम स्थिर कर गये थे वैसे ही वह भी अपना नाम अमर कर जाय। दूसरी यह कि, सारे सूबेदार उसकी आज्ञा पालें। तीसरी यह कि, उसके पिताके समयमें जो राज्य स्वाधीन हो गये हैं उन्हें वह वापीस अपने आधीन कर ले। और चौथी यह कि, राज्यकी अन्तर्व्यवस्थाको–जो अनेक परिवर्तनोंके कारण खराब हो गई थी–पुनः सुधार ले। इन्हीं चार बातोंके पीछे उसने अपना सारा जीवन बिताया था।

तीसरे प्रकरणमें कहा गया है, उसके अनुसार 'दीनेइलाही' नामक धर्म चलानेमें उसका हेतु ख्याति लाभ करनेके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं था। हाँ यह सच है कि, वह इस हेतुको पूर्ण करनेमें सफल नहीं हुआ; कारण,–उसका चलाया हुआ धर्म उसके साथ ही लुप्त हो गया। तोभी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि, उसने अपने जीवनमें उसका, यदि पूर्णरूपसे नहीं तो विशेष अंशोंमें आनंद अवश्यमेव ले लिया था। उसके धर्मको माननेवाले–यदि सच्ची श्रद्धासे नहीं तो भी दाक्षिण्यतासे या स्वार्थसे ही–अच्छे अच्छे हिन्दु और मुसलमान

थे। उसके धर्ममें जो लोग सम्मिलित हुए थे उनमेंसे मुख्यके नाम ये हैं × :—

१—अबुलफ़ज़ल; २—फ़ैज़ी;
३—शेखमुबारिक नागौरी; ४—ज़फ़रवेग आसफ़ख़ाँ;
५—क़ासम क़ाबुली; ६—अब्दुस्समद;
७—आज़मख़ाँ कोका; ८—मुल्ला शाहमुहम्मद शाहाबादी;
९—सूफ़ी अहमद; १०—सदर जहान मुफ्ती;
११-१२—सदर जहान मुफ्तीके दो लड़के; १३—मीर शरीफ़ अमली;
१४—सुल्तान ख़्वाजा सदर;
१५—मिर्ज़ाजानी हाकमठट्ठा; १६—नकी शोस्तरी;
१७—शेखजादा गोसाला बनारसी; १८—बीरबल;

'दी हिस्टरी ऑफ आर्यन स्कूल इन इण्डिया' के लेखक मि. इ. बी. हेवेल लिखते हैं कि, अकबरके धर्ममें जो लोग सम्मिलित हुए थे वे चार भागोंमें विभक्त थे।

एक भाग ऐसा था जो अपने सारे दुनियवी लाभ बादशाहके अर्पण करनेको तैयार रहता था।

दूसरा भाग ऐसा था जो अपना जीवन बादशाहके लिए अर्पण करनेको तत्पर रहता था।

तीसरा भाग ऐसा था जो अपना मान बादशाहके अर्पण करता था। और,

चौथे भागके मनुष्य ऐसे थे जो बादशाहके धर्म संबंधी विचारोंको अक्षरशः अपने ही विचार समझते थे।

× प्रो. आजादकी उर्दूमें लिखी हुई 'दर्बारे अकबरी' नामकी पुस्तकका पृ. ७२ वाँ देखो।

उपर्युक्त चार प्रकारके मनुष्योंमेंसे चौथे प्रकारके मनुष्य यद्यपि बहुत ही थोड़े थे; परन्तु वे ऐसे थे कि, जो अकबरको वास्तविक खलीफा समझते थे। यह बातभी हमेशा ध्यानमें रखनी चाहिए कि, अकबरने चारों प्रकारके लोगोंकी संख्या बढ़ानेमें कभी अपनी सत्ताका उपयोग नहीं किया था। इतना ही नहीं, यदि कोई उसके विचारोंका विरोध करता था तो उसकी दलीलें वह ध्यानपूर्वक सुनता था और शान्तिके साथ उनका उत्तर देता था।

उसने अपना धर्म फैलानेमें बहुत ज्यादा शान्ति और सहनशीलतासे काम लिया था। और उसके जीवनमें तो उसके महत्त्वकी इतनी ख्याति हो गई थी कि, श्रद्धालु और भोले दिलके हिन्दु-मुसलमान उसकी मानता मानने लगे थे। कोई पुत्र-प्राप्तिके लिए, कोई धन-प्राप्तिके लिए, कोई स्नेहीके संयोगके लिए और कोई शत्रुका दमन करनेके लिए; किसी न किसी हेतुसे, लोग उसकी मानता मानते थे। अबुलफजल लिखता है कि,—

" Other Multitudes ask for lasting bliss, for an upright heart, for advice how best to act, for strength of body, for enlightenment, for the birth of a son, the reunion of friends, a long life, increase of wealth, elevation in rank, and many other things. His Majesty, who knows what is really good, gives satisfatory answers to every one, and applies remidies to their religious perplexities. Not a day passes but people bring cups of water to him, beseeching him to breathe upon it. "+

+ Ain-i-Akbari, Vol 1, by H. Blochmanh M. A. P. 164.

भावार्थ—शाश्वतसुख, प्रामाणिक हृदय, अच्छे आचरणकी सलाह, शारीरिक वल, सुसंस्कार, पुत्रप्राप्ति, मित्रोंका पुनः समागम, दीर्घायु, धन-सम्पत्ति और उच्च पदवी आदि अन्यान्य अनेक मुरादें लेकर झुंडके झुंड मनुष्य सम्राट् अकबरके पास आते थे। सम्राट श्रेयका जानने वाला था, इसलिए हरएकको वह सन्तोषप्रद उत्तर देता था और उनकी धार्मिक समस्याओंको हल करनेकी योजनाएँ गढता था। ऐसा एक भी दिन नहीं वीतता था जिस दिन लोग अकबरके पाससे मंत्रोच्चारणद्वारा पानीके कटोरे पवित्र करवानेके लिए न आते हों।

लोग अकबरकी मानता रखते थे, इस वातके इतिहासोंमें अनेक प्रमाण हैं।

कवि ऋषभदासने 'हीरविजयसूरिरास' में वादशाहके चमत्कारोंके अनेक उदाहरण दिये हैं। उनके एक दो प्रमाण पाठकोंके विनोदार्थ यहाँ दिये जाते हैं।

एक वार नवरोजके* दिनोंमें स्त्रियोंका वाजार भरा। वादशाह

---

* **नवरोज**—यह पारसियोंके त्योहारोंका दिन है। अकबरने अपने अनेक त्योहारोंके दिनोंके उपरान्त पारसियोंके कुछ त्योहारोंको भी अपने त्योहार माने थे। उन्हींमें नवरोजका दिन भी शामिल है। अकबरने पारसियोंके जिन त्योहारोंको अपने त्योहार माने हैं उनके नाम 'आईन-ई-अकवरी' 'अकबरनामा' 'वदाऊनी' और 'मीराते अहमदी' आदि अनेक ग्रंथोंमें आये हैं। 'अकबरनामे' के दूसरे भागके अंग्रेजी अनुवादके २४ वें पृष्ठमें और 'आईन-ई-अकवरी' के प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादके पृ. २७६ में निम्नलिखित दिन गिनाये गये हैं:—

१ नये वरसका पहला दिन;　　　१ मिहरका १६ वाँ दिन;
१ फरवरदीनका १९ वाँ दिन;　　　१ आवानका १० वाँ दिन;
१ अरदी वहिश्तका ३ रा दिन;　　　१ आजरका ९ वाँ दिन;

स्वयं उस बाजारमें गया था । वहाँ उसने एककपडे बेचती हुई स्त्रीसे

१ खुरदादका ६ ठा दिन;	३ दाईका ८–१५–२३ वाँ दिन;
१ तीरका १३ वाँ दिन;	१ बहमनका २ रा दिन;
१ अमरदादका ७ वाँ दिन;	१ अस्फंदार मुजका ५ वाँ दिन;
१ शहरीवरका ४ था दिन;	१५ जोड़.

इस प्रकार १५ दिन गिने गये हैं; परन्तु ' मीराते अहमदी 'का बर्डने अंग्रेजी अनुवाद किया है । उसके ३८८ वें पृष्ठमें १३ दिन ही गिने गये हैं । उसमें नये वरसका १ ला दिन और दाईका ८ वाँ दिन ये दो दिन नहीं गिने गये हैं । दूसरा यह भी भेद है कि, ' अकबरनामा ' और ' आइन-ई-अकबरी ' के मतसे उपर्युक्त लिस्टमें लिखे अनुसार अस्फंदारमुजका ५ वाँ दिन गिना गया है और 'मीराते अहमदी' में अस्फंदारमुजका ९ वाँ दिन बताया गया है । इन दोनों मतोंमें अगर **बदाऊनी**का मत भी शामिल कर लिया जाय तो, बदाऊनीके दूसरे भागके अंग्रेजी अनुवादके ३३१ वें पेजमें जो उल्लेख है उससे १४ दिन ही होते हैं । क्योंकि उसने, फरवरदीन महीनेके उन्नीसवें दिनको वर्षारंभके उत्सवका एक अंश माना है । अभिप्राय कहनेका यह है कि, फरवरदीनके १ ले और उन्नीसवेंमेंसे किसीने १ ला दिन लिया है और किसीने १९ वाँ और किसीने दोनों ही लिये हैं । इन दोनों मतोंमे कोई महत्त्वकी बात नहीं है; क्योंकि फरवरदीनका १९ वाँ दिन भी फरवरदीनके १ ले दिनका एक अंश ही है । यानी वह नवरोजके उत्सवोंका अन्तिम दिन है । मगर 'दायी के ८, १५, और २३ वें दिनोंमेंसे किसीने १५ वाँ और किसीने २३ वाँ गिना है । ऐसा क्यों हुआ इसका कारण समझमें नहीं आता । इसके अलावा अस्फंदारमुजका किसीने ५ वाँ दिन बताया है और किसीने ९ वाँ । यह मत-भेद भी खास विचारणीय है ।

उपर्युक्त दिनोंमें जो नये वरसका पहला दिन गिना गया है वही **नव-रोजका दिन** है । यह दिन फरवरदीन महीनेका प्रथम दिन है । इसका परिचय 'मीराते अहमदी'के अंग्रेजी अनुवादके पृ० ४०३–०४ में इस प्रकार कराया गया है:—

" Let him do everything that is proper to be done at the festival of the NaoRoz, a feast first

पूछा:—" क्या तेरे कोई बाल-बच्चा नहीं है ? उसने उत्तर दिया:—

consequence, which Commences at the time when the sun enters Aries and is the beginning of the month of Farvardin."

भावार्थ—नवरोजके दिन उचित कार्य करने चाहिए। नवरोज आवश्यक त्योहार है। यह धनराशीमें सूर्य दाखिल होता है तब प्रारंभ होता है; और यह फरवरदीन महीनेके प्रारंभमें होता है।

इसी तरह दाबिस्तानके प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादके २६८ वें पेजके नोटमें लिखा है कि,—

"The Naoroz is the first day of the year, a great festival."

अर्थात्—नवरोज वर्षका प्रथम दिन है और वह बड़े त्योहारका दिन है।

इन बातोंसे स्पष्ट हो जाता है कि, नवरोजका दिन तो एक (वर्षका पहला दिन) ही था, परन्तु उसके निमित्त १९ दिन तक उत्सव होता था। यह बात आइन-ई-अकबरीके प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादके २७६ वें पेजमें आये हुए निम्नलिखित वाक्योंसे स्पष्ट हो जाती है,—

"The new year day feast. It Commeces on the day when the sun in his splendour moves to Aries and lasts till the nineteenth day of the month (Forvardin). Two days of this period are considered great festivals, when much money and numerous other things are given away as presents: the first day of the month of Farvardin & the nineteenth which is the time of the sharaf."

अर्थात—नये वरसके दिनका उत्सव उस दिन प्रारंभ होता है जिस दिन सूर्य धनराशीमें जाता है। **और यह उत्सव फरवरदीन महीनेके १९ वें दिनतक चलता है।** इन दिनोंमेंसे दो दिन बहुत बड़े त्योहारके माने गये हैं। उनमें बहुतसा धन और अनेक वस्तुएँ भेटमें दीजाती हैं।

ये दो दिन फरवरदीन महीनेके, पहला और उन्नीसवां, दिन हैं। यह अन्तिम दिन शरफ (अर्थात् गति) का है।

इतना विवेचन होजानेके बाद यह बात सहज ही समझमें आजाती है कि, नवरोजका दिन फरवरदीन महीनेका पहला दिन है। इसका उत्सव उन्नीस दिनतक होता था। इसलिए उन्नीसों दिनोंको कोई यदि किसी अपेक्षासे नवरोजके दिन कहता है तो उसका कथन व्यवहार दृष्टिसे सत्य माना जा सकता है। जैसे, जैनियोंमें सिर्फ एक ही दिन (भादवा सुदी ४ का) पर्युषणका है, तो भी उसके लिए आठ दिनतक उत्सव होता है इसलिए लोग आठों दिनोंको पर्युषणके दिन मानते हैं। मगर फरवरदीन महीनेके इन उन्नीस दिनोंको छोड़कर ऊपर जो दूसरे दिन गिनाये गये हैं। वे हरगिज़ नवरोजके दिन नहीं माने जासकते हैं।

उपर्युक्त उत्सवके दिनोंमें लोग आनंदमें मग्न होकर उत्सव करते थे। प्रत्येक प्रहरमें नक्कारे बजाये जाते थे; गायक गाते थे। इन त्योहारोंके पहले दिनसे (नवरोजके दिनसे) तीन रात तक रंग बिरंगे दीपक जलाये जाते थे। और दूसरे त्योहारोंमें तो केवल एक रात ही दीपक जलाये जाते थे।

ऊपर कहे हुए उत्सवके दिनोंमेंसे प्रत्येक महीनेके तीसरे उत्सवके दिन **सम्राट्** अनेक प्रकारकी वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए, बहुत बड़ा बाजार लगवाता था। उसमें अपनी दुकानें लगाने के लिए उस समयके अच्छे अच्छे सभी व्यापारी आतुर रहते थे। दूर दूरके देशोंमेंसे सभी प्रकारका माल मंगवाकर रखते थे।

अन्तःपुरकी स्त्रियाँ उसमें आती थीं। अन्यान्य स्त्रियोंको भी उसमें आमंत्रण दिया जाता था। खरीदना और बेचना तो सामान्य ही था। खरीदने योग्य वस्तुओंका मूल्य बदलनेमें अथवा अपने ज्ञानको बढ़ानेमें **सम्राट्** उत्सवोंका उपयोग करता था। ऐसा करनेसे उसको राज्यके गुप्त भेद, लोगोंका चाल चलन और प्रत्येक कार्यालय तथा कारखानेकी भली बुरी व्यवस्थाएँ मालूम होजाती थीं। ऐसे दिनोंका नाम **सम्राट्**ने ' खुशरोज ' रक्खा था।

जब स्त्रियोंका यह बाजार समाप्त होजाता था तब **सम्राट्** पुरुषोंके लिए बाजार भरवाता था। प्रत्येक देशके व्यापारी अपनी वस्तुएँ बेचनेको लाते

पानी मंत्र कर उसे दिया और कहा:—"इसको पीना; धर्मके कार्य करना; किसी जीवको मत मारना; और मांस भी मत खाना। यदि तू मेरे कथनानुसार करेगी तो तेरे बहुतसी सन्तानें होंगी।"

सचमुचही उसके एक एक करके बारह बाल बच्चे हुए।

दूसरा एक उदाहरण और भी दिया गया है कि—"आगरेका एक सौदागर व्यापारके लिए परदेश गया था। रास्तेंमे उसे उसके कई ऋणदाता मिले। सौदागरने सोचा कि, अब मेरे पास कुछ भी नहीं बचेगा, ये लोग मेरा सब कुछ लेलेंगे। उसने अकबरकी मानता मानी कि, अगर मेरा माल बच जायगा तो चौथा भाग मैं अकबरके भेट कर दूँगा।

उसका माल बच गया। व्यापारमें भी उसको अच्छा नफ़ा रहा। उसने दूसरी बार और व्यापार प्रारंभ कर नफ़ेका चौथा भाग अकबरके भेट करनेकी मानता मानी। उसमें भी उसे अच्छा नफ़ा मिला। इस प्रकार उसने तीन बार मानता मानी और तीनों बार लाभ उठाया। मगर उसके मनमें बेईमानी आई और उसने नफ़ेका चौथा हिस्सा अकबरके पास नहीं पहुँचाया।

थे। सम्राट् स्वयं हरएक तरहके लेन-देनको देखता था। जो लोग बाजारमें पहुँच सकते थे वे वस्तुएँ खरीदनेमें आनंद मानते थे। उस समय लोग सम्राट्को अपने दुःखोंकी कथाएँ भी सुनाया करते थे। कोई उन्हें ऐसा करनेसे रोक नहीं सकता था। व्यापारी अपनी परिस्थितियाँ सम्राट्को समझाने और अपना माल बतानेका यह अवसर कभी नहीं चूकते थे। जो प्रामाणिक होते थे उनकी विजय होती थी और जो अनीतिवान होते थे उनकी जाँचपड़ताल की जाती थी।

इस समय खज़ानची और हिसाबी भी मौजूद रहते थे। वे तत्काल ही माल बेचनेवालोंको रुपया चुका देते थे। कहा जाता है कि, व्यापारियोंको ऐसे प्रसंगमें अच्छा नफा मिलता था।

अकबरने एकबार उस सौदागरको बुलाकर कहाः—" चौथा हिस्सा क्यों नहीं लाता है ? "

सौदागरको आश्चर्य हुआ। वह कहने लगाः—" सचमुच ही आप तो जागते पीर हैं। मैंने यद्यपि यह बात किसी दूसरेसे न कही थी; परन्तु आपको तो मालूम हो ही गई। " तत्पश्चात् वह अनेक प्रकारसे अकबरकी स्तुति कर चौथा भाग दे गया। "

एक बार एक स्त्रीने मानता मानी कि, यदि मेरे पुत्र होगा तो मैं उत्सव पूर्वक बादशाहको बधाऊँगी और दो श्रीफल भेट करूँगी।

समयपर स्त्रीके पुत्र हुआ। उसने उत्सवपूर्वक अकबरको बधाया और उसके सामने एक श्रीफल रक्खा। अकबरने कहाः—" मानता दोकी मानी थी और भेटमें एक ही कैसे रक्खा ? " स्त्री बड़ी लज्जित हुई। उसने तत्कालही दूसरा श्रीफल सामने रक्खा। वगेरः वगेरः।

उपर्युक्त कथाओंमें सत्यांश कितना है इसका निर्णय इस समय होना असंभव है। चाहे कुछ भी हो, यह सच है कि, उसकी मानता मानी जाती थी। अनेक लोग उसे ईश्वरका अवतार मानते थे। इसमें मतभेद नहीं हैं। श्रीयुत बंकिमचंद्रलाहिड़ीने अपने सम्राट् अकबर नामक बंगाली पुस्तकके २८२ वें पृष्ठमें लिखा है कि—

"से समयेर हिन्दू ओ मुसलमान सम्राट्के ऋपिवत् ज्ञान करित, ताँहार आशीर्वादे कठिन पीडा आरोग्य हय, पुत्र कन्या लाभ हय, अभीष्ट सिद्ध हय, एइ रूप सकले विश्वास करित। एइ जन्य प्रत्यह दले दले लोक ताँहार निकट उपस्थित हइया आशीर्वाद प्रार्थना करित।"

अर्थात्—उस समयके हिन्दु और मुसलमान सम्राट्को ऋपिके

समान समझते थे। सभीको विश्वास था कि, उसके आशीर्वादसे कठिन पीडा मिटती है, सन्तानकी प्राप्ति होती है और मनोवांछित फल मिलता है। इसी लिए झुंडके झुंड लोग हमेशा उसके पास आते थे और उससे आशीर्वाद चाहते थे।

इतना होने पर भी एक वात ऐसी है कि, जिससे आश्चर्य होता है। वह यह है,—एक तरफ़से कहा जाता है कि, अकबरका उपर्युक्त प्रकारसे माहात्म्य फैला था और दूसरी तरफ़से हम देखते हैं कि, उसका माहात्म्य और उसका धर्म उसके साथ ही विलीन हो गये। यह कैसे हुआ? इसके संबंधमें विद्वान् अनेक प्रकारके तर्क करते हैं। कई कहते हैं कि, अकबरकी महिमा बढ़ानेवाले और उसके धर्मका गुणगान करनेवाले **अबुलफजल** और **फैजी** जैसे लोग अकबरके पहलेही संसार छोड़कर चले गये थे। इसलिए उसके धर्म–शकटको चलानेवाला कोई भी न रहा। इसलिए उसका धर्म लुप्त हो गया। कई कहते हैं कि, अकबरके दीने इलाही धर्मको किसीने सच्चे दिलसे स्वीकार नहीं किया था, इसीलिए वह अकबरके साथही समाप्त हो गया था। कई यह भी कहते हैं कि, धर्मस्थापकमें जो अचल श्रद्धा होनी चाहिए वह अकबरमें नहीं थी। जब किसी धर्मके संस्थापकहीमें पूर्ण श्रद्धा नहीं होती है तब उसके अनुयायियोंमें तो होही कैसे सकती है? चाहे किसी कारणसे हो मगर अकबरकी चमत्कारोंसे संबंध रखनेवाली महिमा और उसका धर्म उसके बाद न रहे।

अकबरने उसके धर्मानुयायियोंमें एक बात और भी चलाई थी। वह थी अभिवादन संबंधिनी। इस समय दो हिन्दु जब मिलते है तब वे 'जुहारु' या 'जयश्रीकृष्ण आदि बोलते हैं। दो मुसलमान जब मिलते है तब एक कहता है 'सलामालेकम' दूसरा उत्तर

देता है 'वालेकमसलाम' दो जैन मिलते हैं तब वे 'प्रणाम' या 'जयजिनेंद्र' बोलते हैं। अकबरके अनुयायी जब मिलते थे तब वे इनमेंसे एक भी बात नहीं करते थे। उनका अभिवादन तीसरे ही प्रकारका था। एक कहता था 'अल्लाहो अकबर' दूसरा उत्तरमें बोलता था 'जल्लजलालुहू' *

अकबरका चलाया हुआ यह रिवाज भी उसकी महत्त्वाकांक्षा को पूर्ण रूपसे प्रकट करता है। अस्तु।

कहा जाता है कि, भारत के जुदा जुदा धर्मों और उनके अनुयायियोंके झगड़ों को देखकर अकबरका हृदय बहुत दुखी हुआ था। सभी अपनी अपनी सचाई प्रकट करनेका प्रयत्न करते थे, इसलिए वास्तविक सत्यको जानना असंभव हो गया था। इसलिए अकबरने यह जाननेका प्रयत्न किया था कि, किसी भी प्रकारके संस्कार विना मनुष्यका मन कुदरती तौरसे किस तरफ़ झुकता है इसके लिए उसने बीस बालकोंको जन्मते ही ऐसे स्थानमें रक्खा कि, जहाँ मानवी व्यवहारकी हवा भी उन्हें नहीं लगती थी। अकबरने सोचा था कि जब वे बड़े होंगे तब मालूम हो जायगा कि प्राकृतिक रूपसे ये किस धर्मकी तरफ़ झुकते हैं। मगर इसमें उसे सफलता न मिली! योग्य व्यवस्थाके अभावसे कई बालक तो मर गये और कई ३-४ वर्षके बाद से गूँगे ही रहे। ×

प्राकृतिक नियमोंके विरुद्ध जो कार्य किया जाता है उसका

---

* आइन-ई-अकबरीके प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादका १६६ वाँ पृष्ठ देखो।

× देखो-दी हिस्ट्री आफ आर्यन रूल इन इंडिया, ले. इ. बी. हैवेल. पृ. ४९४ (The History of Aryan rule in India By E. B. Havell P. 494.

परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। यह बात यदि अकबर भली प्रकारसे जानता होता और उसपर पूर्ण रूपसे श्रद्धा रखता होता तो वह ऐसा कार्य कदापि न करता।

अकबरमें एक खास गुण था। वह यह कि,—वह अपना काम मीठा बनके निकालनेकाही प्रयत्न करता था। वह मानता था कि, अगर मीठी दवासे रोग मिटता हो तो कड़वी दवाका उपयोग नहीं करना चाहिए। इसी नीतिके द्वारा उसने अनेक राज्यों और अनेक वीरोंको अपने आधीन कर लिया था। अकबरकी यह प्रबल इच्छाथी कि, जो राज्य उसके बापके अधिकार से निकल गये थे उनको वह पुनः अपने अधिकारमें करले। मगर जब वह वस्तुस्थितिका विचार करता तब उसे जान पडता कि, भारत वीर पुरुषोंकी खानि है। सबसे विरोध करके अपना मनोरथ सफल करना असंभव है। इसी लिए उसने भेदनीतिका आश्रय लेकर भारतके वीरोंमें फूट डाली और उनमें से अनेक को अपने पक्षमें मिला लिया। अकबरको देश जीतनेमें और अन्यान्य कामोंमें मुख्यतया सहायता देनेवाले, राजा **भगवानदास**, राजा **मानसिंह** और राजा **टोडरमल** आदि कौन थे? भारतहीके वीर। अकबरने **भगवानदास**की बहिन, **मानसिंह**की बुआ, के साथ व्याह कर उन्हें अपने पक्षमें मिलाया था। **सलीम** (जहाँगीर) इसी हिन्दु स्त्रीसे उत्पन्न हुआ था। कहा जाता है कि, अकबरने तीन हिन्दु राजकन्याओंके साथ व्याह किये थे। उनमें बीकानेरकी राजकन्या भी थी। किसी न किसी तरहसे सारे राजा अकबरकी नीतिके शिकार हुए थे और उसके आधीन बने थे; केवल मेवाड़के **महाराणा प्रतापसिंह** ही उसकी जालमें न फँसे थे। उन्होंने अकबरकी शाम, दाम, दंड और भेद सभी नीतियोंको पैरोंतले रौंदकर

अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की थी । इसीलिए इतिहासके पृष्ठोंमें उनका नाम ' हिन्दु सूर्य ' के मानद अक्षरोंसे अंकित है–अमर है ।

हिन्दु वीरोंमें फूट डालते ही उनकी सहायतासे भिन्न भिन्न देशोंपर आक्रमण करने लगा और क्रमशः उन्हें अपने आज्ञाधारक बनाने लगा । अकबर स्वयं युद्धमें जाता था और एक ज़बर्दस्त योद्धाकी तरह युद्ध करता था । उसने अपनी वीरता, दृढता और होशियारीसे आशातीत सफलता प्राप्त की थी ।

सैनिक उत्तम व्यवस्थाके कारण भी, अकबरका देशोंको जीत-नेका काम बहुत सरल हो गया था । वह राजपूत राजाओंको सेनामें बड़े बड़े ओहदे देकर बहुत प्रसन्न रखता था । वह पाँच हजारसे अधिक फौज रखनेवालोंको ' अमीर ' का और पाँच हजारसे कम फौज जिसके अधिकारमें होती थी उसको ' मनसबदार ' का पद देता था । इनके अलावा नीचे दर्जेके भी अनेक अधिकारी थे ।

फौजकी योग्य व्यवस्थाकरके उसके द्वारा भिन्न भिन्न देशोंको विजय करनेमें उसने अविश्रान्त परिश्रम किया था । कहा जाता है कि, उसने बारह बरसतक लगातार युद्ध किये थे ।

यह बात तो तीसरे अध्यायहीमें बताई जाचुकी है कि, अकबरने जिस समय राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ली थी उस समय कौनसा देश किसके अधिकारमें था । उससे यह स्पष्ट मालूम होजाता है कि, भारतवर्षका बहुत बड़ा भाग स्वाधीन था; अकबरके अधिकारमें नहीं था । इसीलिए समस्त भारतको अपने अधिकारमें करनेके लिए उसे सतत युद्ध करना पड़ा था ।

अकबरने जितनी लड़ाइयाँ कीं उनमेंसे, पंजाब, सिंध, कंधार, काश्मीर, दक्षिण, माल्वा, जौनपुर, मेवाड, गुजरात आदिकी लड़ाइयाँ

खास उल्लेखनीय हैं। क्योंकि ये भयंकर थीं। उनको इन लड़ाइयोंमें बड़ी बड़ी विपत्तियोंका सामना करना पड़ा था। मगर सबमें विजयी होकर, सब स्थानोंमें उसने अपने सूबेदार नियत कर दिये थे। इन लड़ाइयोंमें कईबार तो फौजमें यहाँतक अफवा उड़ गई थी कि, अकबर मारा गया है। क्योंकि वह ऐसे ही संकटमें जापड़ा था; परन्तु जब वह वापिस मिला तब लोगोंको सन्तोष हुआ। किसी देशको फतह करनेके लिए पहले वह अबुलफजल, मानसिंह, टोडरमल आदि सेनापतियोंको भेजता था और अगर इनसे कार्य सफल न होता था तो फिर स्वयं युद्धमें जाता था। प्रायः युद्धोंमें हुआ करता है वैसे, प्रत्येक देश उसने पहलेही हमलेमें नहीं जीत लिया था। किसी किसी देशको जीतनेमें तो उसे तीन तीन चार चार आक्रमण करने पड़े थे; बड़ी बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ी थीं; बहुत काल लगाथा और हजारोंही नहीं बल्के लाखों लोगोंका बलिदान देना पड़ा था।

कोई देश जब पूर्णरूपसे अकबरके अधिकारमें आजाता था तब उसके साथ वह ऐसा स्नेह करलेता था कि, उस देशकी इच्छा फिरसे अकबरका विरोध करनेकी नहीं होती थी। काश्मीरके बड़े बड़े लोगोंकी कन्याओंके साथ अकबरने और कुमार सलीमने पाणिग्रहण किया था। यह उपर्युक्त कथनको प्रमाणित करदेनेका ज्वलंत उदाहरण है।

अकबरने युद्ध किये थे उनमें कई ऐसी घटनाएँ भी हुई थी जिनके लिए अकबरकी प्रशंसा किये बिना कोई भी लेखक नहीं रह सकता है।

हम एक दो घटनाओंका यहाँ उल्लेख करेंगे।

राजा मानसिंह जब पंजाबका शासनकर्ता था तब अकबरके भाई मिर्जामुहम्मदहकीमने काबुल से आकर पंजाबपर आक्रमण किया

था। भाई होते हुए भी उसने अकबरसे सत्ता छीनलेना चाहा था। जब अकबर स्वयं युद्ध करने को आया तब वह भाग गया। उसके बाद राजा मानसिंहने काबुल पर चढ़ाई की। हकीम पराजित हुआ। काबुल पर अकबरका अधिकार हुआ। हकीमकी दशा ऐसी खराब हो गई कि उसने आत्महत्या करलेनी चाही। अकबरको जब यह बात मालूम हुई तब उसने सोचा कि,– भाई दीनहीन होकर आत्महत्या करे और मैं ऐश्वर्यका उपभोग करूँ; यह सर्वथा अनुचित है। उसने अपने भाईके पास एक मनुष्य भेजा और उसे वापिस काबुलका शासनकर्त्ता बना दिया। अकबर! धन्य है तेरी उदारता! और धन्य है तेरा सौहार्द! जो भाई तेरे साथ बार बार दुष्टताका बर्ताव करता था उसी पर तेरी इतनी अनुकम्पा!

अकबरने मेडताका किला लेनेके लिए **मिर्जाशरफुद्दीनहुसेन**[1] को भेजा था। (ई. स. १५६२) वहाँका राजा **मालदेव** उसके साथ बडी वीरताके साथ लडा था, मगर पीछेसे अन्नजल समाप्त होजानेके कारण उसे शरफुद्दीनके शरणमें जाना पडा था। जिस **मालवदेवने**[2] अकबरके साथ युद्ध किया था उसी **मालवदेवको** अपने

१–यह उमराव कुटुंबके ख्वाजा मुईनका पुत्र था। यह वह ख्वाजा मुईन है जो **खाविंद महमूदका** पुत्र था। **खाविंद महमूद ख्वाजा कलानका** दूसरा लड़का था। **ख्वाजा कलन** प्रसिद्ध महात्मा **ख्वाजा नासोइद्दीन उबैदुल्लाह अहरारका** बड़ा लड़का था। इसीलिए मिर्जा शरफुद्दीन हुसेन खास तरहसे **अहरारी** कहलाता था। विशेषके लिए आइन-ई-अकबरी प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद, ब्लाक मॅन कृत. पृष्ठ ३२३.

२–राजा मालदेव एक प्रभावशाली पुरुष था। **बहरामखाँका** वह कट्टर शत्रु था। **बहरामखाँ** जब मक्का गया था तब वह गुजरातके रस्ते न जाकर बीकानेर अपने मित्र **कल्याणमलके** पास गया था। कारण–बीकानेरका मार्ग उस समय **कल्याणमलके** कब्जेमें था। (देखो-आइन-ई-अकबरी

दाहिनी तरफ विठानेका मान दिया था। मालदेवने भी अपनी पुत्री जोधावाईको अकवरके साथ व्याह दिया था।

ई. सन् १५६० के चातुर्माससमें अकवरने माळवा जीतनेके लिए अधमखाँके सेनापतित्वमें सेना भेजी थी। इसने माळवाके राजा वाजवहादुरको ई. १५६१ में परास्त किया था। इस लडाईमें अधमखाँने और पीरमहमम्दने[2] वडी ही निर्दयताके साथ स्त्रियों

प्रथम भाग, ब्लॉकमॅनकृत अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३१६) मालदेवका लड़का उदयसिंह मोटाराजाके नामसे प्रसिद्ध है। मालदेवके पास ८०००० घुड़सवार थे। यद्यपि राणासांगा-जो फिरदौसमकानी (बावर) के साथ लड़ा था—बड़ा ही शक्तिशाली था, तथापि सैन्य संख्यामें और क्षेत्रविस्तारमें मालदेव उससे बढ़कर था। इसीलिए वह विजयी होता था। विशेषके लिए, देखो,-आईन-इ-अकबरी. प्रथम भाग, ब्लॉकमॅन, अंग्रेजी अनुवाद पृ० ४२९-४३०।

१-अधमखाँ माहम अंगाका लड़का था। युरोपिअन इतिहासवेत्ताओंने उसका नाम आदमखाँ लिखा है। उसकी माता माहम, अकवरकी अंगा (आया) थी। अकबर पलनेसे लेकर गद्दीनशीन हुआ तबतक अधमखाँकी माता ही अकवरकी सँभाल लेती थी। माहमकी अन्तःपुरमें अच्छी चलती थी। इतना ही क्यों, अकवर भी उसको मानता था। वहरामखाँके वाद मुनीमखाँ वकील नियत हुआ था। इसकी यह सलाहकार थी। वहरामखाँको पदच्युत करानेमें उसका बहुत हाथ था। अधमखाँ पंचहजारी था। वह मानकोटके घेरेमें वीरता दिखाकर प्रसिद्ध हुआ था। उसकी सहसा पदवृद्धि हुई थी इससे वह स्वेच्छाचारी होगया था। विशेषके लिए देखो,-आईन-इ-अकबरी प्रथम भागका ब्लॉकमॅनकृत अंग्रेजी अनुवाद पृ. ३२३-३२४.

२-पीरमहम्मद, शिखानका मुल्ला था। कंधारमें यह वहरामखाँका कृपापात्र था और उसीकी सिफारिशसे, अकवर जब गद्दीपर बैठा तब, वह अकवरके दर्बारमें अमीरकी पदवी प्राप्तकर सका था। उसने हेमूके साथ जो युद्ध हुआ था उसमें वीरता दिखाई थी। इसीलिए उसको 'नासीरुलमुल्क'

और बालकोंको कत्ल किया था। इसके लिए अकबर उनसे बहुत नाराज हुआ था। युद्धमें भी अनीतिका व्यवहार करना अकबर राज्यधर्मविरुद्ध समझता था। अधमखाँके अत्याचारसे सम्राट् स्वयं मालवेमें गया था; परन्तु उसकी माता माहम गंगाके प्रार्थना करनेपर उसको छोड़ दिया। आगरेमें जाकर अधमखाँने फिर गड़बड़ प्रारंभ की। इसका परिणाम उसकी मौत हुआ। अधमखाँके बाद अब्दुलखाँ उजबक[1] मालवे भेजा गया, और जिस बाजबहादुरने[2] सम्राट्के

की पदवी मिली थी। इससे यह इतना मगरूर होगया था कि इसने चगताई अमीरोंकी और अन्तमें बहरामखाँ तककी अवगणना की थी। इसका परिणाम यह हुआ कि बहरामखाँने इसको अपने पदका इस्तिफा देनेकी आज्ञा दी। शेख़ गदाईके उत्तेजित करनेपर उसे बनायाके क़िलेकी तरफ़ भेजा और पश्चात् विवशकरके उसे यात्रार्थ भेज दिया। विशेषके लिए; देखो आईन-इ-अकबरी प्रथम भागका ब्लॉकमॅनकृत अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ३२५.

१–अब्दुल्लाखाँउज्बक हुमायूँके दर्बारका एक अमीर था। हेमूँकी हारके बाद इसे 'शुजाअतखाँ' का पद दिया गया था। नौकरीके बदलेमें कालपी इसे बतौर जागीरके मिला था। गुजरातमें इसने अधमखाँके आधीन रहकर कार्य किया था। पीरमहम्मदकी मृत्युके बाद जब बाजबहादुरने मालवा लिया था तब यह (अब्दुल्लाखाँ) पांच हजारी बनाया गया था, और लगभग असीम सत्ताके साथ मालवे भेजा गया था। इसने अपना प्रान्त वापिस जीत लिया। और माँडवेमें राजाकी भाँति राज्य करने लगा। विशेषके लिए देखो,–आईन-इ-अकबरी प्रथम भाग, ब्लॉकमॅनकृत अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ३२१.

२–अबुल्फज़लके कथनानुसार बाजबहादुरका असली नाम बाज़िदखाँ था। बाजबहादुके पिताका नाम शुजाअतखाँ शूर था। इतिहास उसे शजावलखाँ या सजावलखाँ के नामसे पहचानते हैं। इसीके नामसे मालवेके एक बहुत बड़े गाँवको लोग 'शजावलपुर' कहते थे; जिसका असली नाम 'सुजातपुर' था। यह सारंगपुर सरकार (मालवे) के अधिकारमें था। वर्तमानमें वह विद्यमान नहीं है।

विरुद्ध युद्ध किया था उसीको सम्राट्ने अपना कृपापात्र बनाया और अन्तमें उसे दोहजार सेनाका अधिनायक नियत किया।

कालिंजर अलाहाबादसे ९० माइल और रीवांसे ६० माइल है। वहाँका किला जीतनेके लिए अकबरने मजनूनखाँ काक्षालको

बाजबहादुर हिजरी सन् ९६३ (ई. स. १५५५) में मालवाका राजा हुआथा। उसने 'गढ' पर आक्रमण किया था; परन्तु राणी दुर्गावतीने उसको हराया। इसके बाद वह ऐयाशीमें डूब गया था। वह अद्वितीय गानेवाला था। इसलिए उसने अच्छी अच्छी गानेवालियोंको जमा किया था। उनमें **रूपमती** भी एक थी। लोग अबतक उसको याद करते हैं।

वह हि. सं. १००१ (ई. सं. १५९३) के लगभग मरा था। कहा जाता है कि, **बाजबहादुर** और **रूपमती** दोनों एक ही साथ उज्जैनके एक तालावके मध्य भागमें गाड़े गये थे। विशेपके लिए देखो—आईन-इ-अकबरी के प्र. भागका अंग्रेजी अनुवाद पृ० ४२८ तथा आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया; वॉ० २ रा, ले० ए. कनिंगहाम. पृ० २८८ से २९२. (Archœlogical survey of India Vol. II. by A. Cunningham pp. 288-292.

१ यह **हुमायूँ**का बड़ा प्रधान था। इसके पास **नारनोल** (पंजाबकी) जागीर थी। जब हुमायूँ ईरान भाग गया था तब **हाजीखाँ** ने **नारनोल**को घेर लिया था। मगर राजा **बिहारीमल**की प्रार्थनासे **मजनूनखाँ**को **हाजीखाँ**ने कोई कष्ट नहीं पहुँचाया था। उसे सहीसलामत **नारनोल**से निकल जाने दिया था।

जब **अकबर** गद्दी पर बैठा तब **मजनूनखाँ माणिकपुर**—जो साम्राज्यकी पूर्व सीमापर था—का जागीरदार बनाया गया। वहाँ उसने वीरतापूर्वक **अकबर**की हुकूमत कायम रखनेका प्रयत्न किया था। **खानजमान**की मृत्युतक वह वहीं रहा था। हि. स. ९७७ (ई. स. १५६९) में उसने **कालिंजर**को घेरा था। कालिंजरका किला उस वक्त राजा **रामचंद्र**के अधिकारमें था। उसने यह किला **बिजलीखाँ**से जो **पहाड़खाँ**का गोदका लडका था—बहुत बड़ी रकम देकर मोल लिया था। अन्तमें राजा **रामचंद्र** कालिंजर **मजनूनखाँ**के।

भेजाथा। यह किला भट्ठा अथवा रीवांके राजा रामचंद्रदेवके कब्जे-में था। रामचंद्र जब उसके शरण आगया तब अकबरने उसे अला-हाबादके नजदीक एक जागीर दी थी।

अभिप्राय यह है कि, जो राजा अकबरके साथ युद्ध करते थे; हजारो मनुष्योंको कतल करते करवाते थे और लाखों रुपये पानीकी तरह खर्चाते थे, वे ही राजा जब उसके आधीन—संधी करके या हार के—हो जाते थे तब वह उनके साथ लेश मात्र भी शत्रुता नहीं रखता, प्रत्युत प्रायः वह उनका सम्मान ही करता था।

अकबर जैसे शत्रुओंका सम्मान करता था वैसे ही वह अनी-तिपूर्वक युद्ध करनेसे भी घृणा करता था। उसका हम एक उदाहरण देंगे।

जब अकबर दोसौ मनुष्य लेकर 'मही' नदीके पास आया तब उसे मालूम हुआ ईब्राहीम हुसेन मिर्जा बहुत बड़ी सेना लेकर ठास-

---

सौंपकर इसकी शरणमें आ गया था। अकबरने मजनूनखाँको उस किलेका सेनापति बनाया था।

तबकातके कथनानुसार यह पंचहजारी था। इस के अलावा उसे जब जरूरत होती तभी पाँच हजार सेना और मिल सकती थी। अन्तमें यह घोराघाट (बंगाल) का युद्ध जीतनेके बाद मर गया था। विशेषके लिए देखो—आईन-इ-अकबरी प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद। पृष्ठ ३६९–३७०.

१–राजा रामचंद्र वाघेला वंशका था। वह भट्टा (रीवां) का राजा था। बाबरने भारतवर्षके ३ बड़े राजा गिनाये हैं। उनमें भट्ठाके राजाको तीसरे नंबर बताया है। सुप्रसिद्ध गवैया तानसेन पहले इसी राजा रामचंद्र-के आश्रयमें रहता था। इसके पाससेही अकबरने उसे अपने दर्बारमें बुलाया था। जब तानसेनने सबसे पहले अकबरको अपनी विद्याका परिचय दिया था तब अकबरने उसको २ लाख रुपये इनाममें दिये थे। देखो—आईन—इ—अकबरी प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद। पृ. ४०६.

२–इब्राहीमहुसेनमिर्जाके पिताका नाम महमदसुलतानमिर्जा था। इसका दूसरा नाम शाह मिर्जा भी था। उसके लड़केका नाम

रासे पाँच माइल दूर ' सरनाल ' तक आ पहुँचा है। अकबरके एक सेनापतिने सलाह दी कि, जबतक हमारी दूसरी सेना न आ जाय तबतक हमें आगे नहीं बढ़ना चाहिए और रातको छापा मारना चाहिए। अकबरने इस बातको बिलकुल नापसंद किया और कहा,–"रातको छापा मारना अनीतिका युद्ध है।" अकबर, मानसिंह, भगवानदास और अन्यान्य मुसलमान सर्दारोंके साथ नदी पार कर सरनाल आया और इब्राहीम हुसेन मिर्जाको, युद्ध कर ई. स. १५७२ के दिसंबरकी २४ वीं तारीखके दिन, उसने पराजित किया।

यह बात तो निर्विवाद है कि, अकबरने अविश्रान्त युद्ध करके, बहादुरी दिखाके और होशियारीसे कार्य करके अपनी आन्तरिक इच्छा पूर्ण की थी। उस की सबसे पहली और प्रबल इच्छा थी समस्त भारतमें अपना एकछत्र राज्य स्थापित करना। अनेक अंशोंमें उसने अपनी यह इच्छा पूरी की थी। दूसरे शब्दोंमें कहें तो इ. स. १५९५ तकमें तो वह उन्नति के सर्वोच्च शिखरपर पहुँच गया था।

अकबरने इच्छित फल प्राप्त किया, एकछत्र साम्राज्य स्थापित किया और सर्वत्र शान्ति फैला दी। यद्यपि ये बातें सही हैं तथापि वीरप्रसू भारतमाताकी, महाराणा प्रताप, जयमल, पत्ता, उदयसिंह, और हेमूके समान वीर सन्तानोंने, तथा किसी भी हिन्दु

मुज़फ्फरहुसेन मिर्ज़ा था। विशेषके लिए देखो आईन-इ-अकबरी प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादका पृ० ४६१–४६२.

१–हेमूने अकबरके अधिकारकी कुछ परवाह न कर आगरेको अपने कबजेमें करलिया था। मगर अति लोभके कारण वह अन्तमें कुरुक्षेत्रमें मारा गया था। पृष्ठ ४७–४८ में इस बातका उल्लेख होचुका है। यह ठीक है कि अन्तमें वह मारा गया था, मगर साथ ही यह भी ठीक है कि, वह वीरप्रसू भारतमाताका वीर पुत्र था। हेमूकी वीरताके संबंधमें प्रो० आज़ादने अपनी

राजाकी सहायता लिये विना अकेले अपनी फौजके साथ युद्धस्थलमें जानेवाली, मालवाधीश वाजवहादुरको परास्त करनेवाली, सम्राट्को

'दरवारे अकवरी' नामकी उर्दू पुस्तकके पृष्ठ ८४३ में वहुत चित्ताकर्षक बातें लिखी हैं। उनसे मालूम होता है कि, **हेमू** रेवाड़ीका रहनेवाला दूसर वनिया था। यद्यपि वह सुंदर शरीरवाला नहीं था तथापि वह प्रबंध करनेमें होशियार, उत्तम युक्तियोंसे कार्य करनेवाला और युद्धमें विजयलाभ करनेवाला था। वास्तवमें अवतक उसके गुण छिपाये और दुर्गुण ही प्रकाशित किये गये हैं। प्रो० **आज़ाद** कहते हैं कि, इस वनियेको उसका भाग्य गलीकूचोंमेंसे घसीटकर **सलीमशाह**की फौजके वाजारमें लेगया। वाजारमें दुकान लगाकर वह हरेकके साथ मिलजुलकर रहने लगा। लोग उससे महोव्वत करने लगे। परिणाममें वह **चौधरी** वनाया गया। धीरे धीरे वह कोतवाल और फौजदारके पद पर पहुँचा। अपने ओहदेपर रहकर उसने ईमान्दारीसे काम किया। सेवासे, मालिककी भलाईमें लगे रहनेसे अथवा लोगोंकी चुगलियोंसे—चाहे किसी भी सववसे हो—वह वादशाहका प्रिय होगया। इससे अमीर उमरावोंके कार्य उसके हाथमें आने लगे। अन्तमें उसके भाग्यने उसको वादशाहका सवसे वड़ा और प्यारा वज़ीर वना दिया।

चगताई वंशके इतिहास लेखक वनियेकी जातिको गरीव समझकर चाहे कुछ लिखें; मगर **हेमू**का प्रवंध उसके कानून और उसके हुक्म ऐसे दृढ थे कि, ढीली दालने गोश्तको दवा दिया। (वनियेने मुसलमानोंको नीचा दिखा दिया) फिर **महमूदआदिल** वादशाह जव पठानोंके युद्धमें मारा गया तव वह एक जवर्दस्त राजा वन गया।

उसी अवसरपर **दिल्ली** और **आगरे**के आसपास भयंकर दुष्काल पड़ा था। **वदाउनी**ने इसका हृदय-द्रावक वर्णन लिखा है। वह कहता है,—" उस समय देशमें ढाई रुपयेमें १ सेर मकई भी नहीं मिलती थी। भलेभले आदमी तो दर्वाजे वंदकरके घरहीमें बैठे रहते थे। दूसरे दिन उनके घर देखे जाते तो उनमेंसे दस वीस मुर्दे निकलते। गाँवों और जंगलोंको तो देखता ही कौन था? कफन कौन लावे और दफन कौन करे? गरीव अन्नकष्टको मिटानेके लिए जंगली वृक्षोंके छालपत्तोंपर दिन निकालते थे। अमीर गायों और भैंसोंको वेचते थे। लोग उन्हें खानेको लेजाते थे। जो लोग ऐसे जानवरोंको मारकर खाते थे उनके हाथपैर सूज जाते और थोड़े ही दिनोंमें वे मौतके शिकार वन जाते थे।

भी अपनी वीरतासे स्तंभित कर देने वाली बंदूक और धनुष चलानेमें सुनिपुण और रणस्थलमें पीठ दिखानेकी अपेक्षा मर मिटनेको ज्यादा पसंद करनेवाली कालिंजरकी राजकन्या, तथा गोंडवाणाकी राजधानी चौरागढ़ (यह इस समय जबलपुरके पास है) की रक्षिका महाराणी दुर्गावतीके समान वीर रमणियोंने अकबरको अपनी वीरताका जो परिचय दिया था उसको वह यावज्जीवन भूला न था । और क्यों, मानसिंह, टोडरमल, भगवानदास और बीरबलके समान महान योद्धाओंके नामोंको भी हम नहीं भूल सकते । इन्होंने अकबरकी सर्वत्र हुकूमत कायम करनेमें असाधारण सहायता की थी । ये कौनसे मुगल सन्तान थे? ये भी तो वीरप्रसू भारतमाता ही की सन्तान थे? उनकी वीरताके लिए भी भारत माता ही गौरवान्विता हो सकती है ।

कईबार तो मनुष्य मनुष्यको खाजाते थे। उनकी शकलें ऐसी बिगड़ गई थीं कि उन्हें देखकर डर लगता था । एकान्तमें यदि कोई अकेला आदमी मिल-जाता था तो उसके नाककान काटकर लोग खाजाते थे।

यद्यपि देशमें ऐसी भयंकर स्थिति थी; परन्तु कार्यदक्ष हेमूकी सेनापर उसका कुछ भी प्रभाव न हुआ । इसका कारण उसका पुरुषार्थ था । उसके यहाँ जो हाथी घोड़े थे वे भी हमेशा घी शक्कर खाते थे । सिपाहियोंका तो कहना ही क्या है ?

अन्तमें प्रो० आज़ाद कहते हैं,—" हेमू बनिया था: परन्तु उसके पराक्रम गूँज रहे हैं । वह बड़ा ही साहसी और धीर था; अपने मालिकका योग्य नौकर था । वह बहुत प्रेमी था । लोगोंके दिल हमेशा खुश रखता था। अकबर उस समय बालक था। अगर वह योग्य आयुमें होता तो ऐसे आद-मीको कभी अपने हाथसे न खोता । वह उसे अपने पास रखता और सन्तुष्ट करके उससे काम लेता । परिणाम यह होता कि, देश उन्नत बनता और राज्यकी नींव मजबूत होती ।

१–रानी दुर्गावती, यह मध्यभारतवर्षकी वीर रमणी थी । यह गोंडवाणा में–जो भट्टाके दक्षिणमें है–राज्य करती थी । विशेषके लिए देखो ' आईन-इ-अकबरी ' के प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद । पृ० ३६७ ।

भारतके इन वीरोंकी वीरता देखकर अकबरको यह विश्वास हो गया था कि, यदि भारतके वीर क्षत्रियोंमें फूट न होती तो मैं भारतमें कदापि साम्राज्यकी स्थापना नहीं कर सकता था। हायरे फूट! भारतको सर्वथा नष्ट कर डालने पर भी तू अबतक इस पवित्र देशसे अपना कालामुँह क्यों नहीं करती? कहाँ आर्यत्वकी रक्षाके लिए भूख और प्यासको सहने और जंगलोंमें भटकने वाले हिन्दु सूर्य महाराणा प्रताप! और कहाँ पदवियोंके (Titles) लिए मर मिटनेवाले—अपनी आर्यप्रजाको बर्बाद करने वाले आजके कुछ खुशामदी नामधारी हिन्दु राजा! ओ भारतमाता! ऐसे धर्मरक्षक और देशरक्षक वीरपुत्रोंको उत्पन्न करनेका गौरव अब फिरसे तू कब प्राप्त करेगी?

इतिहासके पृष्ठ इस बातको दृढ करते हैं कि, दूसरे मुसलमान बादशाहोंकी अपेक्षा अकबर प्रजाका विशेष प्यारा था। इतना ही नहीं अबतक भी इतिहास लेखकोंके लिए अकबर इतिहासका एक विषय हो गया है। ऐसा क्यों हुआ? इस के अनेक कारण बताये जासकते हैं।

पहला कारण तो यह था कि, हिन्दु, मुसलमान, पारसी, यहूदी, जैन, ईसाई आदि प्रत्येकपर उसकी समान दृष्टि थी। इतना ही नहीं उसने हरेक धर्मवालेको जुदाजुदा प्रकारके ऐसे फर्मान दिये हैं कि, जो यावच्चंद्रदिवाकरौ अकबरका स्मरण कराते रहेंगे।

दूसरा कारण यह है कि, उसने प्रत्येकको प्रसन्न रखनेके लिए अनेक सुधार भी किये थे। वेश्या और शराब के लिए उसने बड़ी कठोरता की थी। धनी या निर्धन कोई भी आवश्यकतासे अधिक नाज नहीं रख सकता था। बाजार भाव बढ़ाकर व्यापारी गरीबोंको कष्ट न दें, इस बातका खयाल रखनेकी उसने अपने कोतवालको सख्त ताकीद करदी थी। उसने सती होनेकी प्रथाको और बालविवाहको रोका था। बालविवाहको रोकनेके लिए उसने यह आज्ञा दी थी कि

लड़केका १६ बरसके और लड़कीका १४ बरसके पहले व्याह न किया जाय। उसने जैसे पुनर्विवाहका निषेध किया था, वैसे ही वृद्ध स्त्रियाँ युवकोंके साथ व्याह न करें इसका भी प्रबंध किया था। कहा जाता है कि मुसलमानोंमें उस समय यह रिवाज विशेष रूपसे प्रचलित था। सम्राट्का खयाल था कि, जो मनुष्य एकसे विशेष स्त्रियोंके साथ व्याह करता है वह स्वतः अपना नाश करता है। जो हिन्दू बलिदानके नाम जीवोंकी हिंसा करते थे उन्हें भी, उस कार्यको अन्यायका कार्य बताकर, रोक दिया था। रेवेन्यु विभागका सारा भार किसानोंपर है यह समझकर उसने कृषकोंके कई कष्टदायक 'कर' बंद कर दिये थे। इतना ही नहीं, हिन्दुराजाओंने जो 'कर' लगाये थे उन्हें भी उसने उठा दिया। उनसे जो 'कर' लिया जाता था वह भी मर्यादित था। वह 'कर' भी यदि किसीको भारी जान पड़ता तो अकबर उसमें भी कमी कर देता था। यदि कोई अपनी पैदावारका अमुक भाग देना चाहता था तो सम्राट् 'कर' के स्थानपर उसको ही स्वीकार कर लेता था। जिस वर्ष फसलें बिगड़जातीं, उस वर्षका 'कर' किसानोंसे बिलकुल ही नहीं लिया जाता था। 'कर' की व्यवस्थाका कार्य उसने टोडरमलको सौंपा था, कारण, वह पहलेहीसे जमींदार था, इसलिए इस विषयका उसे विशेष ज्ञान था।

प्रजाके लाभार्थ ऐसी ऐसी व्यवस्थाएँ करनेवाला राजा प्रजा-प्रिय क्यों न होता? समस्त धर्मोके लोगोंको समानदृष्टिसे देखने और प्रजाकी भलाईहीमें अपनी भलाई समझनेवाला राजा—चाहे व हिन्दु हो या मुसलमान, पारसी हो या यहूदी, जैन हो या बौद्ध, चाहे कोई भी हो—यदि संसारमें प्रशंसापात्र है; प्रजा उसको प्यार करती है तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

संक्षेपमें यह है कि अकबरकी राज्यव्यवस्थामें न्याय और दयाका मिश्रण था। न्याय विभागमें उसने जो सुधार किये थे वे उस जमानेके लिए बहुत ही सुधरे हुए कहे जा सकते हैं। उसके कानूनोंमें दया और प्रजा-प्रेम झलकते थे। अकबरने अपने ही लिए नहीं बल्के अन्यान्य सूबेदारों और ओहदेदारोंके लिए भी जो कानून बनाये थे उनमें उक्त दो बातें खास तरहसे लक्षमें रक्खी गई थीं। हम उसके सूबेदारोंहीके कानूनोंको देखेंगे। उसके प्रत्येक सूबेदारको निम्न लिखित बातोंपर खास तरहसे ध्यान देना पड़ता था।

१—सदा लोगोंके सुखका ध्यान रखना।

२—गंभीरतापूर्वक ऊहापोह किये बिना किसीकी जिंदगी नहीं लेना; अर्थात् मृत्युकी सजा नहीं देना।

३—न्यायके लिए जो अर्जी दे उसमें देर करके, न्यायके इच्छुकको दुःखी नहीं करना।

४—पश्चात्ताप करनेवालोंको क्षमा करना।

५—रस्ते अच्छे बनाना।

६—उद्योगी किसानोंसे मित्रता करना अपना कर्तव्य समझना।

उपर्युक्त बातोंमें किन बातोंका समावेश नहीं होता है?

अब अकबरकी कुछ अन्यान्य व्यवस्थाओंका दिग्दर्शन कराया जायगा।

अकबरके समयके सिक्कोंके लिए कहा जाता है कि, उसने पहलेके राजाओंकी छापवाले सिक्कोंको गलाकर अपनी नवीन छापके सिक्के चलाये थे। अकबरके एक रुपयेके सिक्केके ४० 'दाम' होते थे। एक 'दाम' वर्तमानके एक पैसेसे कुछ विशेष होता था। 'दाम' ताँबेका सिक्का था और रुपया चाँदीका सिक्का था। अकबरका

'लालीजलाली' नामक सोनेका सिक्का भी चलता था। इनके अलावा एक चौकोना सोनेका सिक्का चलता था। उसके मूल्यमें प्रायः परिवर्तन हुआ करता था।

ईस्वी सन् १५७५-७६ से अकबरने अपने सिक्कों में 'अल्लाहो अकबर' लिखवाया था।

मि. डब्ल्यु. एच. मोरलेंड. का कथन है कि,—"इस समय रुपयेका वजन १८० ग्रेन है। अकबरका सिक्का इससे वज़नमें कुछ कम था; मगर वह खरी चाँदीका बना हुआ था।

अकबरकी मुहरों (Seals) के लिए कहा जाता है कि, वे भिन्न भिन्न प्रकारकी थीं। एकमें तो केवल उसीका नाम था। दूसरीमें उसके तैमूरतक पूर्वजोंके नाम थे।

---

१ अकबरके समयके सिक्कोंकी बातें जाननेके लिए परिशिष्ट (ज) देखो।

२ मुहरें लगानेका रिवाज जैसे अब है वैसे ही पहले भी था। वे मुहरें भिन्न २ प्रकारकी रहती थीं। अबुलफजलके कथनानुसार सम्राट् अकबरकी मुहरें अनेक तरहकी थीं। उनमें एक ऐसी थी जिसको मौलाना मकसूदने अकबरकी हुकूमतके प्रारंभहीमें खोदकर बनाया था। यह लोहेकी बनी हुई और गोल थी। 'रीका' (पौन गोल भागमें सीधी लाइनें लिखनेको 'रीका' कहते हैं) पद्धतिमें शाहन्शाहका और तैमूरसे लेकर अन्यान्य प्रसिद्ध पूर्वजों के नाम खुदे हुए थे। दूसरी एक मुहर ऐसीही गोल थी। मगर उसमें 'नस्तालिक' (जिसमें सभी लाइनें गोल लिखी जाती हैं) पद्धतिका नाम था। इसमें केवल सम्राट्हीका नाम था।

तीसरी एक मुहर थी वह न्यायविभागके उपयोगमें आती थी। वह 'मेहराबी' (जिसका आकार छः कोनेका लंबा तथा गोल होता है) के समान थी। उसके ऊपर बीचमें सम्राट्का नाम था और चारों तरफ निम्न लिखित आशयका लेख लिखा था,—

"ईश्वरको प्रसन्न करनेका साधन प्रामाणिकता है। जो सीधे रस्ते चलता है उसे भटकते मैंने कभी नहीं देखा।"

इस बातको हम भली प्रकार जानते हैं कि, अकबरके समयमें,

चौथी एक मुहर थी उसको **नमकीन**ने बनाया था। (यह **नमकीन** काबुलका था) पीछेसे इस प्रकारकी छोटीबड़ी मुहरोंको दिल्लीके मौलाना **अलीअहमद**ने सुधारा था। इनमेंसे जो छोटी और गोल मुहर थी वह '**उजुक**' (चगताई) के नामसे पहचानी जाती थी। वह 'फ़र्मान-ई-सबतीस' के लिए काममें आती थी। 'यह फ़र्मान-ई-सबतीस' तीन बातोंके लिए निकाला गया था। (१) मनसबका निर्वाचन करनेके लिए (२) जागीरके लिए (३) सयूंघालके लिए। दूसरी एक बड़ी थी। इसमें शाहन्शाहके पूर्वजोंके नाम थे। यह पहले तो विदेशी राजाओंको पत्र लिखे जाते थे, उन पर लगानेके काम में आती थी; पीछेसे उपर्युक्त 'फ़र्मान-ई-सबतीस' में भी लगाई जाने लगी।

इसके सिवा दूसरे फ़र्मानोंके लिए एक चोकोर थी। उसके ऊपर '**अल्लाहो अकबर जल्ले जलालहू**' लिखा था।

ऊपर जो 'उजुक' नामकी मुहर बताई गई है वह **अकबर**की अँगुलीमें पहननेकी अंगूठी थी। **अकबर**का पिता हुमायुँ भी ऐसी अंगूठी रखता था, और उसका मुहरकी तरह उपयोग करता था। यह बात इस पुस्तकके २५३ वें पृष्ठमें दिये हुए फुटनोटके वृत्तान्तसे भी प्रमाणित होती है।

कहा जाता है कि, ई. स. १५९८ में (**अकबर**के राज्यके ४२ वें वर्षमें) **अकबर**ने ईसाइ उपदेशकों (Jesuit missionaries) को जो फर्मान दिया था उसकी मुहरको देखनेसे पता चलता है कि **अकबर**की मुहरमें सब आठ गोलाकार थे। उसके बाद **जहाँगीर**ने अपने नामका एक गोलाकार और बढ़ाकर नौ कर दिये थे। उसके पीछेसे आनेवाले बादशाहोंने भी अपने अपने नामका एक एक गोलाकार बढ़ादिया था।

उपर्युक्त प्रकारसे अकबरकी मुहरमें आठ गोलाकार थे इसका कारण यह जान पड़ता है कि, वह **तैमूरलंग**से आठवीं पीढीमें था।

कई लेखकोंका अनुमान है कि, भारतमें, मुगलोंकी हूकूमतमें भी राजाओं, प्रधानों, बड़े बड़े अधिकारियों तथा फ़ौजी अधिकारीयोंकी भी उनके रुतबेके माफ़िक, भिन्न भिन्न मुहरें थीं। उनमें उनके नामोंके अलावा **सम्राट्**की दी हुई पदवियाँ भी उनमें खुदी रहती थीं। रुतबेके अनुसार मुहरको काममें लानेके लिए मिले हुए हकका संवत् और हिजरी सन् भी उनमें लिखा रहता था।

रेलगाड़ियाँ या हवाई विमान नहीं थे। एक जगहसे दूसरी जगह समाचार पहुँचानेका साधन सिर्फ़ कासीद थे। तो भी सरलतासे डाक पहुँचानेके लिए प्रति छः माइल एक आदमी रक्खा गया था। उसके द्वारा हर जगह डाक पहुँचाई जाती थी। बहुत दूरके आवश्यक समाचार पहुँचानेके लिए साँढनी सवार थे। वे समाचार पाते ही नियत स्थानपर पहुँचानेके लिए तत्काल ही रवाना होजाते थे।

अकबरने प्रजाके सुखके लिए जो अनुकूलताएँ करदी थीं उनसे एक ओर जैसे प्रजा निश्चिंत थी वैसे ही दूसरी ओर दैनिक उपयोगमें आनेवाली वस्तुएँ इतनी सस्ती थीं कि, गरीबसे गरीब मनुष्यके लिए भी अपना गुजारा चलाना कठिन नहीं था। बेशक अभीकी तरह चलनी सिक्कोंकी बाहुल्यता—कागजके नोटों, चेकों और नकली धातुके सिक्कों की बाहुल्यता—न थी। मगर जब आवश्यक पदार्थ सस्ते होते हैं तब विशेष सिक्कोंकी आवश्यकता ही क्या रहजाती है? मनुष्य जातिको

मुगल बादशाहोंकी मुहरोंमें साधारणतया जो कुछ लिखा रहता था वह नीचेसे ऊपर पढ़ा जाता था। इससे राज्यकर्ता सम्राट्का नाम सबसे ऊपर रहता था। कहा जाता है कि, मुगलोंकी उन्नतिके समयमें उनकी मुहरें बहुत छोटी अर्थात् १ या १॥ इंच व्यासकी रहती थीं। उनमें जो कुछ लिखा रहता था वह बहुत ही सादी और नम्र भाषामें रहता था। पीछे जब मुगलोंका पतन प्रारंभ हुआ तब बड़े बननेकी तीव्र इच्छा रखनेवाले प्रधानोंने, केवल 'नाम' के शाहन्शाहोंके हाथोंमेंसे राज्याधिकार अपने हाथमें लिया और उनके नामोंकी मुहरें बहुत बड़ी बड़ी बनवाईं। वे बहुत सुंदर थीं। उनमें के लेख बहुत ऊंची श्रेणिके थे।

मुगलोंकी मुहरोंसे संबंध रखनेवाली विशेष बातें जाननेके लिए 'जर्नल ऑफ दी पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी' के पाँचवें वॉल्यूमके पृ० १०० से १२५ तकमें छपा हुआ The Rev. Father Felix (o. c.) का लेख बहुत उपयोगी है। तथा, देखो 'आइन-ई-अकबरी' के प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद। पृ० ५२ व १६६.

अपने पेटकी चिन्ता सबसे पहले और ज्यादा होती है; और पेटका खड्डा चलनी सिक्कोंसे—नोटोंसे—या रुपयोंसे नहीं भरता। इसको भरनेके लिए अनाज, घी, दूध, दही आदि पदार्थोंकी आवश्यकता है। ऐसे पदार्थ उस समय कितने सस्ते थे, इस विषयमें W. H. Moreland नामक विद्वान्का 'दी वेल्यु ऑफ मनी एट दी कोर्ट ऑफ अकबर' नामक लेख[1] अच्छा प्रकाश डालता है। उसके लेखसे मालूम होता है कि, उस समय सदा उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंका भाव निम्न प्रकारसे था :—

गेहूँ	१ रु. के १८५	रतल।
जव	१ रु. के २७७॥	रतल।
हलकेसे हलके चावल	१ रु. के १११	रतल।
गेहूँका आटा	,, १४८	,,
दूध	,, ८९	,,
घी	,, २१	,,
सफेद शक्कर	,, १७	,,
काली शक्कर	,, ३९	,,
नमक	,, १३७	,,
जवार	,, २२२	,,
बाजरी	,, २७७॥	,,

उपर्युक्त दरसे[2] यह बात सहज ही समझमें आसकती है कि,

१ देखो; जर्नल ऑफ दी रॉयल एसियाटिक सोसायटीके इ. स. १९१८ के जुलाई और अक्टोबरके अंक. पे. ३७५ से ३८५ तक।

२ विन्सेंट ए. स्मिथने अपनी 'अकबर' नामकी पुस्तकके पृ० ३९० में अकबरके समयके जो भाव दिये हैं, वे भी उपर्युक्त भावोंके साथ लगभग मिलते जुलते ही हैं। कुछ फर्क घीके भावमें मालूम होता है। अर्थात्

जीवनोपयोगी पदार्थ उस समय कितने सस्ते थे। कहाँ आज रुपयेके ९ रतल गेहूँ और कहाँ उस समय १८९ रतल? कहाँ आज रु. का ३–४ रतल गेहूँका आटा और कहाँ उस समय १४८ रतल? कहाँ आज रु. का ९ रतल दूध और कहाँ उस समय ८८ रतल! कहाँ आज रु. का लगभग पौन रतल घी और कहाँ उस समयका २१ रतल। क्या भारतवर्षके अर्थशास्त्री बता सकते हैं कि, देश पहलेकी अपेक्षा उन्नत हुआ है या अवनत? जिस देशमें बहुत बड़ी संख्याको एक वक्तका अनाज (घी, दूधकी तो बात ही नहीं) मिलना भी, कठिन हो; पेटमें एक एक बालिश्तके खड्डे पड़ गये हों; आँखें ऊँडी धँस गई हों, गाल सूख गये हों, चलते पैर काँपते हों; और सन्तान निर्माल्य पैदा होती हो; उस देशको उन्नत बतानेका साहस कौन करसकता है? संभव है कि देशमें सिक्के (जैसा कि, पहले कहा जाचुका हैं) बढ़े हों; मगर उन सिक्कोंसे मनुष्य जातिकी शारीरिक और मानसिक शक्तिके विकासमें क्या लाभ हो सकता है?

यदि कोई कहे कि 'अभी जो भाव बढ़ गये हैं इसका कारण लड़ाई है?[1]' तो इसमें कुछ सत्यांश है; मगर जिस समय देशपर लड़ाईका कोई प्रभाव नहीं हुआ था उस समय भी—लड़ाईके पहले भी—वस्तुएँ सस्ती न थीं। उपर्युक्त विद्वान्ने अकबरके भावोंके साथ ही सन् १९१४ के भाव लिखे हैं। वे इस प्रकार हैं,—

मि० मोरलेंडने घीका भाव ऊपर लिखे अनुसार रु. का २१ रतल बताया है और मि० स्मिथने रु. का १२½ रतल लिखा है।

१ लड़ाईके बाद जो भाव बढ़े हैं वे लड़ाईके वक्तसे सवागुने हैं। इससे स्पष्ट है कि, इसका कारण खास लड़ाई नहीं मगर विदेशोंमें मालका जाना है।

अनुवादक।

गेहूँ	१ रु. के	२९ रतल	
जव	,,	२९ ,,	
चावल	,,	१९ ,,	
गेहूँका आटा	,,	२१ ,,	
दूध	,,	१६ ,,	
घी	,,	२ ,,	(लगभग)
सफेद शक्कर	,,	९ ,,	
काली शक्कर	,,	१० ,,	

इससे यह स्पष्ट है कि, युद्ध के पहले भी ये वस्तुएँ बहुत सस्ती न थीं। वृद्ध पुरुषोंका कथन है कि प्रति दिन जीवनोपयोगी वस्तुएँ महँगी ही होती जारही हैं।

ऐसा क्यों हुआ ? इस प्रश्नका उत्तर देनकी यह जगह नहीं है। इसके लिए बहुतसा समय और स्थान चाहिए। तो भी इतना तो कहना ही होगा कि, वस्तुओंकी कीमतका आधार उसके निकास, बहुतायत और अच्छी फसलपर है। देशका माल जैसे जैसे बाहर जाने लगा वैसे ही वैसे सदैव काममें आनेवाले पदार्थ महँगे होने लगे, गरीबों और साधारण लोगोंके हाथसे वे बिलकुल निकल गये। घृत, दही और दुग्ध तो बहुत ही ज्यादा महँगे हैं। इसका कारण पशुओं-की कमी है। घी, दूध और दही देनेवाले पशु एक ओर विदेश भेजे जाते हैं ओर दूसरी ओर देशहीमें व्यापारके नाम कतल किये जाते हैं। दोनों तरहसे पशुओंकी कमी होने लगी। यही कारण है कि, भारतवासियोंके जीवनभूत दुग्ध—दहीकी कमी हो गई है। अकबर यद्यपि मुसलमान था तथापि उसके समयमें पशुओंका इतना संहार नहीं होता था। इतना ही क्यों, उसने गाय, भैंस, बैल और भैंसेका मारना तो अपने राज्यमें प्रायः बंद ही कर दिया था। इस बातका पहले उल्लेख

हो चुका है । इसीलिए उस समय दुग्ध, दही, घृतादि बहुत सस्ते थे ।

दूसरी तरफ़ हमारे देशसे गया हुआ बहुतसा कच्चा माल नये नये रूपोंमें वापिस यहाँ आने लगा । धर्म और देशका अभिमान नहीं रखनेवाले लोग उसपर फ़िदा होकर उसे ग्रहण करने लगे । हालत यहाँ तक बिगड़ी कि, अपने आर्यत्वके साथ अपने वेष-भूषाको भी लोगोंने छोड़ दिया । जब हम विदेशी वस्तुएँ ग्रहण करने लगे तब स्वदेशी वस्तुएँ बिकने और फलस्वरूप बननी बंद होगई । यह बात तो स्पष्ट है कि, वस्तुओंकी कीमतका आधार उनकी पैदाइश ही है । ऊपरकी चीजोंमेंसे एक चीजके विषयमें यहाँ कुछ लिखा जायगा ।

अकबरके समयमें सफेद शक्कर बहुत ज्यादा महँगी थी । इसका सबब यह था कि, सफेद शक्करको सुधारनेकी-साफ़ करनेकी रीति बहुत ही थोड़े लोग जानते थे । इसीलिए सफ़ेद शक्कर कम होती थी ।

पहले जो भाव लिखे गये हैं उनसे मालूम होता है कि, अकबरके समयमें गरीबसे गरीब आदमीको भी अपना गुजारा चलानेमें कठिनता नहीं पड़तीथी । हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि, एक आदमी पाँच छः आने महीनेमें अच्छी तरहसे अपना निर्वाह कर सकता था । मगर आज यह दशा है कि, साधारणसे साधारण मनुष्यको भी सिर्फ़ खुराकके लिए १५-२० रु. मासिक खर्चने पड़ते हैं । इसको देशका दुर्भाग्य न कहें तो और क्या कहें ?

अब हम अकबरकी कुछ आन्तरिक व्यवस्थाओंके ऊपर प्रकाश डालेंगे ।

राज्यव्यवस्थाओंमें अन्तःपुर (जनानख़ाना) प्रायः क्लेशका कारण हुआ करता है। अकबर इस बातको भली प्रकार जानता था। इसीलिए वह अपने अन्तःपुरकी व्यवस्थापर विशेष ध्यान रखता था। उसने अन्तःपुरकी स्त्रियोंके दर्जे बनाये थे और उनको न्यूनाधिक मासिक ख़र्च—जितना जिसके लिए नियत किया गया था—मिला करता था। अबुल्फ़ज़लके कथनानुसार पहले दर्जेकी स्त्रियोंको १०२८ से १६१० रुपये तक मासिक खर्चा मिलता था। जनानख़ानेके मुख्य नौकरोंको २०) से ५१) रु. तक और साधारण नौकरोंको २) से ४०) रु. तक मासिक वेतन मिलता था। (ध्यानमें रखना चाहिए कि **अकबर**के समयका रुपया ५५ सेंटके बराबर था) स्त्रियोंमेंसे किसीको कुछ जरूरत होती तो उसे ख़ज़ानचीसे अर्ज़ करनी पड़ती थी। अन्तःपुरके अन्दरके हिस्सेकी चौकी स्त्रियाँ करती थीं। बाहरके भागमें नाज़िर, दर्बान और फ़ौजी सिपाही अपने अपने नियत स्थानोंपर पहरा देते थे। **अबुलफ़ज़ल** लिखता है कि, ई. सन् १५९५ वे में **अकबर**को अपने परिवारके खानगी खर्चमें ७७। (सवासतहत्तर) लाखसे भी अधिक रुपये देने पड़े थे।

कई लेखकोंका मत है कि, अकबरके मुख्य दस स्त्रियाँ थीं। उनमेंसे तीन हिन्दू थीं और शेष थीं मुसलमान।

मि. ई. बी. हेवेलका कथन है कि, उसके बहुतसी स्त्रियाँ थीं। वह तो यहाँ तक लिखता है कि,—"मुग़लोंकी दन्तकथाओंके अनुसार बादशाह यदि किसी भी विवाहित स्त्रीपर मुग्ध होजाता था तो उसके पतिको मजबूरन् तलाक देकर, अपनी स्त्री बादशाहके लिए, छोड़ देनी पड़ती थी।" हम नहीं कह सकते कि, इसमें सत्यांश कितना है ? चाहे कुछ भी था मगर उस समयकी दृष्टिसे,

यह कहा जा सकता है कि, अकबरके स्त्रियाँ बहुत थोड़ी थीं। कई उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध होती है। कहा जाता है कि राजा मान-सिंहके १५०० स्त्रियाँ थीं। उनमेंसे ६० तो उसके साथ ही सती हुई थीं। अकबरके एक दूसरे मनसबदारके १२०० स्त्रियाँ थीं। इतना ही क्यों, हुमायुँ और जहाँगीरके भी अकबरसे विशेष स्त्रियाँ थीं।

आधुनिक लेखकोंने, मालूम होता है कि, अकबरकी स्त्रियोंके विषयमें एक दूसरी बातका विशेष रूपसे ऊहापोह किया है। वह यह है कि अकबरकी स्त्रियोंमें कोई ईसाई स्त्रि भी थी या नहीं ? इस विषयमें सबसे सेंट झेवियर्स कॉलेजके फादर एच. होस्टेन, स्टेट्समेन द्वारा सन् १९१६ में यह कहनेको आगे आये थे कि,–" अकबरके अन्तःपुरमें एक ईसाई स्त्री भी थी।" इसके बाद अनेक इतिहासका-रोंने इस विषयमें ऊहापोह किया है, मगर अबतक यह निश्चय नहीं हुआ कि, अकबरकी कौनसी स्त्री ईसाई थी ? अस्तु।

दूसरे मुसलमान बादशाहोंकी अपेक्षा ही नहीं बल्के अनेक हिन्दू राजाओंकी अपेक्षा भी अकबरने विशेष ख्याति पाई थी। इसका कारण उसके गुण और उसकी कार्यदक्षता ही है। प्रजाका प्यारा बनना कुछ कम चतुराई नहीं है। यह बात तो निर्विवाद है कि, ख्याति और सम्मान प्राप्त करनेकी इच्छा हरेकको रहती है। मगर कैसे आचरणोंसे यह इच्छा पूरी होती है ? इसका भली प्रकारसे जब-तक ज्ञान नहीं होता तबतक यह इच्छा अपूर्ण ही रहती है। इतना ही नहीं कई बार तो इसका परिणाम उल्टा होता है। वर्तमान समयमें भी भारतमें अनेक वॉइसराय आये मगर लोकप्रिय होनेका सम्मान तो केवल लॉर्ड रीपन और लॉर्ड हार्डिंजको ही मिला। दूसरे भी लोक-प्रिय होनेकी आशा तो साथमें लाये थे मगर उनकी आशा पूर्ण न

हुई। इसका कारण उनके लक्ष्यबिंदुकी त्रुटि थी। इस समय अकबरकी केवल हिन्दु-मुसलमान ही नहीं बल्के युरोपिअन विद्वान् भी प्रशंसा करते हैं। इसका कारण उसके गुण ही थे। यद्यपि अकबर एक मनुष्य था और उसमें अनेक दुर्गुण भी थे, जिनका जिकर गत तीसरे प्रकरणमें किया जा चुका है; तथापि यह कहना ही पड़ेगा कि, उसके कई असाधारण गुणोंने उसके दुर्गुणोंको ढक दिया था। अकबरके गुणोंको देखकर कई लेखक तो यहाँ तक कहते हैं कि,— " अकबरने सिंहासनको देदीप्यमान कर दिया था। " कारण-सिंहासनस्थ राजाका प्रधानधर्म प्रजाको सुखी बनाना; प्रजाका कल्याण करना है। अकबरने भली प्रकारसे इस धर्मको पाला था। इसी लिए कहा जाता है कि, उसने सिंहासनको अलंकृत किया था।

अकबरमें सबसे बड़ा गुण तो यह था कि वह बड़ेसे बड़े शत्रुको भी यथासाध्य नर्मीहीसे अपने अनुकूल,-अपने आधीन बना लेता था। वह जैसा साहसी था वैसा ही सशक्त और सहनशील भी था। अपने पर आनेवाले कष्टोंको वह बड़ी धीरजके साथ सह लेता था।

अकबर मानता था कि,-" **जिन राजकार्योंको प्रजा कर सकती है उनमें राजाको दखल नहीं देना चाहिए। कारण,- प्रजा यदि भ्रममें पड़ेगी तो राजा उसको सुधार लेगा, मगर राजा ही यदि भ्रममें पड़ जायगा तो उसे कौन सुधारेगा ?**

कैसा अच्छा खयाल है! प्रजा-स्वातंत्र्यके कितने ऊँचे विचार हैं। प्रजाको सिर नहीं उठाने देने के लिए क़ानूनके नये नये बोझे तैयार करनेवाले; प्रजा अपने दुःखोंसे व्याकुल होकर चिल्ला न उठे

इस लिए उसके मुँह पर ताले ठोकनेवाले हमारे आधुनिक शासन-कर्त्ता क्या अकबरके विचारोंसे कुछ सबक सीखेंगे?

अकबरके समस्त कार्योंका साध्यबिंदु एक था,—भारतको गौरा-वान्वित करना। इस साध्य-बिंदुको ध्यानमें रखकर ही उसने अपने शासनकालमें, लुप्त प्रायः कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि विद्याओंका पुन-रुद्धार किया था; उन्हें उन्नत बनाया था।

वह जैसा दयालु था वैसा ही दानी भी था। अकबर जब दर्बारमें बैठता तब एक खज़ानची बहुतसी मुहरें रुपये लेकर सम्राट्के पास खड़ा रहता था। उस समय यदि कोई दरिद्र आ जाता था तो अकबर उसे दान देता था। वह जब बाहिर फिरने निकलता था उस समय भी उसके साथ द्रव्य लिए हुए एक आदमी रहता था। रास्तेमें यदि कोई गरीब उसको दिखाई दे जाता था या कोई माँगने-वाला उसके सामने आजाता था, तो वह उसे कुछ न कुछ दिये बिना नहीं रहता था। लूले, लंगडों, अंधों या इसी तरहके दूसरे लाचार लोगोंपर अकबर विशेष दया दिखाता था। अकबरने न्यायमें जैसे हिन्दु, मुसलमान या धनी निर्धनका भेद नहीं रक्खा था उसी तरहसे दान देनेमें भी उसने जाति, धर्म, मूर्ख, पंडित आदिका भेद नहीं रक्खा था। अपने राज्यमें अनेक स्थलोंपर उसने अनाथालय खोले थे। फतेहपुर सीकरीमें दो अनाथाश्रम थे। एक हिन्दुओंके लिए और दूसरा मुसलमानोंके लिए। हिन्दुवाले आश्रमका नाम धर्मपुर था और मुसलमानोंवाले आश्रमका नाम खैरपुर।

कहा जाता है कि, अकबरने कई ऐसी हुनर—उद्योग शालाएँ एवं कारखाने खोले थे जिनमें तोपें, बंदूकें, बारूद, गोले, तरवारें, ढालें

आदि युद्धकी सामग्रियाँ तैयार होती थीं। एक कारख़ानेमें इतनी बड़ी तोपें बनती थीं कि उनमें बारह मन वजनका गोला आजाता था। लोग इतनी बड़ी तोपको देखकर, सुनकर आश्चर्यान्वित होते थे; परन्तु युरोपके महा समरमें जिन शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग हुआ है उन्हें देखसुनकर लोगोंका वह आश्चर्य जाता रहा है। वैसी तोपें अब साधारण बात समझी जाने लगी हैं।

अकबर समझता था कि, दुराचार पापका मूल और अवनतिका प्रधान कारण है। जिस देशमें ब्रह्मचर्यका सम्मान नहीं होता उस देशकी उन्नति नहीं होती; जिस जातिमें ब्रह्मचर्यका नियम नहीं होता वह जाति निःसत्त्व होजाती है; और जिस कुटुंबमें ब्रह्मचर्यका निवास नहीं होता वह अपमानित होता है,—वह कभी गौरवान्वित नहीं होता। अकबरने अपनी प्रजाको ऐसे दुराचारवाले व्यसनोंसे दूर रखनेके अनेक उपाय किये थे। उसने वेश्याओंके लिए शहरसे बाहर रहनेका प्रबंध किया था। जिस स्थानपर वे रहती थीं, उसका नाम उसने ' शैतानपुर ' रक्खा था। सम्राट्ने ' शैतानपुर ' के नाके पर एक चौकी बिठाई थी। चौकीका अहलकार वेश्याके यहाँ जानेवाले या वेश्याको अपने यहाँ बुलानेवालेका नाम, उसके पूरे पते सहित, लिख लेता था।

यह बात उपर कई बार कही जाचुकी है कि, अकबर जैसा सहनशील था वैसा ही कार्यकुशल भी था। यदि कोई उसे अचानक कभी कोई अप्रिय बात कह देता था तो अकबर एकदम उसपर कुपित नहीं होजाता था। वह पहली बारकी भूल समझकर उसे क्षमा कर देता था। जिस कारणसे मनुष्य उत्तेजित होता था उस कारणको यदि उचित होता तो, मिटानेका वह प्रयत्न करता था। लोगोंमें यह प्रसिद्ध

होगया था, जैसा पहले कहा जा चुका है, कि अकबर मुसलमान धर्मसे भ्रष्ट होगया था। कहा जाता है कि, तुरानके राजा अब्दुल्लाखाँ[1] उज्बेगने भी अकबरके धर्मभ्रष्ट होनेकी अनेक झूठी सच्ची बातें सुनी थीं, इसलिए इसके संबंधमें अकबरको उसने एक पत्र लिखा था। अकबरने उसका उत्तर इस प्रकार दिया था,—

"लोग लिख गये हैं कि ईश्वरके एक लड़का था। पैगम्बरके लिए भी कई कहते हैं कि वह तो जादूगर था। जब ईश्वर और पैगम्बर भी लोगोंकी निंदासे न बचे तब मैं कैसे बच सकता हूँ?"

चाहे कुछ भी था; परन्तु अपने आपको निर्दोष मनानेके लिए उसने कितना सुंदर उत्तर दिया था!

अकबर साहित्यका पूरा शौकीन था। साहित्यमें धर्मशास्त्रों और ज्योतिष, वैद्यक आदि समस्त विद्याओंका समावेश होजाता है। अकबर सबमें रुचि रखता था, इसीलिए अथर्ववेद, महाभारत, रामा-

---

१ उज्बेग लोगोंके और मुगलोंके आपसमें चिरकालसे शत्रुता थी। इस शत्रुताका अन्त इस अब्दुल्लाखाँ उज्बेगकी मृत्यु (ई. स. १५९७) के बाद हुआ था। ई. स. १५७१ में इसी अब्दुल्लाखाँका एक दूत अकबरके दर्बारमें आया था। अकबरने उसका उचित सत्कार किया था। अकबरने ता. २३ सन् १५८६ ई. को अब्दुल्लाखाँके पास एक पत्र भेजा था। उसमें लिखा था,—

"काफिर फिरंगियोंका-जो समुद्रके टापुओंपर आकर बस गये हैं— मुझे नाश करना चाहिए। ये विचार मैंने अपने हृदयमें रख छोड़े हैं।

"उन लोगोंकी संख्या बहुत बढ़ गई है। वे यात्रियों और व्यापारियोंको कष्ट पहुँचाते हैं। हमने खुदजाकर रस्ता साफ करनेका इरादा किया था..........."

देखो डा० विन्सेंट ए. स्मिथके अंग्रेजी अकबरके पृ० १०, १०४, और २६५.

यण, हरिवंशपुराण तथा भास्कराचार्यकी लीलावती और इसी तरहके दूसरे खगोल तथा गणित विद्याके ग्रंथोंका उसने फ़ारसीमें अनुवाद करवाया था। संगीत विद्याके सुनिपुण विद्वानोंका भी उसने अपने दर्बारमें अच्छा सत्कार किया था। कहा जाता है कि, उसके दर्बारमें ५९ कवि थे। फ़ैज़ी उन सबमें श्रेष्ठ समझा जाता था। १४२ पंडित और चिकित्सक थे। उनमें ३९ हिन्दु थे। संगीत विशारद सुप्रसिद्ध गायक **तानसेन** और **बाबा रामदास** भी अकबरकी ही सभाके चमकते हुए हीरे थे। ऐसे भिन्न भिन्न विषयोंके विद्वानोंका आदर–सत्कार ही बता देता है कि **अकबर** पूर्ण साहित्यप्रेमी था।

अकबर इस बातको भली प्रकार जानता था कि, बड़े विभागोंमें पोल भी बड़ी ही होती है। इस बातका उसे कई बार अनुभव भी हुआ था। और जैसे जैसे उसको इस बातका विशेष अनुभव होता गया, वैसे ही वैसे वह स्वयं प्रत्येक बड़े विभागका निरीक्षण करने लगा। **अकबर**के अनेक विभागोंमें एक विभाग ऐसा भी था कि, जिसमें 'जागीर' और 'सयुंघाल[1]'का कार्य होता था। यह एक ऐसा

१ सयुंघाल यह चगताई शब्द है। इसका अर्थ होता है जीवन–पोषणकी सहायता। इसका अरबी शब्द है 'मदद-उल-माश' फ़ारसीमें इसके लिए 'मदद-इ-माश' शब्द आता है। इसके विषयमें **अबुलफ़ज़ल** लिखता है कि, **अकबर** चार प्रकारके मनुष्योंको, उनके गुज़ारेके लिए, पेन्शन अथवा जमीन देता था। उनके प्रकार ये हैं-(१) जो संसारसे अलग रहकर ज्ञान और सत्यकी शोध करते थे। (२) (३) जो निर्बल एवं अपाहिज होनेसे कुछ भी कार्य नहीं कर सकते थे (४) जो उच्च कुलमें जन्म पाकर भी ज्ञानके अभावसे अपना भरण–पोषण नहीं कर सकते थे। इन चार प्रकारके मनुष्योंको जो रकम गुज़रेके लिए दी जाती थी वह 'मदद-ई-माश' कहलाती थी। इसका समावेश सयुंघालकी अंदर हो जाता है। देखो आईन-इ-अकबरी के प्रथम भागके अंग्रेज़ी अनुवादका पृ० २६८–२७०

विभाग था कि, अप्रामाणिक मनुष्य इसमेंसे इच्छानुकूल रकम हड़प कर सकता था। मगर अकबर इतनी सावधानीसे उसकी देखरेख करता कि एक पाई भी उसमेंसे कोई नहीं खा सकता था। शेख़ अब्दुल्नबीके हाथमें जब इस विभागका कार्य था तब उसने कुछ गोटाला किया था; परंतु अकबरने तत्काल ही इसको जान लिया था। सन् १५७८ ई. में उसको इस विभागसे दूर कर मख्दूमुलमुल्कके[2] साथ मक्का भेज दिया था और उस विभागको अपने अधिकारमें लिया था।

१ शेख अब्दुलनबीके पिताका नाम शेख़ अहमद था। वह इंदरी। जिला 'गंगो' (सहारनपुर) का रहनेवाला था। उसके पितामहका नाम अब्दुलकदूस था। अब्दुल्नबी 'सर्युघाल' भागमें ई. सन् १५६४ से १५७८ तक रहा था। जब कभी किसीको जमीन देनी होती थी तब उसे मुज़फ्फरख़ाँसे जो उस समय वज़ीर और वकील था सलाह लेनी पड़ती थी। ई. स. १५६५ में उसको 'सदरे सदूर' की पदवी मिली थी। अब्दुल्नबी और मख्दूमुलुल्कके आपसमें बहुत विरोध था। मखदूमने उसके विरुद्ध कई लेख प्रकाशित कर उसे शारवानके खिज़रख़ाँ और मीरहब्शीका ख़ूनी बताया था। अब्दुल्नबीने मख़दूमको मूर्ख प्रसिद्ध कर शाप दिया था। इसके लिए ही उल्माओंमें दो दल हो गये थे। अकबरने अब्दुल्नबी और मख़दूम दोनोंको सन् १५७९ ई० में मक्काकी तरफ़ रवाना कर दिया था और बगैर हुक्म वापिस हिन्दुस्थानमें नहीं आनेकी सख़्त ताकीद कर दी थी। अब्दुल्नबीको मक्का जाते समय अकबरने सत्तर हजार रुपये दिये थे यह जब मक्कासे लौटकर वापिस आया तब इसकी जाँच करनेका काम अबुल्फ़ज़लको सौंपा गया था और इसीकी देखरेख नीचे यह नजरकैद भी रक्खा गया था। कहा जाता है कि, एक दिन अबुल्फ़ज़लने उसको, बादशाहके इशारेसे, गला घुटवाकर, मरवा डाला था। यह बात इक़बालनामेमें लिखी है। विशेषके लिए देखो 'आईन-ई-अकबरी' के अंग्रेजी अनुवादके प्रथम भागका पृ. २७२-७३ तथा दर्बारेअकबरी पृ. ३२०-३२७.

२-मख्दूमुलमुल्क सुल्तानपुरका रहनेवाला था। उसका नाम मौलाना

इसी तरह अकबर इस बातका भी पूरा ध्यान रखता था

अब्दुल्ला था। 'मख्दूमुल्मुल्क' यह उसका ख़िताब था। उसे 'शेख़-उल-इस्लाम' नामका दूसरा ख़िताब भी था। उसको दोनों ख़िताब हुमायुँने दिये थे। प्रो. आज़ादने 'दर्बारेअकबरी' में लिखा है कि, उसको 'शेख़-उल-इस्लाम' का ख़िताब शेरशाहने दिया था। वह धर्मांध सुन्नी था। वह प्रारंभहीसे अबुल्फ़ज़लको भयंकर आदमी बताता आया था। उसने फतवा दिया था कि,—"इस समय मक्काकी यात्रा करना अनुचित है। कारण, मक्का जानेके खास दो मार्ग हैं। एक ईरानका और दूसरा गुजरातका। दोनों ही निकम्मे हैं। यदि ईरानमें होकर लोग जाते हैं तो वहाँके शिया लोग यात्रियोंको सताते हैं और यदि लोग गुजरातमें होकर जलमार्गसे जाते हैं तो मेरी और जीसिसकी तस्वीरोंको–जो पोर्टुगीजोंके जहाजोंपर रक्खी रहती हैं–देखना पड़ता है। अर्थात् मूर्तिपूजा देखनी पड़ती है। इसलिए दोनों मार्ग निकम्मे हैं।"

मख्दूमुल्मुल्क बड़ा ही चालाक आदमी था। इसकी चालाकियों–युक्तियों के सामने बड़े बड़े लोगोकी युक्तियाँ सत्त्वहीन मालूम होती थीं। कहा जाता है कि उसने शेखों और समस्त गरीबोंके साथ निर्दयताका व्यवहार किया था। उसकी निर्दयताकी बातें एक एक करके प्रकट होने लगी थीं। इसी लिए बादशाहने उसे, विवश करके, मक्का भेज दिया था। इसके मकान लाहोरमें थे। उनमें कई लंबी चौड़ी कबरें थीं। इन कबरोंके लिए कहा जाता था कि वे पूर्व पुरुषोंकी थीं। उन कबरोंपर नीला कपड़ा ढका रहता था और दिनमें भी उनके आगे दीपक जला करते थे। मगर वास्तवमें वे कबरें नहीं थीं; उनके नीचे तो अनीतिसे एकत्रित किया हुआ धन गड़ा हुआ था।

मख्दूमुलमुल्क मक्कासे लौटकर ई. स. १५९२ में अहमदाबादमें मर गया। उसके बाद काज़ीअली फतेपुरसे लाहौर गया था। उसको वहाँ मख्दूमुलमुल्कके घरमेंसे बहुतसा धन मिला था। उपर्युक्त कबरोंमें कई ऐसी पेटियाँ भी निकलीं कि जिनमें सोनेकी ईटें थीं। इनके अलावा तीन करोड़ नक़द रुपये भी उनमेंसे निकले थे।

ऊपरका हाल जाननेके लिए देखो, आईन-इ-अकबरी प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादका पृष्ठ १७२-१७३, ५४४, तथा 'दर्बारे अकबरी' (उर्दू) का पृ० ३११-३१९.

कि और नौकर भी कहीं चोरी करना न सीख जायँ। यहाँ तक कि हाथियोंकी खुराकमेंसे भी कोई चुरा न ले इस लिए उसने अपने हाथियोंको तेरह भागोंमें विभक्त किया और प्रत्येक विभागके हाथियोंको अमुक वजनकी खुराक दिलाने लगा। इससे यदि कोई थोड़ीसी चोरी भी खुराकमेंसे करता था तो वह तत्काल ही पकड़ लिया जाता था।

अकबरने सब तरहकी व्यवस्था करनेका गुण अपने पितासे सीखा था। कहा जाता है कि, हुमायुँमें यह गुण उत्तम था; परन्तु उसके दुर्गुणोंने उसे इस गुणको काममें न लाने दिया।

अकबर राज्यव्यवस्थामें जैसी सावधानी रखता था वैसी ही सावधानी वह राजनैतिक षड्यंत्रोंसे बचे रहनेमें भी रखता था। पूर्वके इतिहाससे और अपने अनुभवोंसे उसे निश्चय हो गया था कि, चंचल राज्य लक्ष्मीके लिए और अपनी सत्ता जमानेके लिए, पिता पुत्रका, पुत्र पिताका और भाई भाईका खून कर डालता है। इस ज्ञानहीके कारण वह अपने सारे कार्य व्यवस्थापूर्वक, नियमित और होशियारीके साथ करता था। उसको प्रतिक्षण यह भय लगा रहता था कि, कहीं कोई उसकी असावधानीका दुरुपयोग न करे। इसी लिए वह अपनी सारी दिनचर्या नियमित रखता था। उसकी कार्य-प्रणाली जानने योग्य है।

वह नींद बहुत ही कम निकालता था। थोड़ा शामको सोता था और थोड़ा सवेरेके वक्त। रातका बहुत बड़ा भाग कामकाज करनेहीमें बिताता था। दिन निकलनेमें जब तीन घंटे बाकी रहते तब वह भिन्न भिन्न देशोंसे आये हुए गवैयोंका गायन सुनता। जब एक घंटा रात रहती तब प्रभुभक्ति करनेमें लगता और दिन निकलने पर थोड़ा बहुत कोई काम होता तो उसे समाप्त कर वह सो जाता।

इससे सिद्ध होता है कि, वह निद्रा बहुत ही कम लेता था। रातदिनमें सब मिलाकर केवल तीन घंटे ही वह सोता था। वैद्यकशास्त्रके नियमानुसार अल्पनिद्रा लेनेवालेको मिताहारी होना चाहिए, इसलिए अकबर भी परिमित आहार ही करता था। दिनमें भोजन केवल एक बार करता था; उसमें भी वह प्रायः दूध चावल और मिठाई खाता था।

इस तरह अकबरकी दिनचर्या ही ऐसी थी कि, जिससे वह किसी समय भी ग़ाफिल नहीं होता था। प्रायः राजषड्यंत्रोंका वार रसोई और रसोइयोंद्वारा ही होता है; शत्रु इन्हींके द्वारा अपना मतलब साधते हैं। अकबर इससे अपरिचित नहीं था, इसलिए वह अपने रसोई घरमें काम करनेवाले लोगोंपर पूरी निगाह रखता था। प्रामाणिक और पूर्ण विश्वासपात्र मनुष्योंहीको वह रसोड़ेके अंदर रखता था। जो रसोई बनती उसे पहले दूसरा मनुष्य खालेता उसके बाद वह बादशाहके पास पहुँचाई जाती। रसोड़ेमेंसे जो रकाबियाँ जाती थीं वे सब मुहर लगकर बंद जाती थीं। अकबरने अपने भोजनके संबंधमें यह आज्ञा प्रकाशित की थी कि,—" मेरे लिए जो भोजन तैयार हो उसमेंसे थोड़ा भूखोंको दिया जाय। " जिन बर्तनोंमें अकबरके लिए रसोई बनती थी उन पर महीनेमें दो बार और जिनमें राजकुमारों और अन्तःपुरकी बेगमोंके लिए रसोई बनती थी उनमें महीनेमें एकबार कलई कराई जाती थी। अकबर प्रायः जौखार डालकर ठंडा किया हुआ, गंगाका पानी पीता था। रसोई घरमें, इस लिए चंदोवे बाँधे जाते थे कि कहीं कोई जहरी जानवर अकस्मात् भोजनमें न गिर जाय[1]। "

---

[1] देखो The Mogul Emperors of Hindustan P. 137. (द मुगल एम्परर्स ऑव हिन्दुस्थान पृ. १३७)।

अकबरकी कार्यदक्षताका ऊपर उल्लेख हो चुका है। उससे यह कहा जा सकता है कि, एक राजामें—सम्राट्में—जितनी कार्य-कुशलता चाहिए उतनी उसमें थी। ऐसी कार्य-कुशलता रखनेवाला मनुष्य उदार हृदयका होना चाहिए। और तदनुसार वह उदार हृदयी था भी सही। जब हम अकबरके उच्च विचारोंका मनन करते हैं तब हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि, अकबर केवल सम्राट् ही नहीं था, बल्के वह गंभीर विचारक और तत्त्वज्ञानी भी था। यहाँ हम यदि अकबरके कुछ उच्च विचारोंका और मुद्रालेखोंका उल्लेख करेंगे तो अनुचित न होगा।

" जब परीक्षारूपी संकट सिर पर आजाय तब, धार्मिक आज्ञा-पालन, गुस्से से भौंहें टेढी करनेमें नहीं होता, परन्तु वैद्यकी कड़वी दवाकी तरह उसे आनंदके साथ सहन करनेमें होता है।"

× × × ×

" मनुष्यकी सर्वोत्कृष्टताका आधार उसका विचारशक्ति (विवेकबुद्धि) रूपी हीरा है। इसलिए प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि, वह उसको सदैव उज्ज्वल रखनेका प्रयत्न करे—हमेशा विवेक-बुद्धिसे काम ले।"

× × × ×

" यद्यपि ऐहिक और पारलौकिक सम्पत्तिका आधार ईश्वरकी योग्य पूजा है, तथापि बालकोंकी सम्पत्तिका आधार उनके पिताओंकी आज्ञाका पालन है।"

× × × ×

" खेद है कि, सम्राट् हुमायुँ बहुत बरस पहले ही मर गये

इसलिए मुझे अपनी सेवाओंसे उन्हें प्रसन्न करनेका अवसर बिल्कुल ही न मिला।"

× × × ×

"स्वार्थांध होनेसे मनुष्य अपने चारों तरफ़ क्या हो रहा है सो नहीं देख सकता। कबूतरके रक्तसे सने हुए बिल्लीके पंजेको देखकर मनुष्य दुःखी होता है; परन्तु वही बिल्ली यदि चूहे को पकड़ती है, तो वह खुशी होता है। इसका कारण क्या है? कबूतरने उसकी क्या सेवा की है कि, उसकी मृत्युसे तो उसे दुःख होता है और अभागे चूहेने उसका क्या नुकसान किया है कि उसकी मृत्युसे वह प्रसन्न होता है।"

× × × ×

"हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं उसमें हमें ऐसे ऐहिक सुख न माँगने चाहिए कि जिनमें दूसरे जीवोंको तुच्छ समझनेका आभास हो।।"

× × × ×

"तत्त्वज्ञान संबंधी विवेचन मेरे लिए एक ऐसी अलौकिक मोहनी है कि, मैं और कामोंकी आपेक्षा उसीकी ओर विशेष आकर्षित होता हूँ। तो भी कहीं मेरे दैनिक आवश्यक कर्तव्यमें बाधा न पड़े इस खयालसे मैं तत्त्वज्ञानकी चर्चा सुननेसे अपने मनको जबर्दस्ती रोकता हूँ।"

× × × ×

"मनुष्य–चाहे वह कोई भी हो–यदि जगतकी मायासे छूट-

नेके लिए मेरी अनुमति चाहेगा तो मैं प्रसनता पूर्वक उसे दूँगा। कारण,—यदि वास्तवमें उसने अपने आपको जगतसे—जो कि केवल अज्ञानियोंहीको अपने अधिकारमें रख सकता है—भिन्न कर लिया है तो उसे उसीमें रहनेके लिए विवश करना निंद्य और दोपास्पद है। परंतु यदि वह बाह्याडंबर ही करता होगा तो उसे अवश्यमेव उसका दंड मिलेगा।"

× × × ×

"जब बाज पक्षीको—वह दूसरे प्राणियोंको मारकर खाता है इसलिए—अल्पायुका दंड मिला है; अर्थात् उसकी उम्र बहुत छोटी होती है; तब मनुष्य जातिके भोजनके लिए भिन्न भिन्न प्रकारके अनेकानेक साधनोंके होते हुएभी जो मनुष्य मांस—भक्षणका त्याग नहीं करता है उसका क्या होगा?"

× × × ×

"एक स्त्रीकी अपेक्षा विशेष स्त्रियोंकी इच्छा करना, अपने नाशका प्रयत्न करना है। हाँ यदि पहली स्त्रीके पुत्र न हो अथवा वांझ हो तो दूसरी स्त्री लाना अनुचित नहीं है।"

× × × ×

"यदि मैं कुछ पहले समझने लगा होता तो, अपने अन्तःपुरमें अपने राज्यकी किसी भी स्त्रीको वेगम बनाकर न रखता, कारण,—प्रजा मेरी दृष्टिमें मेरी सन्तानके समान है।"

× × × ×

"धर्मनायकका कर्तव्य है कि, वह आत्माकी परिस्थितिको जाने और उसको सुधारनेका प्रयत्न करे। उसका कर्तव्य Ethopकी तरह

जटा बढ़ा, फटाटूटा गाऊन पहिन श्रोताओंके साथ, रिवाजकी तरह, ऊपरि विवाद करना नहीं।

× × × ×

अकबरके विचारोंमेंसे ऊपर दिये हुए कुछ उद्धरणोंसे सहृदय पाठक यह कहे विना न रहेंगे कि, वह जितना राजकीय विषयोंका गहरा ज्ञान रखता था उतना ही सामाजिक, धार्मिक और नैतिक विषयोंका भी रखता था ? वास्तवमें अकबरके ऐसे सद्गुण उसके पूर्वजन्मके शुभ कर्मोका ही फल है। अन्यथा करोड़ो मनुष्योंपर हुकूमत करनेवाले यवनकुलोत्पन्न बादशाहमें ऐसे विचारोका निवास होना, बहुत ही कठिन है ! अकबरको संयोग भी ऐसे ही मिलते गये कि जो उसके विचारोंको विशेष दृढ बनानेवाले—पुष्ट करनेवाले थे। उसके दर्बारके प्रधान पुरुषोंकी संगति भी उसके लिए विशेष लाभकारी हुई थी। उनमें भी अबुल्फ़ज़लका प्रभाव तो उस पर बहुत ही ज्यादा था।

× × × ×

अपने द्वितीय नायक सम्राट्की उन्नतिका सूर्य ठीक मध्याह्न पर आया था। उसकी इच्छित सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हुई थीं। उसका साम्राज्य हिन्दुकुश पर्वतसे ब्रह्मपुत्रा तक और हिमालयसे दक्षिण प्रदेश तक फैल गया था। सर्वत्र शान्ति फैल गई। विदेशी लोगोंके आक्रमणका भय भी न रहा। संक्षेपमें कहें तो अकबरने भारतवर्षके गौरवको पीछा जीवित कर दिया। उसने अनेक प्रकारके प्रयत्नोंद्वारा

१ अकबरके विशेष विचार जाननेके लिए देखो, आईन-इ-अकबरीके तीसरे भागका, कर्नलजेरिटकृत, अंग्रेजी अनुवाद। पृ० ३८०-४००।

भारतवर्षको रसातलसे उठाकर उन्नतिके शिखर पर ला बिठाया; मस्तक पर स्थित सूर्यका प्रकाश सर्वत्र गिरने लगा। इससे अकबरके आनंदकी सीमा न रही।

मगर पाठक! भारतका ऐसा सद्भाग्य कहाँ है कि उन्नतिका सूर्य सदैव उसके मस्तक पर ही झगमगाता रहे। पुनः वह सूर्य धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। अवनतिकी छाया गिरने लगी। एक ओर अकबरके घरहीमें फूट फैली और दूसरी ओर उसके स्नेहियोंका क्रमशः अवसान होने लगा। अकबरको जब शान्तिके दिन देखनेका सद्भाग्य प्राप्त हुआ तब उस पर उपर्युक्त दोनों आघातोंने अपना प्रभाव दिखला दिया। यह कहा जा चुका है कि, कई अनुदार मुसलमान अकबरकी प्रवृत्तियोंसे नाराज थे। इस लिए उन्होंने अकबरके बड़े पुत्र सलीमको अकबरके विरुद्ध उभारा। यहाँ तक कि उसको अकबरकी गद्दी छीन लेनेके लिए उत्तेजित किया। सलीम दुश्चरित्र था। उसको किसी धर्म पर श्रद्धा न थी, तो भी संकीर्ण हृदयी मुसलमानोंने इन बातोंकी परवाह न कर उसे खूब उभारा। दूसरी तरफ सन् १५८९ ईस्वीमें अकबर जब काश्मीरकी सैर करने गया था उस समय उसका प्रिय अनुचर 'फ़तहउल्ला'[1]–जो एक अच्छा पंडित था और संस्कृत ग्रंथोंका फारसीमें अनुवाद करता था–मर गया। काश्मीरके सीमा-प्रान्तमें, अबुलफ़तहका[2] जिसने अकबरके धर्मको स्वीकार किया था,

---

१–फतहउल्ला अबुल फ़तहका लड़का था वह खुशरोका दोस्त था इसलिए जहाँगीरने उसको मरवाडाला था। देखो आईन-इ-अकबरीके प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद, पृ० ४२५.

२–यह गीलानके मुल्ला 'अब्दुर्रज्जाक़ 'का लड़का था। उसका पूरा नाम 'हकीम मसीउद्दीन अबुल फतह 'था। अरफी नामक कविने इसकी स्तुतिमें जो कविता लिखी है उसमें इसका नाम मीर अबुलफतह लिखा है उसका बाप गीलानके सदरकी जगह बहुत दिनतक रहा था। जब सन्

देहांत होगया। सम्राट् काश्मीर गया तब **राजा टोडरमल**[1] भी जो

१५६६ ईस्वीमें गीलान **तहमास्प**के हाथमें गया तब वहाँका राजा **अहमदखाँ** कैद किया गया और **अब्दुर्रज्ज़ाक़** मार डाला गया। इससे हकीम **अबुल्फ़तह** अपने दो भाइयों (**हकीम हुमायुँ** और **हकीम नुरुद्दीन**) को साथ ले अपने देशको छोड़ सन् १५७५ में **भारत** वर्षमें आया। **अकबर**के दर्बारमें उसका अच्छा आदर हुआ। राज्यके चोवीसमें वर्षमें **अबुल्फ़तह** बंगालका **सदर** और **अमीन** बनाया गया था। यद्यपि उसकी पदवी एक हज़ारीकी थी, तथापि उसकी सत्ता वकीलके समान थी। सन् १५८९ ईस्वीमें **अकबर** जब काश्मीर गया था तब **अबुल्फ़तह**भी उसके साथ ही गया था। वहाँसे 'जावुलिस्तान'के लिए रवाना हुआ और रस्तेमें बीमार होकर मर गया। **अकबर**के हुक्मसे **ख़्वाजा शमशुद्दीन** उसकी लाशको **'हसनअब्दाल'** ले गया और जो कुबर **अकबर**के लिए बनाई थी उसमें वह गाड़ा गाया। पीछे लौटते **अकबर**ने उस कुबर पर जाकर प्रार्थना भी की थी। **बदाउनी**के कथनानुसार **अकबर**के इस्लाम धर्म छोड़नेमें **अबुलफतह**का भी हाथ था। विशेषके लिए देखो–'आईन-इ-अकबरी' के पहले भागका अंग्रेजी। अनुवादक पृ० ४२४–४२५ तथा 'दर्बारे अकबरी' पृ० ६५६–६६६.

१–**राजा टोडरमल** लाहोरका रहने वाला था। कुछ लेखकोंका मत है कि वह लाहोर जिलेके **चूनिया** गाँवका रहनेवाला था। एसियाटिक सोसायटीने जो जाँचकी है उसके अनुसार वह **लाहरपुर** जिला अवधका रहनेवाला था। वह जातिका खत्री और गोत्रका **टंडन** था। सन् १५७३ ईस्वीके लगभग **अकबर**के दर्बारमें दाख़िल हुआ था। धीरे धीरे **अकबर**ने उसे आगे बढ़ाया और अपने राज्यकालके सत्ताईसवें वरसमें उसको बाईस जिलोंका **दीवान** और वज़ीर बनाया था। वह जितना हिसावके कामसे प्रसिद्ध हुआ था उतना ही अपने पराक्रमसे भी प्रसिद्ध हुआ था। पक्षपातसे वह सदा दूर रहता था। कहा जाता है कि उसने हिसाव गिननेकी कूँचियोंकी एक पुस्तक लिखी थी। उसका नाम 'खाजनेइसरार' था। **प्रो. आज़ाद**के कथनानुसार वह पुस्तक **काश्मीर** और **लाहोर**के वृद्ध लोगोंमें '**टोडरमल**' नामसे प्रसिद्ध है।

टोडरमल क्रियाकांडमें कट्टर हिन्दु था। वह अपने इष्ट देवकी पूजा किये विना कभी अन्नजल ग्रहण नहीं करता था। कई वार उसे अपने धार्मिक

पंजाबका शासनकर्ता था—इहलोकलीला समाप्तकर चला गया और राजा **भगवानदास** भी अपने घर आकर मर गया।

इस प्रकार ई. सन् १५८९ में एक एक करके अकबरके अनुचरोंकी मृत्यु हुई। इससे उसको बड़ा ही दुःख हुआ।

स्नेहियोंकी मृत्युसे भी घरका झगड़ा अकबरके लिए विशेष दुःखदाई था। दूसरोंकी शत्रुता हरतरहसे मिटाई जा सकती है; परन्तु अपने पुत्रकी शत्रुताको मिटानेमें उसने असाधारण विपत्तियाँ झेलीं। तो भी परिणाम कुछ नहीं हुआ। **सलीम**ने अकबरके साथ यहाँ तक शत्रुता प्रकट की कि, उसने खुले तौर पर अलाहाबाद पर अधिकार कर लिया, और आगरे की गद्दी लेने के लिए प्रयत्न प्रारंभ किया। इतना ही नहीं, उसने अपने पिताको विशेष क्रुद्ध करनेके लिए अपने नामके सिक्के भी जारी कर दिये। **सम्राट्** यदि चाहते तो **सलीम**को उसकी इस ढिठाईका यथेष्ट दंड दे सकते थे; परन्तु वे वात्सल्य भावसे प्रेरित होकर अन्त समय तक चुप ही रहे। पुत्रके साथ युद्ध करनेको तैयार नहीं हुए।

नियम पालनेमें कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थी, परन्तु उन्हें सहकर भी अपने नियम पालता था।

जो लोग कहते हैं कि,—नौकर मालिकके वफ़ादार तभी हो सकते हैं जब वे मालिक के विचार, व्यवहार और धर्मके अनुसार चलते हैं। उन्हें **टोडरमल**के जीवनपर ध्यान देना चाहिए। उसका जीवन बतायगा कि सच्चा वफादार वही नौकर होता है जो अपने धर्ममें पूरा वफादार होता है।

अबुल्फजल उसके विषयमें कहता है कि, यदि वह अपनी ही बात का अभिमान रखने और दूसरोंपर तिरस्कार करनेवाला न होता तो वह एक बहुत बड़ा '**महात्मा**' गिना जाता। अन्तमें सन् १५८९ ईस्वी १० नवम्बरके दिन मर गया। देखो आईन-इ-अकबरीके प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद। पृ० ३४ तथा दरबारे अकबरीका पृ० ५१९-५२४।

अलावा इसके अकबर उस समय साधनहीन भी हो गया था। क्योंकि उसकी शासननीति और उसके धर्मका समर्थन करने वाले एक एक करके, सभी परलोकवासी हो गये थे। केवल अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी के समान दो तीन व्यक्तियाँ रही थीं। उनके साथ सलीमकी पूर्ण शत्रुता थी। इसलिए उनके द्वारा कोई कार्य नहीं हो सकता था।

इस तरहकी गड़बड़ी मची हुई थी ही, इतनेहीमें अकबरको एक आघात और लगा। जो फ़ैज़ी अकबरका प्यारा था; जिसकी कविताओं पर अकबर फ़िदा था वही फ़ैज़ी सख्त बीमार हो गया। अकबरका उस पर इतना प्रेम था कि, वह हकीमअलीको साथ

---

१ हकीमअली गीलान (ईरान) का रहनेवाला था। जब वह ईरानसे भारतमें आया था तब बड़ा ही ग़रीब और साधनहीन था। मगर थोड़े ही दिनोंमें वह अकबरका सन्माननीय मित्र होगया था। वह ई. सन् १५९६ वे में सातसौ सेनाका नायक बनाया गया था। उसको 'जालीनूस उज्जमानी' का खिताब भी मिला था। बदाउनीका मत है कि; वह शीराज़के निवासी फ़तह-उल्लाके पाससे वैद्यकशास्त्र सीखा था। वह एक धर्मांध शिया था। वह ऐसा खराब वैद्य था कि उसने अनेक रोगियोंको यमधाम पहुँचा दिया था और उसने अपने गुरु फ़तह-उल्लाको भी इसीतरह मारडाला था।

कई ऐसा भी कहते हैं कि अकबरने उसकी परीक्षा करनेके लिए कई रोगी मनुष्योंका और पशुओंका पेशाब, शीशियोंमें भरवाकर, उसे जाँचके लिए दिया था। उसने सबकी बराबर जाँच की थी। ई. सन् १५८० में वह बीजापुरके बादशाह अलीआदिलशाहके पास एलची बनाकर भेजा गया था। वहाँ उसका अच्छा सत्कार हुआ था। वह वहाँसे नज़रें लेकर सम्राट्के पास अभी पहुँचा भी नहीं था कि आदिलशाहका अकस्मात् देहान्त होगया।

अकबर जब मृत्युशय्यापर था तब वह इसी की देखरेखमें था। जहाँगीर कहता है कि, अकबरको उसीने मारा था। यह भी कहा जाता है कि, वह बहुत ही दयालु था। गरीबोंकी दवाके लिए वह प्रतिवर्ष छः हजार

लेकर स्वयमेव उसको देखनेके लिए गया। फ़ैज़ी उस समय मरणशय्या पर पड़ा था। हरेकने फ़ैज़ी के बचनेकी आशा छोड़ दी थी। अबुलफ़ज़ल एक कमरेमें शोकग्रस्त बैठा था। बादशाह जिस हकीमको ले गया था उस हकीमके इलाजसे भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ। अन्तमें वह (फ़ैज़ी) इस संसारको छोड़ कर चला ही गया।

अपने प्रिय कवि फ़ैज़ीकी मृत्युसे अकबरको इतना दुःख हुआ कि, वह ज़ार ज़ार रोया था। इससे यह बात सहज ही समझमें आ जाती है कि, फ़ैज़ी पर अकबरका कितना प्रेम था। जिस

रुपये खर्च कर देता था। जहाँगीरके समयमें, जहाँगीरने उसे दोहज़री बनाया था। अन्तमें हिजरी सन् १०१८ (ई. स. १६१०) की ५ वीं मुहर्रमके दिन उसका देहान्त हुआ था। देखो,–' आईन–इ–अकबरी ' के प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादके पृ० ४६६–४६७।

१ फ़ैज़ीका जन्म ई. सन् १५४६ में आगरेमें हुआ था। उसका नाम अबुलफ़ैज़ था। नागोरके रहनेवाले शेखमुबारिकका वह ज्येष्ठ पुत्र था। उसको अरबी भाषा, काव्यशास्त्र और वैद्यकशास्त्रका बहुत अच्छा ज्ञान था। उसके साहित्य ज्ञानकी प्रशंसा सुनकर अकबरने ई. सन् १५६८ में उसे अपने पास बुलाया था। वह अपनी योग्यतासे थोड़े ही दिनोंमें अकबरका सदाका सहवासी और मित्र बनगया था। सम्राट् उसे शेखज़ी कहकर पुकारता था। राज्यके तेतीसवें वर्षमें वह ' महाकवि ' बनाया गया था। फ़ैज़ीको दमका रोग होगया था और उसी रोगसे वह राज्यके ४० वें वर्षमें मर गया था। कहा जाता है कि, उसने १०१ पुस्तकें लिखी थीं। वह पढ़नेका बहुत शौक़ीन था। जब वह मरा तब उसके पुस्तकालयमेंसे ४३०० हस्तलिखित पुस्तकें निकली थीं। उन पुस्तकोंको अकबरने अपने पुस्तकालयमें रक्खा था।

फ़ैज़ी प्रारंभमें राजकुमारका शिक्षक नियत हुआ था। उसने कुछ समय तक एलचीका कार्य भी किया था। विशेषके लिए देखो,–'आईन-इ-अकबरी' के प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादके पृष्ठ ४९०–९१ तथा ' दरबारे अकबरी ' पृ० ३५९–४१८.

फ़ैज़ीको अकबर सन् १५६८ के पहले जानता भी नहीं था उसी फ़ैज़ी पर अकबरका इतना शोक !—इतना दुःख !—इतना विलाप ! आश्चर्यकी बात है। जन्मान्तरोंके संस्कार कहाँसे कहाँ मेल मिला देते हैं ?

फ़ैज़ीकी मृत्युसे अकबरके हृदयमें असाधारण आघात लगा। वह यही सोचता था कि, एक ओर कुटुंब कलहकी ज्वाला जल रही है और दूसरी तरफ़ मेरे अनुयायी इस तरह एक एक करके नष्ट होते जा रहे हैं। न जाने मेरा क्या होनहार है ?

अकबर अपने सिरपर आनेवाली विपत्तियोंको सहन करता हुआ रहने लगा। उसे जब जब अपने गृहकलह और स्नेहियोंकी मृत्यु याद आती तब तब वह अधीर हो उठता; उसका हृदय व्याकुल हो जाता। परन्तु वह अपने मनको बड़ी कठिनतासे समझाता और किसी काममें लगा देता। उस समय अकबरको आश्वासन देनेवाला सिर्फ़ एक अबुलफ़ज़लही रह गया था।

यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि, सलीम पूर्णरूपसे विद्रोही बनकर अलाहाबाद पर काबिज़ हो गया था और खुल्लमखुल्ला अकबरसे शत्रुता करने लगा था। पितासे तो सलीम विद्रोह करता ही था; परन्तु अबुलफ़ज़ल पर वह बहुत ही ज्यादा खफ़ा था। वह समझता था कि, जब तक सम्राट्के पास अबुलफ़ज़ल रहेगा, तब तक सम्राट्के सामने दूसरेकी एक भी न चलेगी। इसी लिए वह अबुलफ़ज़लको मारडालनेका प्रयत्न करता था।

जिस समयकी हम बात कह रहे हैं उस समय अबुलफ़ज़ल दक्षिणमें शान्ति स्थापन करनेके लिए गया हुआ था। इधर सलीमने बड़े ज़ोरोंके साथ विद्रोहका झंडा खड़ा किया। अकबर घबराया।

उसने अबुलफ़ज़लको लिखा कि,—वहाँका कार्य अपने पुत्रको सौंपकर तुम तत्काल ही यहाँ चले आओ। अबुलफ़ज़ल थोड़ीसी सेना लेकर आगरेकी तरफ रवाना हुआ। रास्तेमेंसे उसने, न मालूम क्या सोचकर, सिर्फ थोड़ेसे सवार अपने साथ रक्खे और बाकी सेनाको वापिस भेज दिया। उन्हीं थोड़े सवारोंके साथ वह आगरेकी ओर आगे बढ़ा।

उधर आगरेमें रहनेवाले सलीमके पक्षके लोगोंने सलीमको ये समाचार भेजे। सलीमने अबुलफ़ज़लको मारनेके लिए वीरसिंह नामके एक डाकूको राजी किया। यह डाकू किसी खास स्थानमें बहुत दिनोंसे उपद्रव करता था और आने जानेवाले लोगोंको लूट लेता था। उसके साथ बहुतसे आदमी थे। अबुलफ़ज़ल जब 'सराइबरार' पहुँचा तब उसे एक फ़क़ीरने कहा,—"कल तुम्हें वीरसिंह डाकू मार डालेगा।" अबुलफ़ज़लने उत्तर दिया:—"मौतसे डरना व्यर्थ है। इससे बचनेका सामर्थ्य किसमें है?"

१–यह 'सराइ बरार' गवालियरसे १२ माइल दूर एक अंतरी गाँव है उससे ३ माइल है। अंतरीमें अब भी अबुलफ़ज़लकी कब्र मौजूद है।

२–इसका पूरा नाम वीरसिंहबुंदेला था। कुछ लेखकोंने इसका नाम नरसिंहदेव भी लिखा है। इसके पिताका नाम मधुकर बुंदेला था। और इसके बड़े भाईका नाम था रामचंद्र। सलीमका इसपर बहुत प्रेम था। सलीमने अबुलफ़ज़लके खूनके बदलेमें इसको ओरछा इनाममें दिया था। इसने मथुरामें कई मंदिर बनवाये थे। उनमें तेतीस लाख रुपये व्यय किये थे। उन मंदिरोंको औरंगज़ेबने हि. सं. १०८० में नष्ट किया था। सलीमने इस लुटेरेको तीन हज़ारी बनाया था। विशेषके लिए देखो,–विन्सेंट स्मिथ कृत अकबर (अंग्रेजी) पृ. ३०५–३०७. तथा आईन-इ-अकबरीके प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादका पृ. ४८८.

दूसरे दिन सवेरे भी वहाँसे रवाना होते समय उसे 'अफगानगदाईखाँने रोका था; मगर उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और वह आगे बढा। थोड़ी ही दूर गया होगा कि, वीरसिंहने आकर उस पर आक्रमण किया। अबुलफ़ज़लके थोड़े से आदमी वीरसिंहके बहुसंख्यक आदमियोंके सामने क्या कर सकते थे? अबुलफ़ज़ल बड़ी वीरताके साथ लड़ा। उसके शरीर पर बारह

१ अबुलफ़ज़लका जन्म ई. सन् १५५१ (हि. स. ९५८ के मोहर्रम की छठी तारीखको) में हुआ था। उसके पिता शेख मुबारिकने उसका नाम वही रक्खा जो उसके (मुबारिकके) उस्तादका नाम था। उसके पूर्वजन्मके ऐसे उत्तम संस्कार थे कि, वह वर्ष सवावर्षकी आयुमेंही बातें करने लग गया था। १५७४ में वह अकबरके दर्बारमें दाखिल हुआ था। धीरे धीरे उसकी पदवृद्धि होती गई। ई. स. १६०२ में उसको पाँच हज़ारीकी पदवी मिली। उसके शान्त स्वभाव, उसकी निष्कपटता और उसकी नमकहलालीके कारण सम्राट् उस पर बहुत स्नेह और विश्वास करता था। अबुलफ़ज़लके दर्बारमें दाखिल होनेके बाद ही अकबरकी शासननीतिमें परिवर्तन हुआ था। अकबरकी जाहोजलालीका मूल कारण अबुलफ़ज़ल था। इस कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। सच तो यह है कि अबुलफ़ज़ल ही अकबरके पीछे रहकर सारा राज-काज करता था। उसीने पीछेसे सम्राट्के महान् कार्योंका इतिहास, एक साधारण इतिहास लेखककी तरह, लिखा था। यह कहना जरूरी है कि, यदि अबुलफ़ज़लने अकबरका इतिहास न लिखा होता तो अकबरकी इतनी कीर्ति भी शायद न फैलती। अकबर और अबुलफ़ज़लका संबंध इतना घनिष्ट हो गया कि, अकबरके विचार ही अबुलफ़ज़लके विचार और अबुलफ़ज़लके विचार ही अकबरके विचार माने जाते थे। दोनोंमें कोई भेद न था। दर्बारमें सभी धर्मोंके विद्वानोंको जमा करनेका प्रस्ताव भी अबुलफ़ज़लने ही किया था। क्योंकि वह पहिलेहीसे ज्ञान और सत्यका जिज्ञासु था। अकबरके राज्याशासनमें और धर्मकार्योंमें अबुलफ़ज़लही की चलती थी। इसी ईर्षासे सलीमने उसका खून कराया था। सलीमने अपनी डायरीमें इस बातको स्वीकार किया है। प्रो. आज़ादने तो यहाँ तक लिखा है कि, अबुलफ़ज़लने सम्राट्का मन अपनी ओर इतना आकर्षित

शेख अबुलफजल.

ज़ख्म लगे तो भी वह लड़ता रहा। अन्तमें पीछेसे एक सवारने आकर उसकी पीठमें भाला मारा। भाला पीठ फोड़कर आगे निकल आया। अबुलफ़ज़ल घोड़ेसे गिर पड़ा। एक दूसरे आदमीने आकर उसका शिर काट डाला। ई॰ सन् १६०२ के अगस्तकी १२ वीं तारीखके दिन उसकी मृत्यु हुई। यह है शत्रुताका परिणाम !

बस अकबरका बचा हुआ एक अनुयायी, सच्चा सलाहकार संसारसे चल बसा। उदार मुसलमानोंने सच्चा तत्त्वज्ञानी खोया और हिन्दुओंने अपना वास्तविक विधर्मी प्रशंसक गुमाया। जिस समय अबुलफ़ज़लका मस्तक हाथमें लेकर सलीम प्रसन्न हो रहा था उस समय अकबरके समस्त राज्यमें शोक छा रहा था।

अबुलफ़ज़ल मारा गया मगर उसकी मृत्युके समाचार अकबरके पास लेकर कौन जाय ? सम्राट् जिसको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझता था और हृदयसे जिसपर श्रद्धा रखता था उसीकी मृत्युके समाचार सम्राट्के पास पहुँचानेकी हिम्मत कौन करे ? अन्तमें सदाकी रीतिके अनुसार अबुलफ़ज़लका वकील काले रंगका कपड़ा कमरमें बाँधकर दीनभावसे सम्राट्के सामने जा खड़ा हुआ। अबुलफ़ज़लके वकीलको इस दशामें आया देख सम्राट् ज़ार ज़ार रोने लगे। उनकी आँखोंसे जलधारा बह चली। उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। उस समय सम्राट्को जितना शोक हुआ उतना शोक

कर लिया था कि, अकबर प्रत्येक विषयमें उसकी सम्मतिके अनुसार ही सारे काम करता था। संक्षेपमें कहें तो अबुलफ़ज़ल अकबरका दर्बारी, सलाहकार, विश्वस्त, सबसे बड़ा मंत्री, दर्बारी घटनाओंकी याददाश्त लिखनेवाला और दीवानी महकमेका हाकिम था। इतना ही नहीं वह अकबरकी जिव्हा और बुद्धिमानी था। विशेषके लिए देखो,–' जर्नल ऑव द पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी ' वॉ. १ ला, पृ. ३१ तथा ' दर्बारे अकबरी ' पृ. ४६३–५१८.

शायद पुत्रकी मृत्युसे भी न होता । कई दिनों तक वह न किसीसे मिला और न उसने कोई राज्यका कामकाज ही किया । वह केवल बंधु-वियोगके दुःखमें निमग्न रहा ।

दूसरी तरफ जिन मुसलमानोंने **सलीम**को ये समाचार दिये थे कि, **अबुलफ़ज़ल** आगरे आ रहा है उन्हें यह भय लगा की **सम्राट्**को यदि इस बातकी खबर हो जायगी तो वह हमारी जिन्दा चामड़ी खिचवा लेगा; इससे उन्होंने यह प्रसिद्ध किया कि **सलीम**ने राज्यके लोभसे **अबुलफ़ज़ल**को मरवा डाला है । **सम्राट्**ने यह बात सुनी एक दीर्घ निःश्वास डाली और कहाः—" हाय **सलीम** ! तूने यह क्या किया ? यदि तू सम्राट् होना चाहता है तो मुझे न मारकर **अबुलफ़ज़ल**को क्यों मारा ? "

अस्तु, **सम्राट्**ने **सलीम**को राज्यगद्दी नहीं देनेका निश्चय किया, और **अबुलफ़ज़ल**के पुत्रको तथा राजा **राजसिंह**[1] और

---

१ राजा **राजसिंह** राजा **आसकरण** कछवाहका पुत्र था । राजा **आसकरण** राजा बिहारीमलका भाई था । **राजसिंह**को उसके पिताकी मृत्युके बाद ' राजा ' की पदवी मिली थी । उसने बहुत बरस तक दक्षिणमें नौकरी की थी । राज्यके ४४ वें बरसमें वह दर्बारमें बुलाया गया था । दर्बारमें आते ही वह गवालियरका सूबेदार बनाया गया था । राज्यके ४५ वें बरसमें अर्थात् ई. सन् १६०० में वह शाही सेनामें शामिल हुआ था । यह वह सेना थी कि जिसने ' **आसीर** ' के किलेपर आक्रमण किया था । **वीरसिंह**के साथ युद्ध करनेमें उसने अच्छी वीरता दिखलाई थी, इसलिए ई. सन् १६०५ में वह चार हजारी बनाया गया था । **जहाँगीर** (**सलीम**) के राज्यके तीसरे बरसमें उसने दक्षिणमें कार्य किया था । वहीं ई. सन् १६१५ में उसकी मृत्यु हुई थी । विशेषके लिए देखो ' आइन-ई-अकबरी ' के पहले भागका अंग्रेजी अनुवाद पृ० ४५८.

रायरायानपत्रदासको फ़ौज देकर रवाना किया और उन्हें कह दिया कि,—" वीरसिंहका मस्तक मेरे सामने उपस्थित करो।"

मुगलसेनाने जाकर वीरसिंहको घेर लिया। यद्यपि अकबरकी आज्ञाके अनुसार कोई वीरसिंहका मस्तक न लेजा सका तथापि उन लोगोंने उसका सर्वस्व जरूर लूट लिया। वीरसिंह ज़ख्मी होकर कहीं भाग गया।

कौन न कहेगा कि अकबर तब आत्मीय-पुरुष-विहीन हो गया था? यद्यपि उसके पास लाखों आज्ञापालक मनुष्य थे और शस्त्रास्त्र एवं धन सम्पत्तिसे उसका खज़ाना पूर्ण था तथापि उन आत्मीय-पुरुषोंका उसके वहाँ अभाव था जिनकी सहायतासे उसने विशाल साम्राज्य स्थापित किया था और कठिन समयमें जिनसे सहायता मिलती थी। अखूट धन दौलत और विस्तृत अधिकारके होते हुए भी अकबरकी अवनतिके चिह्न दिखाई देने लगे। या यह कहिए कि उसकी अवनतिका पर्दा उठकर, प्रथम अंक प्रारंभ हो गया था।

---

१ यह विक्रमादित्यके नामसे प्रसिद्ध था। जातिका खत्री था। अकबरके राज्यके प्रारंभमें फ़ीलख़ानेका मुशरफ़ (Head Clerk) था। 'रायरायान' इसकी पदवी थी। ई. सन् १५६८ में चित्तोड़के आक्रमणमें वह प्रसिद्ध हुआ था। ई. सन् १५७९ में वह और मीर अधम दोनों बंगालके संयुक्त दीवान बनाये गये थे। सन् १६०१ ई. में उसे तीन हज़ारीका पद मिला था। सन् १६०२ में वह वापिस दर्बारमें बुलाया गया और सन् १६०४ ई. में वह पाँच हज़ारी बनाया गया। उस समय उसे 'राजा विक्रमादित्य' की पदवी मिली। जहाँगीर गद्दी पर बैठा उसके बाद वह 'मीर आतश' बनाया गया और यह हुक्म दिया गया कि वह पचास हज़ार गोलन्दाज़ और तीन हज़ार तोपगाड़ियाँ हर समय तैयार रक्खे। उसके निर्वाहके लिए पन्द्रह जिले अलग रक्खे गये। विशेषके लिए देखो 'आइन-ई-अकबरी' के प्रथम भागका अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ४६९—४७०.

एक ओर आत्मीयपुरुषोंका अभाव और दूसरी तरफ़ पुत्रका विद्रोह; ऐसी स्थितिमें अकबरका धैर्य छूट जाय और उसके हाथ पैर ढीले पड़जायँ तो इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है? उस समय सुप्रसिद्ध राजा वीरबल[1] भी न रहा था कि जो हास्यरसका फ़व्वारा छोड़कर

---

१ राजा **वीरबल** ब्रह्मभट्ट था। उसका नाम **महेशदास** था। प्रारंभमें उसकी स्थिति बहुत ही ख़राब थी; परन्तु बुद्धि बहुत प्रबल थी। **बदाउनी**के कथनानुसार,—**अकबर** जब गद्दी पर बैठा तब वह **कालपी**से आकर दर्बारमें दाख़िल हुआ था। वहाँ वह अपनी प्रतिभासे **सम्राट्**को अपना महरबान बना सका था। उसकी हिन्दी कविताओंकी प्रशंसा होने लगी। **सम्राट्**ने प्रसन्न होकर उसे 'कविराय' की पदवी दी और हमेशाके लिए अपने पास रख लिया।

ई. सन् १५७३ में उसे 'राजा बीरबल' की पदवी और नगरकोट जागीरमें मिला। ई. सन् १५८६ में **ज़ैनख़ाँ** कोका **बाजोड** और **स्वाद**के यूसफ़ज़ई लोगोंके साथ युद्ध कर रहा था। उस समय उसने और मदद मांगी थी। इससे हकीम **अबुल्फ़तह** और **वीरबल** सहायताके लिए भेजे गये थे। कहाजाता है कि, **अकबरने वीरबल** और **अबुल्फ़ज़ल** दोनोंके नामकी चिट्ठियाँ डाली थीं। चिट्ठी **वीरबल**के नामकी निकली। इसलिए इच्छा न होते हुए भी **वीरबलको सम्राट्**ने रवाना किया। इसी लड़ाइमें **वीरबल** ८००० आदमियोंके साथ मारा गया था।

वीरबलकी मृत्युके बाद यह बात भी फैली थी कि, वह अबतक जिन्दा है और **नगरकोट**की घाटियोंमें भटकता फिरता है। **अकबरने** यह सोचकर इस बातको सही माना कि लड़ाईमें हारनेके कारण वह यहाँ आते शर्माता होगा अथवा वह संसारसे पहले ही विरक्त रहता था, इसलिए, अब वह योगियोंके साथ हो लिया होगा। **अकबरने** एक 'एहदी' को भेजकर नगरकोटकी घाटियोंमें **वीरबल**की खोज कराई। मगर वह कहीं न मिला। इससे यह स्थिर होगया कि, **वीरबल** मारा गया है।

वीरबल अपनी स्वाधीनता, संगीतविद्या और कवित्व शक्तिके लिए विशेष प्रसिद्ध हुआ था। उसकी कविताएँ और उसके लतीफ़े लोगोंको आज भी याद हैं। विशेषके लिए देखो,—'आइन-ई-अकबरी' के प्रथम भागका अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ४०४—४०५ तथा 'दर्बारे अकबरी' पृ० २९५—३१०.

अकबरको प्रसन्न करता और उसकी सारी चिन्ताओंको दूर कर देता। वह भी ई. सन् १५८६ में जैनखाँके साथ पहाड़ी लोगोंको परास्त करने गया था और वहीं मारा गया था। अकबर विशेष घबराने लगा और सोचने लगा कि, मेरा अब क्या होगा?

कहावत है कि,–' अंत सुखी तो सदा सुखी ' अन्तिम समयमें सुखके साधन मिलने बहुत ही कठिन हैं। अकबरके समान सम्राट्के ऊपर अन्त समयमें जो दुःख पड़े उनका वर्णन जब पढ़ते हैं तब हृदयसे यह प्रार्थना निकले बिना नहीं रहती कि,–प्रभो! हमारे शत्रुको भी कभी ऐसा दुःख न हो। जिस सम्राट्के वहाँ किसी बातकी कमी न थी; जिस सम्राट्के लिए दुःखकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, उसी सम्राट्की यह दशा!

जैसे जैसे अकबरकी अन्तिम अवस्था निकट आती गई, वैसे ही वैसे उसके सिरपर विपत्तियोंके बादल भी सघन होने लगे। मानसिक दुश्चिन्ताओंसे उसका मन व्याकुल रहने लगा। उसके सलाहकार, सहायक सब चल बसे थे, तीन पुत्रोंमेंसे एक,–मुराद शराबमें ही डूबा रहकर मर चुका था; दूसरा दानियाल भी उसे कलंकित करनेवाला ही था। वह इतना शराबी और व्यभिचारी हो गया था कि, लोग उससे घबरा उठे थे। उसको सुधारनेका सम्राट्ने बहुत प्रयत्न किया; यहाँ तक की उसको शराब पीलाने वालेके लिए प्राणदंडकी आज्ञाका हुक्मनामा जारी किया तो भी उसका शराब पीना बंद न हुआ। वह अपनी 'मृत्यु' नामकी बंदूकमें शराब मँगवा मँगवाकर पीने लगा। आखिर इसीमें उसके प्राण पखेरू उड़ गये। तीसरा सलीम ही रह गया।

अकबरका उत्तराधिकारी अब केवल सलीम ही रह गया।

मगर इस बातको सभी जानते थे कि, सलीम अकबरका पूरा विरोधी है; वह विद्रोही बनकर ही अलाहाबादमें रहता था। अकबर रातदिनकी चिन्ताओंसे दुर्बल होने लगा,--उसका शरीर सूखने लगा। अकबरकी बेगम सलीमाबेगम पिता पुत्रमें मेल करानेकी इच्छासे अलाहाबाद गई, और सलीमको समझाकर आगरे लाई। सम्राट्की माताने दोनोंको समझाकर पिता पुत्रमें प्रेम कराया। उदार सम्राट्ने सलीमका अपराध क्षमा किया। परस्पर अमूल्य वस्तुकी लेन-देन हुई। फिर जब सलीम अलाहाबाद जाने लगा तब अकबरने कहाः--"जब इच्छा हो तब आना"

सलीम भी अपने दो भाइयोंसे किसी तरह कम दुश्चरित्र और शराबी न था। और जबसे वह स्वाधीन होकर अलाहाबाद रहने लगा था तबसे तो उसने बेलगाम होजानेसे हद ही कर दी थी। अकबर एक बार उसे समझानेके लिए अलाहाबाद जाने लगा था; परन्तु रस्तेहीमें उसे अपनी माताकी बीमारीके समाचार मिले, इसलिए वह वापिस आगरे लौट आया। उस समय उसकी माताका रोग दुःसाध्य हो गया था; जीभ बंद हो गई थी। सिर्फ श्वासोच्छ्वास चल रहे थे। अकबर रोने लगा; आखिर वे भी बंद हो गये। सम्राट्की माताने इस मानवदेहका त्याग कर दिया।

अकबरको बार बार जो आघात लग रहे थे उनकी वेदनाको वह माताके आश्वासनसे भूल जाता था। आज वह आश्वासन भी जाता रहा। अकबरको उदरामयका रोग भी उसी समय हो गया। पहले आठ दिन तक तो उसने कोई दवा न ली; मगर पीछे से लेने लगा। चतुर हकीमोंने बहुत इलाज किया, मगर फायदा किसीसे कुछ भी नहीं हुआ। रोग बढ़ता ही गया।

सलीम और उसका पुत्र **खुसरो** भी सिंहासनकी आशासे आगेरे आ गये। उस समय अकबरकी बीमारीमें सम्राट्का धातृ-पुत्र '**खाने आज़म अज़ीज़ कोका**' राजका काम करता था। वह .खुसरोका ससुर भी होता था। जनताका बहुत बड़ा भाग सलीमके दुश्चरित्रसे परिचित था। इससे वह .खुसरोको गद्दीपर बिठाना चाहता था। '**अज़ीज़कोका**' ने जब यह प्रस्ताव सभामें रक्खा, तब कई मुसलमान कर्मचारियोंने उसका विरोध किया; क्योंकि वे सलीमको चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि, **अज़ीज़कोका** और राजा **मानसिंह**ने अपना विचार बदल दिया, इच्छा न होते हुए भी **सलीम**को गद्दीपर बिठानेका निश्चय किया।

उदरामयके रोगसे पीड़ित **सम्राट्** भारतकी दुर्दशाका विचार करता हुआ पलंगपर लेट रहा था। उसके चारों तरफ राज्यके कर्मचारी और निपुण हकीम उदास बैठे थे। उस दिन सन् १६०५ ईस्वीके १९ अक्टोबरका दिन था। समस्त आगरेमें उदासी थी। लोगोंके मुखों और दिशाओंका नूर उतरा हुआ था।

अकबरके कमरेमें अनेक आदमी चुपचाप बैठे भारतकी भावी दशाका विचार कर रहे थे। उसी समय एक युवकने, अनेक मुसलमानोंके साथ प्रवेशकर, अकबरके चरणोंमें सिर रख दिया। यह **सलीम** था। **सलीम**के पत्थरसे हृदयमें आख़िरी वक्त पिताकी दशासे करुणाका संचार हुआ। पिताके दुःखसे उसका हृदय भर आया; उसका कंठ बहुत देरतक रुद्ध रहा। फिर वह ज़ारज़ार रोने लगा।

वाहरे पितृ स्नेह! तू भी अजब है। जो राज्यके लोभसे एक दिन पिताकी हत्या करनेको तैयार था वही आज पिताके, अनायास, चलेजानेकी आशंकासे ज़ारज़ार रोरहा है।

सम्राट्ने एक मनुष्यको आज्ञा दी,—" मेरी तलवार, राजकीय पोषाक और राजमुकुट सलीमको दो। "

वाह! सम्राट् तेरी उदारता! पुत्रके, प्राणान्त कष्ट देनेवाले सब अपराधोंको भूलकर प्रसन्नतासे उसको राज्यगद्दी दी। अकबरको चेत था उस अवस्थाहीमें सलीमको तीनों वस्तुएँ सौंप दी गई। सम्राट् मानों इसी कार्यकी बाट जोह रहा था। इसके समाप्त होते ही वह सबसे अपने अपराधोंकी क्षमा माँगकर, भारतको शोकसागरमें डुबाकर चल बसा। देशका दुर्भाग्य लौट आया; चारों तरफ हाहाकार मच गया। भारतको दुःखके सागरसे बचानेवाला, देशकी दशाको उच्च स्थितिमें लानेवाला, भारतका दूसरा सूर्य भी अस्ताचलमें जा बैठा; भारत में पुनः अंधकाराच्छन्न होगया।

अकबरका जीवनहंस संसार सरोवरसे उड़ गया; पचास वर्षके अपने शासनकालमें वह अनेक आशाएं पूरी कर, अनेक अधूरी रख चल बसा। दूसरे दिन सवेरे ही उसके स्थूल शरीरको लोग बड़ी धूमधामके साथ, मुसलमानी रिवाजके अनुसार, शहरसे बाहर ले गये। सलीम और उसके तीन लड़कोंने अरथीको उठाया; किलेके बाहिरतक वे उसे लाये। उसके बाद दर्बारी और अधिकारी लोग उसे 'सिकंदरा' में ले गये। यह आगरेसे चार माइल दूर है। बहुतसे हिन्दु और मुसलमान सिकन्दरातक साथ साथ गये थे। वहाँ सम्राट्का स्थूल शरीर सदाके लिए भारतमाताकी पवित्रगोदमें समर्पण किया गया।

पीछेसे सम्राट् जहाँगीरने उस स्थानपर—जहाँ अकबरका शव गाडा गया था—एक आदर्श समाधि बनवाकर सदाके लिए अकबरका मूर्त्तिमान कीर्तिस्तंभ स्थापित करदिया।

अकबर एक मुसलमान सम्राट् था तो भी उसकी प्रशंसा केवल हिन्दुमुसलमान ही नहीं बल्के युरोपिअन विद्वान लोग भी करते हैं । इस बातका हम कई बार उल्लेख कर चुके हैं । वह प्रशंसापात्र क्यों बना ? इसका मुख्य कारण है उसकी उदार राजनीति । उसने प्रजाका कल्याण सामने रखकर ही राज्यतंत्र चलाया था; इसीलिए आजतक विद्वान् उसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करते आरहे हैं । उसमें धर्मान्धता और निरर्थक विरुद्धाचरणकी आदत न थी, इसीलिए कई लेखकोंने तो उसे अन्य सब राजाओंकी अपेक्षा उच्च कक्षामें रक्खा है । भारतवर्षके राजाओंका इतिहास पढ़ो । उससे मालूम होगा कि, प्रायः मुसलमान बादशाहोंने हिन्दुओं, जैनों और बौद्धों-पर जुल्म किया है । इसी प्रकार अनेक हिन्दु राजाओंने भी मुसलमानों या अन्य धर्मवालोंको सतानेमें कोई कसर नहीं रक्खी । मगर अकबर ही ऐसा था कि, जिसने धर्म या जातिका खयाल न करके सभीको समान दृष्टिसे देखा हैं और सबका एकसा न्याय किया है । इस बातको अबतकके प्रकरण अच्छी तरह प्रमाणित कर चुके हैं ।

ऐसी राज्यनीतिवाले सम्राट्की सभी प्रशंसा करें तो इसमें आश्चर्यकी बात कौनसी है ? इस प्रकारकी राजनीति उसने रक्खी इसका कारण,—वह समझता था कि प्रजाकी भलाईमें ही राजाकी भलाई है । ' अकबरने अपनी इस उदार राज्यपद्धतिका आन्तरिक संगठन ऐसा दृढ किया था कि उसका प्रभाव चिरकालतक रहा था । यदि यह कहें कि, अबतक चला आ रहा है तो भी अनुचित न होगा । इस संबंधमें अनेक लेखकोंने बहुत कुछ लिखा है । मगर उन सबके उद्गार न लिख केवल प्रिंगल केनेडी (Pringle Kennedy) नामके विद्वान्ने ' अपने ग्रंथ ' द हिस्ट्री ऑव द ग्रेट मोगल्स '

(The History of the Great Moghuls) के प्रथम भागके ३११ वें पेजमें जो उद्गार निकाले हैं उनको उद्धृतकर, इस प्रकरणके साथ ही इस ग्रंथको भी हम समाप्त करेंगे। वह लिखता है,—

" That each persons should be taxed according to his ability, that there should be shown no exemption or favour as regards this, that equal justice should be meted out and external foes kept at bay, *that every man should be at liberty to believe what he pleases without any interference by the State with his conscience; Such are the principles upon which the British Government in India rests, and such are its real boast and strength. But all these principles were those of Akbar, and to him remains the undying glory of having been the first in Hindustan to put them into practice. These rules now underlie all modern Western States, but few even of such States can boast that these priciples are as thoroughly carried out by them in this the twentieth century, as they were by Akbar himself more than three hundred years ago.* "

" प्रत्येक मनुष्यसे उसकी शक्तिके अनुसार ही 'कर' लेना चाहिए। इस विषयमें न किसीपर कृपा दिखानी चाहिए और न किसीको मुक्त ही करना चाहिए। प्रत्येकका न्याय समान दृष्टिसे करना चाहिए और हरेकको उसकी इच्छानुसार, धर्म या सिद्धांत, माननेकी स्वाधीनता देनी चाहिए। इन तत्त्वोंपर ही भारतमें ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हुआ है और ये तत्त्व ही उसके (ब्रिटिश साम्राज्यकी) वास्तविक अभिमान और बलके कारण हैं।

मगर ये सभी तत्त्व अकबरके हैं और इन तत्त्वोंको भारतमें व्यवहृत करनेका अमर यश उसीको है। आधुनिक समयमें समस्त पाश्चात्य राज्योंमें ये नियम हैं; परन्तु उनमेंसे बहुत ही कम राज्य साभिमान यह कह सकते हैं कि,—अकबरने तीनसौ वर्ष पहले जिस तरह इन नियमोंको पाला था, उसी तरह सम्पूर्णतया इस बीसवींसदीमें हम पाल रहे हैं।

परिशिष्ट ।

फ़रमान नं. १ की दूसरी बाजु

परिशिष्ट (क)

फ़र्मान नं. १ का अनुवाद।

अल्लाहो अकबर।

जलालुद्दीन महम्मद अकबर बादशाह ग़ाज़ीका फ़र्मान।

अल्लाहो अकबरकी मुहरके साथ नक़ल मुताबिक़ असल फ़र्मानके है।

महान् राज्यके सहायक, महान् राज्यके वफ़ादार, श्रेष्ठ स्वभाव और उत्तम गुणवाले, अजित राज्यको दृढ बनानेवाले, श्रेष्ट राज्यके विश्वासभाजन, शाहीकृपापात्र, बादशाहद्वारा पसंद किये गये और ऊँचे दर्जेके खानोंके नमूने स्वरूप 'मुबारिज्जुदीन' (धर्मवीर) आज़मखानने बादशाही महरबानीयाँ और बख्शिशोंकी बदतीसे, श्रेष्ठताका मान प्राप्तकर जानना कि—भिन्न भिन्न रीति-रिवाजवाले, भिन्न धर्मवाले, विशेष मतवाले और जुदा पंथवाले, सभ्य या असभ्य, छोटे या मोटे, राजा या रंक, बुद्धिमान या मूर्ख—दुनियाके हरेक दर्जे या जातिके लोग,—कि जिनमेंका प्रत्येक व्यक्ति ख़ुदाईनूर ज़हूरमें आनेका,—प्रकट होनेका—स्थान है और दुनियाको बनानेवालोंके द्वारा निर्मित भाग्यके उदयमें आनेकी असल जगह है; एवं सृष्टि संचालक (ईश्वर) की आश्चर्यपूर्ण अमानत है,—अपने अपने श्रेष्ठमार्गमें दृढ रहकर, तन और मनका सुख भोगकर, प्रार्थनाओं और नित्यक्रिया-ओंमें एवं अपने ध्येय पूर्ण करनेमें लगे रहकर, श्रेष्ठ बख्शिशें देनेवाले (ईश्वर) से दुआ—प्रार्थना करे कि, वह (ईश्वर) हमें दीर्घायु और

उत्तम काम करनेकी सुमति दे। कारण,—मनुष्यजातिमेंसे एकको राजाके दर्जेतक ऊँचा चढ़ाने और उसे सर्दारकी पोशाक पहनानेमें पूरी बुद्धिमानी यह है कि—वह (राजा) यदि सामान्य कृपा और अत्यंत दया को—जो परमेश्वरकी सम्पूर्ण दयाका प्रकाश है—अपने सामने रखकर सबसे मित्रता न कर सके, तो कमसे कम सबके साथ सुलेह—मेलकी नींव डाले और पूज्य व्यक्तिके (परमेश्वरके) सभी बंदोंके साथ महरबानी, मुहब्बत और दया करे तथा ईश्वरकी पैदा की हुई सब चीज़ों (सब प्राणियों) को—जो महान् परमेश्वरकी सृष्टिके फल हैं—मदद करनेका ख्याल रक्खे एवं उनके हेतुओंको सफल करनेमें और उनके रीति-रिवाजोंको अमलमें लानेके लिए मदद करे कि जिससे बलवान् गरीबपर जुलम न कर सके और हरेक मनुष्य प्रसन्न और सुखी हो।

इससे, योगाभ्यास करनेवालोंमें श्रेष्ठ हीरविजयसूरि 'सेवडों'[1] और उनके धर्मके माननेवालोंकी—जिन्होंने हमारे दर्बारमें हाज़िर होनेकी इज्ज़त पाई है और जो हमारे दर्बारके सच्चे हितेच्छु हैं—योगाभ्यासकी सचाई, वृद्धि और ईश्वरकी शोधपर नजर रखकर हुक्म हुआ कि,—उस शहरके (उस तरफके) रहनेवालोंमेंसे कोई भी इनको हरकत (कष्ट) न पहुँचावे और इनके मंदिरों तथा उपाश्रयोंमें भी कोई न उतरे। इसी तरह इनका कोई तिरस्कार भी न करे। यदि उनमेंसे (मंदिरों या उपाश्रयोंमेंसे) कुछ गिर गया या उजड़ गया

---

१ श्वेतांबर जैनसाधुओंके लिए संस्कृतमें 'श्वेतपट' शब्द है। उसीका अपभ्रंश भाषामें 'सेवड' रूप होता है। वही रूप विशेष बिगड़कर 'सेवड़ा' हुआ है। 'सेवड़ा' शब्दका उपयोग दो तरहसे होता है। जैनोंके लिए और जैनसाधुओंके लिए। अब भी मुसलमान आदि कई लोग प्रायः जैनसाधुओंको सेवड़ा ही कहते हैं।

हो और उनको मानने, चाहने खैरात करनेवालोंमेंसे कोई उसे सुधारना या उसकी नींव डालना चाहता हो तो उसे कोई बाह्य ज्ञानवाला (अज्ञानी) या धर्मांध न रोके। और जिस तरह खुदाको नहीं पहचाननेवाले, बारिश रोकने[1] और ऐसे ही दूसरे कामोंको करना—जिनका करना केवल परमात्माके हाथमें है—मूर्खतासे, जादू समझ, उसका अपराध उन बेचारे खुदाको पहचानने वालोंपर लगाते हैं और उन्हें अनेक तरहके दुःख देते हैं। ऐसे काम तुम्हारे साये और बन्दोबस्तमें नहीं होने चाहिए; क्योंकि तुम नसीबवाले और होशियार हो। यह भी सुना गया है कि, हाजी हबीबुल्लाहने—जो हमारी सत्यकी शोध और ईश्वरीय पहचानके लिए थोड़ी जानकारी रखता है—इस जमातको कष्ट पहुँचाया है। इससे हमारे पवित्र मनको—जो दुनियाका बंदोबस्त करनेवाला है—बहुत ही बुरा लगा है। इसलिए तुम्हें इस बातकी पूरी होशियारी रखनी चाहिए कि तुम्हारे प्रान्तमें कोई किसीपर जुल्म न कर सके। उस तरफ़के मौजूदा और भविष्यमें होनेवाले हाकिम, नवाब या सरकारी छोटासे छोटा काम करनेवाले अहलकारोंके लिए भी यह नियम है कि, वे राजाकी आज्ञाको ईश्वरकी आज्ञाका रूपान्तर समझें, उसे अपनी हालत सुधारनेका वसीला समझें और उसके विरुद्ध न चलें; राजाज्ञाके अनुसार चलनेहीमें दीन और दुनियाका सुख एवं प्रत्यक्ष सम्मान समझें। यह फ़र्मान पढ़, इसकी नक़ल रख, उनको दे दिया जाय जिससे सदाके लिए उनके पास सनद रहे; वे अपनी भक्तिकी क्रियाएँ करनेमें चिन्तित न हों और ईश्वरोपासनामें उत्साह रक्खें। इसको फ़र्ज समझ इसके विरुद्ध कुछ न होने देना।

---

१ देखो पेज ३१, ३२ इसी पुस्तकके।

२ इसी पुस्तकके पृष्ठ १९०–१९४ वे में और 'अकबरनामाके' तीसरे भागके बेवरीज कृत अंग्रेजी अनुवादके पृ. २०७ में इसका हाल देखो।

इलाही संवत् ३९ अजार महीनेकी छठी तारीख और खुरदाद नामके रोज़ यह लिखा गया। मुताबिक़ तारीख २८ वीं मुहर्रम सन् ९९९ हिजरी।

मुरीदों (अनुयायियों) मेंसे नम्रातिनम्र अबुलफ़ज़लने[1] लिखा और इब्राहीमहुसेनने नोंध की।

नक़ल मुताबिक़ असलके है।

---

१ अबुलफ़ज़ल अपने नामके पहले मुरीद विशेषण इसलिए लगाता है कि, वह अकबरके धर्मका अनुयायी था।

फरमान नं. २ की दूसरी बाजू

परिशिष्ट (ख)

फ़र्मान नं. २ का अनुवाद।

अल्लाहो अकबर।

अबु-अलमुज़फ्फ़र सुल्तान..........का हुक्म.

ऊँचे दर्जेके निशानकी नक़ल असलके मुताबिक़ है।

इस वक्त ऊँचे दर्जेवाले निशानको बादशाही महरबानीसे बाहर निकलनेका सम्मान मिला (है) कि,—मौजूदा और भविष्यके हाकिमों, जागीरदारों, करोडियों और गुजरात सूबेके तथा सोरठ सरकारके मुसद्दियोंने, सेवड़ा (जैनसाधु) लोगोंके पास गाय और बैलोंको तथा भैंसों और पाड़ोंको किसीभी समय मारनेकी तथा उनका चमड़ा उतारनेकी मनाईसे संबंध रखनेवाला श्रेष्ठ और सुखके चिह्नोंवाला फ़र्मान है और उस श्रेष्ठ फ़र्मानके पीछे लिखा है कि,—" हर महीनेमें कुछ दिन इसके खानेकी इच्छा नहीं करना तथा इसे उचित और फ़र्ज समझना। और जिन प्राणियोंने घरमें या वृक्षोंपर घोंसले बनाये हों उन्हें मारने या कैद करने (पिंजरेमें डालने) से दूर रहनेकी पूरी सावधानी रखना।" इस मानने लायक़ फ़र्मानमें और भी लिखा है कि,—"योगाभ्यास करनेवालोंमें श्रेष्ठ हीरविजयसूरिके शिष्य विजयसेनसूरि सेवड़ा और उसके धर्मको पालनेवाले—जिन्हें हमारे दर्बारमें हाज़िर होनेका सम्मान प्राप्त हुआ है और जो हमारे दर्बारके खास हितेच्छु हैं—उनके योगाभ्यासकी सत्यता और वृद्धि तथा परमेश्वरकी

१ देखो पीछे पेज १६५, १६६।

शोध पर नजर रख (हुक्म हुआकि),—इनके मंदिरोंमें या उपाश्रयोंमें कोई न ठहरे एवं कोई इनका तिरस्कार भी न करे। अगर ये जीर्ण होते हों और इनके माननेवालों, चाहनेवालों, या खैरातकरनेवालोंमेंसे कोई इन्हें सुधारे या इनकी नींव डाले तो कोई भी बाह्य ज्ञानवाला या धर्मांध उसे न रोके। और जैसे खुदाको नहीं पहचाननेवाले, बारिशको रोकने या ऐसे ही दूसरे काम—जो पूज्यज़ातके (ईश्वरके) काम हैं—करनेका दोष, मूर्खता और बेवकूफ़ीके सबब, उन्हें जादूके काम समझ, उन बेचारे खुदाके माननेवालोंपर लगाते हैं और उन्हें अनेक प्रकारके दुःख देते हैं तथा वे जो धर्मक्रियाएँ करते हैं उनमें बाधा डालते हैं। ऐसे कामोंका दोष इन बेचारोंपर नहीं लगाकर इन्हें अपनी जगह और मुकामपर खुशीके साथ भक्तिका काम करने देना चाहिए, एवं अपने धर्मके अनुसार उन्हें धार्मिक क्रियाएँ करने देना चाहिए।"

इससे (उस) श्रेष्ठ फ़र्मानके अनुसार अमल कर ऐसी ताकीद करनी चाहिए कि,—बहुत ही अच्छी तरहसे इस फ़र्मानका अमल हो और इसके विरुद्ध कोई हुक्म न चलावे। (हरेकको चाहिए कि) वह अपना फ़र्ज़ समझकर फ़र्मानकी उपेक्षा न करे;—उसके विरुद्ध कोई काम न करे। ता० १ शहर्युर महीना, इलाही सन् ४६, मुताबिक् ता० २९, महीना सफर, सन् १०१० हिज्री।

पेटाका वर्णन।

फ़र्वरदीन महीना; जिन दिनोंमें सूर्य एक राशीसे दूसरी राशीमें जाता है वे दिन; ईद; मेहरका दिन; हर महीनेके रविवार; वे दिन कि जो दो सूफ़ियाना दिनोंके बीचमें आते हैं; रजब महीनेके सोमवार;

आज़ान महीना कि जो बादशाहके जन्मका महीना है; हरेक शमशी महीनेका पहला दिन जिसका नाम ओरमज है; और बारह पवित्र दिन कि, जो श्रावण महीनेके अन्तिम छः और भादवेके प्रथम छः दिन मिलकर कहलाते हैं।

निशाने आलीशानकी नकल असलके मुताबिक है।

(इस मुहरमें सिर्फ़ काज़ी खानमुहम्मदका नाम पढ़ा जाता है। दूसरे अक्षर पढ़े नहीं जाते)

(इस मुहरमें लिखा है,–' अकबरशाह मुरीद जादा दाराब[1] '

---

१ दाराबका पूरा नाम मिर्ज़ादाराबखाँ था। वह अब्दुर्रहीम खानखानाका लड़का था। विशेषके लिए देखो,–' आइन–ई–अकबरी ' के पहले भागका अंग्रेजी अनुवाद। पृ० ३३९.

परिशिष्ट (ग)

फ़र्मान नं. ३ का अनुवाद।

अल्लाहो अकबर।

नक़ल।

(ता. २९, माह फ़र्वरदीन, सन् ९ के क़रार मुजिबके फ़र्मानकी)

तमाम रक्षित राज्योंके बड़े हाकिमों, बड़े दीवानों, दीवानीके बड़े बड़े काम करनेवालों, राज्यकारोबारका बंदोबस्त करनेवालों, जागीरदारों और करोडियोंको जानना चाहिए कि,–दुनियाको जीतनेके अभिप्रायके साथ हमारी न्यायी इच्छा ईश्वरको ख़ुश करनेमें लगी हुई है और हमारे अभिप्रायका पुरा हेतु तमाम दुनियाको–जिसे ईश्वरने बनाया है–ख़ुश करनेकी तरफ़ रजू हो रहा है। उसमें भी ख़ास करके पवित्र विचारवालों और मोक्षधर्मवालोंको–जिनका ध्येय सत्यकी शोध और परमेश्वरकी प्राप्ति करना है–प्रसन्न करनेकी ओर हम विशेष ध्यान देते हैं। इसलिए इस समय **विवेकहर्ष**,

---

१ ये महान् प्रतापी पुरुष थे। उन्होंने अनेक राजामहाराजाओंको उपदेश देकर उनसे जीवदयाके कार्य कराये थे। कच्छका राजा **भारमल** तो उनके उपदेशसे जैन ही हो गया था। इस विषयका उल्लेख '**मोटी खाखर**' (कच्छ) के **शत्रुंजयविहार** नामके जैनमंदिरके एक बड़े शिलालेखमें है। यह शिलालेख मुनिराज **श्रीहंसविजयजी** विरचित '**प्रश्नोत्तर पुष्पमाला**' नामक पुस्तकके १५५ वें पृष्ठमें छपा है। इन '**विवेकहर्ष**' को 'महाजनवंशमुक्तावली' के लेखक, श्रीयुत **रामलालजीगणि** 'खरतर

फरमान नं. ३ की दूसरी बाजु

परमानंद, महानंद और **उदयहर्ष** तपा यति (तपागच्छके साधु) **विजयसेनसूरि**[2] **विजयदेवसूरि**[3] और **नंदिविजयजी**,—जिनको

गच्छके साधु बताते हैं। (देखो महाजनवंशमुक्तावलीकी प्रस्तावनाका पृ० ६ और पुस्तकका पृष्ठ ५९-६०) मगर यह बात इतिहाससे सर्वथा प्रतिकूल है। **मोटी खाखर**के मंदिरके जिस शिलालेखका उल्लेख किया गया है वह और तीसरा फ़र्मान स्पष्टतया बताता है कि, वे तपागच्छके साधु थे। **विवेकहर्ष**की बनाई हुई 'हीरविजयसूरि सज्झाय' के अन्तमें लिखा है,—

" जस पट्ट प्रगट प्रताप उग्यो, **विजयसेन** दिवाकरो।
कविराज **हर्षानंद** पंडित '**विवेकहर्ष**' सुहंकरो। "

इससे स्पष्ट ज्ञात होता कि, वे तपागच्छाचार्य **श्रीविजयसेनसूरि**की आज्ञामें रहनेवाले, और **हर्षानंद** कविके शिष्य थे। इसके सिवाय उन्होंने 'परब्रह्मप्रकाश' नामक एक पुस्तक भाषामें कवितावद्ध लिखी है। उसके अन्तमें भी उन्होंने अपनेको तपागच्छका ही बताया है। उन्होंने वीजापुरमें, वि० सं० १६५२ में 'हीरविजयसूरि रास' नामक एक छोटीसी पुस्तक लिखी है। उसमें भी उन्होंने अपनेको तपागच्छका बताया है। विशेष आश्चर्य तो यह है कि,—श्रीयुत **रामलालजीगणि**ने **विवेकहर्ष**को खरतरगच्छका बतानेके साथ ही उनका नाम भी **वेषहर्ष** बतानेकी बहुत बड़ी भूल की है।

१ ये विवेकहर्षके गुरुभाई थे। इनको भी श्रीयुत **रामलालजीगणि**ने खरतरगच्छके साधु ही बताया है। मगर यह भी भूल है। **परमानंद** भी तपागच्छहीके साधु थे। इस बातको यह तीसरे नंबरका फ़र्मान भली प्रकार सिद्ध करता है। इसके अलावा उन्होंने जुदी जुदी भाषाओंमें 'विजयचिन्तामणि स्तोत्र' लिखा है। उसका अन्तिम पद—

" श्रीविजयसेनसूरिंद सेवक पंडित **परमानंद** जयकर "

भी इसी बातको पुष्ट करता है।

२ देखो इसी पुस्तकका पृष्ठ १५९-१६५ तथा २३६-२३८।

३ ये **विजयसेनसूरि**के शिष्य थे। वि. सं. १६४३ में इन्होंने **विजयसेनसूरि**से अहमदाबादमें दीक्षा ली थी। सं० १६५६ में इन्हें

'खुशफ़हम' का खिताब है—के शिष्य हैं,—हमारे दर्बारमें थे। उन्होंने दरखास्त और विनति की कि,—" यदि सारे सुरक्षित राज्यमें हमारे पवित्र बारह दिन—जो भादोंके पर्युषणाके दिन हैं—तक हिंसा करनेके स्थानोंमें हिंसा बंद कराई जायगी तो इससे हम सम्मानित होंगे, और अनेक जीव आपके उच्च और पवित्र हुक्मसे बच जायँगे। इसका उत्तम फल आपको और आपके मुबारिक राज्यको मिलेगा।"

हमने शाही रहेम-नज़र, हरेक धर्म तथा जातिके कामोंमें उत्साह दिलाने बल्के प्रत्येक प्राणीको सुखी करनेकी तरफ़ रक्खी है; इससे इस अर्ज़को स्वीकारकर दुनियाका माना हुआ और मानने लायक़ जहाँगीरी हुक्म हुआ कि,—उल्लिखित बारह दिनोंमें, प्रतिवर्ष हिंसा करनेके स्थानोंमें, समस्त सुरक्षित राज्यमें प्राणी-हिंसा न करनी चाहिए और न करनेकी तैयारी ही करनी चाहिए। इसके संबंधमें हर साल नया हुक्म नहीं मँगना चाहिए। इस हुक्मके मुताबिक़ चलना चाहिए;

आचार्य पद मिला था। सं० १६७४ में, ये 'मांडवगढ' में बादशाह **जहाँगीर**से मिले थे। बादशाहने प्रसन्न होकर इन्हें 'महातपा' का खिताब दिया था। उदयपुरके महाराणा **जगतसिंहजी**ने उनके उपदेशसे 'पीछोला' और 'उदयसागर' नामक तालावोंमें जाल डालना बंद करवा दिया था। राज्याभिषेकके दिन, सालगिरहके दिन तथा भादों महीनेमें कोई जीवहिंसा न करे इस बातकी आज्ञा प्रकाशित की थी। **नयानगर**के राजा **लाखा**को, दाक्षिणके **ईदलशाह**को, **ईडर**के **कल्याणमल्ल**को और **दीव**के **फिरंगियों**को भी उपदेश देकर उन्होंने जीवहिंसा कम कराई थी। वि० सं० १७१३ के आषाढ शुक्ला ११ के दिन '**उना**' में उनका देहान्त हुआ था। विशेषके लिए देखो—'विजयप्रशस्ति महाकाव्य' तथा 'ऐतिहासिक सज्झायमाला' भाग पहला आदि ग्रंथ।

१ देखो इस पुस्तकका पेज १६०.

फ़र्मानके विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए। इसको अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

नम्रातिनम्र अबुलखैरके लिखनेसे और महम्मदसैयदकी नोंधसे।

---

१ यह शेख़ मुबारिकका पुत्र और शेख़ अबुलफ़ज़लका भाई था। वह हि. स. ९६७ के जमादी-उलअव्वलकी दूसरी तारीखको (आइन-ई-अकबरीके अनुसार २२ वीं तारीखको) जन्मा था। यह बड़ा ही होशियार और भला आदमी था। ज़बानपर उसका अच्छा क़ाबू था। अबुलफ़ज़लकी लिखी हुई चिट्ठियोंसे मालूम होता है कि, दूसरे भाइयोंकी अपेक्षा इसके साथ उसका विशेष संबंध था। अबुलफ़ज़लके सरकारी काग़ज़ प्रायः इसीके हाथमें रहते थे। पुस्तकालयकी देखरेख भी यही करता था। विशेषके लिए देखो दर्बारे अकबरी पृ० ३५५-३५६ तथा आइन-ई-अकबरीके प्रथम भागमें दिया हुआ अबुलफ़ज़लका जीवनचरित्र पृ० ३३.

२ यह सुजातखाँ शादीबेगका लड़का था; परन्तु शेख़ फ़रीदने इसे गोद लिया था। कारण,-शेख़ फ़रीदके कोई लड़का नहीं था और उसकी कन्या भी निःसन्तान मर गई थी। इसके अलावा मीरखाँ नामके एक युवकको भी शेख़ फ़रीदने गोद लिया था। इससे महम्मद सैयद और मीरखाँ दोनों भाई लगते थे। वे बड़े दबदबेसे रहते थे; बादशाह तककी कुछ भी परवाह नहीं करते थे। वे रंगीन लालटेनों और मशालोंसे सजी हुई नौकामें बैठकर, निःसंकोच भावसे बादशाही महलके पाससे गुज़रते थे। जहाँगीरने कई बार उन्हें ऐसा करनेसे रोका मगर जब यह प्रवृत्ति बंद न हुई तब जहाँगीरकी सूचनासे महाबतख़ाँने एक मनुष्य भेजकर मीरखाँको मरवा डाला। इससे शेख़ फ़रीदने महाबतख़ाँको प्राणदंड देनेकी बादशाहसे अर्ज़ की। मगर महाबतख़ाँने कई रुतबेवाले साक्षी पेशकर यह बात प्रमाणित की कि,-मीरखाँको महाबतख़ाँने नहीं मारा है बल्के महम्मद सैयदने मारा है। इस तरह महम्मद सैयदके ऊपर यह कलंक लगा था। महम्मद सैयद शाहजहाँके २० वें बरसमें जीवित था। ७०० सौ पैदल सीपाही

नकल मुताबिक असलके है।

यह मुहर पढ़ी नहीं जाती।

और ३०० घुड़सवार उसके अधिकारमें थे। देखो आइन-ई-अकबरीके प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद, पृ० ४१६ तथा ४८१.

परिशिष्ट (घ)

फ़र्मान नं. ४ का अनुवाद ।

अबुल्मुज़फ्फ़र सुल्तानशाह सलीम गाजीका
दुनियाद्वारा माना हुआ फ़र्मान ।

नक़ल मुताबिक़ असलके है ।

बड़े कामोंसे संबंध रखनेवाली आज्ञा देनेवालों, उनको अमलमें लानेवालों, उनके अहलकारों तथा वर्तमान और भविष्यके मुआमलतदारों......आदि और मुख्यतया सोरठ सरकारको शाही सम्मान प्राप्त करके तथा आशा रखके मालूम हो कि भानुचंद्र[1] यति और 'खुशफ़हम' का खिताबवाले सिद्धिचंद्र[2] यतिने हमसे प्रार्थनाकी कि,– " जज़िआ, कर, गाय, बैल, भैंस और भैंसेकी हिंसा, प्रत्येक महीनेके नियत दिनोंमें हिंसा, मरे हुए लोगोंके मालपर कब्ज़ा करना, लोगोंको क़ैद करना और सोरठ सरकार शत्रुंजय तीर्थपर लोगोंसे जो मेहसूल लेती है वह महसूल, इन सारी बातोंकी आला हज़रत (अकबर बादशाहने) मनाई और माफ़ी की है । " इससे हमने भी–हरेक आदमीपर हमारी महरबानी है इससे–एक दूसरा महीना–जिसके अन्तमें हमारा जन्म हुआ है–और शामिलकर, निम्न लिखित विगतके अनुसार माफ़ी की है[3]–हमारे श्रेष्ठहुक्मके अनुसार अमल करना। तथा

---

१ देखो पेज १४७–१५८ तथा २४०–२४१

२ " १५६–१५८.

३ " १४०, १४६, १४७, १५२, १६५, १६६.

विजयदेवसूरि और विजयसेनसूरिके–जो वहाँ गुजरातमें हैं–हालकी खबरदारी करना और भानुचंद्र तथा सिद्धिचंद्र जब वहाँ आ पहुँचें तब उनकी सार सँभालकर, वे जो कुछ काम कहें उसे पूरा कर देना, कि जिससे वे जीत करनेवाले राज्यको हमेशा (क़ायम) रखनेकी दुआ करनेमें दत्तचित्त रहें। और 'ऊना' परगनेमें एक वाड़ी है। उसमें उन्होंने अपने गुरु हीरजी (हीरविजयसूरि) की चरणपादुका स्थापित की है। उसे पुराने रिवाजके अनुसार 'कर' आदिसे मुक्त समझ, उसके संबंधमें कोई विघ्न नहीं डालना। लिखा (गया) ता. १४ शहेरीवर महीना, सन् इलाही ५५.

पेटाका खुलासा।

फ़रवरदीन महीना, वे दिन कि, जिनमें सूर्य एक राशीसे दूसरी राशीमें जाता है। ईदके दिन, मेहरके दिन, प्रत्येक महीनेके रविवार, वे दिन कि जो सूफ़ियानाके दो दिनोंके बीचमें आते हैं, रजब महीनेका सोमवार; अकबर बादशाहके जन्मका महीना–जो आबान महीना कहलाता है। प्रत्येक शमशी (Solar) महीनाका पहला दिन, जिसका नाम ओरमज है। बारह बरकतवाले दिन कि जो श्रावण महीनेके अन्तिम छः दिन और भादोंके पहले छः दिन हैं।

अल्लाहो अकबर।

नक़ल मुताबिक़ असलके है।

(इस मुहरके अक्षर पढ़े नहीं जाते।)

फरमान नं. ८ की दूसरी बाजु

(इस मुहरमें क़ाज़ी अब्दुलसमीका नाम है ।)

नक़ल मुताबिक़ असलके है ।

(इस मुहरमें क़ाज़ी ख़ानमुहम्मद्का नाम है ।
दूसरे अक्षर पढ़े नहीं जाते ।

१ यह 'मियाँकाल' नामके पहाड़ी प्रदेशका रहनेवाला था। यह प्रदेश **समरकंद** और **बुख़ाराके** बीचमें है। **बदाउनी** कहता है कि वह धनके लिए शतरंज खेलता था। शराब भी बहुत पीता था। हि० सं० ९९० में **अकबरने** उसे क़ाज़ी **जलालुद्दीन** मुल्तानीके स्थानमें **क़ाज़िलक़ुज़ात** बनाया था। देखो,—आइन-ई-अकबरीके प्रथम भागका अंग्रेजी अनुवाद पृ. ५४५.

परिशिष्ट (ङ)

फ़र्मान नं. ५ का अनुवाद।

अल्लाहो अकबर।

हक़को पहचाननेवाले, योगाभ्यास करनेवाले विजयदेवसूरिको, हमारी खास महरबानी हासिलकर मालूम हो कि,–तुमसे ' पैत्तन ' में मुलाक़ात हुई थी। इससे एक सच्चे मित्रकी तरह (मैं) तुम्हारे प्रायः समाचार पूछता रहता हूँ। (मुझे) विश्वास है कि तुम भी हमारे साथ सच्चे मित्रका (तुम्हारा) जो संबंध है उसको नहीं छोड़ोगे। इस समय तुम्हारा शिष्य दैयाकुशल हमारे पास हाज़िर हुआ है। तुम्हारे

---

१ 'पत्तन' से गुजरातके 'पाटण' को नहीं मगर मांडवगढ़' (मालवा) को समझना चाहिए। क्योंकि, जहाँगीर और विजयदेवसूरि मांडवगढ़में मिले थे। इस भेटका पूर्ण वृत्तान्त विद्यासागरके प्रशिष्य अथवा पंचायणके शिष्य कृपासागरने 'श्री नेमिसागर निर्वाणरास' में दिया है। उसमें भी जहाँ मांडवगढ़के श्रावकोंका वर्णन लिखा है वहाँ स्पष्ट लिखा है कि,—

' वीरदास छाजू वळी ए, शाह जगू गुण जाण के;
' पाटणे ' ते वसे इत्यादिक श्रावक घणाए॥ ९१॥

(जैनरासमाला, भाग पहला पृ० २५२)

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि, 'मांडवगढ़' उस समय पाटणके नामसे भी ख्यात था।

२ ये वेही दयाकुशलजी हैं जिन्होंने विक्रम संवत् १६४९ में विजयसेनसूरिकी स्तुतिमें 'लाभोदय' रास लिखा है। इनके गुरुका नाम कल्याणकुशल था।

समाचार उसके द्वारा मालूम हुए । इससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई । तुम्हारा शिष्य भी अच्छी तर्कशक्ति रखनेवाला और अनुभवी है । यहाँ योग्य जो कुछ काम हो वह तुम अपने शिष्यको लिखना (जिससे) हुजूरको मालूम हो जाय । हम उसपर हरेक तरहसे ध्यान देंगे । हमारी तरफ़से बेफ़िक्र रहना और पूजने लायक ज़ातकी पूजाकर हमारा राज्य क़ायम रहे इस प्रकारकी दुआ करनेके काममें लगे रहना । लिखा ता० १९ महीना शाहबान, सन् १०२७.

इस मुहरमें, जहाँगीर, मुरीद और शाह नेवाज़खाँ इतने

१ इसका ख़ास नाम ईरज था । यह अपनी वीरताके लिए बहुत प्रसिद्ध हुआ था । जब यह युवा था, तब 'खानखान-ई-जवान' कहलाता था । राज्यके चालीसवें वर्षमें यह चारसोका अधिपति बनाया गया था । राज्यके अड़तालीसवें वर्षमें इसने मलिकअम्बरके साथ 'खारकी' में लड़कर 'बहादुर' की पदवी हासिल की थी । शाहजहाँके समयमें शाहनवाज़खान-ई-शफ़वी नामका एक उमराव हुआ है । इसलिए दोनोंको भिन्न भिन्न बतानेके लिए इतिहास लेखक इसको 'शाहनवाज़खान-इ-जहाँगीरी' लिखते हैं । जहाँगीरने इसको हि० स० १०२० में 'शाहनवाज़खाँ' पदवी देकर तीन हज़ारी बनाया था और हि० सं० १०२७ में पाँच हज़ारी बनाया था । जहाँगीरके राज्यके बारहवें वर्षमें इसने दक्षिणमें कुमार शाहजहाँकी नौकरी करली थी । यह एक अच्छा सैनिक था । परन्तु कपड़ोंके विषयमें यह बहुत ही लापरवाह था । इसकी एक कन्याका ब्याह शाहजहाँके साथ हुआ था । ग्रांट-लिखित मध्यप्रान्तोंके गेज़ेटियरके अनुसार इस ईरज (शाहनवाज़) की क़ब्र बुरहानपुरमें है । यह

अक्षर हैं।

कब्र इसकी जिन्दगीहीमें तैयार हुई थी। हि० स० १०२८ में यह अत्यधिक मदिरा पीनेसे मर गया था। कहा जाता है कि, **अकबर** अपने फ़र्मानोंमें इस **ईरज** और दूसरे फ़र्मानोंके अन्तिम नोटमें (पृ० ३८१ में) उल्लिखित **दाराव**का नाम किसी न किसी तरहसे लारखता था। विशेषके लिए देखो आइन-ई-अकबरीके प्रथम भागका अंग्रेज़ी अनुवाद पृ० ३३९, ४९१, तथा **दर्बारे अकबरी** पृ० ६४२-६४४.

परिशिष्ट (च)

फ़र्मान नं. ६ का अनुवाद।

अल्लाहो अकबर।

नूरुद्दीन महम्मद जहाँगीर बादशाह ग़ाज़ीका फर्मान।

हमेशा रहनेवाला यह आलीशान फर्मान, ता. १७ रजबुरमुरजब हि० स. १८२४ का है, उसकी नक़ल।

अब इस फर्मान आलीशानको प्रकट और प्रसिद्ध करनेका, महत्त्वका, प्रसंग प्राप्त हुआ है। हुक्म दिया जाता है कि—मापी हुई दस बीघे ज़मीन, खंभातके समीप चौरासी परगनेके महम्मदपुर (अकबरपुर) गाँवमें निम्न लिखित नियमानुसार चंदू संघवीको "मदद-ई-मुआश" नामकी जागीर खरीफ़के प्रारंभ—नौशकाने ईल (जुलाई) महीनेसे हमेशाके लिए दी जाय, जिससे उसकी आमदनीका उपयोग हरएक फ़सल और हरएक सालमें वह अपने खर्चके लिए करे और असीम बादशाही अखंडित रहे इसके लिए वह प्रार्थना करता रहे।

वर्त्तमानके एवं अब होनेवाले अधिकारियों, पटवारियों, जागीरदारों तथा मालके ठेकेदारोंको चाहिए कि—वे इस पवित्र एवं ऊँचे हुक्मको हमेशा बजालानेका प्रयत्न करें। ऊपर लिखे हुए ज़मीनके टुकड़ेको नापकर और उसकी मर्यादा बाँधकर वह ज़मीन चंदू संघवीको दी जाय। इसमें कुछ भी फेरफार या परिवर्त्तन

न किया जाय। एवं उसे तकलीफ़ भी न दी जाय। उससे किसी तरहका खर्च भी न माँगा जाय। जैसे,—पट्टा बनानेका खर्च, नज़राना, नापनेका खर्च, ज़मीन कब्जेमें देनेका खर्च, रजिस्टरीका खर्च, पटवार फंड, तहसीलदार और दारोगाका खर्च, बेगार, शिकार और गाँवका खर्च, नंबरदारीका खर्च, जेलदारीकी प्रति सैंकड़ा दो रु० फ़ीस, कानूगोकी फ़ीस, किसी खास कार्यके लिए साधारण वार्षिक खर्च, खेती करनेके समयकी फ़ीस, और इसी प्रकारकी समस्त दीवानी सुल्तानी तकलीफ़ोंसे वह हमेशाके लिए मुक्त किया जाता है। इसके लिए प्रतिवर्ष नवीन हुक्म और सूचनाकी आवश्यकता नहीं है। जो कुछ हुक्म दिया गया है, वह तोड़ा न जाय। सभी इसको अपना सरकारी कार्य समझें।

ता॰ १७ अस्फन्दारमुझ—इलाही महीना, १० वाँ वर्ष।

दूसरी तरफ़का अनुवाद।

ता॰ २१ अमरदाद, इलाही १० वाँ वर्ष,—बराबर रजबुल्मुरज्जब हि. स. १०२४ की १७ वीं तारीख़, गुरुवार।

पूर्णता और उत्तमताके आधाररूप, सच्चे और ज्ञानी ऐसे सैयद अहम्मद कादरीके भेजनेसे; बुद्धिशाली और वर्त्तमान समयके जालीनूस (धन्वन्तरी वैद्य) एवं आधुनिक ईसा जैसे जोगीके अनुमोदनसे, वर्त्तमान समयके परोपकारी राजा सुरहानके दिये हुए परिचयसे और सबसे नम्र शिष्योंमेंसे एक तथा नोंध करनेवाले इसहाक़के लिखनेसे चंदू संघवी, पिता वोरु (?), पितामह वजीवन

(वरजीवन) आगरेका रहनेवाला, सयजन्म (सेवड़ोंको मानने-वाला), जिसका कपाल चौड़ा, भ्रमर चौड़ी, मेड़येके जैसे नेत्र, कालारंग, मुँडीहुई डाढ़ी, मुँहके ऊपर बहुतसे चेचकके दाग, दोनों कानोंमें जगह जगह छेद, मध्यम उँचाई, और जिसका करीब ६० वर्षकी उम्र है, उसने बादशाहकी ऊँची दृष्टिको एक रत्नसे जड़ी हुई अंगूठी, १० वें वर्षके इलाही महीनेकी २० वीं तारीखके दिन भेट की। और अर्ज की कि अकबरपुर गाँवमें १० बीघा जमीन, उसको सद्गुरु गुरु विजयसेनसूरिके मंदिर, बाग, मेला और सम्मानकी यादगारके लिए दी जाय। इसलिए सूर्यकी किरणोंकी तरह चमकनेवाला और सब दुनियाके मानने योग्य हुक्म हुआ कि—चंदू संघवीको गाँव अकबरपुर, परगना चौरासीमें—जो खंभातके समीप है—दश बीघे खेतीकी जमी-नका टुकड़ा मदद–इ–मुआश नामकी जागीर स्वरूप दिया जाय। हुक्मके अनुसार जाच करके लिखा गया। मार्जिनमें लिखा है कि "लिखनेवाला सच्चा है।"

जुमलतुलमुल्क, मदारुलमहाम एतमादुद्दौलाका हुक्मः— "दूसरीबार अर्ज की जाय"

मुखलीसखानने—जो महरबानी करने योग्य हैं—बादशाहके सामने दूसरी बार अर्ज पेश की (पुनः यह पत्र पेश किया जाता है।) ता. २१ माह यूर, इलाही स. १०

जुमलतुलमुल्क, मदारुलमहामका हुक्मः—"खरीफके पारंग-नोशकानेईल-से हुक्म लिखा जाय।"

जुमलतुलमुल्की मदारुल महामीका हुक्मः—

अन्तिम हुक्म
जुमलतुल मदारुल महामका

" अरजी (वाजिब) बनाई जाय "

यह है कि—
"मौज़ा महम्मदपुरसे इस (चंदू-संघवी)को माफी दी जाय।"

(बराबर पढ़ी नहीं जाती)

यह नक़्ल मुताबिक़ असलके है।

परिशिष्ट (छ)

पोर्टुगीज़ पादरी पिनहरो (Pinheiro) के दो पत्र[1]।

पिनहरो नामके एक पोर्टुगीज़ पादरीने, लाहोरसे ता. ३ सितंबर सन् १५९५ के दिन अपने देशमें एक पत्र लिखा था। उसका एक वाक्य डा० विन्सेंट ए. स्मिथने अपने अंग्रजी 'अकबर' नामके ग्रंथमें दिया है। वह वाक्य इस पुस्तकके १७१ वें पेजमें उद्धृत किया गया है। उसने जैनियोंसे संबंध रखनेवाली जो बातें उस पूरे पत्रमें लिखी थीं, वे ये हैं:—

" This King (Akbar) worships God and the sun, and is a Hindu [Gentile]; he follows the sect of Vertei, who are like monks living in communities [congregationi] and do much penance. They eat nothing that has had life [anima] and before they sit down, they sweep the place with a brush of cotton, in order that it may not happen [non si affironti] that under them any worm [or ' insect ', vermicells] may remain and be killed by their sitting on it. These people hold that the world existed from eternity, but others say 'No,—many worlds having

---

१ पिनहरोके इन दोनों पत्रोंका अंग्रेज़ी अनुवाद सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. विन्सेंट ए. स्मिथने अपने ता. २-११-१८ के पत्रके साथ पूज्यपाद गुरुवर्य शास्त्रविशारद-जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरि महाराजके पास भेजा था।

passed away. In this way they say many silly things, which I omit so as not to weary your Reverence.[1]"

" अकबर बादशाह ईश्वर और सूर्यको पूजता है और वह हिन्दु है। वह व्रती[2] सम्प्रदायके अनुसार आचरण करता है। वे मठवासी साधुओंकी भाँति बस्तीमें रहते हैं और बहुत तपस्या करते हैं। वे कोई सजीव वस्तु नहीं खाते। बैठनेके पहले रूई (ऊन) की पीछी (ओघा) से जमीनको साफ़ कर लेते हैं ताके ज़मीनपर कोई जीव रहकर उनके बैठनेसे मर न जाय। इन लोगोंकी मान्यता है कि, संसार अनादि है। मगर दूसरे कहते हैं कि,—अनेक संसार हो गये हैं। ऐसी मूर्खतापूर्ण (?) बातें लिखकर आप श्रीमान्को दिक् करना नहीं चाहता।"

इसी तरह उसने (पिनहरोने) ता. ६ नवम्बर सन् १५९५ के दिन अपने देशमें एक पत्र लिखा था। उसमें जैनोंके संबंधमें यह लिखा था,—

" The Jesuit narrates a conversation with a certain Babansa (? Bāban shāh) a wealthy notable of Cambay, favourable to the Fathers.

---

१ पेरुशी पृ० ६९ में छपे हुए पत्रके लेटिन अनुवादका यह तर्जुमा है। यही बात मॅक्लॅगनने 'जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बॅगालके वॉल्युम ४५ के प्रथम अंकके ७० वें पृ० में लिखी है।

२ 'व्रती' अन्य कोई नहीं, जैनसाधु ही हैं। उस समयके बहुतसे लेखकोंने जैनसाधुओंके लिए 'व्रती' शब्द ही लिखा है। 'डिस्क्रिप्शन ऑफ एशिया' नामक पुस्तक–जो ई. सन् १६७३ में छपा है–के ११५, २१३, २३२ आदि पृष्ठोंमें इस देशके जैन साधुओंका वर्णन दिया है वह 'व्रती' शब्दहीसे दिया है। और तो और सुप्रसिद्ध गुर्जर कवि शामलदासने भी 'सूडाबहोतेरी' में 'व्रती' शब्दही दिया है। 'व्रती' शब्दका व्युत्पत्ति-अर्थ होता है,—व्रतमस्याऽस्तीति व्रती (जिसको व्रत होता है उसे व्रती कहते हैं।) मगर रूढ़िमें 'व्रती' शब्द जैनसाधुओंके लिए ही व्यवहृत हुआ है और होता है।

" He is a deadly enemy of certain men who are called Verteis, concerning whom I will give some slight information [delli quali toccaro alcuna cosa].

The Verteis live like monks, together in communities [congregation]; and when I went to their house [in Cambay] there were about fifty of them there. They dress in certain white clothes; they do not wear anything on the head; their beards are shaven not with a razor, but pulled out, because all the hairs are torn out from the beards, and likewise from the head, leaving none of them save a few on the middle of the head up to the top, so that they are left a very large bald space.

They live in poverty; receiving in alms what the giver has in excess of his wants for food. They have no wives They have (the teaching of) their sect written in the script of Gujarat. They drink warm water, not from fear of catching cold, but because they say that water has a Soul, and that drinking it without heating it kills its Soul, which God created, and that is great sin, but when heated it has not a Soul. And for this reason they carry in their hands certain brushes, which with their handles look like pencils, made of cotton (bambaca) and these they use to sweep the floor or pavement whereon they walk, so that it may not happen that the Soul [anima] of any worm be killed. I saw their prior and superior (maggiore) frequently sweep the place before sitting down by reason of that scruple. Their chief Prelate or supreme Lord may

have about 100,000 men under obedience to him, and every year one of them is elected. I saw among them boys of eight or nine years of age, who looked like Angels. They seem to be men, not of India, but of Europe. At that age they are dedicated by their fathers to this Religion.

* * * *

" They hold that the world was created millions of millenniums ago, and that during that space of time God has sent twenty three Apostles, and that now in this last stage, he sent another one, making twenty-four in all, which must have happened about two thousand years ago, and from that time to this they possess scriptures, which the others [Apostles] did not compose.

Father Xavier and I discoursed about that saying to them that this one (questo) [Seil apparently the last Apostle] concerned their Salvation.

The Babansa aforesaid being interpreter, they said us, we shall talk about that another time. But we never returned there, although they pressed us earnestly, because we departed the next day.[1] "

" पादरियोंके अनुकूल, खंभातके बाबनसा[2] (? बावनशाह) नामक एक धनाढ्य उमरावके साथ पादरीकी बातचीत हुई थी। उसका वर्णन उसने इस प्रकार किया है,—

१ पेरुशीके पृष्ठ ५२ मेंसे किया हुवा अनुवाद। यह बात मैकलेगनने भी अपने लेखके ६५ वें पृष्ठमें लिखी है।

२ बावनसा यह एक पारसी गृहस्थका नाम है। ऐसा मालूम होता है कि, उसका शुद्ध नाम बहमनशा होगा। उस समय भी खंभातमें पारसी गृहस्थ रहते थे।

" वह ' व्रती ' नामसे पहचाने जानेवाले मनुष्योंका कट्टर शत्रु है । मैं उन व्रतियोंसे संबंध रखनेवाली कुछ बातें यहाँ लिखूँगा ।

" व्रती, साधुओंकी तरह समुदायमें रहते हैं ! मैं जब उनके स्थान (खंभातमें) पर गया, तब उनमेंके लगभग पचास वहाँ थे। वे अमुक प्रकारके सफ़ेद कपड़े पहनते हैं, शिरपर कुछ नहीं रखते; उस्तरेसे डाढ़ी नहीं कराते; मगर वे डाढ़ीके बाल खींच लेते हैं अर्थात् डाढ़ीके और शिरके बालोंका वे लोच करते हैं । सिरके ऊपर बीचके भागमें ही थोड़ेसे बाल होते हैं; इससे उनके सिरमें बडीसी टाल (Bald) हो जाती है ।

" वे निर्ग्रंथ हैं । जो खाद्य पदार्थ गृहस्थों के यहाँ आवश्यकताके उपरांत बढ़ा हुवा होता है वही वे भिक्षामें लेते हैं। उनके स्त्रियाँ नहीं होतीं । गुजराती भाषामें उनकी धर्मशिक्षाएँ लिखी रहती हैं। वे गर्मपानी पीते हैं । मगर सर्दी लगनेके भयसे नहीं बल्के इस हेतुसे कि पानीमें जीव होते हैं, इसलिए उबाले बगेर पानी पीनेसे उन जीवोंका नाश होता है । इन जीवोंको ईश्वरने बनाया है । और इसमें (उबाले बिना पानी पीनेमें) बहुत पाप है । मगर जब पानी उबाल लिया जाता है तो उसमें जीव नहीं रहते । और इसी हेतुसे वे अपने हाथोंमें अमुक प्रकारकी पींछियाँ (ओघे) रखते हैं । ये पींछियाँ उनकी डंडियों सहित रूईकी (ऊनकी) बनाई हुई पेन्सिलोंके जैसी लगती हैं। वे इन पींछियों द्वारा (बैठनेकी) जगह अथवा उन स्थानोंको साफ़ करते हैं जिन पर उन्हें चलना होता है । कारण,—ऐसा करनेसे कोई कोई जीव नहीं मरता । इस व्हेमके हेतु उनके बड़ों और गुरुजनोंको कई बार मैंने ज़मीन साफ़ करते देखा है। उनके सर्वोपरि नायकके अधिकारमें एक लाख मनुष्य होंगे । प्रतिवर्ष इनमेंका एक चुना जाता

है। मैंने इनमें आठ नौ बरसकी आयुके छोकरोंको भी देखा है। वे देवोंके समान लगते हैं। वे मुझे भारतके नहीं मगर युरोपकेसे लगते हैं। इतनीसी आयुमें ही उनके मातापिताने उन्हें इस धर्मके भेट कर दिया है।

× × × ×

"वे पृथ्वीको अनादि मानते हैं। वे कहते हैं कि इतने समयमें (अनादिकालमें) उनके ईश्वरने २३ पैगम्बर (तीर्थंकर) भेजे और इस अन्तिम युगमें एक और भेजा। इस तरह सब चौवीस हुए। इस चौवीसवेंको हुए दो हजार वरस बीत गये हैं। उसी समयसे अबतक दूसरे पैगम्बरोंने नहीं बनाये ऐसे ग्रंथ उनके पास हैं।

"फ़ादर जेवियरने और मैंने इसके संबंधमें उनसे बातचीत की और पूछा कि, क्या इस अन्तिम पैग़म्बरके द्वारा ही तुम्हारा उद्धार होगा?

"उपर्युक्त बाबनशा हमारा दुभाषिया था। और उन्होंने हमसे कहा कि,—इस विषयमें हम फिर वार्तालाप करेंगे। मगर हम दूसरे ही दिन वहाँसे रवाना हो गये इसलिए फिरसे वहाँ न जा सके। उन्होंने तो आग्रहपूर्वक हमें बुलाया था।"

परिशिष्ट (ज)

अकबरके समयके सिक्के ।

जीवनोपयोगी वस्तुओंके व्यवहारके लिए प्रत्येक कालमें और प्रत्येक देशमें ' सिक्कों ' का व्यवहार अवश्यमेव होता है। ये सिक्के दो प्रकारके होते हैं। एक मुहरवाले और दूसरे बिना मुहरके। जो सिक्के मुहरवाले होते हैं उनपर उस समयके राजाका चित्र, राज्यचिह्न, अथवा राजाका नाम और संवत ढाले हुए रहते हैं। और जो सिक्के बगैर मुहरके होते हैं उनका व्यवहार गिनतीसे होता है। जैसे,—बादाम कोडियाँ आदि। जो सिक्के मुहरवाले होते हैं उनके विशेष नाम होते हैं। जैसे,—वर्तमानमें सोनेके सिक्केको गिन्नी, चाँदीके सिक्केको रुपया और ताँबेके सिक्केको पैसा कहते हैं। इतिहासोंसे मालूम होता है कि, प्रायः इन्हीं तीन धातुओंके सिक्के हर समय व्यवहारमें आये हैं। प्राचीन समयमें शीशा (रांगा) और अन्यान्य धातुओंके सिक्के भी काममें आते थे; परन्तु गत तीन चारसौ बरसोमें तो विशेषकरके इन—सोना, चाँदी और पीतल—तीन धातुओंके ही सिक्के व्यवहारमें आये हैं। हाँ, वज़नकी कमी ज्यादतीके कारण उनके नाम जुदा जुदा रक्खे गये हैं; परन्तु धातु तो ये तीन ही हैं।

जिस समयके सिक्कोंका वर्णन मैं करना चाहता हूँ उस समयके (अकबरके वक्तके) सिक्कोंमें भी ये ही तीन धातुएं काममें आइ हैं; और वे भी खरी—बग़ैर मिलावटकी।

अकबरके समयमें जो सिक्के चलते थे वे अनेक तरहके थे। अर्थात् व्यवहारकी सरलताके लिए अकबरने अपने समयके सिक्के

अनेक भागोंमें विभक्त करदिये थे। सबसे पहले हम उस समयके सोनेके सिक्कोंका उल्लेख करेंगे।

'ए मॅन्युअल ऑफ़ मुसलमान न्युमिसमेटिक्स' (A Manual of Musalman Numismatics) के पृ० १२० में लिखा गया है कि,—

"Also there are the large handsome gold pieces of 200, 100, 50 and 10 muhars of Akbar and his three successors, which were, no doubt, not for currency use exactly, but for presentation in the way of honour for the emperor or offered to the emperor or king for tribute or acknowledgment of fealty, nazarana as it is called.

अर्थात्—इसके सिवाय दूसरे बड़े सुंदर सोनेके सिक्के थे। वे अकबर और उसके पीछेके तीन बादशाहोंके थे। वे २००, १००, ५० और १० केथे। उन्हें अशरफ़ीयां कहते थे। यह ठीक है कि ये अशरफ़ीयां चलनी सिक्केकी तरह काममें नहीं आती थीं। वे सम्राट्के सम्मानार्थ, अथवा बादशाहको या राजाको कर देनेमें या नज़राना देनेमें काम आती थीं।

अकबरके इन सोनेके सिक्कोंका वर्णन, 'आइन-इ-अकबरी' के प्रथम भागके अंग्रेजी अनुवादके पृ० २७ में इस तरह दिया गया है:—

(१) 'शाहन्शाह' इस नामका एक गोळ सोनेका सिक्का था; जिसका वज़न १०१ तोला ९ माशा ६ सुर्ख़ था। उसका मूल्य एक सौ 'लालेजलाली' अशरफ़ी—जिसका वर्णन आगे दिया गया है—होता था। इसके एक तरफ़ शाहन्शाहका नाम था, और सिक्केके किनारेके पाँच भागोंमें इस अभिप्रायको बतानेवाले शब्द थे,—

"महान् सुलतान प्रख्यात बादशाह, प्रभु उसके राज्य और हुकूमतकी वृद्धि करे।"

यह सिक्का आगरेमें ढाला गया था।

इस सिक्केकी दूसरी तरफ़ 'ला इलाहि–इल्ल–अल्लाह मुहम्मद रसूल–अल्लाह' यह कल्मा, तथा कुरानका एक वाक्य लिखा गया था; उसका अर्थ यह होता था,—

"परमात्मा जिसपर प्रसन्न होता है, उसपर अत्यंत दया करता है।"

इस सिक्केके चारों तरफ़ पहिलेके चार ख़लीफ़ोंके नाम भी लिखे गये थे। इस सिक्के की आकृति सबसेपहले मौलाना मक़सूदने बनाई थी। उसके बाद मुल्लां अलीअहमदने इसे सुधारा था।

एक तरफ़ इसमें इस अर्थवाले शब्द लिखे थे,—"ईश्वरके मार्गमें, अपने सहधर्मियोंकी सहायताके लिए जो सिक्का ख़र्च होता है वह सर्वोत्तम है।"

दूसरी तरफ़ लिखा था,—"महान् सुलतान सुप्रसिद्ध ख़लीफ़ा, सर्वशक्तिमान उसके राज्य और हुकूमतकी वृद्धि करे, तथा उसकी न्यायपरायणता और दयालुताको अमर रक्खे।"

कहा जाता है कि, पीछेसे इनपरसे उपर्युक्त सभी शब्द निकालकर, मुल्लां अलीअहमदने शेख़ फ़ैज़ीकी दो रुबायात लिखी थीं।

एक तरफ़की रुबाईका अर्थ होता है,—

"सात समुद्रोंमें जो मोती होते हैं वे सूर्यके प्रभावहीसे होते हैं; काले पर्वतोंमें जो रत्न होते हैं उनका कारण भी सूर्यहीका प्रकाश है। कानोंमेंसे जो सोना निकलता है वह भी सूर्यके मंगलकारी प्रकाशकाही प्रताप है। वही सोना अकबरकी मुहरसे उत्तमाको प्राप्त होता है।

बीचमें 'अल्लाहो अकबर' और 'जल्लेजलालहू।' शब्द थे।

दूसरी तरफ़की रुबाईका अर्थ होता है,—

" यह सिक्का आशाका अलंकार है। इसकी मुहर अमर है। सिक्केका नाम अमर्त्य है और मंगलसूचक चिह्नकी भाँति सूर्यने प्रत्येक समयमें उसपर अपना प्रकाश डाला है।

बीचमें इलाही संवत् लिखा गया था।

(२) दूसरा सोनेका सिक्का उपर्युक्त प्रकार हीकी आकृति और अक्षरवाला था। वजनमें फ़र्क़ था। इसका वज़न ९१ तोला ८ माशे था। उसका मूल्य सौ गोल अशरफ़ियाँ था। इन गोल अशरफ़ियोंका वज़न प्रत्येकका ११ माशे था।

(३) तीसरा रहस नामका सिक्का था। यह सिक्का भी दो तरहका था। एकका वज़न शाहन्शाह नामके सिक्केसे आधा था और दूसरेका वज़न दूसरे नंबरके सिक्केसे आधा था। यह सिक्का कई बार चौरस भी ढाला जाता था। इसके एक तरफ़ शाहन्शाह सिक्केके जैसी ही आकृति थी और दूसरी तरफ़ फ़ैजीकी रुबाई लिखी थी। उसका अर्थ यह होता है,—

" शाही खजानेका प्रचलित सिक्का शुभ भाग्यके ग्रह-युक्त है। हे सूर्य! इस सिक्केको वृद्धि कर; क्योंकि हर समय अकबरकी मुहरसे यह सिक्का उत्तमताको प्राप्त हुआ है।

(४) चौथा आत्मह नामका सिक्का था। यह सिक्का प्रथम शाहन्शाह नामक सिक्केसे चोथाई था। उसकी आकृति चौरस और गोल थी। इनमेंसे कइयोंपर तो शाहन्शाह नामक सिक्केके समानही

अक्षर छिखे गये थे, और कइयों पर फ़ैज़ीकी रुबाई दी गई थी। उसका अर्थ यह होता है:—

" यह सिक्का भाग्यशाली पुरुषके हाथको सुशोभित करे; नौ स्वर्गों और सात ग्रहोंका अलंकार बने; यह सिक्का सोनेका है इसलिए कार्य भी इसके द्वारा सुनहरी ही हों; (और) यह सिक्का बादशाह अकबरकी कीर्तिको हमेशा कायम रक्खे। "

दूसरी तरफ रहस नामक सिक्केवाली रुबाई ही लिखी गई थी।

(५) पाँचवा बिन्सत नामक सिक्का था। उसकी आकृति आत्मह नामक दोनों सिक्कोंकीसी थी। इसका मूल्य शाहन्शाह नामक सिक्केका $\frac{1}{5}$ था। ऐसे ही दूसरे भी कई सिक्के थे जिनका मूल्य शाहन्शाह सिक्केका $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{10}$ और $\frac{1}{25}$ जितना था।

(६) छठा चुगुल (जुगुल) नामका सिक्का था वह शाहन्शाह सिक्केके पचासवे भाग जितना था। उसका मूल्य दो अशरफियाँ था।

(७) सातवाँ सिक्का लालेजलाली नामका था। उसकी आकृति गोल थी। मूल्य दो अशरफ़ियाँ था। उसके एक तरफ़ ' अल्लाहो अकबर ' और दूसरी तरफ़ ' यामुईनु ' शब्द थे।

(८) आठवाँ आफ़तावी नामका सिक्का था। वह गोल था। उसका वज़न १ तो० २ मा० ४॥। सुर्ख़ था। मूल्य बारह रुपये था। उसके एक तरफ़ ' अल्लाहो अकबर जल्लजलालहू ' और दूसरी तरफ़ इलाही संवत् तथा टकसालका नाम था।

(९) नववाँ सिक्का इलाही नामका था। उसकी आकृति गोल थी और वजन १२ मासा १॥। सुर्ख़ था। उसपर मुहर आफ़तावी सिक्केके समानही थी। उसका मूल्य दश रुपये था।

(१०) दसवाँ **लालेजलाली** नामका चौकोर सिक्का था। उसका वज़न और मूल्य इलाही सिक्के जितना ही था। उसके एक तरफ '**अल्लाहो अकबर**' और दूसरी तरफ़ 'जल्ल जलालहू' शब्द लिखे थे।

(११) अद्लगुत्क नामक ग्यारहवाँ सिक्का था। उसका वज़न ११ माशे और मूल्य ९)रु॰ था। उसके एक तरफ़ '**अल्लाहो अकबर**' और दूसरी तरफ़ '**यामुइन्नु**' शब्द थे।

(१२) बारहवाँ सिक्का **गोल मुहर** था। उसका वज़न और मूल्य **अद्लगुत्क** सिक्केके समान थे। उसकी मुहर दुसरी तरहकी थी।

(१३) तेरहवाँ **मिहरावी** नामका सिक्का था। इसका वज़न, मूल्य और मुहर **गोल अशरफ़ी**के समान थे।

(१४) **मुईनी** सिक्का चौदहवाँ था. उसकी आकृति चोरस गोल थी। वज़न और मूल्य **लालेजलाली** और **गोलमुहर** जितना ही था। उसपर **यामुइन्नु** नामकी छाप थी।

(१५) **चहार गोशह** नामक पन्द्रहवाँ सिक्का था। उसकी मुहर और वज़न **आफ़तावी** सिक्केके समान थे।

(१६) सोलहवाँ **गिर्द** नामका सिक्का था। वह **इलाही** नामक सिक्केसे आधा था। मुहर भी उसके समान ही थी।

(१७) सत्रहवाँ **धन** (दहन) नामका सिक्का था। वह **लालेजलाली**से आधा था।

(१८) **सलीमी** नामक अठारहवाँ सिक्का था। यह **अद्लगुत्क**से आधा था।

(१९) उन्नीसवाँ **रबी** नामक सिक्का था। वह **आफ़तावी** सिक्केसे चौथाई था।

(२०) बीसवाँ मन नामक सिक्का इलाही और जलालीके चौथे भाग जितना था।

(२१) इक्कीसवाँ आधासलीमी सिक्का अदलगुत्कका चौथा भाग था।

(२२) बाईसवाँ पंजनामक सिक्का इलाहीके पाँचवें भाग जितना था।

(२३) तेईसवाँ पंद्रो नामक सिक्का था। वह लालेजलाली का पाँचवाँ भाग था। उसके एक तरफ़ 'कमल' और दूसरी तरफ 'गुलाब' बनाया गया था।

(२४) चौबीसवाँ समनी अथवा अष्टसिद्ध नामक सिक्का था। वह इलाही सिक्केके आठवें भाग जितना था। उसके एक तरफ़ 'अल्लाहो अकबर' और दूसरी तरफ़ 'जल्लुजलालहु' शब्द लिखे गये थे।

(२५) पचीसवाँ कला नामक सिक्का इलाही सिक्केका सोलहवाँ भाग था। उसके दोनों तरफ़ जंगली गुलाब लिखा गया था।

(२६) छब्बीसवाँ झरह नामका सिक्का इलाही सिक्केके बत्तीसवें भाग जितना था। मुहर उस पर कलाके जैसी थी।

इस तरह अकबरके छब्बीस सिक्के स्वर्णके थे। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि,–" इनमेंसे लालेजलाली, धन (दहन) और मन नामके तीन सिक्के तो हरेक महीनेतक निरंतर शाही टकसालमें ढाले जाते थे। दूसरे सिक्के, जब ख़ास हुक्म मिलता था तभी ढलते थे।" इस कथनसे यह अनुमान सहजीमें हो सकता है कि,–उपर्युक्त छब्बीस सिक्कोंमेंसे ये तीन (लालेजलाली, धन और मन) सिक्के व्यवहारमें आते थे। ई. स. १६७३ में मुद्रित 'डिस्क्रिप्शन ऑफ एशिया' के पृ० १६३ पर (Description of Asia by Ogilby Page 163) लिखा है कि,—

" ऊपर जिस अशरफ़ीके सिक्कोंका उल्लेख किया गया है उसे 'ज़ेरेफ़ीन अकबर' (?) भी कहते थे। क्योंकि अकबरहीने सबसे पहले यह सिक्का चलाया था। और इसका मूल्य १२॥) रु० था। इसी तरह चाँदीके सिक्के भी अनेक चलते थे। उनमेंसे निम्न लिखितको अबुलफ़ज़लने मुख्य बताया है।"

(१) रुपया—यह गोल था। वजन ११॥ माशा था। सबसे पहले शेरशाहके समयमें रुपयेका उपयोग होने लगा था। उसके एक तरफ़ 'अल्लाहो अकबर जल्लजलालहू' शब्द थे और दूसरी तरफ़ वर्ष लिखा गया था। उसका मूल्य[1] लगभग ४० दाम था।

(२) जलालह—इसकी आकृति चौरस थी। इसकी क़ीमत और मुहर रुपयेके समानही थे।

(३) दर्ब—यह जलालहसे आधा था।

(४) चर्न—यह जलालहका चौथाई था।

(५) पन्दउ—यह जलालहके पाँचवें भाग जितना था।

(६) अष्ट—यह जलालहके आठवें भाग जितना था।

(७) दसा—यह जलालहका दसवाँ भाग था।

(८) कला—यह जलालहका सोलहवाँ भाग था।

(९) सूकी—यह जलालहका बीसवाँ भाग था।

अबुलफ़ज़ल कहता है कि,—" जैसे जलालह नामक चौरस आकृतिवाले सिक्केके जुदाजुदा हिस्से किये गये थे उसी तरह गोल सिक्केके—जिसका नाम रुपया दिया गया था—भी कई हिस्से किये गये थे। मगर इन भागोंकी आकृति कुछ भिन्न थी।"

विन्सेंट ए. स्मिथ अपने अंग्रेज़ी 'अकबर' नामके ग्रंथके

---

१ दि इंग्लिश फेक्टरीज इन इंडिया (ई. स. १६१८–१६२१) के पृष्ठ २६५ में रुपयेकी क़ीमत ८० पैसे बताई गई है।

पृ० ३८८–८९ में लिखता है कि,–" अकबरके रुपयेका मूल्य यदि अभीके हिसाबसे लगावें तो २ शी. ३ पेन्सके लगभग होता है।"

'इंग्लिश फेक्टरीज़ इन इंडिया' नामके ग्रंथके (ई. स. १६५१ से १६५४) पृ० ३८ में भी अकबरके रु. की कीमत उतनी ही अर्थात् २ शि. ३ पेन्स बताई गई है।

'डिस्क्रिप्शन ऑफ़ एशिया' के पृ० १६३ में लिखा गया हैं,–" रुपया, रूकी, रुपया, अथवा शाहजहानी रुपयाके नामसे पहचाना जाता था। उसका मूल्य २ शि. २ पेन्सके बराबर था और वह खरी चाँदीका बनता था। यह सिका सारे गुजरातमें चलता था। इसी लेखकने लिखा है कि एक रुपया ५३–५४ पैसेका होता था।"

मि० टेवरनियरने 'ट्रेवल्स इन इंडिया' के प्रथम भागके १३–१४ वें पृष्ठमें लिखा है कि,–" मेरी (भारतकी) अन्तिम यात्राके समय सूरतमें १ रु० के ४९ पैसे मिलते थे। कई बार ५० भी मिलते थे। कभी कभी ४६ का भाव भी हो जाता था।" इसी पुस्तकके ४१३ वें पृष्ठमें उसने लिखा है कि,–" आगरेमें एक रुपयेके ५५–५६ पैसे भी मिलते थे।"

'कलेक्शन ऑफ़ वॉयेजेज़ एण्ड ट्रेवल्स' के चौथे वॉ० के पृ० २४१ में लिखा है कि,–" हिन्दुस्थानमें जो सिक्के दलते थे उनमें चाँदीके रुपये, अठन्नियाँ और चौअन्नियाँ भी थीं।"

यह कथन भी ऊपर्युक्त सिक्कोंके जो भेद बताये गये हैं उन्हें सही प्रमाणित करता है। आगे चलकर इस लेखकने यह भी लिखा है कि,–" एक रुपयेका मूल्य ५४ पैसा होता था। यह बात ऊपर बताई हुई रुपयेकी कीमतहीको सही साबित करती है।"

अब अकबरके ताँबेके सिक्कोंका उल्लेख किया जायगा।

अबुलफ़ज़लने ताँबेके चार सिक्के बताये हैं। वे ये हैं।

(१) दाम—इसका वज़न ५ टाँक था। पाँच टाँक एक तो० ८ माशा और ७ सुर्खके बराबर होता था। **दाम** एक रुपयेका चालीसवाँ भाग था। अर्थात् एक रुपयेके चालीस दाम मिलते थे। यद्यपि यह सिक्का **अकबरके** पहले **पैसा** और **बहलोली** कहलाता था; मगर **अकबरके** समयमें तो **दामके** नामहीसे प्रसिद्ध था। इस सिक्केमें एक तरफ़ टकसालका नाम और दूसरी तरफ़ संवत् रहता था। **अबुलफ़ज़ल** कहता है कि,—" गिनतीकी सरलताके लिए एक दामके २५ भाग किये गये थे। उसका प्रत्येक भाग **जेतल** कहलाता था। इस काल्पनिक विभागका उपयोग केवल हिसाबी ही करते थे।

(२) अधेला—यह आधे दाम जितना था।

(३) पाउला—दामका चौथाई भाग।

(४) दमड़ी—दामका आठवाँ भाग।

उपर्युक्त प्रकारसे सोना चाँदी और ताँबेके सिक्के **अकबरके** समयमें प्रचलित थे। इनके अलावा थोड़े दूसरे सिक्के भी चलते थे। यह बात कुछ लेखकोंने लिखी है।

१ **महमूदी**—यह चाँदीका सिक्का था। इसकी क़ीमत एक शिलिंगके लगभग थी। अथवा २५—२६ पैसे एक **महमूदीके** मिलते थे। कहाजाता है कि,—" शायद यह **महमूदी** गुजरातके राजा **महम्मद बेगड़ा** (ई. स. १४५९ से १५११) के नामसे प्रचलित हुई थी[१]। **मेंडेलस्लो** नामका मुसाफ़िर लिखता है कि,—" हलकेसे हलके धातुके मेलसे सूरतमें यह महमूदी ढाली जाती थी। उसकी क़ीमत १२ पेन्स (१ शि.) थी और वह सूरत, बड़ौदा, भरूच, खंभात और उसके आसपासके मार्गोंहीमें चलती थी[२]।"

---

१ देखो—नासिक ज़िलेका गेजेटिअर, पृ० ४५९ का तीसरा नोट।

२ देखो—' मीराते अहमदी ' (बर्डकी) पृ० १२६—१२७ तथा ' जर्नल ऑफ द बॉम्बे ब्रांच ' द रॉयल ए० सोसायटी ' ई० स० १९०७ पृ० २४७.

'टेवरनियर्स ट्रेवल्स इन इंडिया' के वॉ. १ लेके पृ० १३–१४ में एक महमूदीकी ठीक ठीक कीमत बीस पैसे बताई गई है; और ऊपर तो २५–२६ पैसे बताई गई है। इसी तरह 'द इंग्लिश फेक्टरीज इन इंडिया (ई. स. १६१८–१६२१) के पृ० २६९ में एक महमूदीका मूल्य ३२ पैसे लिखा है। इससे मालुम होता है कि, उसका मूल्य बदलता रहा होगा। अकबरके समयमें महमूदीकी कीमत कितनी थी सो ठीक ठीक मालूम नहीं हुई। मगर, अनुमानसे कहा जासकता है, कि उसके समयमें भी कीमत बदलती रही होगी।

इसके अलावा एक **लारी** नामक सिक्का चलता था। वह परशिअन सिक्का था। और खरे सोनेका बना हुआ था। उसकी आकृति लंब-गोल और कीमत १ शिलिंग ६ पेन्स थी[1]।

'दि इंग्लिश फेक्टरीज् इन इंडिया' (ई. स. १६१८ से १६२१) पृ० २२७ के नोटमें इसकी कीमत लगभग १ शिलिंग लिखी है।

एक **टंका** नामक ताँबाका सिक्का था। जैनग्रंथोंमें इसका बहुत उल्लेख आता है। विन्सेंट ए. स्मिथने 'इंडिअन एण्टिक्वेरी' वॉ० ४८, जुलाई सन् १९१९ के अंकके पृ. १३२ में लिखा है कि,–"टंका और दाम दोनों एक ही हैं।" मि० स्मिथका यह कथन छोटे टंकोंके लागू पड़ता है। क्योंकि, कॅटलॉग ऑफ दि इंडिया कोइन्स इन द ब्रिटिश म्यूजिअम' के पृ० ४० में दिये हुए सिक्कोंके वर्णनमें दो प्रकारके टंका बताये गये हैं। छोटे और बड़े। बड़े टंकेका वजन बताया गया है ६४० ग्रेन और छोटेका ३२० ग्रेन। बड़ेका मूल्य दो दाम बताया गया है और छोटेका एक। अतएव स्मिथका मत छोटे टंकेके साथ लागू होता है। मि० वर्डकी 'मीराते अहमदी' के

1 देखो–डिस्क्रिप्शन ऑफ़ एशिया पृ० १७३

पृ० ११८ में १०० टंकोंके बराबर ४० दाम (१ रुपया) बताये गये हैं। इससे भी उपर्युक्त कथनहीकी पुष्टि होती है।

इसके अलावा और भी कई ताँबेके सिक्के चलते थे। वे फ़लूप, **निस्फ़ी, एकटंकी, दोटंकी, चारटंकी** आदिके नामसे ख्यात थे।

अकबरके समयमें, जैसा कि ऊपर उल्लेख हुआ है, मुहरवाले सिक्कोंका प्रचार था। इसी तरह बग़ैर मुहरकी भी कई चीजें नाणा–मुद्राकी तरह काममें आती थीं। उनका हिसाब गिनतीसे होता था। ऐसी चीज़ोंमें (कड़वी) **बादामें** और **कोड़ियाँ** मुख्य थीं। **टेवर-नियरने** लिखा है कि,—

"मुगलोंके राज्यमें कड़वी बादामें और कोड़ियाँ भी चलती थीं। गुजरात प्रान्तमें छोटे लेनदेनके लिए ईरानसे आई हुई कड़वी बादामें चलती थीं। एक पैसेकी ३९ से ४० तक बादामें मिलती थीं[1]।"

इसी विद्वानने आगे लिखा है कि,—

"समुद्रके किनारेपर एक पैसेकी ८० कोड़ियाँ मिलती थीं। जैसे जैसे समुद्रसे दूर जाते थे वैसे ही वैसे कोड़ियाँ भी कम मिलती थीं। जैसे,—आगरेमें १ पैसेकी ५०–५५ मिलती थीं।"

'डिस्क्रिप्शन ऑफ़ एशिया' के पृ० १६३ में भी बादामोंका भाव १ पैसेकी ३६ और कोड़ियोका भाव १ पैसेकी ८० बताया गया है।

ऊपरके वृत्तान्तसे **अकबरके** समयकी प्रचलित मुद्राका कोष्टक इस प्रकार बताया जासकता है,—

३९ से ४० बादामें अथवा ८० कोड़ियाँ	= १ पैसा।
४९ से ५६ पैसे अथवा ४० दाम	= १ रुपया।
१३॥ से १४ रुपया	=१ अशरफ़ी

---

१ देखो–'टेवरनियर्स ट्रेवल्स इन इंडिया' वॉ० १ ला. पृ. १३–१४.

पूर्ति ।

इस पुस्तकमें लिखी गई कुछ बातोंका विशेष स्पष्टीकरण इस पूर्तिमें किया जाता है ।

अभिरामाबाद ।

पृ० १०२ में अभिरामाबाद पर एक नोट लिखा गया है । कि, अभिरामाबाद, अलाहाबाद नहीं था मगर फ़तेहपुरसीकरीसे छःकोसपर बसे हुए एक गाँवका नाम था । इस विषयमें ' मंडीज ट्रैवल्स ' (Mundy's Travels)-जो सर रिचर्ड सी. टेम्पल द्वारा प्रकाशित हुआ है—विशेष प्रकाश डालता है । इस पुस्तकसे मालूम होता है कि अभिरामाबाद एक अच्छा क़स्बा था । वह ' बयाना ' से उत्तर दिशामें दो कोसके फ़ासलेपर था । इसको ' इब्राहीमाबाद ' भी कहते थे । यहाँ एक बहुत ही सुंदर बावड़ी थी । यह बावड़ी अब भी मौजूद है और ' झालर बावड़ी ' के नामसे पहचानी जाती है । इसपरके एक लेखसे मालूम होता है कि, अलाउद्दीन खिलजीके वज़ीर काफ़ूरने इसको ई० स० १११८ में बँधाया था । देखो—(Cunningham Archaeological Survey of India Report Vol. XX 69-70 Also Mundy P. 101)

विजरेल ।

पृ० २९२ में फिरंगीयोंके नायकका नाम विजरेल दिया गया है । विजरेल यह पोर्टुगीज़ शब्द Vice-rei on Viso-rei का अपभ्रंश रूप मालूम होता है । अंग्रजीमें उसे ' वॉइसरॉय ' कहते हैं । देखो-' डिक्शनरी ऑफ दि इंग्लिश-पोर्टुगीज़ लँगवेज' लेखक; एन्यनी, वीरा, पे० ६९४. (Dictionary of the English Portugese Languages by Anthony, Yieyra Page 694.)